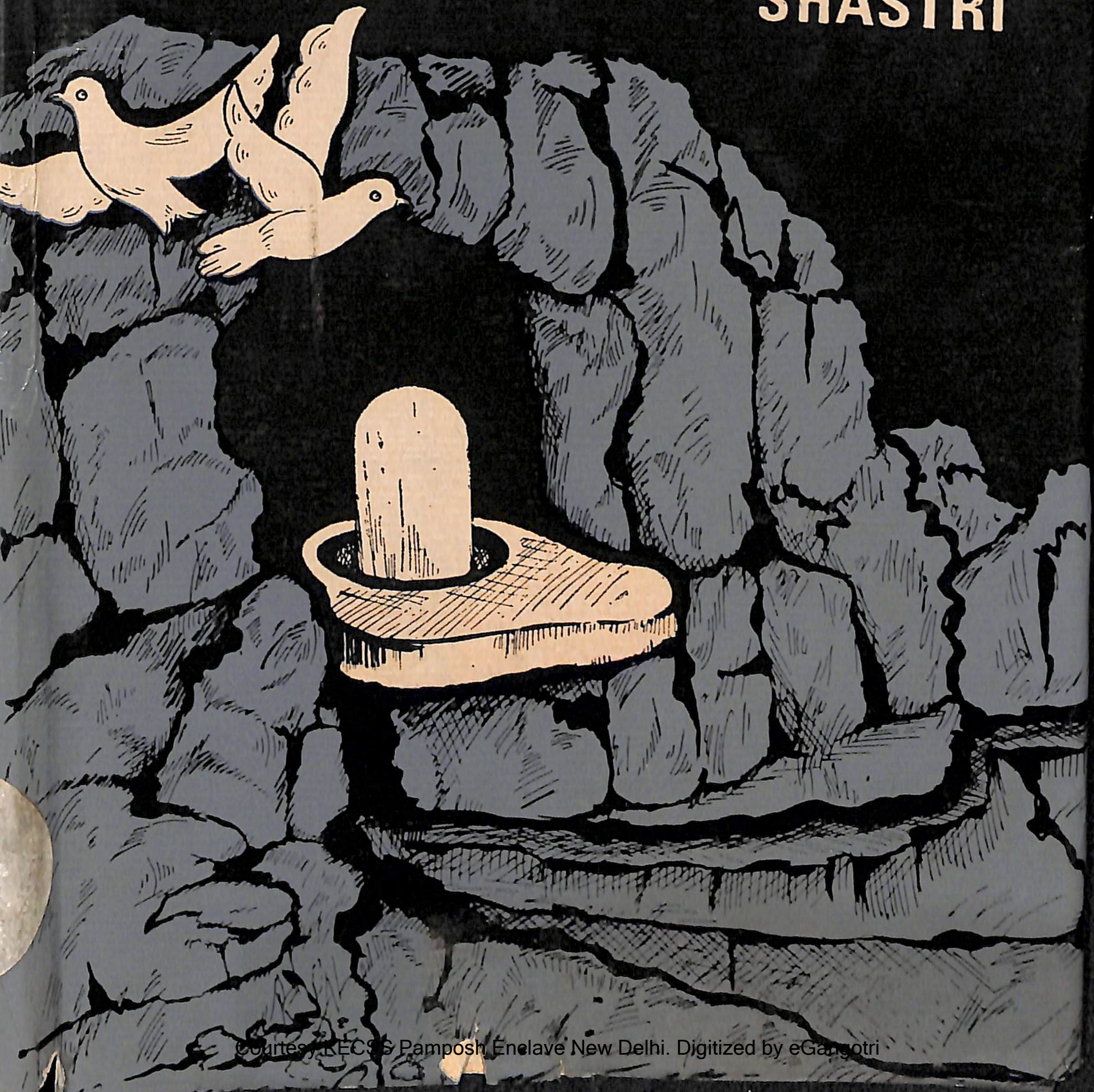
THE BHṚNGĪŚASAṀHITĀ

भृङ्गीशसंहिता

DR. ANANT RAM SHASTRI



1,a

भृङ्गीशसंहिता

THE BHṚNGĪŚASAMHITĀ

महापुराणम्

१. ब्रह्ममहापुराणम्
२ पद्ममहापुराणम्
३. विष्णुमहापुराणम्
४. शिवमहापुराणम्
५. भागवतमहापुराणम्
६. नारदीयमहापुराणम्
७. मार्कण्डेयमहापुराणम्
८. अग्निमहापुराणम्
९. भविष्यमहापुराणम्
१०. ब्रह्मवैवर्तमहापुराणम्
११. लिंगमहापुराणम्
१२. वाराहमहापुराणम्
१३. स्कन्दमहापुराणम्
१४. वामनमहापुराणम्
१५. कूर्ममहापुराणम्
१६. मत्स्यमहापुराणम्
१७. गरुडमहापुराणम्
१८. ब्रह्माण्डमहापुराणम्
१९. वायुमहापुराणम्
२०. विष्णुधर्मोत्तर पुराणम्

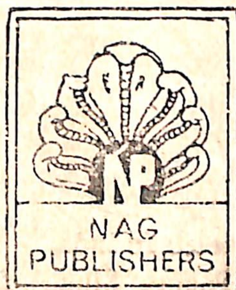
वासुकी पुराण :: देवीभागवत
हरिवंश पुराण :: भृंगीशसंहिता
कल्किपुराण :: एकाम्रपुराण
सौर पुराण :: नृसिंहपुराण

भृंगीशसंहिता

[भाषा टीका]

THE BHṚṄGĪŚASAṀHITĀ

डा० अनन्तराम शास्त्री



NAG PUBLISHERS
11 A/U.A. Jawahar Nagar, Delhi-7 (India)

Published with the financial assistance from the Ministry of Education & Culture, Govt. of India.

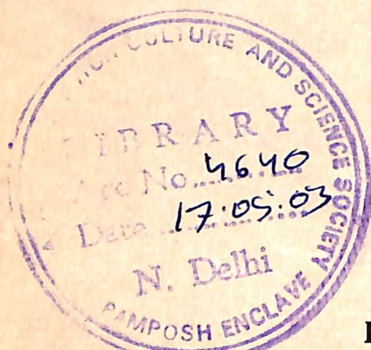
NAG PUBLISHERS

(i) 11A/U.A. (Postoffice Bldg.), Jawahar Nagar, Delhi-7
(ii) 8A/U.A.-3 Jawahar Nagar, Delhi-110007
(iii) Jalalpurmafi (Chunar-Mirzapur) U. P.

FIRST EDITION
1986
Price



Rs. 180/-



Printed In India

Published by Nag Sharan Singh for Nag Publishers, 11 A/U.A. (Postoffice building) Jawahar Nagar, Delhi-110007 and printed at Amar Printing Press, 8/25 Vijay Nagar, Delhi-110009.

आमुख

ओरियण्टल-कालेज-लाहौर में प्राचार्य पद पर नियुक्त श्री एम. ए. स्टीन द्वारा विरचित संस्कृत-पाण्डुलिपियों के सूचीपत्र (Catalogue का मैंने अध्ययन किया, जो महाराजा श्री रणवीरसिंह द्वारा संस्थापित श्री रघुनाथमन्दिरपुस्तकालय में स्थित संस्कृत-हस्तलिखित ग्रन्थों पर आधारित था, उसमें 'भृङ्गीशसंहिता' नामक पाण्डुलिपि पर मेरी दृष्टि पड़ी। अध्ययनोपरान्त मैंने पाया कि इसमें अत्यधिक काश्मीर प्रदेशान्तर्गत तीर्थस्थानों के माहात्म्य का वर्णन किया गया है, जो सांस्कृतिक एवं भौगोलिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं। इस ग्रन्थ में विशेषतः श्री अमरनाथ स्वामी, कपालमोचन, केदारनाथ, गुप्तगङ्गा, गोदावरी, ज्येष्ठा, नववर्षोत्सव, पुष्कर, राज्ञीप्रादुर्भाव, मार्त्तण्ड, वितस्ता, शारिका, शिवरात्रि, स्वयंभ्वग्नि, हरमुकुटगङ्गा और हारिद्रगणेश के माहात्म्य का उल्लेख किया गया है।

Stein M. A., Catalogue of the Sanskrit Manuscripts in the Raghunath Temple Library of His Highness the Maharaja of Jammu and Kashmir, Lahore, 1894. P. 210.

क्रमाङ्क	ग्रन्थनाम भृङ्गीशसंहीतायां	पत्राणि	श्रेणयः अक्षराणि	लिपिकाल	संवेदन
३६८६	अमरनाथ-माहात्म्यम्	२२	२४।२०	......	सम्पूर्णम्
३८८२	कपालमोचन-माहात्म्यम्	६	१०।८	......	सम्पूर्णम्
३६८०	तदेव	६	२४।२०	......	सम्पूर्णम्
३६५७ख	केदार-माहात्म्यम्	१२	२४।२०	१८०६	सम्पूर्णम्

क्रमाङ्क	ग्रन्थनाम भृङ्गीशसंहितायां	पत्राणि	श्रेणय अक्षराणि	लिपिकाल	संवेदन
३६६८ ड	गुप्तगङ्गा- माहात्म्य	२	२४।२०	……	सम्पूर्णम्
३६६४	गोदावरी- माहात्म्यम्	७	२४।२०	……	सम्पूर्णम्
३८८३	तदेव	१४	८।२०	……	सम्पूर्णम्
३६६७	ज्येष्ठा- माहात्म्यम्	८	२४।२०	……	सम्पूर्णम्
३६७१ त	नववर्षोत्सव- वर्णनमाहात्म्यम्-	४	२४।२०	……	सम्पूर्णम्
३६५८ ग	पुष्कर माहात्म्यम्	४	२४।२०	……	सम्पूर्णम्
३६५६ क	महाराज्ञी- प्रादुर्भावः	५	२४।२०	……	सम्पूर्णम्
३६८३ ल	मार्त्तण्ड- माहात्म्यम्	१२	२४।२०	……	असमाप्तम्
४०२०	वितस्ता- माहात्म्यम्	६४	१२।३३	……	सम्पूर्णम्
३६८८ ह	वितस्ता- माहात्म्यम्	६८	२४।२०	……	सम्पूर्णम्
३६७२ व	शारिका- माहात्म्यम्	११	२४।२०	……	असम्पूर्णम्
३६७० ण	शिवरात्रि- माहात्म्यम्	५	२४।२०	……	असम्पूर्णम्
३६६३ ज	स्वयंभ्वग्नि माहात्म्यम्	२	२४।२०	……	सम्पूर्णम्
४७९२	हरमुकुट गङ्गा माहात्म्यम्	२६	२६।२८	……	सम्पूर्णम्
३६८४ व	तदेव	१४	२४।२०	……	सम्पूर्णम्
३६६६ ट	हारिद्रगणेश माहात्म्यम्	२	२४।२०	……	सम्पूर्णम्

अध्ययन से यह पाण्डुलिपि मुझे अपूर्ण सी लगी। जिससे भृङ्गीश-संहिता की पूर्ण पाण्डुलिपि की खोज करते मैंने देश-विदेश के विशेषज्ञ-अनुसन्धाताओं के पास इसकी जानकारी के लिए पत्र द्वारा प्रार्थना की। परिणामतः दो-तीन पत्रों का उत्तर मिला, जिसमें उस समय मद्रास-विश्वविद्यालय में संस्कृतविभागाध्यक्ष पद पर सुप्रतिष्ठित प्रो० डॉ० के० कुन्जुन्नी राजा ने कैटेलागस-कैटेलोगोरम (Catalogus-Catalogorum Section) भाग का अनुसरण करते हुए ही जो सूचना भेजी, तदनुसार भी ईशालय ग्राम माहात्म्य, ज्येष्ठादेवी, पुष्कर, महादेवगिरि, माहेश्वरकुण्ड, मार्त्तण्ड, राज्ञीप्रादुर्भाव, राज्ञी, राज्ञीस्तव, वितस्ता, शारदा, शारिका, श्वेतगङ्गा, सुरेश्वरी और हरमुकुटगङ्गामाहात्म्य का उल्लेख किया गया है।

मद्रासविश्वविद्यालय में संस्कृतविभागाध्यक्ष डॉ० के० कुन्जुन्नी राजा द्वारा प्रेषित पत्रोत्तरः—

"I am Sending herewith the reference to the Bhringisha Sambita manuscript on the basis of the information available in the Catalogus-catalogorum Section.

7. 7. 44 Dr. K. Kunjunni Raja

भृङ्गीशसंहिता

Isalayagram mahatmya from 110 Stein H 3 (inc) 210)(inc)

Jyesthadevi mahatmya from 110 Stein 43.

Puskara mahatmya from 110 Stein 43.

Mahadevagiri mahatmya from 110 Stein 104

Mahesvra Kund mahatmya from 110 Stein.

Martanda mahatmya PUL 11 p. 157.

Rajnipradurbhava from : 110 Stein 43 (inc) 211 (inc)

Rajni mahatmya from 110 Stein 43.

Rajnistava from : Adyar l. P. 241 a.

Vitasta mahatmya from 110 Stein 155. 156.

Sarda mahatmya from 110 Stein 161.43.(with topographical notes by Dr. Stein)

Sarika mahatmya from : 110 Stein 204.
Svetaganga mahatmya from : 110 Stein 212.
Suresvari mahatmya from 110 Stein 43.177.
Haramukutaganga mahatmya from : 110 Stein 185. 186.
221 (inc)

Srisamhita is ref. to by Yadunatha Agamakalpalat

BBRAS-808

भृङ्गीशसंहिता के ही अन्तर्गत कहीं-कहीं पटल के साथ 'भृङ्गीश-संहिता' के स्थान पर 'श्री संहिता' का भी उल्लेख पाया जाता है, जिससे यही प्रतीत होता है कि भृङ्गीशसंहिता का ही दूसरा नाम 'श्री संहिता' है और इस उपर्युक्त वाक्य से भी पुष्टि होती है।

डॉ० के० कुञ्जनीराजा द्वारा प्रेषित सूचना श्री एम० ए० स्टीन पर ही प्रायः आधारित है, जिस के अनुसार भृङ्गीशसंहिता के ज्येष्ठा, पुष्कर, मार्त्तण्ड, वितस्ता, शारिका, हरमुकुटगङ्गा और राज्ञीप्रादुर्भाव खण्डविशेष में समता ही पाई जाती है, यदि दोनों में कोई अन्तर है तो यहः- श्री एम० ए० स्टीन विरचित सूचीपत्र (Catalogue) में अमरनाथ, कपाल मोचन, केदार, गुप्तगङ्गा, गोदावरी, नववर्षोत्सव वर्णन, शिवरात्रि, स्वयंभ्वग्नि और हारिद्रगणेश-माहात्म्य भृङ्गीशसंहिता के अन्तर्गत विशिष्टस्थान प्राप्त किए हुए हैं और डा० कुञ्जन्नीराजा की सूचनानुसार ईशालयग्राम, महादेवगिरि, माहेश्वर कुण्ड, राज्ञीस्तव, शारदा और सुरेश्वरीमाहात्म्य का उल्लेख भृङ्गीशसंहिता में विशिष्ट-निर्दिष्ट है। इन दोनों माहात्म्यविशेष का उल्लेख दोनों सूचनाओं में नहीं है। अलग-अलग विशिष्टता लिए हुए दोनों सूचनाएं हैं।

विदेशी विद्वान् प्रो० डॉ० जे० गोन्डा ने भी भृङ्गीशसंहिता की विशेष जानकारी के लिए प्रो० के० कुञ्जन्नीराजा के ही नाम का उल्लेख किया था—

'In reply to your letter dated 18-11-74 I let you know that I cannot, to my regret locate another manuceript of the 90th chapter of the Bhringish Sambita. I would advise you

to consult Professor K. Kunjunni Raja, Head of the Deptt. of Sanskrit, Madras University and Editor of the New Catalogus Catagorum. He will, no dout, possess in his files······"

Prof. Dr. J. Gonda

UTRECHT

इस के अतिरिक्त अखिलभारतीय-काशीराज-ट्रस्ट के अन्तर्गत स्थित पुराणविभाग में सहनिदेशक श्री ए० एस० गुप्त ने भी इस सम्बन्ध में अत्यधिक जानकारी के लिए श्री एम० ए० स्टीन के ही सूचीपत्र (Catalogue) का उल्लेख किया—

"Kindly refer to your letter 19th November 1974 asking fot the information about manuscript of the 90th chapter of the भृङ्गीशसंहिता. The भृङ्गीशसंहिता is a Pauranic work. A manuscript of It is recorded in "the report of a tour in reserch of Sanskrit MSS. made in Kashmir, Rajputana and Central India" by G. Buhler, Bombay 1977-78. It was published there, you can try to procure it and consult it. MSS, of some 16 Mahatmyas are also noted by Stein in his Catalogue on the page (2) No. 40-11. This Calaiogue may be available in the Reghunath Sanskrit Library, Jammu.

A. S. Gupta.
Astt. Director
Kashiraj Trust Puran Vibhag
Kashi (Varanasi)

उपर्युक्त यथासम्भव उपलब्ध सूचनाओं के अनुसार अभी तक अप्रकाशित इस भृङ्गीशसंहिता की पाण्डुलिपि के सम्पादन एवं प्रकाशन कार्य को मैंने अपने हाथों में लिया। मेरी इच्छा थी कि इस पाण्डुलिपि में सविस्तृत वर्णित प्राचीन-सांस्कृतिक काश्मीर के इन तीर्थस्थानों से सर्वसाधारण जनता को परिचित कराया जाए, जो कि मूलरूप में ही प्रकाशन से असम्भव लगा, अतः भारतीय राष्ट्र-

भाषा हिन्दी में अनुवाद के साथ इस पाण्डुलिपि के लपाठ का सम्पादन करने का मैंने निश्चय किया, जो आप के सामने सादर समुपस्थित है। भरसक प्रयास करने पर भी किसी न किसी रूप में कोई त्रुटि प्रकाशन कार्य में रह ही जाया करती हैं, जिस के लिए क्षमा प्रार्थी हूँ और आशा करता हूँ कि आप द्वारा ध्यान दिलाए जाने पर भविष्य में उन त्रुटियों को दूर करने का अवश्य यत्न किया जाएगा।

धर्मार्थ ट्रस्ट, जम्मू के प्रधान-सदस्य एवं मन्त्री का मैं आभारी हूँ और उन का हार्दिक धन्यवाद करता हूँ, जिन्होंने पत्र नं० ७६७७-७९, तिथि ७-३-८० के अनुसार श्री रणवीर संस्कृत रिसर्च इन्स्टीच्यूट, जम्मू में उपलब्ध भृङ्गीशसंहिता-पाण्डुलिपि की फोटो-स्टेट कापी उठाने की अनुमति प्रदान की एवं पत्र नं० ८८१४-१५, तिथि ६-१०-८० के अनुसार इसी पाण्डुलिपि को सम्पादित कर प्रकाशित करने की भी अनुमति प्रदान कर अनुगृहीत किया।

दीपावली
१२. ११ १९८५

अनन्तराम शास्त्री
१९६ पक्की ढक्की, जम्मू

विषय सूची

ॐ श्रीगणेशाय नमः, ॐ श्रीमार्तण्डाय[1] नमः

ओं सूत उवाच—श्रीसूत जी बोले—

शौनकाद्या महात्मानो मुनयो ब्रह्मवादिनः ।
नैमिषाख्ये[2] महारण्ये तपस्तेपुर्मुमुक्षवः[3] ॥

महात्मा शौनक आदि ब्रह्मवादी मुनियों ने मोक्ष की इच्छा से नैमिष नामक महारण्य में तप किया ।

एकदा[4] ते महात्मानः समाजं चक्रुरुत्तमाः ।[5]
धर्मार्थकाममोक्षाणामुपायं ज्ञातुमिच्छवः ॥[6]

धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष के उपाय को जानने की इच्छा से एक बार उन उत्तम महात्माओं ने सभा बुलाई ।

कानि क्षेत्राणि पुण्यानि कानि तीर्थानि[7] भूतले ।
कथं वा भवति मुक्तिर्नृणां पातकिनां कलौ ॥

इस पृथ्वी पर कौन २ पुण्य क्षेत्र और तीर्थ हैं तथा कलियुग में पापी मनुष्यों की मुक्ति कैसे होती है ?

उपस्थितौ दारुणो यः कलिः[8] कल्मषवृद्धये ।
क्षणक्षणक्षीयमाणधर्मा[9] पापिष्ठवृद्धिकृत् ॥

पापों की वृद्धि के लिए प्रतिक्षण धर्म को क्षीण करता हुआ और पापियों को बढ़ाता हुआ जो दारुण कलियुग उपस्थित हुआ है ।

पाखण्डा[10] बहवो यत्र श्रुतिमार्गप्रलोपकाः ।
प्रादुर्भूता मतिर्नृणां विपरीते च दृश्यते ॥

जहां वेद विहित मार्ग का लोप करने वाले बहुत से पाखण्ड पैदा होंगे और मनुष्यों की मति विपरीत मार्ग में देखी जाएगी ।

न श्रद्धा श्रुतिधर्मेषु न भक्तिः[11] परमेश्वरे ।
लोभाप्रतिष्ठानिष्ठानामधर्मैक[12]प्रवृत्तये ॥

---

१. मार्तण्डेय, २. नैमिषारण्ये, ३. तपस्तेपुमु०, ४. एकधा, ५. चक्ररुक्षमः, ६. ज्ञातुच्छवः, ७. तीर्थाणि, ८. कलि, ९. धर्माः, १०. पाषण्डा, ११. भक्तिः परमेशुरे, १२. मधर्मक ।

वैदिक धर्मों में श्रद्धा नहीं होगी, परमेश्वर में भक्ति नहीं होगी और एकमात्र अधर्म में प्रवृत्ति के लिए लोभ की प्रतिष्ठा की स्थिति होगी।

एवं विलुप्ते धर्मे सर्वे निरयगामिनः।
एषामुद्धरणार्थाय क उपायस्तदुच्यताम् ॥

इस प्रकार धर्म के लुप्त हो जाने पर सभी नरकगामी होंगे। इनके उद्धार के लिए क्या उपाय है, वह कहिए।

इत्येवमुद्यतान्प्रष्टुं मुनी[1]नावेक्ष्य शौनकः।
प्राह विष्णुं नमस्कृत्य विनयावनतो मुनिः ॥

इस प्रकार यह पूछने के लिए उद्यत हुए मुनियों को नम्रभाव से देखकर शौनक मुनि ने विष्णु को नमस्कार करके कहा।

शौनक उवाच—शौनक बोले—

शृणुध्वमृषयः सर्वे प्रश्नमेतत्सु[2]दुर्लभम्।
मोक्षप्रदं मनुष्याणां कलौ कलुषचेतसाम् ॥

सभी ऋषियो! सुनो, यह प्रश्न दुर्लभ हैं। कलियुग में कलुषित चित्त वाले मनुष्यों को यह मोक्ष प्रदान करने वाला है

सतामेव प्रवक्तव्यं गुह्याद्गुह्यमिदं यतः।
त्यक्तकामादि[3]दोषाणां विष्णुभक्तिरतात्मनाम् ॥
गुरुभक्तिरतानां च वक्तव्यं मुक्तिसाधनम्।

विष्णु भक्ति में लगे हुए आत्मा वाले सज्जन पुरुष को ही यह कहना चाहिए, क्योंकि यह गुप्त से भी गुप्त है।

काम आदि दोषों से रहित और गुरुभक्ति में लगे हुए मनुष्यों को यह कहना चाहिए, क्योंकि यह मुक्ति का साधन है।

ब्रह्मद्वेषरतानां तु दम्भाचारहतात्मनाम्।
लोकानां बलवृत्तानां न [4]ब्रूयादिदमुत्तमम्[5] ॥

ब्रह्मद्वेष में लगे हुए, दम्भाचार से आक्रान्त आत्मा वाले······लोगों को यह उत्तम न कहे।

क्षेत्राणा[6]मुत्तमं क्षेत्रमस्ति काश्मीरमण्डलम्।
सिद्धपीठतयाख्यातं शिखरे हिमवद्गिरेः ॥

---

१. मुनीनाँ वेक्ष्य, २. मेतस्व, ३. कासादि, ४. ब्रीयादि, ५. मुत्तमाः, ६. क्षेत्राणं

क्षेत्रों में उत्तम काश्मीर मण्डल क्षेत्र है और यह हिमालय पर्वत के शिखर पर सिद्धपीठ के रूप में कहा गया है।

त्रिलोकिभूतलसारं तत्रापि हिमवद्गिरिः।

काश्मीर तीनों लोकों के भूतल का सार है। वहाँ पर भी हिमालय पर्वत

तत्रापि मण्डितं तीर्थैं पुण्यं काश्मीरमण्डलम्[1]।
चत्वारिंशच्च पञ्चाथ तत्र स्थानानि शूलिनः॥

वहां भी यह पुण्यकर काश्मीरमण्डल तीर्थों से मण्डित हैं। वहां त्रिशूल धारी महादेव के ५४ स्थान हैं।

षष्टि विष्णोस्तथा त्रीणि स्थानानि परमेष्ठिनः।
द्वाविंशतिश्च दुर्गायाः सपुण्यानि च तत्र वै॥

वहां विष्णु के ६० तथा ब्रह्मा के तीन और दुर्गा के २२ पुण्यप्रद स्थान हैं।

येषां दर्शनमात्रेण सद्यः पापक्षयो भवेत्[2]।
सिद्धिर्धर्मार्थकामानां मोक्षस्य च यथेप्सितम्॥

जिनके दर्शनमात्र से झट पापों का नाश हो जाता है। धर्म-अर्थ और काम की तथा जैसा चाहने वालों को-वैसी सिद्धि मिल जाती है।

किं वात्र बहुनोक्तेन मुनयः सिद्धिदातृभिः।
तीर्थैर्विगर्हितैः पुण्यैस्तिलाशोऽपि न यत्र वै॥

बहुत कहने से क्या लाभ है? हे मुनिओ! सिद्धि देने वाले तीर्थों और प्रशस्तपुण्यों से जहां तिल की आशा भी नहीं हैं।

अस्ति तत्र महत्क्षेत्रंमार्तण्डं[3] नाम भास्वतः।
यत्र पातकिनो यान्ति कृते श्राद्धे विमुक्तये॥

वहां सूर्य का मार्तण्ड नामक महाक्षेत्र है जहाँ पापी श्राद्ध करने पर मुक्ति प्राप्त करने के लिए जाते हैं।

प्रथमं तस्य क्षेत्रस्य द्वारपालो व्यवस्थितः।
अनन्तनाम नागाख्यः[4] शय्याभूतो मुनीश्वराः।

हे मुनीश्वरो, प्रथम उस क्षेत्र का द्वारपाल अनन्त नाम नाग है, जा भगवान् की शय्या बनी थी।

---

१. कश्मीरमंडलं, २. भवत्, ३. मार्तण्डं, ४. नागाख्यो।

अनन्तस्याप्रमेयस्य विष्णोरमिततेजसः[1] ।
अनेकाक्षाः पुरे विप्राः शेषनागो महाबली ।।

हे अनेकाक्ष विप्रो ! अनन्त, अप्रमेय और अमित तेज वाले विष्णु के आगे महाबली शेषनाग

वसति स सदा लोकान्पावनार्थं द्विजर्षभाः ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पूजनीयो हि नागराट् ।।

हे द्विजर्षभो ! लोकों को पवित्र करने के लिए वह सदा वहां रहता है, इसलिए सभी यत्नों से नागराज की पूजा करनी चाहिए।

तत्र स्नानं प्रकुर्वीत दत्वा दानं द्विजातये ।
यत्स्नानमा[2]...... व्यनेकाक्षोऽभवत्पुरा ।।

द्विजाति (ब्राह्मण) को दान देकर वहां स्नान करे।

तत्रापि दानं कर्तव्यं स्नानं होमं तथा जपम्[3] ।

वहां भी स्नान, होम, जप तथा दान करना चाहिए।

उत्तरे हिमवत्कुक्षौ शुभे काश्मीरमण्डले ।
क्रोशत्रये परिमाणं[4] सूर्यतन्त्रं विमुक्तिदम् ।।

उत्तर की ओर हिमालय पर्वत की कुक्षि के भीतर स्थित इस शुभ काश्मीर मण्डल में मुक्ति देने वाला तीन कोस परिमाण सूर्यतन्त्र है।

चक्रेश्वरात्समारभ्य यावद्गौतमसंगमम्[5] ।
मार्त्तण्डं[6] नाम नक्षत्रं पितॄणां मुक्तिकारणम् ।।

चक्रेश्वर से लेकर गौतम संगम तक मार्त्तण्ड नामक नक्षत्र पितरों को मुक्ति प्रदान करने में कारण है।

स्पर्शनाद्देवता[7] यस्य हरन्त्याापातकान्नृणाम् ।

स्पर्शमात्र से देवता जिसके पापों को हरते हैं।

नद्या[8] पश्चिमगामिन्या[9] चाकया परिशोभितम् ।
पूर्वाभिक्रमतो[10] भर्गशिखादिभिरधिष्ठितम् ।।

पश्चिम की ओर बहने वाली चाका नदी से शोभित......

परितो रक्षितुं साक्षाद्देवीभिः परशक्तिभिः ।
यस्तु वर्षशतं पूर्णं गयाश्राद्धं समीहते ।

---

१. रंभित, २. स्नान, ३. जपः, ४. परीमाणं, ५. सगयं, ६. मार्त्तण्डं, ७. स्पर्शमादेव ८. नाद्या, ९. गमिन्या, १०. पर्वाभिक्रमतो भर्ग० ।

दिनमेकन्तु मार्त्तण्डे श्राद्धं पुण्यन्तु तत्समम् ।।

चारों तरफ से रक्षा करने के लिए साक्षात् परशक्ति देवियों से अधिष्ठित है। जो सौ वर्ष पूर्ण गया श्राद्ध चाहता है। मार्त्तण्ड में एक दिन भी किया गया श्राद्ध उसके समान पुण्यप्रद है।

द्विपञ्चाशतिवर्षाणि गयाश्राद्धानि कुर्वतः।
एकाहे तु रविक्षेत्रे पुण्यं[1] प्राप्नोति मानवः ।।

५२ वर्ष गया में श्राद्ध करने वाले को इस रविक्षेत्र में एक दिन में ही किए जाने पर वे पुण्य उसके समान होते हैं।

सूयपादे वरिष्ठे तु यः श्राद्धं कुरुते पुमान्।
पितरो मोक्षमायान्ति न स भूयो[2]ऽभिजायते ।।

वरिष्ठ सूर्यपाद में जो पुरुष श्राद्ध करता है उसके पितर मोक्ष को प्राप्त करते हैं और वह फिर पैदा नहीं होता है।

सोमवारे त्वमावास्या रविवारे च[3] सप्तमी ।
तत्र मलिम्लुचे मासे[4] सूर्यक्षेत्रे पितॄन्यजेत्।

सोमवार के दिन अमावस्या हो और रविवार के दिन सप्तमी हो तथा मलिम्लुच मास में वहां सूर्यक्षेत्र में पितरों की पूजा करे।

अक्षयं चाप्यनन्तञ्च[5] श्राद्धं[6] दानं जपं हुतम्।
ब्राह्मणान्भोजयेत्तत्र श्राद्धकाले विशेषतः ।।

वहाँ किया हुआ श्राद्ध, दान, जप, तथा होम अक्षय है और अनन्त है। वहाँ विशेषकर श्राद्धकाल में ब्राह्मणों को भोजन कराए।

[7]शक्योदनमपूपाश्च खण्डवेष्टिश्च शक्तितः।
सघृतं पायसं चैव हविष्यं व्यञ्जनं तथा ।।

शक्योदन, मालपूआ, खण्डवेष्टि, घृत सहित खीर, हविष्य और व्यञ्जन यथाशक्ति खिलाए।

हिंसाकारं तु यत्किञ्चित्तत्सर्वं परिवर्जयेत्।
मांसं भुङ्क्ते तु यो [8]मोहात्सूर्यक्षेत्रे कदाचन ।
निराशाः पितरस्तस्य शापं दत्वा प्रयान्ति वै ।

---

१. पण्यं तानि च, २. भूयोपि जायते, ३. रविवारेश ; ४. मासि
५. चाप्यनंते च, ६. श्राद्धे, ७. शच्योदनः, ८. माहात् ।

हिंसाकार जो कुछ है, वह सब कुछ छोड़ दे। जो सूर्य क्षेत्र में कभी मोह से मांस भक्षण करता है, उसके पितर निराश होकर उसे शाप देकर चले जाते हैं।

मृतभुक्त्वा चिरं कालं नरकं चाभिगच्छति

चिर काल मृत के निमित्त दिया अन्न खाकर नरक को

अन्य[1]क्षेत्रे कृतं पाप सूर्यक्षेत्रे विनश्यति।
सूर्यक्षेत्रकृतं पापं वज्रलेपेन शुद्ध्यति॥

दूसरे क्षेत्र में किया हुआ पाप सूर्यक्षेत्र में नष्ट हो जाता है और सूर्यक्षेत्र में किया हुआ पाप वज्रलेप से शुद्ध होता है।

श्रीमार्त्तण्डये क्षेत्रे सप्तम्यां तु रवि[2]दिने।
विजया नाम सा प्रोक्ता पितृणा[3]मिह मुक्तये॥

जहां पितरों की मुक्ति के लिए श्री मार्त्तण्ड क्षेत्र में सप्तमी और रविवार के दिन में वह विजया नाम से कही गई है।

मलिम्लुचसहस्राणि दशहारशतानि च।
अष्टोत्तरममावस्यामेका विजयसप्तमी॥

हजार मलिम्लुच (मलमास) हों और सैंकड़ों दशहार हों तथा आठ से भी ऊपर अमावस्या को एक विजय सप्तमी बढ़कर है।

यत्तु मार्त्तण्ड्य[4]नाथस्य मासे चैव त्रयोदशे।
गयापिण्डप्रदानस्य वाराणस्याश्च[5] यत्फलम्॥
सूर्यक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे······[6] तु यत्।
तत्फलं लभते मर्त्यः सत्यमेव न संशयः॥

त्रयोदशी तिथि वैशाख मास को गया में पिण्ड देने का और वाराणसी का जो फल है, जो सूर्यक्षेत्र कुरुक्षेत्र में···वही फल मनुष्य यहाँ प्राप्त करता है, इसमें संशय नहीं है।

अधार्मिकाणां[7] पिण्डं च पतितव्रतिनां तथा।
श्राद्धं पिण्डप्रदानं च तत्रैव तु मलिम्लुचे॥[8]

अधर्मियों को तथा पतितव्रतियों को वहीं मलमास में पिण्डदान एवं श्राद्ध करने में—

---

१. अन्ये, २. रविर्दिने, ३. पितृणामिह, ४. मार्त्तण्ड, ५. वारणस्याञ्च, ६. प्रयापत्तना तु यत्, ७. अधर्मिकाणाँ, ८. मलिम्लु।

तृप्ताः प्रेता मोदमानाः पितरो यान्ति वै दिवम् ।

तृप्त हुए प्रेत, प्रसन्न हुए पितर स्वर्ग को जाते हैं ।

येषां श्राद्धे विरोधोऽस्ति पतितानां विशेषतः ।
सूर्यक्षेत्रे मले तेषां श्राद्धमक्षय्यतां व्रजेत् ।।

जिनके श्राद्ध में विशेषकर पतितों के विरोध है, मलमास के दिनों सूर्य्यक्षेत्र में उनका श्राद्ध अक्षय्यता को प्राप्त होता है ।

यस्तु मार्त्तण्ड[1]नाथस्य मासे चैव त्रयोदशे ।
मासमध्ये प्रतिदिनं स्थाने[2]ऽस्मिन्भोजयेद्द्विजान् ।।

जो वैशाख के महीने त्रयोदशी के दिन मास के मध्य में प्रतिदिन इस स्थान में ब्राह्मणों को भोजन कराए ।

गयाशतगुणं पुण्यं भवत्येव न संशयः ।

गया से सौ गुणा अधिक पुण्य होता है, इसमें सन्देह नहीं है ।

मलिम्लुचेऽ[3]त्र यः कुर्याच्छ्रीविष्णु[4] बलिपूर्वकम् ।
प्रेतक्रिया भवेत्तस्य पितरो यान्ति वै दिवे ।

जहाँ मलमास में जो श्री विष्णु को बलि प्रदान करे, प्रेतक्रिया हो, उस के पितर स्वर्ग में जाते हैं ।

मासमध्ये यत्र दिने यत्कालं भोजयेद्[5]द्विजान् ।
द्वादशी सा तु विज्ञेया गवां[6]शतगुणं फलम् ।।

मास के मध्य में, जिस दिन, जिस समय ब्राह्मणों को भोजन कराए, वह द्वादशी जानना । गया से सौ गुणा अधिक फल होता है ।

यथा सारस्वतं तोयं तथा यत्रैव दृश्यते ।
मलमासे सूर्यक्षेत्रे द्वादशीति दिने दिने ।।

जैसे सरस्वती नदी का जल है, वैसा जहाँ भी देखा जाता है । मलमास के दिनों में सूर्यक्षेत्र में प्रतिदिन द्वादशी

अदग्धानामपिण्डानां पतितव्रतिनां तथा ।
श्राद्धं पिण्डप्रदानं[7] च नैव कुर्यादि[8]ति श्रुतिः ।।

अदग्ध, अपिण्ड, पतितव्रतियों के लिए श्राद्ध एवं पिण्डप्रदन न करे, यह श्रुतिवाक्य है ।

---

१. मार्त्तण्डः, २. स्थानोस्मि, ३. मलिम्लुचेत्र, ४. विष्णुः बलि, ५. भोजयेद्विजान्, ६. गवाशतः ७. प्रधानं, ८. कुर्यादिश्रु ।

तेषां मलिम्लुचे[१] मासे सूर्यक्षेत्रे प्रयत्नतः ।
सितासिताभ्यां पक्षाभ्यां या तिथिः[२] श्राद्धकर्मणि ।।
तस्मिंस्तस्मिन्रवि[३]क्षेत्रे मासे चैव त्रयोदशे ।
श्राद्धे पिण्डप्रदानं[४] च कुर्यान्मार्त्तण्ड[५]पादयोः ।।

उनका मलमास के महीने सूर्यक्षेत्र में यत्नपूर्वक कृष्णपक्ष-शुक्लपक्ष से जो तिथि श्राद्ध कर्म में प्रशस्त है उस-उस सूर्यक्षेत्र में मलमास के महीने मार्त्तण्ड के पादों में श्राद्ध और पिण्डदान करे।

तेषां मलिम्लुचे[६] मासे सूर्यक्षेत्रे विशेषतः ।
विष्णुश्राद्धं कृत्वा पिण्डं प्रदद्यात्पुण्यवान् नरः[७] ।।

पुण्यात्मा मनुष्य उनका विशेषकर मलमास के महीने सूर्यक्षेत्र में विष्णु श्राद्ध कर पिण्ड दे।

कुरुक्षेत्रे प्रयागे च हरद्वारे तथैव च ।
मार्त्तण्ड[८]पादमूले च श्राद्धं हरिहरौ स्मरन् ।।

कुरुक्षेत्र में, प्रयाग में तथा हरद्वार में और मार्त्तण्ड के पादमूल में हरि एवं हर का स्मरण करता हुआ श्राद्ध करे।

भास्करे[९]ऽथ सरस्वत्यां गंगायमुनसंगमे ।
मानसी दैविकी ग्राह्या पैतृकेऽपि[१०]महाभवेत् ।।

भास्कर, सरस्वती और गङ्गा यमुना के सङ्गम में

अन्यक्षेत्रे कृतं श्राद्धं पितृणां[११] तृप्तिमात्रकृत् ।
महामार्त्तण्ड[१२]क्षेत्रे तु भूयः[१३] श्राद्धं न गच्छति ।।

...क्षेत्र में किया हुआ श्राद्ध पितरों को मात्र तृप्ति प्रदान करता है। महामार्त्तण्ड क्षेत्र में तो फिर श्राद्ध को प्राप्त नहीं होता है।

गंगायां भास्करे क्षेत्रे पितृमातृगुरुक्षये ।
मधुमत्यां च यज्ञेषु वपने सप्तसु[१४]मतम् ।।

गंगा में, भास्कर क्षेत्र में, पिता-माता-गुरु क्षय में, मधुमती में, यज्ञों में, वपन में इन सातों में माना गया है।

---

१. मलिम्लुचे मासि, २. तिथि, ३. तस्मितस्मि, ४. पिण्डं प्रदानं, ५. न्मार्त्तण्ड, ६. मलिम्लुत्रे मासि ७. त्पुण्यवानरः ८. मार्त्तण्ड, ९. भास्करेथ, १०. पैतृकेपिर्महा, ११. पितृणा, १२. मार्तण्ड, १३. भूयं, १४. स्मृतं।

देवस्योत्तरपार्श्वे तु नदी वहति पश्चिमा ।
वपनं तत्र कर्त्तव्यं दीक्षायज्ञाधिकं फलम् ॥

देव के उत्तर पार्श्व में पश्चिमा नदी बहती है, वहाँ वपन करना चाहिए दीक्षा-यज्ञ से अधिक फल होता है ।

यावन्ति[1]......तस्मिस्तोये[2] पतन्ति वै ।
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ।

जितने...उस जल में गिरते हैं, उतने हजार वर्ष वह स्वर्गलोक में महिमा को पाता है ।

तीर्थं सम्प्राप्य यो धीमान्मुण्डनं[3] नैव कारयेत् ।
वृथा तस्य क्रिया:[4] सर्वास्तीर्थद्रोही भवेन्नर: ॥

जो बुद्धिमान् पुरुष तीर्थ पाकर मुण्डन न कराए उसकी सभी क्रियाएं वृथा हैं । वह मनुष्य तीर्थद्रोही होता है ।

प्राप्य पुण्यां सरिच्छ्रेष्ठां[5]कम्पन्ति[6]पापसंचया:[7] ।
केशान्ना[8]श्रित्य तिष्ठन्ति तस्मात्तान्परिवर्जयेत् ॥

पुण्य-पवित्र श्रेष्ठ नदी को पाकर पापसमूह काँपते हैं और केशों का सहारा लेकर ठहरते हैं । इसलिए इन्हें छोड़ दे अथवा विसर्जन कर दे ।

गंगायां भास्करे क्षेत्रे मुण्डनं न करोति य: ।
स कोटिकुलसंयुक्त: आकल्पं रौरवं वसेत् ॥

गंगा में, भास्कर क्षेत्र में जो मुण्डन नहीं करता है, वह करोड़कुल से युक्त कल्पपर्यन्त रौरव नरक में रहता है ।

तत्र यद्विमलं नाम तीर्थं देवनिषेविते ।
मत्स्यरूपधरै: सिद्धै: जुष्टं चक्रधरैरपि ।

देवों से सेवित उस तीर्थ में जो विमल नामक तीर्थ है वह मत्स्य रूप धारण किए हुए सिद्धों से और चक्रधरों से भी सेवित है ।

तत्र हेममया मत्स्यास्ताम्रराजातिसन्निभा: ।
तत्र स्नात्वा बलिं तेभ्यो दत्वा पुण्यं महत्फलम् ॥

वहाँ ताम्रराज के समान सुवर्णमय मत्स्य हैं । वहाँ स्नान कर, उन्हें बलि देकर पुण्य कर महाफल को पाता है ।

---

१. नखरोमाणि, २. तस्मि तोये, ३. न्मण्डनं, ४. क्रिय:, ५. सरिश्रेष्टं, ६. कम्पंते, ७. संचय:, ७. केशानाश्रित्य ।

देवी भर्गशिखा तत्र विश्रुता त्रिमलापहा ।
पितृमुक्तिप्रदा साक्षाद्देवदेवीसखीयुता ॥

वहाँ तीनों मलों को नष्ट करने वाली भर्गशिखा देवी प्रसिद्ध है । वह पितरों को मुक्ति देने वाली है और साक्षात् देवता-देवियों तथा सखियों से युक्त है ।

सूत उवाच—सूत बोले

इति श्रुत्वा तु माहात्म्यं मार्त्तण्डस्य[1] मुनीश्वराः ।
प्रोचुर्निबद्धाञ्जलयस्तत्र शुश्रूषवः पुनः ॥

इस प्रकार मार्त्तण्ड के माहात्म्य को सुनकर मुनीश्वर वहाँ फिर सुनने की इच्छा से दोनों हाथ जोड़कर बोले ।

मार्त्तण्डेति[2] कथं नाम क्षेत्रस्यास्य विशेषतः ।
श्रुत्वा माहात्म्यमेतस्य जातं कौतूहलं हि नः ॥

इस क्षेत्र के माहात्म्य को सुनकर हमें यह जानने का कुतूहल पैदा हुआ है कि विशेषकर इस क्षेत्र का नाम 'मार्त्तण्ड' क्यों पड़ा है ?

शौनक उवाच[3]—शौनक बोले—

पतिताः[4] के विनिर्दिष्टास्तेषां शुद्ध्य त्वयात्र यत् ।
नारायणबलिः[5] प्रोक्तो विधिस्तत्रापि कथ्यताम् ॥

कौन पतित आपने कहे हैं, उनकी शुद्धि के लिए तूने जहां जो नारायण बलि कही है, वहीं उसकी विधि भी कहिए ।

भवद्वाक्यामृतं श्रुत्वा तृप्तिर्नैव च जायते ।
शृणुध्वं मुनयो दिव्यां कथामत्यद्भुतामिमाम् ॥

आपके अमृत के समान वाक्य सुनकर तृप्ति नहीं होती है । हे मुनियो ! अत्यद्भुत इस दिव्य कथा को सुनिए ।

श्रवणादेव सर्वेषां पातकानां विशोधिनी ।
मन्वन्तरे चाक्षुषं वैप्राक्तने[6] जाह्नवीजले ॥

प्राचीनतम चाक्षुष मन्वन्तर में गंगा के जल में यह कथा श्रवण मात्र से ही सभी पापों को शुद्ध करने वाली है ।

मुनिपुत्रो विकर्णाख्यः चिक्रीड शिशुभिः सह ।

---

१. मार्त्तण्डस्य, २. मार्त्तण्डेति, ३. ऊचुः, ४. पतिमः, ५. बलि प्रोक्तो, ६. प्राकव् ।

क्वापि यातेऽस्य पितरि क्षुत्तृष्णाश्रमकर्षितौ ।।
शुनःशेपश्वलाङ्गूलौ प्रापतुस्तु तदाश्रमम् ।।

विकर्ण नामक मुनिपुत्र बच्चों के साथ खेल रहा था। इसके पिता के कहीं चले जाने पर भूख-प्यास से थके हुए शुनःशेप और श्वलाङ्गूल उसके आश्रम में आए।

मुनिपुत्रेण तेनाथ लीलापहृतचेतसा ।
अभ्युत्थानाभिवादैस्तौ नार्चितौ वाच्यहेलया ।।

इसके बाद क्रीड़ा में लगे चित्त वाले उस मुनिकुमार ने वे दोनों का अभ्युत्थान-अभिवादन से पूजा नहीं की।

ततः क्षुत्तृ[1]ष्णापरिश्रान्तौ मुनी तौ खिन्नचेतसौ ।
क्रोधादशपतां तौ[2] तु विकीर्णं क्रीडने रतम् ।।

इसके बाद भूख-प्यास से थके, दुःखी चित्त वाले उन दोनों ने क्रोध से खेलने में लगे विकीर्ण को शाप दे दिया।

आवां त्वदाश्रमे प्राप्तौ क्षुधितौ न त्वया पुनः ।
सम्भावितावातिथ्येन[3] क्रीडनामूढचेतसा[4] ।।

भूखे हम दोनों तुम्हारे आश्रम में आए, पर तूने आतिथ्य से हमारा सत्कार नहीं किया।

यथाद्य प्लवसे तोये चेतनारहितः शिशुः ।
चतुर्दश[5]···क्षुत्तृष्णाक्लेशदुर्बलः ।।
विचेतनो विमूढात्मा जले मूढाण्डतां व्रज ।
इति दत्वाथ तच्छापं[6] यथेच्छं[7] गतयोस्तयोः[8] ।

विचेतन विमूढात्मा तू जल में तैर रहे हो इस प्रकार उसे शाप देकर इच्छानुसार वे दोनों चले गए।

ततस्तच्छापभीतोऽसौ तपसाऽक्षपयत्तनुम् ।
समतीतेषु मनुषु तथैवं कालपर्यये ।।

इसके बाद उनके शाप से डरे उसने तप से अपने शरीर को क्षीण कर दिया। मनुओं के बीत जाने पर और कालविपर्यय हो जाने पर—

आदिकल्पेन तत्राभून्नष्टं स्थावरजङ्गमम् ।

---

१. क्षुदतृत्परि, २. ते तु, ३. वानिव्येन ४. प्रापना मूढचेतसः, ५. मननत्र ६. तच्छामं ७. यथेच्छा ८. स्त्रयोः ।

दिक्कालकलना नासीन्न च सूर्यो न चन्द्रमाः ।।

आदि कल्प से वहाँ स्थावर-जंगम सब नष्ट हो गए। दिशा और कालरचना नहीं थी, न सूर्य था और न चन्द्रमा था।

ततो हिरण्यगर्भेण कश्यपो नाम तापसः[1]।
प्रजासर्गे नियुक्तोऽभूत्सुतः[2] सर्वजगत्प्रभुः ।।

हिरण्यगर्भ से अनुमत कश्यप नाम सारे संसार के प्रभु······सृष्टिरचना कार्य्य में नियुक्त किया।

अदितिप्रमुखा दक्षकन्या ब्राह्मणशासनात् ।
उवाह विधिव[3]त्सृष्टं चतुर्दशविधिं जगत् ।।

ब्रह्मा की आज्ञा से दक्षकन्या अदिति ने विधिपूर्वक रचे हुए चौदह भुवनों के जगत् को धारण किया।

आदित्यकश्यपा[4]ज्जातास्ततो[5]ऽण्डानि त्रयोदश ।
तत्रा[6]पि द्वाद······संखेदितास्तु ते ।।

इसके बाद आदित्य कश्यप से १३ अण्डे पैदा हुए। उनमें भी

त्रयोदशं[7] जले क्षिप्त्वा तेषां नीराजनाय वै ।
कश्यपस्य न विज्ञातं तदभूद्दैवयोगतः ।।

उनके नीराजन (आरती) के लिए १३ वें अण्डे को जल में फेंक दिया जो दैवयोग से कश्यप को पता न था।

तदारभ्याण्डज्येष्ठकमण्ड······
······[8] त्यजन्त्येवाण्डजा···
अण्डेभ्यो द्वादशेभ्यस्तु जाता द्वादशभास्कराः ।
ये[9]मार्गादौ वेदलोककर्मणोरधिकारिणः ।।

१२ अण्डों से १२ भास्कर पैदा हुए, जो मार्ग के आदि में वेदलोककर्म के अधिकारी हैं।

आदित्यश्च रविश्चैव गभस्ति[10]र्भानुरेव च ।
दिवाकरश्च सविता[11]धर्मस्तपनभास्करौ ।।

आदित्य, रवि, गभस्ति, भानु, दिवाकर, सविता, धर्म, तपन, भास्कर;

---

१. तामसः, २. नियुक्तो भूत्सुतः ३. यत्प्रष्टं, ४. कश्यपाजाता, ५. स्ततोण्डानि, ६. तत्रपि, ७. त्रियोदशे ८. स्त्रियः, ९. यो, १०. गभस्ति भानु, ११. धर्मं।

सूर्यस्त्वष्टा सुरपति[1]स्तेषां नामानि द्वादश[2] ।

सूर्य, त्वष्टा, सुरपति, ये इनके १२ नाम हैं ।

प्रभा दीप्तिप्रकाशा च मरीचिस्तपनी तथा ।
माचनी हव्यवाहा च तथा तेजोवतीपरा ॥
शतधामा सुधामा च पद्मगर्भा तथैव च ।
छाया चेति स्मृता एषां देव्यो[3] द्वादश शक्तयः[4] ॥

प्रभा, दीप्ति, प्रकाशा, मरीचि, तपनी, माचनी, हव्यवाहा, तेजोवती, शतधामा, सुधामा, पद्मगर्भा, और छाया ये इनकी १२ दैवी शक्तियाँ हैं ।

यत्र त्रयोदशं क्षिप्तमण्डं[5] तत्र सतीसरः ।
हिमवच्छिखरी गौरी लीलाललितपङ्कजम् ॥

जहाँ १३ वाँ अण्डा फैंका, वहाँ सतीसर है और वह पार्वती के क्रीडा समय चिह्नित सुन्दर चरण कमल से युक्त हिमालय पर्वत का शिखर है ।

व्यस्तान्या[6]लोक्य तीर्थानि त्रैलोक्ये यत्र कुत्रचित् ।
एकत्र समवायेन तानि [7]स्थापयितुं प्रभुः ॥
लोकानां दययैवे[7]च्छत्कश्यपः कर्त्तुमाश्रमम् ।
सतीसरसि तत्रैव दक्षमन्वन्तरे पुरा ॥

प्राचीन दक्षमन्वन्तर युग में कश्यप प्रभु ने तीनों लोकों में जहाँ कहीं बिखरे तीर्थों को देखकर उन्हें सामूहिक रूप से एक ही जगह स्थापित करने के लिए लोकों पर दयादृष्टि से वहीं सतीसर में अपना आश्रम बनाना चाहा ।

आराधितस्तदर्थे तु ब्रह्मा विष्णु[8]र्महेश्वरः ।
वरमस्मै ददौ सद्यः कार्यसम्पादनार्थिने[9] ॥

इस अभीष्ट की पूर्ति के लिए उसने ब्रह्मा-विष्णु और महादेव की आराधना की, जिससे उन्होंने अभीष्ट कार्य्य पूर्ण करना चाहने वाले उसे झट वर दिया ।

नारायणोऽथ चक्रेण द्विधा कृत्वा महीधरम् ॥
स्रावयामास सलिलं शुष्कं तद[10]भवत्सरः ॥

इसके बाद नारायण ने अपने चक्र से पर्वत के दो टुकड़े कर जलको बहाया, जिससे वह सर शुष्क हो गया ।

---

१. सूर्यस्तष्टासुरपति २. द्वादशी ३. दव्य, ४. द्वादश च ५ मंड, ६. व्यस्तान लोक्य, ७. वेच्छैत्क०, ८. विष्णुमहे, ९. सम्पादिर्धिनः १०. तमभवत्सरः ।

अथैकत्र स्वल्पजले गर्तेण्डमद्भुताकृतिम्[1] ।
ददर्श कश्यपस्तत्र तेजोव्याप्तदिगन्तरम् ।।

तदनन्तर वहाँ एक जगह थोड़े जल वाले गड्डे में कश्यप ने, जिसका तेज सभी दिशा-प्रदिशाओं में व्याप्त हो रहा था, ऐसे अद्भुत आकृति वाले एक अण्डे को देखा ।

हस्ते[2] गृहीत्वा तं यावद्भिन्नेऽण्डे[3] उदभून्महः ।
अप्रकाशं परं ज्योतिर्यदलक्ष्यप्रकाशकम् ।।

उसे हाथ में लेकर······तेज पैदा हुआ, जो प्रकाशविहीन परम ज्योति थी और जिसका प्रकाश दिखाई नहीं देता था ।

अद्यापि यन्न[4] विदितं सिद्धानां बोधशालिनाम् ।
तस्य योदगमज्ज्वाला कलिकालुष्यशोधिनी ।।

जो तेज आज तक भी बोधशाली सिद्धों को न पता चल सका उसकी कलियुग के कालुष्य को शुद्ध करने वाली जो ज्वाला निकली ।

अभवद्देवताशक्तिः सैव भर्गशिखाभिधा ।
द्वितीयस्यास्तु ज्वालाया[5] अभूद्भीमाभिधा कला ।।

वही 'भर्गशिखा' नाम से देवता शक्ति हुई । इसी ज्वाला की दूसरी कला 'भीमा' नाम से हुई ।

भासुती तु तृतीयस्यां चतुर्थी भानवी कला ।
एता एवादिमध्यान्तभेदा द्वादशधा पुनः ।।

तीसरी भासुती और चौथी भानवी कला हुई, यही कलाएं आदि-मध्य और अन्त भेद वाली १२ प्रकार की फिर हुईं ।

[6]शुभमेकत्र योगो यः सैव योगीश्वरी मता ।
[8]···विभेदाय[7] तस्मै[8]···निष्कलेति प्रकीर्तिता ।।
सत्यं तेजश्च[9]श्रीर्यत्र सत्यभामेत्यतो मता ।
एवं तस्मात्परं ज्योतिःपुञ्जः शक्तिः कलात्मनाम् ।।

सत्य, तेज और श्री जहाँ है, इसी से सत्यभामा यह मानी गई है । इस तरह···

---

१. मद्भुताकृति, २. हस्ती, ३. भिनेंडे ४. यन, ५. योद्गम-ज्वाला, ६. अस., ७. अविभेदण्य, ८. तस्मैव, ९. तेजः श्च श्री ।

देवी नाम भवश्चक्रं द्वादशारं महाद्युति ।
एवं तत्राण्डचक्रे[1]ऽस्मिन्भिन्ने द्वादशधा तदा ॥
मध्यात्सभुद्ययौ भास्वान्रोदसी सम्प्रतापयन् ।
मृताण्डात्तु यतो जातस्तेन[2] मार्त्तण्ड[3]उच्यते ॥

क्योंकि मृत अण्डे से पैदा हुआ उससे 'मार्त्तण्ड' कहा जाता है।

चिरकालं यतस्तत्र निर्विकारस्ततो[4] जले ।
वीरेश्वरीति तेनासौ श्रुतिभिर्गीयते विभुः ॥

क्योंकि वहाँ जल में यह चिरकाल तक निर्विकार पड़ा रहा, इसलिए वह श्रुतिओं से 'वीरेश्वरी' ऐसा गाया जाता है।

[4]...नरको यस्मान्नरकारिस्ततो मतः[5] ।
एष वीरेश्वरो देवः परः परमकारणम् ॥

जिससे नरक...इसीलिए इसे नरकारि माना गया। यह वीरेश्वर परम कारण है।

परमादित्य[6]...विख्यातः परमेश्वरः ।
एतत्[7]परमं धाम एतत्तु[8] परमं पदम् ॥

यह परमेश्वर परम आदित्य...प्रसिद्ध हुआ। यह परम धाम है, यह परम पद है।

एषा सा परमा काष्ठा एष विश्वेश्वरो गुरुः ।
एष भूतान्तरात्मा सर्वज्ञो ज्ञानभास्करः ॥

यह वह परमा काष्ठा है, यह विश्वेश्वर गुरु है, यह भूतान्तरात्मा है, सर्वज्ञ है, ज्ञानभास्कर है।

नैष वर्णो न वा शब्दो नचार्थं वा कलात्मकः ।
केवलं परमादित्यो वीरो नित्योदितो रविः ॥

यह न वर्ण हैं, न शब्द है और न कलात्मक है। यह केवल परम-आदित्य है, वीर है, नित्योदित रवि है।

नास्तमेति न चोदेति न शान्तो न विकारवान् ।
भिन्ने तस्मिन्नण्डचक्रे यत्स्रुतं सलिलं भुवि ॥

वह न अस्त होता है, न उदित होता है, न शान्त है और न विकारवान् है। उस अण्डचक्र के टूटने पर जो जल पृथ्वी पर बहा।

---

१ चक्रोस्मि, २......जात तेज, ३. मार्तण्ड ४. निर्विकार ५. सतः, ६. यत्येषः, ७. एतत्य, ८. एतत्तुत्यः।

सैका चाकेति विख्याता पितृणां[१] मुक्तिदा नदी।
कश्यपस्तु तदा दृष्ट्वा तदाश्चर्यं मुनीश्वरः।
चकितः[२] शरणं यातो ब्रह्माविष्णुमहेश्वरान्[३]।

पितरों को मुक्ति प्रदान करने वाली वह एक नदी 'चाका' इस नाम से प्रसिद्ध हुई। मुनीश्वर कश्यप तब इस आश्चर्य को देखकर चकित हुए। ब्रह्मा-विष्णु और महेश्वर की शरण गए।

ज्वालालिङ्गं यथापूर्वमुद्ययौ द्योतयज्जगत्।
तथेदमुत्थितं किं स्यान्मोहयन्नौ दृशौ मनः॥

ज्वालालिङ्ग यथा पूर्वसंसार को द्योतित कर रहा था, तो यह सभी के मन को मोहित करता हुआ क्या पैदा हुआ है?

ब्रह्मा उवाच—ब्रह्मा बोले—

भव स्वस्थमना[४] पुत्र वृत्तमेतद्ब्रवीमि ते।
त्वयादित्यां प्रसूतानि अण्डानि प्राक् त्रयोदश॥

हे पुत्र! तुम स्वस्थ मन हो जाओ, मैं तुम्हें यह वृत्त कहता हूं। तूने पहले अदिति से १३ अण्डे पैदा किए थे।

एकं तोये परित्यक्तमण्डं[५] यत्तदिदं मुने।
न त्वया विदितो यस्मात्तत्र शापो[६]ऽस्ति कारणम्॥

हे मुने! एक अण्डा जल में छोड़ दिया गया था, जिसे तू नहीं जानता था, क्योंकि उसमें कारण शाप ही है।

विकर्णो[७] मुनिपुत्रो[८]ऽयं शुनःशेपेन[९] शापितः।
जातस्तद्वीजहोऽदित्यां[१०] तपोवीर्यसमन्वितः॥

शुनःशेप के शाप से शापित तपोवीर्य से युक्त यह मुनिपुत्र विकर्ण अदिति में...पैदा हुआ।

तस्माच्छापात्समुत्तीर्य प्राप्तः स्वं ब्रह्मवर्चसम्।

उस शाप से समुत्तीर्ण होकर वह अपने ब्रह्मतेज को प्राप्त हुआ।

परमेष्ठिप्रसूतोऽयं[११] मनुश्चेद्भवदाज्ञया।
प्रजाः[१२] स्रष्टुं प्रवृत्तस्य विज्ञप्तिं शृणु तत्त्वतः॥

कश्यप उवाच—कश्यप बोले—

---

१. पितृणां, २. चकितै, ३. महेश्वरः ४. भव सुस्थमना ५. मण्ड ६. शापोस्ति, ७. विकणो, ८. मुनिपुत्रोयं, ९. शेपनशापतः, १०. स्तद्वी-जहोदित्यां, ११. परमेष्ठित्प्रसूतोयं वमुश्चे, १२. प्रजा सृष्टुं।

अयं मे प्रथमः सर्गः कालस्यैव प्रवर्तकः ।
तत्राधिकारे कालस्य देहि···यस्य वै ।।

ब्रह्मोवाच—ब्रह्मा बोले—

त्वया संदर्शिताः[1] पूर्वं द्वादशैवाण्डजा मुने ।
आदित्यास्ते त्वधिकृता वेदे लोके च कर्मसु ।।

हे मुने ! तूने पहले १२ ही अण्डज देखे और वे वेद, लोक और कर्मों में 'आदित्य' नाम से अधिकृत हुए ।

तेषामेवानुसारेण कृत्वासौ कालकल्पनाम्[2] ।
संवत्सरो द्वादशभिर्मासैः षड्तवस्तथा ।
भानां सप्तविंशतीनां कृता द्वादशराशयः ।

उन्हीं के अनुसार उसने कालकल्पना कर १२ महीनों से वर्ष और ६ ऋतुएं तथा २७ नक्षत्र एवं १२ राशियाँ बनाईं ।

आदित्यानां तु तद्भोगा मासाश्चैत्रादयः स्मृताः[3] ।
किमत्र कार्यं न[4] जाने तद्विष्णुं शरणं व्रज ।।

चैत्र आदि महीने आदित्यों के भोग कहे गए हैं । यहां क्या करना है ? मैं नहीं जानता, विष्णु की शरण में जाइए ।

विष्णुनाप्येवमुक्ते तु ततस्तौ विष्णुना सह ।
शङ्करं शरणं जग्मुः[5] सोऽब्रवीदत्र कारणम् ।।

विष्णु से भी ऐसा ही कहने पर तदनन्तर वे विष्णु के साथ शङ्कर की शरण में गए । उसने इसमें कारण बताया ।

अत्रादित्या एव यदि जानीयुस्ते प्रवर्तकाः[6] ।
तेषा[7]मेवानुमत्या वै कार्यमेतद्धि सिद्ध्यति ।।

इस विषय में आदित्य ही जाने, वे प्रवर्तक हैं । उन्हीं की अनुमति से यह कार्य सिद्ध होता है ।

ततस्ते मिलिताः सर्वे देवा ब्रह्मादयस्तथा ।
ऋषयश्चैवमादित्यान्नूचुः किं कार्यमत्र हि ।।

इसके बाद वे सभी देवता, ब्रह्मा आदि और ऋषि मिले तथा आदित्यों से कहा, इसमें क्या करना चाहिए ।

---

१. संदर्शितः २. कालकल्पना, ३. स्मृतः, ४. नो जाने ५ जग्मु, ६ प्रवर्तकः, ७. तेषां मेवा ।

[1]इत्येवमुक्ता आदित्या ऊचुर्देवाधिपान्मुनीन् ।
कालो वेला सोमसिद्धिक्षयाश्च निहिता हि नः ॥

इस प्रकार कहे गए आदित्यों ने देवाधिपों और मुनियों को कहा

अतो यदपरं किंचित्तदस्यैव[2] भवत्विति ।
यस्मिन्मासे नाधिकारः पूर्वस्य न परस्य वा ॥

इसलिए जो और कुछ है, वह इसी का हो । जिस महीने में न पूर्व का अधिकार है वा न पर का ।

चैत्रादावस्य तत्रास्तु मार्त्तण्डस्य[3] जगत्पतेः ।
इत्युक्ते तु तदादित्यै[4]र्ब्रह्मसिद्धान्तदर्शनात् ।

चैत्र के आदि में वहां इस जगत्पति मार्त्तण्ड का हो । ब्रह्मसिद्धान्त दर्शन से तव यह सूर्य के कहने पर—

गणितोद्भावनैः सर्वैरेवमेवं[5] तदाकरोत् ।
तदा प्रभृति तद्ब्रह्मसिद्धान्तगणितक्रमात्[6] ।
सारं संवत्सरस्यान्ते ...शशिजेन तु ।
एकादशानि रिच्यते दिनानि प्रतिवत्सरम् ।
मासद्वये साष्टमासे दिनषोडशकान्विते ।
नाडीचतुष्टयान्ते च पतत्येकोऽधिमासकः[7] ॥

अष्टमास सहित १६ दिनों से युक्त दो मास में और चार नाड़ियों के अन्त में एक अधिमास पड़ता है ।

चान्द्राश्चैत्रादयो मासा युक्ता मेषादिसंक्रमैः ।
संक्रान्तिरहितो मासो मलमासस्तथाधिकः ।[8]

चैत्र आदि चान्द्र मास मेष आदि संक्रमणों से युक्त होते हैं । संक्रान्ति-रहित अधिक मास 'मलमास' कहलाता है ।

एवं विचार्य ब्रह्माद्या देवेन्द्रः कश्यपस्तदा[9] ।
अब्रुवन्नधिमासेऽस्मिन्मार्त्तण्डोभिषिच्यताम् ॥

यह विचार करके ब्रह्मा आदि .....
इस में मार्त्तण्ड का अभिषेक कीजिए ।

---

१. एत्येव, २. किंचितदस्यैव, ३. मार्त्ताण्डस्य, ४. तदादित्यै ब्रह्मा, ५. मेवसेव, ६. गणिक्रमात् ७ त्येकोधिमासकः ८ स्तथोधिकः ९ कश्यपो

चिरकालं यतोऽनेन[1] भुक्ता सरसि यातना ।
दयया···दद्मो वरमस्य महाद्युतेः ॥

क्योंकि इसने चिरकाल तक सरोवर में यातना भोगी है ।

अन्येषामादित्यानां[2] स्वे स्वे कालेऽधिकारिता[3] ।
एतस्य सर्वे मासेषु सुकालात्सम्भविष्यति ॥

अन्य आदित्यों की अपने २ समय में अधिकारिता है, पर इसकी सभी महीनों में होगी ।

अस्याधिकारेण[4] त्वन्ये पूज्याः[5] सूर्याः सुरैः सह ।
सर्वेषामेव देवानां मत्र···प्नुयात्[6] ॥

इसके अधिकार से तो दूसरे सूर्य देवताओं के साथ पूजने चाहियें । सभी देवताओं के···

इति ब्रह्मादिभिर्देवैरभिषिक्तो यदा तदा ।
अब्रवीन्कन्नु ते दद्मो वरं ब्रूहि यथेप्सितम् ॥

इस प्रकार ब्रह्मा आदि देवताओं ने जब-तब मार्त्तण्ड का अभिषेक किया और कहा कि तुम्हें हम क्या दें, मनचाहा वर माँगिए ।

मार्त्तण्ड उवाच—मार्त्तण्ड बोले—

मया पातकिभावेन चिरं भुक्ता हि यातनाः ।
अतो[7]नुभूतदुःखोऽहं याचे किमपि दुर्लभम् ॥

पापी के रूप में मैंने चिरकाल तक यातनायें भोगी हैं, इसलिए अनुभूत दुःखी मैं कुछ दुर्लभ वस्तु माँगता हूँ ।

मायापातकिनो ये स्युरुपपातकिनस्तथा ।
ये केचित्पतिता लोके येषामन्या गतिर्नहि ॥

जो मायापापी और जो उपपापी हैं एवं जो कोई लोक में पतित हैं, जिनकी अन्य कोई गति नहीं है ।

प्रायश्चित्तं न येषां[8] स्यादेतत्संसर्गिणो[9]ऽथवा ।
तेषां मात्रधिके मासे क्षेत्रे समविशेषतः ।
दोषाद्विमुक्तिर्भवतु तृप्यतां तेऽचिरं तथा ॥

---

१ यतोनैन, २ अन्येषामादित्येयानां, ३ कालेधिकारता, ४ अस्याधिकारणे ५ पूज्य ६ मषोर्ब मत्रमाप्नु ७ अतोनुभूतदुःखोहं ८ स्यामेत, ९ स्संसर्गिणोथवा ।

जिनका प्रायश्चित्त नहीं है अथवा इनसे सम्पर्क रखने वाले जो हैं, उनकी मात्रा से अधिक मास में सम और विशेष से क्षेत्र में दोष से मुक्ति हो और वे चिर काल तक तृप्त हों।

इति श्रुत्वा वचस्तस्य मार्त्तण्डस्य[1] सुरेश्वरः।
ऊचुर्ब्रह्मादयो देवाः सर्वैर्देवर्षिभिः[2] सह॥

इन्द्र और सभी देवर्षियों के साथ ब्रह्मा आदि देवता उस मार्त्तण्ड के वचन सुनकर बोले।

ब्रह्मा उवाच[3]—ब्रह्मा बोले—

ये केचिन्मानुषे[4] लोके लुप्तपिण्डोदकक्रियाः।
तेषां त्वदग्रदन्तेन पिण्डो नास्तु दिवाकर॥

जो कोई मनुष्यलोक में लुप्तपिण्डोदकक्रिया वाले हैं, हे दिवाकर! उन का तो तुम्हारे अग्रदन्त से पिण्ड न हो।

परा तृप्तिः परं सौख्यं स्वर्गप्राप्तिर्न संशयः।
ये विशुद्धाश्च पितरो यथाविधि कृतक्रियाः[5]॥

परा तृप्ति, परम सुख और स्वर्ग की प्राप्ति होती है, इसमें संशय नहीं है। जो पितर शुद्ध हो चुके हैं और जिनकी यथाविधि क्रिया हो चुकी है।

तेषां पिण्डप्रदानेन पुत्रा आनृण्यमाप्नुयुः[6]।
अन्यत्र देशकाले वा मार्त्तण्ड[7]···
क्रियते विष्णुश्राद्धादिविलम्ब[8] सहनाद्यदि।
तत्रापि त्वदधिकाराः[9] सन्निधेया विधानतः।
[10]·······मुक्तिः पतितानां च सम्भवेत्॥
···मिमां[11] पुण्यां ये च श्रोष्यन्ति[12] मानवाः[13]।
पितृमोक्षप्रदं तस्य श्राद्धमक्षयतां व्रजेत्।
मार्तण्डस्य[14] समुत्पत्तिरुक्तैवं मुनिसत्तम[15]।
[16]किमन्यत्प्रष्टुमिच्छास्ति श्रद्धया तद्ब्रवीमि च॥

हे मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार मार्त्तण्ड की उत्पत्ति कही गई है, अन्य क्या पूछने की इच्छा है···वह मैं कहता हूँ।

---

१ मार्त्ताण्डस्य, २ सर्वदेवर्षिभिः। ३ ब्रह्मा ऊचुः, ४ न्मानुष्ये, ५ कृतक्रियः, ६ माप्नुयः ७ मार्त्ताण्डमलयो बिना, ८ विलंम्भसहना···दि, ९ त्वदधीकाराः, १० योतनत्वानिना, ११ त्वदुत्पत्तिमिमां, १२ श्रेष्यंति १३ मा नवः, १४ मार्त्ताण्डस्य, १५ मुनिसत्तमः, १६ किमन्य, १७ श्रद्धवा।

ऋषयः ऊचुः —ऋषि बोले—

त्वत्प्रसादाद्वयं जाताः[1] श्रद्धाविमलमानसाः[2] ।
श्रुत्वा मार्त्तण्ड[3]माहात्म्यं गतभारा[4] इव प्रभो ।।

आपकी कृपा से हम श्रद्धायुक्त निर्मल मन वाले हो गए हैं । हे प्रभो ! मार्त्तण्ड के माहात्म्य को सुनकर भारविहीन जैसा हम अनुभव कर रहे हैं ।

अधुना श्रोतुमिच्छामो मुने विष्णुबलि[5] क्रमम् ।
पातकाः के समुद्दिष्टाः[6] के महापातकास्तथा ।
तथोपपातकाः[7] के स्युस्तेषां[8] शुद्धिक्रमः कथम् ।।

हे मुने ! अब हम विष्णु को दी जाने वाली बलि का क्रम सुनना चाहते हैं । कौन से पाप कहे गए हैं और कौन से महापाप तथा कौन से उपपाप हैं, उनका शुद्धिक्रम क्या है ?

शौनक उवाच[9] —शौनक बोले—

ब्रह्महा मद्यपः स्तेनः तथैव गुरुतल्पगः ।
एतैर्महापातकिनो यश्च तैः संवसेत्समम् ।।

ब्रह्महत्यारा, मद्यपान करने वाला चोर और गुरुशय्या गमन करने वाला, महापापी होता है और जो उनके साथ रहे, वह भी महापापी है ।

गुरूणामप्यविश्वासो वेदनिन्दा सुहृद्वधः[10] ।
ब्रह्महत्यासमो ज्ञेयोऽधीतस्य च[11] शासनात् ।।

गुरुओं पर भी विश्वास नहीं करना, वेदों की निंदा और मित्र का वध शास्त्रानुसार ब्रह्महत्या के समान जानना चाहिए ।

अश्वरत्नमनुष्यस्त्रीभूधेनुहरणं तथा ।
निक्षेपदानं[12] तस्यैव[13] कौटिल्यव्रतलोपनम् ।।

घोड़ा, रत्न, मनुष्य की स्त्री, पृथ्वी और गाय का हरण तथा इमानत का दान उसी के······

आत्मनोऽर्थे[14] क्रियारम्भो मद्यपानं[15] स्त्रीसेवनम् ।
तथैवानाश्रमे वासः परान्नपरिपुष्टता[16] ।।

---

१. जातः, २. मानस ३. मार्त्तण्ड, ४. गतभार इव ५: बलिक्रमं, ६. समुदिष्टः, ७. यातकः, ८. स्युः तेषां, ९. शौनक ऊचुः १०. सुहृद्वधाः, ११. ज्ञेयमधीतस्य, १२ दान, १३ कोत्यल्य, १४. आत्मनोर्थे, १५, मद्यपः, १६ परिप्रष्टत्ता ।

असच्छास्त्राभिगमनमाकारेष्व[1]धिकारिता ।
भार्याया विक्रय[2]श्चैषामेकैकमुपपातकम् ॥

अपने लिए काम शुरू करना, मद्यपान करना, परस्त्री का सेवन, अपने आश्रम के कर्तव्य का पालन न करना, दूसरे के अन्न से पोषण असत् शास्त्र का अनुगमन भार्या का विक्रय, इनमें से एक-एक उपपाप है ।

सखिभार्याकुमारीषु सुयोनिष्वन्त्यजासु च ।
सगोत्रासु सुतस्तेषु (?) गुरुतल्पसमं स्मृतम् ॥

पत्नी की सहेलियों, कुमारियों, सुयोनियों, चाण्डालिनियों, सगोत्राओं और पुत्रीवत् स्त्रियों में गमन करना गुरुशय्यागमन के समान कहा गया है ।

पितृस्वसारं[3] मातृस्वसारं[4] मातुलानीं स्नुषामपि ।
आचार्यपत्नीं स्वसुतां गच्छंस्तु गुरुतल्पगः ॥

पिता की बहिन, माता की बहिन (मासी), मामी, पुत्रवधू, आचार्यपत्नी और अपनी पुत्री में गमन करना गुरुशय्यागमन के समान है ।

गोवधो भ्रातृहा स्तेन ऋणदान...[5] क्रिया ।
अनाहिताग्निता पण्यविक्रयः[6] परिदेवनम् ॥

गोवध, भाई की हत्या, चौर्य...

भ्रातृकाध्ययनादाने भृतकाध्यापनं तथा ।
परदार्यं विचिन्त्यं वा पुण्यं[7] [8]लवणविक्रयः ।
स्त्रीशूद्रविट्क्षत्रवधो निन्दितार्थो[9]पजीवनम् ।
नास्तिक्यं व्रतलोपश्च सुतानां परित्याजनम् ॥

स्त्री, शूद्र, वैश्य और क्षत्रिय का वध, निन्दित अर्थ से जीविका चलाने वाला, नास्तिकता, व्रतलोप और पुत्रों का परित्याग

भूमौ विट्परिक्षेपश्च परिविन्दितयाजनम् ।
[10]......पशुस्तेयमयाज्यानां च याजनम् ॥

भूमि पर विष्ठा को फैंकना, पशु चुराना, अनधिकारियों को यज्ञ कराना,

परद्रव्येष्वभिध्यानं[11] मनसानिष्टचिन्तनम् ।
वितनुदुर्भिनिवेशश्च मानसं त्रिविधं स्मृतम् ॥

पराए धन पर ताक लगाए रखना, मन से अनिष्ट सोचना और...

---

१ गमनमाकरेष्व, २ विक्रिय, ३ पितृसुसां, ४ मातृस्वु सां, ५ मम, ६ विक्रियः, ७ पुण्य, ८ लवन ९ निन्दितार्था, १० चान्यरूप, ११ द्रव्येषु भिध्यानं ।

ये मानसिक तीन प्रकार के पाप कहे गए हैं।

पारुष्यमनृतञ्चैव[1] पैशुन्यमपि सर्वशः।
असंबद्धप्रलापश्च वाचिकं स्याच्चतुर्विधम् ॥

कठोरता, झूठ, चुगलखोरी और असम्बद्ध प्रलाप, ये चार प्रकार के पाप कहे गए हैं।

अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः।
परदारोपसेवा च कायिकं त्रिविधं स्मृतम् ॥

अनधिकारियों को दान देना, विना विधान के हिंसा और परस्त्री का सेवन, ये तीन प्रकार के कायिक पाप कहे गए हैं।

इत्येवं दशधा नृणां पातकं कथ्यते बुधैः।
शृणुध्वं विस्तरेणापि कथ्यमानं मुनीश्वराः[2] ॥

इस प्रकार ये दस प्रकार के पाप मनुष्यों के विद्वान् पुरुषों ने कहे हैं। हे मुनीश्वरो! विस्तारपूर्वक कहे जाते पापों के विषय में सुनिए।

गोमातृपितृकन्यास्त्रीगुरुब्राह्मणघातकः।
विषानशनभृग्व[3]··· मारितः ॥

गाय, माता, पिता, कन्या, स्त्री, गुरु और ब्राह्मण का हत्यारा।

अनाचाररतो यश्च आत्मघातक एव च।
[4]···त्पतितः शकटे हतः ॥

जो दुराचार में लगा हुआ है और आत्महत्यारा है, ·····तथा शकट (वाहन) में मर गया है।

वापीकूपतडागादि[5] एवं कूर्मसहस्रकैः।
चाण्डालादुदकात्सर्पाद् ब्राह्मणाद्विद्युताद्विषात्[6] ॥
दंष्ट्रिभ्यश्च[7] पशुभ्यश्च मरणं पापकर्मिणाम्।
व्यापादयेद् य[8] आत्मानं[9] स्वयमग्न्युदकादिभिः ॥

दान्तों वाले हिंस्र जन्तुओं से और पशुओं से पापियों की मृत्यु एवं जो ···अग्नि, जल आदि से स्वयं अपनी हत्या करे।

विहितं तस्य नाशौचं नापि कार्योदकक्रिया[10]।

---

१ मनृते चैव, २ मुनीश्वरा, ३ भृग्वम्बुशस्त्रोद्बन्धनमारितः। ४ न चाग्र-लुठितावेश्म, ५ तडाकादि, ६ ब्राह्मणाद्वैद्युताद्वि, ७ दंष्ट्रिभ्यश्च, ८ व्याप-दयेद्य, ९ सुय, १० क्रियः।

उसका न अशौच होता है और न उदकक्रिया करनी चाहिए।

श‍ृङ्गिदंष्ट्रिनखव्यालविषवह्निमृगजलैः[१]।
आदरात्परिहर्त्तव्याः कुर्वन्क्रीडां मृतो यमः[२] ॥

सींग वाले, दान्तों वाले, नाखूनों वाले, सर्प, विष, वह्नि, मृग और जलों से…

प्रमादादपि निःशङ्कस्त्वकस्माद्विधिचोदितः[३]।
श‍ृङ्गिदंष्ट्रिनखव्यालविषविद्युज्जलाग्निभिः[४] ॥

भाग्य से प्रेरित, निश्शङ्क किसी की प्रमाद से भी अकस्मात् मृत्यु हो जाए, सींग वाले, दान्तों वाले, नाखूनों वाले, साँप, बिजली, जल और आग से॥

चण्डालैरथवा चौरैर्निहतो यत्र कुत्रचित्।
तस्य दाहादिकार्यंस्याद्[५] यस्मान्न पतितस्तु सः[६]।

चाण्डाल अथवा चोरों से जहाँ कहीं मृत्यु हो जाए, उसका दाह आदि करना चाहिए, क्योंकि वह पतित नहीं है।

नागानां विप्रियं[७] कुर्वन्हतस्तैर्विषवह्निना।
निगृहीतस्तु यो राज्ञा चौरदोषेण कुत्रचित् ॥

जो नागों का अप्रिय करता हुआ उनसे और विष एवं वह्नि से तथा राजा वा चौरदोष से कहीं दण्डित हो।

परदारान्गतश्चैव द्वेष्या तत्पतिभिर्हतः।
असमानैश्च संकीर्णैश्चण्डालाद्यैश्च विग्रहम् ॥
कृत्वा तैर्निहतास्तान्तु चण्डालादीन्समास्थिताः।
चौर्याग्निविषदाश्चैव[८] क्रूरवुद्धयः ॥
क्रोधात्प्रायं विषं वह्नि शस्त्रमुद्बन्धनं जलम्।
गिरिक्षप्रपावृतं वा ये कुर्वन्ति नराधमाः[९] ॥

जो नीच पुरुष क्रोध से प्रायः विष, वह्नि, शस्त्र, जल से वा पर्वत तथा वृक्ष से गिर कर आत्महत्या करते हैं।

कुशिल्यजीविनो[१०] येऽपि येप्य[११]लङ्कारकारिणः।
सुखेभवास्तु ये केचित्क्लीवप्राया नपुंसकाः ॥

---

१ नृगो, २ कुर्वंक्रीडां मृतो यमः, ३ निः शङ्कास्त्व, ४ विद्युजला, ५ कार्यं, ६ पतितास्तु, ७ विप्रयं, ८ पाषाण्डाः, ९ नराधमः, १० जिविनो, ११ येपि सूमा०,

जो कुशिल्य से अपनी जीविका चलाते हैं, जो···सुखी होते हुए भी, जो कोई पुरुष प्रायः क्लीव अथवा नपुंसक हैं।

ब्रह्मदण्डहता ये च ये च स्युर्ब्राह्मणैर्हताः[1] ।
महापातकिनो ये च पतितास्ते प्रकीर्तिताः[2] ।।

ब्रह्मदण्ड से जो मारे गए हैं और जो ब्राह्मणों से मारे गए हैं तथा जो महापापी हैं, वे पतित कहे गए हैं।

उदकं पिण्डदानं च प्रेतेभ्यो यत्प्रदीयते ।
नोपतिष्ठति तत्सर्वमन्तरिक्षे विनश्यति ।।

जल और पिण्डदान जो प्रेतों को दिया जाता है, वह सब कुछ नहीं रहता है, अन्तरिक्ष में नष्ट हो जाता है।

नारायणबलिः कार्या[3] लोकगर्हाभयान्नरैः ।
तस्मात्तेभ्योऽपि दातव्यमन्नमेवं सदक्षिणम् ।।

लोकनिन्दा के भय से मनुष्यों को नारायण बलि करनी चाहिए। इसलिए उन्हें भी अन्न दक्षिणा सहित देना चाहिए।

नारायणं[4]समुद्दिश्य शिवं वा यत्प्रदीयते ।
तस्य शुद्ध्यावहं[5] चैव तद्भवेन्न तदन्यथा ।।

नारायण के उद्देश्य से वा शिव को जो कुछ दिया जाता है, उसका··· वह अन्यथा नहीं हो सकता है।

तेषां पौत्राश्च पुत्राश्च दयया समभिप्लुताः ।
यथा श्राद्धं प्रकुर्वन्ति विष्णुना वै प्रतिश्रुतम् ।।

दया से युक्त उनके पुत्र-पौत्र विष्णु से बताए गए अनुसार वैसा श्राद्ध करते हैं।

तेषा[6]मुद्धरणार्थाय बलिं विष्णोः प्रदापयेत् ।
यथा चैव प्रवक्ष्यामि नमस्कृत्य स्वयम्भुवम् ।।

उनके उद्धार के लिए विष्णु को बलि दे। स्वयम्भू को नमस्कार कर मैं वैसा ही कहता हूँ।

विष्णुश्राद्धं यदा कुर्यात्तदा कुर्वीत वत्सरम् ।
द्वादशाहो[7]ऽथवा कुर्यात्त्र्यहमेकाहमेव च ।।

---

१ हंतः, २ प्रकीतितः, ३ कार्यो, तेभ्योपि, ४ नारायणा समु०, ५ शुद्धयावहं, ६ तेषांमुद्धरणा, ७ द्वादशाहेथवा ।

विष्णु श्राद्ध जब करे, तब वार्षिक करे अथवा द्वादशाह, त्र्यह और एकाह श्राद्ध करे।

वत्सरं तु यदा कुर्यात्तत्रायं विष्णुरुच्यते।
यस्मिन्मासे मृतः प्रेतस्तच्छुक्लारम्भमाचरेत्॥

जब वार्षिक श्राद्ध करे, वहाँ यह विष्णु कहा जाता है। जिस महीने प्रेत मरा, वह शुक्ल पक्ष में आरम्भ करे।

मलि[1]म्लुचस्तु···स्थाप्यौत्थाप्य किमुक्तये[2]।
ब्रह्मादिभिर्वरो दत्त उत्पेतुर्नरकद्विषः॥
एवमेव द्वादशाहे विधिस्तत्रापि श्रूयताम्।
शुक्ले याग···[3] द्विष्णोः शुक्लस्य नाम्निकृत्[4]॥

इसी तरह द्वादशाह में जो विधि है, वह भी सुनिए। शुक्लपक्ष में···

शुक्लप्रतिपदारभ्य द्वादश्यां[5] तं समापयेत्।
प्रतिपद्द्वादश्योस्तु[6] तिथिहानिर्यदा[7] भवेत्॥
श्राद्धद्वयं यदेकस्मिन्विद्वां[8]स्तद्दिवसे यजेत्॥

शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से लेकर द्वादशी के दिन उसकी समाप्ति करे। प्रतिपदा और द्वादशी में जब तिथिहानि हो तो विद्वान् पुरुष दोनों श्राद्ध एक ही दिन में करे।

कदाचित्तिथिवृद्धिस्तु श्राद्धान्यपि[9] पृथक् पृथक्।
चतुर्दश्यां[10] सोपवासे भुक्त्वा भूमौ स्वपेद्[11]बुधः॥

कभी तिथिवृद्धि हो तो श्राद्धों को पृथक्-पृथक्···

कृष्णपक्षे नात्र शस्तो विष्णोः कृष्णस्य नाम्नि तत्।
सूर्येन्दुसंगमदिने विधिनायं समिष्यते॥
अमावस्यायां पूर्वाह्णे स्नात्वाथ श्रपयेच्चरुम्।
ताम्रे वा मृण्मये भाण्डे समुद्गैरिव तण्डुलैः॥

इसके बाद अमावस्या में पूर्वाह्ण के समय···

शुक्लैः प्रक्षालितैस्त्वन्नैर्बिसशृङ्गाटकान्वितैः।
तिलद्राक्षैश्च किंवुकैर्यवसर्षपमिश्रितैः॥

---

१ मलिम्लुचस्तु, २ स्ते तां ते स्थापयित्वापि, ३ मितत्वाद्वि०, ४ नाम्निकृत्, ५. द्वादश्यैं, ६ प्रतिपद्द्वादश्येतं, ७ हानिपदा, ८ न्विद्वास्त। ९ श्राद्धन्यपि, १० चतुर्दश्या सोपवसे, ११ सुपेद्बुधः

शुभेचरौ पुनस्तत्र गुरुद्विजेन्द्रसन्निधौ ।
अवगाह्य नाभिमात्रं तीर्थं दर्भतिलान्वितम् ।।

शुभ नक्षत्र से युक्त वहाँ गुरु-ब्राह्मण के पास कुशा और तिलों से युक्त नाभिमात्र तीर्थ में स्नान कर—

स्योना पृथ्वीति सप्तर्च[1] वदेद् यावत् प्रयत्नतः ।
तर्पयित्वा प्रेतनाम्ना दद्यात्सप्ततिलाञ्जलीन् ।।
स्थूलमारु[2]ह्योपवा[3]सांसि त्यक्त्वा कोपीनमाहरेत् ।
मृदद्भिः करशुद्धिं[4] तु कृत्वा चैवं विधानतः ।।

ऊँचे स्थान पर खड़े हो कर उपवस्त्रों का त्याग कर कोपीन (लंगोटी) धारण करे और मिट्टी-पानी से विधिपूर्वक हाथों को साफ कर—

उदक्स्थितौ च कलशौ विष्णुं वैवस्वतं[5] तथा ।
अश्विनोः प्राण इत्यादि स्वैः स्वैर्मन्त्रैश्च वैदिकैः ।।
पूज्यन्ते पौरुषं सूक्तं जप्त्वा[6] तांस्तर्पयेद्विधि ।
तावेव देवौ पापघ्नौ द्विजेन्द्राभ्यामथार्चयेत् ।।
दक्षिणाभिमुखैः सर्वैर्विधानं[7] सव्यवद्यजेत् ।
ततस्तिलोदकं[8] ··· दद्यात्प्रेताय विष्णवे ।।

सर्वपापनिवृत्त्यर्थं विष्णुपादास्तु[9] ··· ये ।
ततो दद्यात्प्रयत्नेन दश पिण्डान्विधानतः ।।

सभी पापों की निवृत्ति के लिए विष्णुपाद···इसके बाद यत्नपूर्वक विधि-विधान से दश पिण्ड दे ।

प्रेताय[10] प्रथमं पिण्डं यमाय व्यापिनेऽर्पयेत्[11] ।।
द्वितीयं वासुदेवाय धर्मराजाय[12] यत्नः ।।

पहला पिण्ड प्रेत को दे
इसके बाद दूसरा पिण्ड वासुदेव-धर्मराज को दे

नारायणाय[13] तृतीयं न्यसेद्वै मृत्युव्यापिने ।
शिवाय च चतुर्थं वै...व्यापिनेऽर्पयेत् ।।

---

१ सप्तं चंत्विदयास्यं २. मारोह्यो, ३ पवासास्त्यक्त्वा, ४ करशुद्धं, ५. वैवसुतं, ६ जम्नातस्त ७ सर्वैविधानं, ८ ततः स्तिलो०, ९ सुक०, ९ सुतः, १० प्रताय, ११ व्यापिनेर्पयेत्, १२ (पाठान्तर-यमाय १३ नारायणा ।

तीसरा पिण्ड नारायण…

यमाय पञ्चमं कालपाशव्यापकधर्मिणे ।
षष्ठं पिण्डं भवायाथ चान्तकव्यापिने न्यसेत् ।।

पांचवां पिण्ड यम को, छठा पिण्ड भव को

सप्तमं[1] व्याधिरूपाय सर्वप्राणहराय च ।
अष्टमं व्योमरूपाय परमेष्ठिस्वरूपिणे ।।

सातवां व्याधिरूप सभी के प्राणों का हरण करने वाले के लिए, आठवां व्योमरूप परमेष्ठिस्वरूप के लिए—

नवमं ब्रह्मणे पिण्डं प्रजापतिसुताय वै ।
रुद्राय दशमं पिण्डं चित्रगुप्तात्मकाय च ।।

नवम पिण्ड प्रजापतिसुत ब्रह्मा के लिए, दशम पिण्ड चित्रगुप्तात्मक रुद्र के लिए—

इति विष्णुक्रियायास्तु दशपिण्डार्पणे विधिः ।

यह विष्णुक्रिया की दशपिण्डार्पणविधि है ।

तिलक्षीरान्वितान्दद्याद्वर्तुलान्करपूरकान् ।
दक्षिणाभिमुखो विष्णुं ध्यात्वा क्षिपेज्जलान्तरे ।।
पिण्डं दद्या त्कुम्भं च तिलमिश्रितम् ।
दीपं दद्यादहोरात्रं तिलतैलतः ।।
प्रेतकुम्भं ततो ध्येयं तिलाज्यमधुमिश्रितम् ।
तीर्थं प्रणम्य विधिवत्प्रणामश्च यतस्ततः ।
निमन्त्रयेद्विप्रान्वै पञ्च सप्त नवाथवा ।।

विधिवत् तीर्थ को नमस्कार कर इधर-उधर सभी को प्रणाम करे । इस के बाद पाँच, सात अथवा नौ ब्राह्मणों को निमन्त्रण कराए ।

विद्यातपःसम्पद्वान्कुलोत्पन्नः[3] समाहितः ।
ततो जागरणं कुर्यान्नृत्य[4]गीतसमन्वितम् ।।

विद्या-तप एवं सम्पत्तियुक्त कुल में पैदा हुआ…

इसके बाद नृत्य-गीत से युक्त रात्रि जागरण करे ।

अपरेऽह्नि[5] सम्प्राप्ते प्रातः स्नात्वा तु शक्तितः ।
गवां तु लवणं दत्वा प्रकुर्याच्चरुसाधनम् ।।

---

१ सप्तम २ निमंत्रयेत विप्रा०, ३ कुलोत्पन्ना,. ४ न्नृत० ५ अपरे

दूसरा दिन होने पर प्रातः स्नान कर शक्ति के अनुसार गायों को नमक देकर चरुसाधन करे।

उन्नतः सुमनो मानी देवदेवमथार्चयेत्।
वामे शक्तिधरं देवं शङ्खचक्रगदाधरम्॥

उन्नत, सुमन और मानी इसके बाद देवाधिदेव महादेव की पूजा करे। अपने बायें और शङ्ख-चक्र और गदा को धारण किए शक्तिधर की पूजा करे।

वेदोक्तैः संहितोक्तैश्च मन्त्रै रौद्रैश्च वैष्णवैः।
जितं त इति मन्त्रेण सूक्तेन पौरुषेण च॥
तस्याग्रे कलशेभ्यश्च पूजयेत्पञ्चकारणान्।

वेदों में कहे गए और संहिताओं में कहे गए रौद्र एवं वैष्णव मन्त्रों से··· मन्त्र से तथा पुरुष सूक्त से उसके आगे रखे हुए कलशों से पञ्चकारणों की पूजा करे।

भूमिं जलं च तेजश्च[1] वायुराकाश एव[2] च।
इत्यंविष्णवादिरूपाणि पञ्चशोधनकारणम्॥

भूमि, जल, तेज, वायु और आकाश, इस प्रकार ये···रूप पांच शोधन के कारण हैं।

विष्णुं प्रथमतो देवं ब्रह्माणं च शिवं यमम्।
प्रेतं च मनसि स्मृत्वा विष्णुमेवात्र पञ्चमम्॥

सर्वप्रथम विष्णु देव, ब्रह्मा और शिव तथा यम एवं प्रेत का मन में स्मरण कर फिर यहाँ पञ्चम विष्णु को ही—

[3]द्विष्णुर्ब्रह्मा देवा शिवो भूत्वा शिवस्य च।
यमस्य...मादाधार...हं पितृंश्च[4] पञ्चमम्॥
ततः सर्वमयं मन्त्र पूजार्थं चार्चयेद्विधिम्।
प्रतिमासं विष्णुर्नाम्ना निर्वपेत्पायसं चरुम्॥
तक्रान्बृहत्पौरुष[5]...कूष्माण्डानि तिलैर्यजेत्।
आरम्भं तु यदा कुर्यात्तदा शुक्ली विधीयते॥
मलिम्लुचं[6] तन्त्रान्ते कर्मसम्पत्तिहेतवे।
दत्वा पूर्णां वैश्वदेवं विष्णुनामाष्टकं यजेत्॥

---

१ तेजं च, २ ऐव, ३ प्रतद्वि०, ४ पितृंश्च, ५ पाण्डुलिपि में पाठाभावा०, ६ मलिम्लुच।

जितं त इति मन्त्रेण स्मृत्वा विप्रान्प्रपूजयेत् ।
अर्चावाहनपाद्यार्घ्यगन्धार्घपुष्पधूपकैः ॥

'जितं ते इस मन्त्र से स्मरण कर ब्राह्मणों की पूजा, आवाहन, पाद्य, अर्घ्य, गन्धार्घ, पुष्प, धूप आदि से पूजा करे।

धूपदीपोपवीतैश्च पात्रेषूदकमर्चयेत् ।
विप्राणां दक्षिणे भागे उदग्राग्रासनानि च ॥
[1]दद्यादुदकपूर्वाणि सव्येनैव प्रदक्षिणम् ।
अमुकस्य विष्णुश्राद्धं सावित्रादि च निर्वपेत् ॥
इदं विष्णव इत्यादि इदममुकविष्णवे ।
शृतमन्त्रमभिधार्यं [2]जुहुयादाहुतिद्वयम् ॥
प्रणवं मनसा ध्यात्वा तूष्णीं होमो विधीयते ।
पृथ्वीपात्रमिदं विष्णोर्विष्णुहव्यं जपेद्विधिः ॥

मन से प्रणव का ध्यान कर चुपचाप होम किया जाता है। यह विष्णु का पृथ्वीपात्र है, यह विष्णुहव्य है, विधिपूर्वक जप करे।

सर्वमुच्छिद्रमित्युक्त्वा तपोज्ञानजलं तथा ।
भूमौ क्षिपेत्साधितान्नं मन्त्रं[3]त्वपहताः सुराः ॥
गायत्री मधुवातश्च [4]भोजनैर्वैष्णवाञ्जपेत् ।
मनो निवेश्य विष्णौ वै सर्वं कुर्यादतन्द्रितः ॥
आवाहनादि यत्प्रोक्तं देवपूर्वं तु तद्भवेत् ।
तृप्ताञ्ज्ञात्वा तु तान्सर्वांस्तृप्तिं दृष्ट्वा यथाविधि ॥
हविष्यव्यञ्जनेनैव तिलादिसहितेन च ।
पञ्चपिण्डान् प्रदद्याद्वै संयतो[5] दक्षिणामुखः ॥

संयत रहकर दक्षिणाभिमुख होकर तिल आदि से युक्त हविष्यव्यञ्जन से ही पांच पिण्ड दे।

प्रथमं विष्णवे दद्याद् ब्रह्मणे च शिवाय[6] च ।
यमाय सपरिवाराय चतुर्थं पिण्डमुत्सृजेत् ॥

पहला पिण्ड विष्णु को दे, दूसरा ब्रह्मा को और तीसरा शिव को एवं चौथा पिण्ड सपरिवार यम को दे।

विष्णुनाम[7] गृहीत्वैवं पञ्चमं पूर्ववत्क्षिपेत् ।

---

१. दद्युदक०, २ ज्वंह्वयः, ३ साधितात्रा मत्रं, ४ भोजनैर्वैष्णव, ५ संयुतो, ६ शिवाया च, ७ नामा।

विप्रान्नाचम्य विधिवद्दक्षिणाभिः[1] समर्चयेत् ॥
एकं वृद्धतमं विप्रं हिरण्येन समर्चयेत्[2] ।
गवां वस्त्रेण भूम्या च प्रेतस्य मरणात्स्मरन् ॥

विष्णु का नाम लेकर पाँचवें पिण्ड को पूर्ववत् दे। आचमन करके ब्राह्मणों को दक्षिणा दे।

एक वृद्धतम ब्राह्मण की सोने से, गाय से, वस्त्र से, और भूमि से प्रेत के मरने से स्मरण करता हुआ पूजा करे।

ततस्तिलाम्भो विप्रांस्तु हस्ते दर्भसमन्वितम् ।
मित्रभृत्यजनैः सार्धं पश्चा……
बहिर्गत्वा तिलाम्भस्तु हस्ते दर्भसमन्वितम् ।
दक्षिणाभिमुखं स्थित्वा देयं हस्ततिलोदकम् ॥

वाहर जाकर दक्षिणाभिमुख खड़े होकर कुशायुक्त तिल-जल हाथ में देना चाहिए।

यत्र…संस्थानं क्षुट्तृष्णोपहतात्मनाम् ।
दयया[3]…मया दत्तमिदमस्तु तिलोदकम् ॥
अमुकामुकगोत्रस्य विष्णुश्राद्धे कृते ध्रुवम् ।
धौतपापस्य तस्यैदं तृप्तयै तु[4] तिलोदकम् ॥

इस किए गए विष्णु श्राद्ध में धुले हुये पापों वाले, अमुक-अमुक गोत्र वाले उसकी तृप्ति के लिये यह तिल-जल है।

अथ द्वादशमासेषु प्रकुर्याद्विष्णुपूजनम् ।
मार्गशीर्षादिमासेषु केशवं प्रथमं प्रभुम् ॥

उसके बाद द्वादश मासों में विष्णु का और मार्गशीर्ष आदि महीनों में प्रथम केशव प्रभु का पूजन करे।

नारायणे माधवाख्ये गोविन्दं विष्णुमेव च ।
मधुसूदनमत्राथ त्रिविक्रममथैव च ॥

माधव नामक नारायण में गोविन्द और विष्णु को, इसके बाद यहीं मधुसूदन तथा तदनन्तर त्रिविक्रम को—

वामनं श्रीधरं चैव हृषीकेशं तथैव च ।
पद्मनाभं तथा चैव दामोदरमथापि वा ।

वामन, श्रीधर और हृषीकेश तथा पद्मनाभ एवं दामोदर को—

मार्गशीर्षादिमासेषु केशवादीन्[5] प्रपूजयेत् ।

---

१ दक्षिणाभि २ समर्चतये ३ द्य०, ४ स्तु, ५ द्या।

मार्गशीर्ष आदि महीनों में केशवादियों को पूजे ।

श्रियो वागीश्वरी कान्ता क्रियाशक्तिविभूतय: ।
इच्छा प्रीतीरतिश्चैव माया धी महिमेति च ।
क्रमेण द्वादशैवात्र कीर्तिता विष्णुशक्तय: ।।

श्री, वागीश्वरी, कान्ता, क्रिया, शक्ति, विभूति, इच्छा, प्रीति, रति, माया धी और महिमा ये क्रम से १२ ही विष्णु की शक्तियाँ कही गई हैं ।

ब्रह्मा पितामह: स्रष्टा पद्मनाभस्तथैव च ।
हिरण्यगर्भ...चतुर्मुखस्तथापर: ।।
लोकेश: पद्मजन्मा च विधाता क: प्रजापति: ।
सुरज्येष्ठस्तथा चान्यं परमेष्ठिनमर्चयेत् ।।
एते द्वादश ब्रह्माणो मासेषु द्वादशेष्वपि ।

ब्रह्मा, पितामह, स्रष्टा, पद्मनाभ, हिरण्यगर्भ, चतुर्मुख, लोकेश, पद्मजन्मा, विधाता, प्रजापति, सुरज्येष्ठ और परमेष्ठि की पूजा करे। १२ महीनों में ये १२ ब्रह्मा हैं ।

गायत्री शक्तिमाता च पतिव्रता तु ब्राह्मणी ।
विश्वात्मा शिवपत्नीशसृष्टिश्चैव विधातृका[१] ।।
धात्री समाहिता चाथ ब्राह्मी तु द्वादशी स्मृता ।
एवं द्वादशशक्तीनां क्रमान्मासान्प्रपूजयेत्[२] ।।

गायत्री, शक्तिमाता, पतिव्रता, ब्राह्मणी, विश्वात्मा, शिव पत्नी, ईश सृष्टि, विधातृका, धात्री, समाहिता और ब्राह्मी, ये १२ शक्तियें कही गई हैं । इस प्रकार १२ शक्तियों के क्रमपूर्वक मासों की पूजा करे ।

शिवो रुद्रो वृषश्चैव त्रिनेत्रो[३] वृषवाहन: ।
त्र्यम्बकश्च महादेव उमापतिस्तथैव च ।।
हरोऽप्यथ च श्रीकण्ठो भव ईशान एव च ।
एवं द्वादश नामानि मार्गशीर्षादि पूजयेत् ।।

शिव, रुद्र, वृष, त्रिनेत्र, वृषवाहन, त्र्यम्बक, महादेव, उमापति, हर, श्रीकण्ठ, भव, ईशान, ये मार्गशीर्ष आदि १२ १२ नामों की पूजा करे ।

गौरी कात्यायनी दुर्गा तथा चोमा शिवाभिधा ।
अम्बा चैवापि शर्वाणी योगीश्वरी च पार्वती ।।

---

१ विधातृक:, २ सातुपूजत्, ३. त्रिनोत्रो ।

रुद्रपत्नी भवानी च महावागीश्वरी क्रमात् ।

गौरी, कात्यायनी, दुर्गा, उमा, शिवा, अम्बा, शर्वाणी, योगीश्वरी, पार्वती, रुद्रपत्नी, भवानी और क्रम से महावागीश्वरी ।

धर्मराजः पितृपतिर्यमो वैवस्वत[1]स्तथा ।
दण्डाचार्यान्तकश्चैव[2] श्राद्धदेवस्तु कालकः ।।
परीतात्मा[3] महिषस्थः कीनाशस्तु कृतान्तकः ।
यमा द्वादश संख्याताः पूज्यन्ते प्रतिमासकम् ।।

धर्मराज, पितृपति, यम, वैवस्वत, दण्डाचार्य, अन्तक, श्राद्धदेव, कालक, परीतात्मा, महिषस्थ, कीनाश, कृतान्तक, ये १२ संख्या में यम प्रतिमास पूजे जाते हैं ।

यमी यामे कालपत्नी मृत्य···केतकी[4] तथा ।
भयङ्करी चोर्ध्वकेशी तमी धूर्मा तथैव च ।।
छिद्रिणी मोहिनी[5] चैव लोकसंहारकारिणी ।
शक्तयश्च यमस्यैता विष्णु-श्राद्धे प्रपूजयेत् ।।

यमी, कालपत्नी, भयङ्करी, ऊर्ध्वकेशी, तमी, धूर्मा, छिद्रिणी, मोहिनी, लोकसंहारकारिणी, ये यम की शक्तियें विष्णुश्राद्ध में पूजे ।

द्वादशैतानि नामानि कीर्तितानि च[6] विष्णुना ।
तण्डुलं विष्णवे [7]दद्यान्मुद्गमत्कात्मनस्य च ।।
निवेदयेच्च पक्वं हि नागबुद्धौ निवेश्य च ।
मलिम्लुचे त्वेक एव पञ्चकारणरूपधृत् ।।
नरकारिः सत्यभामासहितेऽत्र[8] प्रपूजयेत् ।
अथ त्रिरात्रं कुरुते यस्तस्यैष विधिक्रमः[9] ।।

सत्यभामा के साथ यहाँ नरकारि की पूजा करे। इसके बाद जो तीन रात्रि यह करता है, उसके लिए यह विधिक्रम है ।

नवम्यामेव पूर्वाह्णे कृत्वाथ चरुसाधनम् ।
पूर्वोक्तविधिना दद्याद्दशपिण्डान्यथायथम् ।।

पूर्वाह्ण के समय नवमी के दिन चरु साधन करके पूर्वोक्त विधि के अनुसार यथा-यथा दस पिण्ड दे ।

---

१. वैवसुत०, २ दण्डचार्यंतकश्चैव, ३ परीतरात्महि०, ४ धंतकी, ५ मोहिणे, ६ श्च ७ दद्यात्मुद्ग, ८ सहितेत्र, ९ विधिक्रमाः ।

दशम्यां[१] चतुरो मासे[२]······[३] यजेत् ।
एकादश्यां च चतुरो द्वादश्यां पञ्चतस्तथा ।।
मलिम्लुचाधिपतिना सहितान्नरकारिणा ।
तथैकरात्रं[४] यः कुर्यात्सर्वमासे प्रपूजयेत् ।।
एवं विष्णुमते स्थित्वा यः कुर्यादात्म[५] तिने ।
समुद्र···[६] क्षिप्रं नात्र कार्या विचारणा ।।
[७]शूद्राणामपि यः कुर्यात्पितॄणां च इमां विधिम् ।
स तेषा[८]मनृणी भूत्वा स्वर्गे कल्पं सुखी वसेत् ।।

जो शूद्र पितरों के लिए भी यह विधि करे, वह उनसे ऋणविमुक्त होकर स्वर्ग में कल्पपर्यन्त सुखी रहता है ।

अश्वमेधसहस्रस्य [९]वाजपेयशतस्य च ।
फलं लभते[१०] यः प्रेतान्नरकादुद्धरिष्यति ।।

सहस्र अश्वमेध और सौ वाजपेय यज्ञ के फल को पाता है और वह प्रेतों का नरक से उद्धार करेगा ।

पतितेभ्यः क्रियां कुर्याद्यो बिष्णुबलिपूर्वकम् ।
विष्णुलोकमवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ।।

जो विष्णु की बलि के साथ पतितों के लिए क्रिया करे, वह विष्णुलोक को प्राप्त करता है, इसमें विचार नहीं करना चाहिए ।

न कुर्वन्ति···[११]मोहात्पतितेभ्यः सुताः क्रियाम् ।
इह ते···[१२] भूत्वा मृता[१३] नरकगामिनः ।।

जो पुत्रमोह से पतितों के लिए क्रिया नहीं करते हैं वे यहाँ···होकर मरने के बाद नरक जाते हैं ।

न तेषां कुत्रचित्सिद्धिः सम्भवेदत्र कर्मणि ।
त एवाल्पायुषो[१४] नष्टाः[१५] प्रजाः स्युरथ[१६] रोगिणः ।

इस कर्म में उनकी कहीं सिद्धि नहीं होती है । वे अल्पायु हो जाते हैं, और उनकी प्रजायें रोगी होती हैं ।

ये तु कुर्वन्ति तेषां स्यादारोग्यं सन्ततिः[१७] स्थिरा ।
लक्ष्मीर्बुद्धिश्च धर्मश्च सिद्धिश्चैव पदे पदे ।।

---

१ दशम्या, २ मासि, ३ धिपान्त्रिष्णवादिका०, ४ रात्र, ५ वात्तिने, ६ रतितं, ७ शुद्रानामपि, ८ तेषामनृणी०, ९ वाजिपेय०, १० लभति, ११ तपो, १२-१३ मृतः, १४ एवाल्पयुषो, १५ नष्टः, १६ स्यरथ, १७ सन्तति ।

जो करते हैं, उन्हें आरोग्य प्राप्त होता है, उनकी सन्तान स्थिर होती है और पद-पद पर लक्ष्मी, बुद्धि, धर्म और सिद्धि प्राप्त होती है।

तेना योद्गताः सभ्य…तरस्तेन तर्पिताः।
देवताः पूजितास्तेन पितृन्यः शोधयिष्यति ॥
विष्णुर्ब्रह्मा च रुद्रश्च आदित्या वसवस्तथा।
वह्निस्तमभिनन्दन्ति पितृन्यः[1] शोधयिष्यति ॥

जो पितरों को शुद्ध करेगा, उसका विष्णु, ब्रह्मा, रुद्र, आदित्य, वसु और वह्नि अभिनन्दन करते हैं।

यथा निर्मथना…सर्वकार्ये प्रदृश्यते।
तथा च दृश्यते घर्मः[2] पितृश्राद्धे न संशयः ॥

जैसे मथन से…सभी कार्य में दिखाई देती है। वैसे धर्म पितृश्राद्ध में दिखाई देता है, इसमें संशय नहीं है।

घनमुक्तो यथा सूर्यो राहुमुक्तश्च चन्द्रमाः।
तथा पापविनिर्मुक्तः श्राद्धकर्त्ता न संशयः ॥

बादलविहीन जैसे सूर्य होता है और राहु से मुक्त जैसे चन्द्रमा होता है, वैसे ही श्राद्धकर्ता पापमुक्त होता है इसमें संशय नहीं है।

मेरुतुल्यकृतं[3] पापं विष्णुश्राद्धे विनश्यते[4]।
पुत्रो वा भ्रातरो वापि दौहित्रः पौत्रकस्तथा
विष्णुश्राद्धस्य कर्तारस्ते[5] यान्ति परमां गतिम् ॥

मेरु के समान किए गए पाप विष्णु श्राद्ध करने पर नष्ट हो जाते हैं। पुत्र हो, भाई हो, दौहित्र हो वा पौत्र हो, जो विष्णु श्राद्ध के करने वाले हैं वे परम गति को पाते हैं।

इदं मार्त्तण्ड[6]माहात्म्यं विष्णुश्राद्धसमन्वितम्।
ये पठन्ति च शृण्वन्ति श्रावयिष्यन्ति वा तथा ॥

विष्णु श्राद्ध से युक्त इस मार्त्तण्ड माहात्म्य को जो पढ़ते हैं, सुनते हैं वा सुनायेंगे।

इह लोके यशः प्राप्य अन्ते यान्ति परां गतिम्।
विद्यार्थी लभते विद्यां धनकामो लभेद्धनम्।
आयुष्कामस्तथैवायुः श्रीकामो लभते श्रियम् ॥

---

१ पितृन्यः, २ धर्माः, ३ कृतो ४ विशिष्यते, ५ कातारस्ते, ६ मार्त्तंड

इस संसार में यश पाकर अन्त में परम गति को पाते हैं। विद्यार्थी विद्या पाता है, धन चाहने वाला धन पाता है, आयु चाहने वाला आयु पाता है और लक्ष्मी चाहने वाला लक्ष्मी प्राप्त करता है।

एतत्पवित्रमारोग्यं न वाच्यं त्वकृतात्मनाम्।
द्विजानां[1] श्रद्दधानानां श्राव्यमत्र न संशयः ॥

यह पवित्र, आरोग्यप्रद अकृतात्माओं को नहीं कहना चाहिए। ब्राह्मण और ब्राह्मणों पर श्रद्धा रखने वालों को सुनाना चाहिए, इसमें सन्देह नहीं है।

वदतां शृणुतां पुंसां सर्वपापप्रणाशनम्।
विष्णुसायुज्यतां पुंसां स्त्रीणां सुलोकदं द्विजाः ॥

कहने वाले, सुनने वाले पुरुषों के सभी पापों को नष्ट करता है। हे द्विजो! विष्णु सायुज्य प्राप्त पुरुषों को सुन्दर लोक देने वाला है।

बहुनात्र किमुक्तेन भूयो भूयो मुनीश्वराः[2]।
अश्रद्धया श्रद्धया[3] वा [4]श्रोतव्यमिदमुत्तमम् ॥

हे मुनीश्वरो! यहाँ बहुत कहने से क्या लाभ, फिर फिर नहीं कहना चाहिए। अश्रद्धा वा श्रद्धा से यह उत्तम पुराण सुनना चाहिए।

इति श्रीकाश्मीरखण्डे ब्रह्मपुराणे मार्तण्ड-माहात्म्य समाप्तम्।

---

१ द्विजः, २ मुनीश्वरः, ३ श्राद्धया, ४ श्रात

अथान्वावपनविधिः

[1]मार्त्तण्डपादमूले तु सप्तम्यां रविवासरे।
श्राद्धे पिण्डप्रदानं च कुर्याद्वपनपूर्वकम् ॥

मार्तण्ड के पादमूल में रविवार सप्तमी के दिन वपनपूर्वक श्राद्ध में पिण्डप्रदान करे।

तथा चानन्तभट्टीये
मार्त्तण्ड[2]पादमूले तु विजया सप्तमेदिनी।
मलिम्लुचे तु सततं प्रातरुत्थाय मानवः।
स्नानं कृत्वा मुण्डनञ्च[3] पुनः स्नानं समाचरेत्।

मार्त्तण्ड के पादमूल में तो सप्तमेदिनी विजया है। मल-मास के दिनों में मनुष्य निरन्तर प्रातः उठकर और स्नान कर मुण्डन करे और फिर स्नान करे।

ततः श्राद्धं प्रकुर्वीत चाकायाः पुलिने शुभे।
ब्राह्मणान्भोजयित्वा तु हविष्यान्नेन भक्तितः ॥
स्वयं कुटुम्ब[4]सहितः पश्चाद्भुङ्क्ते यथाविधि।
एवं कुर्वन् सहस्राश्वमेधयज्ञफलं लभेत् ॥

इसके बाद चाका नदी के शुभ तट पर श्राद्ध करे और भक्तिपूर्वक हविष्यान्न से ब्राह्मणों को भोजन कराकर पीछे कुटुम्ब के साथ-साथ यथा विधि स्वयं भोजन करे। ऐसा करने वाला मनुष्य सहस्र अश्वमेध के फल को पाता है।

सूर्यक्षेत्रे सूर्यवारे[5] यः कुर्यान्मुण्डनं द्विजः।
एकविंशा... स्वर्गलोके स पूज्यते ॥

जो ब्राह्मण रविवार के दिन सूर्यक्षेत्र में मुण्डन करे, वह...स्वर्गलोक में पूजा जाता है।

(इत्यादि वचन के अनुसार रविवार के दिन ही वपन करना चाहिए, जैसा कि...कहा है।)

सूर्यक्षेत्रे विना क्षौरं दारिद्र्यं[6] रविवासरे।
सपितृकस्य निषेधमाह शान्तातपो मुनिः ॥

१-२ मार्त्ताण्ड०, ३ मुडनं च, ४ कुटुम्भ, ५ सूर्यावारे ६ दारिद्रं।

रविवार के दिन सूर्यक्षेत्र में क्षौर के विना दरिद्रता प्राप्त होती है, शान्तातप मुनि ने जीवित पिता वाले के लिए निषेध किया है।

जीवन्तौ पितरौ यस्य न कुर्याद्वपनं नरः।
१......... न कुर्याद्वपनं द्विजः॥

जिसके माता पिता जीवित हों, वह मनुष्य मुण्डन न करे। जिसकी माता पहले मर चुकी हो वह द्विज मुण्डन न करे।

यदि कुर्यात्तदा तस्य पितृनाशश्च जायते।

यदि मुण्डन करता है, तो उसके पिता का नाश हो जाता है।

इति विधिः—अन्यत्रापि

यही विधि दूसरी जगह भी कही है।

जन्तुर्जीवत्पितृको नैव कुर्या...
तयोरन्य[२]...काले तीर्थे प्राप्ते मुण्डनं चोपवासः॥

इति [३]मार्त्तण्डमाहात्म्ये वपनविधिः सम्पूर्णः॥

---

१ मातर्यग्रे प्रमीतायां, २ अन्यतमे काले, ३ मार्त्तण्ड०

ॐ श्रीगणेशाय नमः । ॐ श्री गणेश जी को नमस्कार है ।

श्री देव्युवाच—श्री देवी बोलीं—

ॐ स्मारं स्मारं[1] महेशानमहिमानमनन्तकम्[2] ।
[3]पुण्यमनन्तनागस्यानैकाक्षविषये[4] शिव ।।

हे महेशान ! शिव ! अनन्तनाग के अनेक नेत्रों के विषय में पुण्यप्रद अनन्त महिमा को स्मरण कर—स्मरण कर

भगाः सहस्रमिन्द्रस्य यत्र नेत्राणि चाभवन् ।
तथा सरो नलिन्या वै विष्णुक्षेत्रमनुत्तमम् ।।

इन्द्र की सहस्र भगायें जहाँ सहस्र नेत्र हुए तथा नलिनी का सरोवर अत्युत्तम विष्णुक्षेत्र हुआ ।

पिवोरे च महादेवो गौतमक्षेत्रमुत्तमम् ।
करंगेशस्य क्षेत्रस्य कृतार्थोस्मि[5], न संशयः ।।

पिवोर में महादेव और करंगेश क्षेत्र उत्तम है । मैं कृतार्थ हुआ हूँ, इसमें सन्देह नहीं है ।

इदानीं श्रोतु[6]मिच्छामि मार्त्तण्डविषये महत् ।

श्रीभैरव उवाच—श्री भैरव बोले—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि मार्त्तण्डविषये[7] महत् ।
कमलस्यात्र नागस्य विमलस्य तथैव च ।।

हे देवि ! सुनिए, मैं मार्त्तण्ड के विषय में और यहाँ कमल एवं विमल नाग के बिषय में बहुत कुछ कहता हूँ ।

चाकायाश्चैव माहात्म्यं मार्त्तण्डस्यापि सुन्दरि ।
फलं श्रीमत्स्यभवने यच्छ्रुत्वा मुच्यते भवात् ।।

हे सुन्दरि ! चाका का माहात्म्य और मार्त्तण्ड का भी फल सुनिए, जिसे सुनकर मनुष्य संसार से मुक्त हो जाता है ।

---

१ स्मर सुर, २ महिमानन्तकं, ३ पुण्यंमनन्त, ४ नेकाक्षविशये, ५ कृतार्थास्मि, ६ श्रोतुमिष्यामि, ७ मार्तंण्डविशये ।

पुरा सिसृक्षतः स्रष्टु[1]र्जंगत्स्थाव[2]जङ्गमम् ।
अभवन्मनसा देवि मरीचाद्याः महर्षयः ।।

हे देवि ! पूर्वयुग में स्थावर-जङ्गम संसार की रचना करते हुए रचयिता के मानसिक चिन्तन से मरीच आदि महर्षि पैदा हुए ।

मरीचेः कश्यपो जज्ञे कश्यपस्यादितिः[3] किल ।
भार्यासीद्दक्षदुहिता ज्येष्ठा श्रेष्ठा शुभै[4]र्गुणैः ।।

मरीचि से कश्यप पैदा हुए और कश्यप की शुभ गुणों से युक्त, श्रेष्ठ एवं ज्येष्ठ दक्ष की कन्या अदिति भार्या थी ।

अदिति[5]श्चापि देवेशि निषेवे कश्यपं[6] तदा ।
दृष्ट्वा प्रजापतिस्तत्रादितिं सेवापरां[7] तदा ।।
प्रेरयामास तां तत्र तपोऽर्थं वरवर्णिनीम् ।।

हे देवेशि ! तब अदिति ने भी कश्यप की सेवा करना शुरू किया । तब वहाँ सेवारत अदिति को देखकर उस वरवर्णिनी को वहाँ तपस्या करने के लिए प्रेरित किया ।

तपश्चर त्वं कल्याणि येन विष्णुः प्रसीदति ।
विष्णौ प्रसन्ने भद्रे त्वं पुत्रान्प्राप्स्यस्यनुत्तमम्[8] ।

हे कल्याणि ! तुम तप करो, जिससे विष्णु प्रसन्न होते हैं । हे भद्रे ! विष्णु के प्रसन्न होने पर तू अत्युत्तम पुत्रों को प्राप्त करोगी ।

अदितिः[9] कश्यपेनोक्ता चचार दुश्चरं तपः ।

कश्यप से कही गई अदिति ने दुश्चर तप करना आरम्भ किया ।

दुस्तरं[10] तपस्यमानाया दारुणं तप[11]उत्तमम् ।
नारायणो महेशानि तस्या दर्शनमीयवान् ।।

हे महेशानि ! दुस्तर और दारुण एवं उत्तम तप तपते हुए उसे नारायण ने दर्शन दिया ।

दृष्ट्वा तु देवदेवेशं नारायणमनुत्तमम्[12] ।
स्तुत्या च दण्डवन्नत्यादितिः सुरवरार्चिते ।।

---

१ स्रष्टुजगस्थावर, २ जंगमं ३ कश्यपस्यदितिः, ४ शुभे, ५ आदितिश्चापि, ६ कश्यपुंस्तदा ७ सेवापरं ८ पुत्रान्प्राप्यमनुत्तमं, ९ अदिति, १० दुस्तरे ११ तपमुत्तमं १२ मनुतुं ।

अत्युत्तम देवदेवेश नारायण को देखकर हे सुरवरार्चिते ! अदिति ने स्तुति से और दण्डवत् नमस्कार से—

प्रसादयामास तदा विष्णुं त्रिभुवनेश्वरम् ।

त्रिभुवनेश विष्णु को प्रसन्न किया ।

अदितिरुवाच -- अदिति बोलीं—

सुरेश्वरं वेदमनन्तमाद्यं सर्वात्मकं विश्वमनन्तमायम् ।
हिरण्यगर्भं प्रभविष्णुमीशं श्रीविश्वनाथं शरणं प्रपद्ये ।।

सुरेश्वर, वेद, अनन्त, आद्य, सर्वात्मक, विश्व, अनन्तमाय; हिरण्यगर्भ, प्रभविष्णु, ईश, श्रीविश्वनाथ की शरण में मैं जाती हूँ ।

अनादिरूपं परमं परेशं परात्परस्थं परमं पराख्यम् ।
सूक्ष्मं बृहन्तं परमं पवित्रं वरं वरेण्यं शरण प्रपद्ये ।।
परापराख्यं परमार्थसत्यं वृहन्तमास्थूलमीशपराब्दम्(?) ।
पुराणमीशं पुरुषं महर्द्धि महान्तमन्तं शरणं प्रपद्ये ।।

परापराख्य, परमार्थसत्य, वृहन्त, आस्थूल, ईशपराब्द (?) पुराण, ईश, पुरुष, महर्द्धि, महत्, अन्त की मैं शरण जाती हूँ ।

गुणातीतं गुणेशानं गुणैर्हीनं गुणात्मकम् ।
गुणव्यतिकरं बन्दे विष्णुं जिष्णुं महेश्वरम् ।।

गुणातीत, गुणेशान, गुणविहीन, गुणात्मक, गुणव्यतिकर, विष्णु, जिष्णु, महेश्वर की मैं वन्दना करती हूँ ।

पुराणसंहितासूत्रकारणं धारकं सताम् ।
व्यक्तं समर्थं देवेशं प्रपद्ये शरणं हृदा ।।

पुराण-संहिता और सूत्र में कारण, सज्जन पुरुषों के लिए धारक, व्यक्त, समर्थ, देवेश की मैं हृदय से शरण में जाती हूँ ।

अचिन्त्यं सर्वधातारमव्यक्तानन्तरूपिणम् ।
मायाकलितं देवं प्रपद्ये शरणं परम् ।।

अचिन्त्य, सभी को धारण करने वाले, अव्यक्त-अनन्त स्वरूप, माया··· परमदेव की मैं शरण में जाती हूँ ।

अव्यक्तरूपं विश्वाख्यं विकाररहितात्मकम् ।
तद्ब्रह्म परमं वन्दे मनसा परमार्थदम् ।।

अव्यक्तरूप, विश्वाख्य, विकाररहितात्मक, तद्ब्रह्म, परम, परमार्थद की मैं मन से वन्दना करती हूँ ।

लक्ष्मीपतिं वासुदेवं वसुदं वासवानुजम् ।
वासनारहितं बालं मुकुन्दं शरणं श्रये ।।

लक्ष्मीपति, वासुदेव, वसुद, वासवानुज, वासनारहित, बाल, मुकुन्द की मैं शरण में जाती हूँ ।

भैरवा ऊचुः—भैरव बोले—

इति स्तुत्वादितिर्देवं दण्डवत्पतिता क्षितौ ।
उत्थाप्य देवदेवेशि[1]दितं सा त्वया[2] ।।
वद भद्रे प्रसन्नो[3]ऽस्मि भक्तानुग्रहकारकः ।
वरं वरय भद्रं ते यत्ते मनसि[4] वर्तते ।।

हे भद्रे ! कहिए, भक्तों पर अनुग्रह करने वाला मैं तुम पर प्रसन्न हूँ । जो तेरे मन में है, वह मांगो, तुम्हारा कल्याण हो ।

तत्तेऽहं[5] संप्रदास्यामि देवानामपि[6] दुर्लभम् ।
श्रुत्वा हरे[7]र्वचः सौम्यं विष्णुं प्राह[8] दितिः प्रिये ।।

मैं तुझे दूंगा, जो देवताओं के लिए भी दुर्लभ है । हे प्रिये ! हरि के सौम्य वचन सुनकर अदिति ने विष्णु से कहा ।

अदितिरुवाच—अदिति बोलीं—

भगवन्देवदेवेश[9] भक्तानुग्रहकारक ।
भवद्दर्शनतो देव कोऽन्यश्च[10] वर उत्तमः[11] ।।

हे देवदेवेश ! भगवन् ! भक्तानुग्रहकारक ! हे देव ! आपके दर्शन से बढ़कर दूसरा कौन उत्तम वर हो सकता है ।

पुत्रं[12] प्रजापतेः कांक्षे[13] तेजोबलसमन्वितम् ।
त्वत्समान[14]मपि देव[15] त्वत्प्रभावन्त[16]मीश्वर ।।

हे देव ! ईश्वर ! आपकी कृपा से युक्त, आपके समान, तेज और बल से युक्त प्रजापति के पुत्र को मैं चाहती हूँ ।

इत्युक्त्वा[17]परमा देवी ह्यदितिः[18] पुरुषोत्तमम् ।
उवाच[19] ह्यदितिं विष्णुर्मेघगम्भीरया गिरा ।।

१-२ मू० पा० लि० में पाठाभाव, ३ प्रसंनोस्मि, ४ मे मनसि, ५ तत्तेहं, ६ देवानां अपि, ७ हरे वचः, ८ प्राह्यादितिः ९ देवेशि १० कोन्योश्च, ११ उत्तमं, १२ पुत्रः, १३ काक्षे, १४ त्वत्समानपि, १५ देवेश, १६ त्वत्प्रभावानपीश्वर, १७ इत्युक्त्वो, १८ ह्यदिति, १९ स्युदितिं ।

परमा देवी अदिति ने पुरुषोत्तम को यह कहा और इसके बाद विष्णु ने मेध के समान गम्भीर वाणी से अदिति को कहा ।

श्रीभगवानुवाच[१]—श्रीभगवान् बोले—

अदिते ते प्रसन्नोऽस्मि[२] पुत्रान् शीघ्रमवाप्स्यसि ।[३]
प्रजापतिं गच्छ भद्रे भजस्व परदैवतम् ।।

हे अदिति ! मैं तुझ पर प्रसन्न हूँ, तू शीघ्र पुत्रों को प्राप्त करोगी । हे भद्रे ! प्रजापति के पास जाओ और वहाँ परम देव भगवान् का भजन करो ।

एकाग्र[४]मनसा[५] याहि कश्यपं शरणं तथा ।
ज्योतिर्मयान्पुत्रगणान्सर्वान्प्राप्स्यस्यनुत्तमान्[६] ।।

तथा एकाग्र मन से कश्यप की शरण जाइए, वहाँ तू ज्योतिर्मय अत्युत्तम सभी पुत्रगणों को पाएगी ।

तस्माद्गच्छ महाभागे कश्यपं भज निश्चितम् ।
अनिश्चित्यापि भजनात्कदाचिद्विघ्नमाप्स्यसि[७] ।।

हे महाभागे ! इसलिए तुम जाओ और निश्चित कश्यप का सेवन करो। अनिश्चित पापियों का सेवन करने से कभी विघ्न पाओगी ।

इत्यु[८]क्त्वैवम[९]दितिदेवस्तत्रा[१०]न्तर्धानमोयिवान् ।
श्रुत्वा सौम्य[११] वचो विष्णोर्रादतिः[१२] कश्यपं तदा ।।

इस प्रकार यह वचन अदिति को कहकर विष्णु वहाँ अन्तर्धान हो गए। पुत्र की कामना से युक्त वह अदिति विष्णु के सौम्य वचन सुनकर तब हे प्रिये ! भजन के लिए कश्यप के पास गई ।

कश्यपन्तु तपस्यन्तं दृष्ट्वा ह्यदितिरुत्तमा ।
कामयमाना[१३] तु भर्त्तारं ददृशे देव...[१४]।।

तपस्या करने में लगे कश्यप को देखकर उत्तम अदिति ने पति की कामना करते हुए देखा ।

महातेजस्विनं वीरमुग्रं देवं पिनाकिनम् ।
दृष्ट्वा तु तं महादेवं मुमोह परमा सती ।।

---

१ श्री भग वाच, २ प्रसंन्नोस्मि, ३ मवाप्ससि, ४ एकग्रा, ५ ममसा, ६ स्यनुत्तमं, ७ मापतं, ८ इत्युक्त्वेवं, ९ दिति, १० स्तत्रांतधा, ११ स्योम्यं, १२ विष्णुरदिति, १३ कामयाना, १४ मंतरा ।

लक्ष्मीपतिं वासुदेवं वसुदं वासवानुजम् ।
वासनारहितं बालं मुकुन्दं शरणं श्रये ॥

लक्ष्मीपति, वासुदेव, वसुद, वासवानुज, वासनारहित, बाल, मुकुन्द की मैं शरण में जाती हूँ।

भैरवा ऊचुः—भैरव बोले—

इति स्तुत्वादितिर्देवं दण्डवत्पतिता क्षितौ ।
उत्थाप्य देवदेवेशि[1]दितं सा त्वया[2] ॥
वद भद्रे प्रसन्नो[3]ऽस्मि भक्तानुग्रहकारकः ।
वरं वरय भद्रं ते यत्ते मनसि[4] वर्तते ॥

हे भद्रे ! कहिए, भक्तों पर अनुग्रह करने वाला मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। जो तेरे मन में है, वह मांगो, तुम्हारा कल्याण हो।

तत्तेऽहं[5] संप्रदास्यामि देवानामपि[6] दुर्लभम् ।
श्रुत्वा हरे[7]र्वचः सौम्यं विष्णुं प्राह[8] दितिः प्रिये ॥

मैं तुझे दूंगा, जो देवताओं के लिए भी दुर्लभ है। हे प्रिये ! हरि के सौम्य वचन सुनकर अदिति ने विष्णु से कहा।

अदितिरुवाच—अदिति बोलीं—

भगवन्देवदेवेश[9] भक्तानुग्रहकारक ।
भवद्दर्शनतो देव कोऽन्यश्च[10] वर उत्तमः[11] ॥

हे देवदेवेश ! भगवन् ! भक्तानुग्रहकारक ! हे देव ! आपके दर्शन से बढ़कर दूसरा कौन उत्तम वर हो सकता है।

पुत्रं[12] प्रजापतेः कांक्षे[13] तेजोबलसमन्वितम् ।
त्वत्समान[14]मपि देव[15] त्वत्प्रभावन्त[16]मीश्वर ॥

हे देव ! ईश्वर ! आपकी कृपा से युक्त, आपके समान, तेज और बल से युक्त प्रजापति के पुत्र को मैं चाहती हूँ।

इत्युक्त्वा[17]परमा देवी ह्यदितिः[18] पुरुषोत्तमम् ।
उवाच[19] ह्यदितिं विष्णुर्मेघगम्भीरया गिरा ॥

१-२ मू० पा० लि० में पाठाभाव, ३ प्रसंनोस्मि, ४ मे मनसि, ५ तत्तेहं, ६ देवानां अपि, ७ हरे वचः, ८ प्राह्यादितिः ९ देवेशि १० कोन्योश्च, ११ उत्तमं, १२ पुत्रः, १३ काक्षे, १४ त्वत्समानपि, १५ देवेश, १६ त्वत्प्रभावानपीश्वर, १७ इत्युक्त्वो, १८ ह्यदिति, १९ स्युर्दितिं ।

परमा देवी अदिति ने पुरुषोत्तम को यह कहा और इसके बाद विष्णु ने मेघ के समान गम्भीर वाणी से अदिति को कहा।

श्रीभगवानुवाच[1]—श्रीभगवान् बोले—

अदिते ते प्रसन्नोऽस्मि[2] पुत्रान् शीघ्रमवाप्स्यसि।[3]
प्रजापतिं गच्छ भद्रे भजस्व परदैवतम्॥

हे अदिति! मैं तुझ पर प्रसन्न हूँ, तू शीघ्र पुत्रों को प्राप्त करोगी। हे भद्रे! प्रजापति के पास जाओ और वहाँ परम देव भगवान् का भजन करो।

एकाग्र[4]मनसा[5] याहि कश्यपं शरणं तथा।
ज्योतिर्मयान्पुत्रगणान्सर्वान्प्राप्स्यस्यनुत्तमान्[6]॥

तथा एकाग्र मन से कश्यप की शरण जाइए, वहाँ तू ज्योतिर्मय अत्युत्तम सभी पुत्रगणों को पाएगी।

तस्माद्गच्छ महाभागे कश्यपं भज निश्चितम्।
अनिश्चित्यापि भजनात्कदाचिद्विघ्नमाप्स्यसि[7]॥

हे महाभागे! इसलिए तुम जाओ और निश्चित कश्यप का सेवन करो। अनिश्चित पापियों का सेवन करने से कभी विघ्न पाओगी।

इत्यु[8]क्त्वैवम[9]दितिदेवस्तत्रा[10]न्तर्धानमीयिवान्।
श्रुत्वा सौम्य[11] वचो विष्णोरदितिः[12] कश्यपं तदा॥

इस प्रकार यह वचन अदिति को कहकर विष्णु वहाँ अन्तर्धान हो गए। पुत्र की कामना से युक्त वह अदिति विष्णु के सौम्य वचन सुनकर तब हे प्रिये! भजन के लिए कश्यप के पास गई।

कश्यपन्तु तपस्यन्तं दृष्ट्वा ह्यदितिरुत्तमा।
कामयमाना[13] तु भर्त्तारं ददृशे देव...[14]॥

तपस्या करने में लगे कश्यप को देखकर उत्तम अदिति ने पति की कामना करते हुए देखा।

महातेजस्विनं वीरमुग्रं देवं पिनाकिनम्।
दृष्ट्वा तु तं महादेवं मुमोह परमा सती॥

---

१ श्री भग वाच, २ प्रसंन्नोस्मि, ३ मवाप्ससि, ४ एकग्रा, ५ ममसा, ६ स्यनुत्तमं, ७ मापतं, ८ इत्युक्त्वेवं, ९ दिति, १० स्तत्रांतधा, ११ स्योम्यं, १२ विष्णुरदिति, १३ कामयाना, १४ मंतरा।

महातेजस्वी, वीर, उग्र, देव, पिनाकी, उस महादेव को देखकर परमा सती मोहित हो गई।

चेत्यमाना[1] परं देवी[2] ह्यदितिस्तु विसिस्मये।
अदृष्ट्वा देवदेवेशं मारीच[3]सेवामागता ॥

चेतना को पाकर अदिति देवी परम विस्मय को प्राप्त हुई और देवदेवेश को न देखकर मारीच की सेवा में आई।

मारीचो ह्यदितिं दृष्ट्वा किञ्चित्क्रुद्धो[4]ऽब्रवीद्वचः।
यस्मात्कामयमाना त्वं परं पुरुष[5]मोक्षसे।
बन्ध्यागर्भा च तस्मात्त्वं भविष्यसि न संशयः॥

अदिति को देखकर मारीच ने कुछ क्रुद्ध होकर कहा - जिससे तू पति की कामना करती हुई परम पुरुष को देख रही हो, उससे तू बन्ध्यागर्भा होगी, इसमें संशय नहीं है।

इत्यवोच[6]त्परां देवीं ह्यदितिं कश्यपस्तदा।

तब कश्यप ने परमा देवी अदिति से कहा—

श्रुत्वा तु तद्वचो घोरं ह्यदितिः कश्यपस्य च।
[7]क्रुद्धाचरत्तपो घोरं निधाय कश्यपं हृदि॥

अदिति ने कश्यप के उन घोर शब्दों को सुन कर क्रुद्ध होकर कश्यप को हृदय में रखकर घोर तप करना शुरू किया।

दुश्चरं तप्यमानाया अदितेस्तप[8] उत्तमम्।
जज्वाल[9] ह्यदितेस्तत्र संवर्ताग्निवदुत्तमा॥

उत्तम और दुश्चर तप तपती हुई अदिति के आगे संवर्त अग्नि की तरह उत्तम अग्नि जल उठी।

दृष्ट्वा ज्वलन्तीं तां देवीं तपसा दारुणेन च।
कश्यपो ह्यदितिं प्राह तपसो विरम प्रिये॥

दारुण तपस्या से जलती हुई उस देवी को देखकर कश्यप ने अदिति से कहा कि हे प्रिये! तपस्या से बस।

श्रुत्वा तु तद्वचो देवी कोपवृत्ता च सा यदा।
तदोत्थाय स्वयं देवि सान्त्वयामास तां प्रिये॥

---

१ वेत्यमाना, २ देवेवी, ३ सेवमागता, ४ किंचित्क्रुद्धो ५ मीक्ष्यसे, ६ इत्युक्तो परमा देवि, ७ क्रुद्धा, ८ अदिते तपमुत्तमं, ९ जजाल

उसके वचन सुनकर जब वह देवी क्रोधयुक्त हो गई, तब हे प्रिये देवि ! स्वयं उठकर कश्यप ने उसे शांत किया।

श्रीकश्यपा ऊचुः—श्रीकश्यप बोले—

दिव्यं द्वादश वर्षाणां तपोत्थं यद्गतं तव ।
अस्मिंस्त्रयोदशेऽप्येवं देहशोधनतत्परा ॥

दिव्य १२ वर्ष तपस्या करने से जो तेरे होगा फिर तू इस १३ में हो इस तरह तू अपने शरीर का शोधन करने में तत्पर है।

सर्वथा मुक्तमारोगी (?) किमर्थं वरवर्णिनि[1] !
मां भजस्व[2], वरारोहि पुत्रान्प्राप्स्यस्यनुत्तमान् ॥

तू सब तरह से मुक्त है, आरोगी है (?) हे वरवर्णिनि ! यह सब कुछ किसलिए ? हे वरारोहि ! मेरा सेवन करो, तुम अत्युत्तम पुत्रों को पाओगी।

इत्यलं तपसा देवी भुङ्क्ष्व भोगाननेकशः ।

हे देवि ! तपस्या से बस, अनेक भोगों को भोगोगी।

एतच्छ्रुत्वा वचः सौम्यं प्रियस्या[3]प्यदितिस्तदा ।
भीषणात् तपसो देवी तीव्रादुपरराम ह ॥

तब प्रियतम के ये सौम्य वचन सुनकर देवी उस घोर तपस्या से शान्त हुई।

स्नातां दृष्ट्वा तदा तत्र ह्यदितिं कृतपारणाम् ।
स्वप्रसन्नेन मनसा कश्यपो[4]ऽप्यभजच्च ताम् ॥

तब वहाँ कृतपारण अदिति को स्नान किए हुए देख कर अपने प्रसन्न मन से कश्यप ने उसका सेवन किया।

कामयमानां[5] चाप्यदितिं कश्यपः कामसंयुतः[6] ।
बुभुजे तां प्रियां भार्यामनवद्यां च सुन्दरीम्[7] ॥

कामयुक्त कश्यप ने पुत्र की कामना करती हुई उस अनवद्या और सुन्दरी प्रिया अदिति से भोग किया।

कालदोहदिनीं[8] दृष्ट्वा प्रियां पाण्डु[9]मुखीं प्रिये ।
परप्रीत्या तुतुषतुर्दम्पती सहसा मुदा ॥

हे प्रिये ! पाण्डुमुखी, कालदोहदिनी प्रिया को देखकर दम्पती परम प्रीति और प्रसन्नता से सहसा प्रसन्न हुए।

---

१ वरवसिनि, २ भुक्ष्व, ३ स्यापिदिति०, ४ कश्यपोप्यभजच्च, ५ कामयानां, ६ कामसंयुताः, ७ सुंदरं, ८ काल-दोहदिनी, ९ पण्डु,

उवाच ह्यदितिं चैव कश्यपः परया मुदा ।
वरं वरय भद्रं ते मत्तो यदभिवाञ्छसि ।
तत्तेऽहं[1] संप्रदास्यामि देवानामपि दुर्लभम् ।

कश्यप ने परम प्रसन्नता से अदिति को कहा कि वर मांगिए, जो तुम मुझ से चाहती हो, तुम्हारा कल्याण हो, वह वर मैं तुझे दूंगा, चाहे देवताओं के लिए भी दुर्लभ क्यों न हो ।

श्रुत्वा तु तद्वचः सौम्यं[2] प्रियञ्च दक्षजा[3] प्रिये ।
उवाच च तदा प्रीत्या प्रजापतिनन्दिता[4] ? ॥

हे प्रिये ! उनके प्रिय और सौम्य वचन सुनकर दक्षकन्या और प्रजापति को आनन्दित करने वाली अदिति ने तब प्रेमपूर्वक कहा ।

वरं दास्यसि[5] चेन्मह्यं पुत्रांस्तेजोमयान्देहि[6] ।
यत्तोजसा पराभूता देवा अपि प्रजायन्ते[7] ॥

यदि आप मुझे वर देना चाहते हैं तो तेजोमय पुत्रों को दीजिए, जिनके तेज से देवता भी पराभूत हो जाएं ।

श्रुत्वा तस्या[8] वचो देवि हसन्प्राह च तां प्रियाम्
तस्माद्द्वादश[9] वर्षाणि चरितं दुश्चरं तपः ।
क्रोधेन[10] तेजसा युक्तान्पुत्रान्प्राप्स्यसि[11] द्वादश ॥

हे देवि ! उस अदिति के यह वचन सुनकर कश्यप ने उस प्रियतमा को कहा कि जिससे १२ वर्ष दुश्चर तप तुमने किया है, इससे क्रोध और तेज से युक्त १२ पुत्रों को तुम पाओगी ।

अण्डा द्वादश वै गर्भाद्भविष्यन्ति[12] हि जीविताः ।
अण्डेभ्यश्च परं पुत्रा जीवन्तो[13] द्वादशैव ते ॥

तेरे गर्भ से जीवित १२ अण्डे होंगे, परन्तु उन अण्डों से जीवित १२ ही श्रेष्ठ पुत्र तेरे होंगे ।

सर्वाभिभाविनो भद्रे भविष्यन्ति न संशयः ।
अर्धं यत्तपसातीतं त्वया वर्षं त्रयोदशम् ।
अतो मृताण्डस्त्वद्देवि काले प्रादुर्भविष्यति[14] ॥

---

१ तत्तेहं, २ द्वचस्सौम्यं, ३ दक्षिजा, ४ पदन्दिता, ५ दास्यापि, ६ मयान्द्रिय, ७ प्रजायते, ८ श्रुत्वेतस्या, ९ यस्माद्वादशः, १० क्रद्धया, ११ न्प्राश्यसि, १२ गर्भा भविश्यंति, १३ जीवितः, १४ प्रार्भविष्यति ।

हे भद्रे ! सभी अण्डों से होनहार पुत्र होंगे, इसमें संशय नहीं है। तप से जो तूने १३वां वर्ष आधा बिताया, इसलिए हे देवि ! समय पर तुम्हारे मृत-अण्ड पैदा होगा।

[1]इत्युक्त्वावारयद्देवि कश्यपस्तपसे रतः।
दक्षजापि[2] प्रसन्नासीच्छ्रुत्वा प्रियगिरं प्रियाम् ॥

हे देवि ! तपस्या करने में लगे कश्यप यह कहकर रमण करने लगे और दक्षकन्या भी प्रिय वाणी को सुनकर प्रसन्न थी।

कालेन सुषुवे तत्र[3] ह्यण्डान्द्वादश लीलया।
देवमाता महादेवि कश्यपश्च प्रजापतिः ॥

हे महादेवि ! कश्यप प्रजापति और देवमाता अदिति ने समय से वहां खेल-खेल में १२ अण्डे पैदा किए।

केनचिदथ[4] कालेन सौवर्णं मृतमप्य[5]
अण्डं प्राजनयद्देवि काले प्रादुर्भविष्यति ॥
जातान्दृष्ट्वा तथा चाण्डान्ब्रह्मलोकपितामहः।
आदित्यं चादितिं प्राह हसन्मधुरया गिरा ॥

ब्रह्मलोक पितामह ने पैदा हुए अण्डों को देखकर हंसते हुए मधुर वाणी से अदिति को कहा।

श्रीब्रह्मोवाच — श्री ब्रह्मा जी बोले —

दक्षपुत्रि प्रवक्ष्यामि ह्याण्डा एते सुदुर्लभाः।
कालप्रतीक्षणा[6] स्थेया उत्कलितमानसा ॥
कालेन ते भविष्यन्ति पुत्रास्तेजस्विनस्तव ।
तेजसाभिभविष्यन्ति ससुरासुरदानवान् ॥

समय पर तेरे तेजस्वी पुत्र होंगे, जो अपने तेज से सुर-असुर और दानवों को अभिभूत करेंगे।

अयं मार्त्तण्डः[7] क्षेप्तव्यः सतीसरसि शोभने।
तत्रैवायं च कालेन मृतान्नुद्धरति[8] क्षणात् ॥

यह मृत-अण्ड तुझे शुभ सतीसर में फेंक देने चाहिएँ और वहां पर ही यह समय पर मृतों का क्षण में उद्धार करेगा।

---

१ इत्युक्तो पारम०, २ दक्षिजापि, ३ ह्याण्डां, ४ केनचित्दथ, ५ मप्यहो, ६ प्रतीक्षणां, ७ मार्त्तण्डः, ८मृतानुद्धरति।

चर्मदः पुण्यदश्चापि स्वर्गदश्च भविष्यति ।
[1]आसन्द्वादशपुत्रास्ते स्मृता वासाधिपाः[2] किल ॥

यह चर्मद, पुण्यद और स्वर्गद होगा। तुम्हारे १२ पुत्र जो थे, वे निश्चित महीनों के स्वामी माने जाएंगे।

अयं मृताण्डजः[3] पुत्रस्तेजसाभिभविष्यति ।
एतांस्तु द्वादशादित्यान्पुत्रान्कालेन दक्षजे ।

हे दक्षकन्ये ! यह मृत-अण्ड से पैदा हुआ तुम्हारा पुत्र समय पर इन तुम्हारे १२ आदित्य पुत्रों को अभिभूत करेगा।

अस्मिन्कलियुगे घोरे महापातकिनो नराः[4] ।
प्रायेण प्रजनिष्यन्ति एत[5] एव न संशयः ॥

इस घोर कलियुग में यही महापापी मनुष्य प्रायः पैदा होंगे, इसमें संशय नहीं है।

प्रमादिनो मृता यस्माज्जीवन्तस्तु प्रमादिनः ।
पापिनस्तु मृताः प्रोक्ताः[6] पुण्या जीवन्ति एव हि ॥

प्रमादी मरे हुए हैं, चाहे वे प्रमादी जीवित क्यों न हो। पापी तो मरे हुए कहे गए हैं, पुण्यात्मा जीते ही हैं।

जीवत्वं च मृतत्वं चाप्येतद्द्वेति[7] निश्चलम् ।
मृतानां[8] पापिनां यस्माद्द्धारय[9] तत्क्षणात् ॥

जीते और मरे हुए भी इसी में स्थित हैं जिससे मरे हुए पापी का तत्क्षण उद्धार करो।

तस्मादयञ्च ते पुत्रो मृताण्डख्यातिमेष्यति ।
तस्मात्पुत्रि भव स्वस्था लोकस्योद्धारिणी भव ॥

इससे तुम्हारा यह पुत्र 'मृताण्ड' नाम से प्रसिद्धि पाएगा। इसलिए हे पुत्रि ! तुम स्वस्थ हो और लोक का उद्धार करने वाली हो।

देवानां जननी चैव तपसा दग्धकिल्विषाम्[10] ।

तपस्या से जिन्होंने अपने पाप जला दिए हैं, उन देवताओं की तू जननी है।

स्नुषसा एवमुक्त्वा तु ब्रह्मलोकपितामहः ।
कश्यपं प्राह देवेशि वर्धस्व कुलवर्धन[11] ॥

---

१ आसी द्वादश, २ मासाधिपः, ३ मृताण्डजाः, ४ नरः, ५ एता ६ प्रोक्ता, ७ चाप्येतद्देवेति, ८ मृ मृतानां, ९ यस्माद्द्धारिणी, ११ किल्विषाः ११ कुलर्धन ।

हे देवेशि ! स्नुषा से यह कहकर ब्रह्मलोक पितामह ने कश्यप से कहा कि हे कुलवर्धन ! तुम वृद्धि को प्राप्त हो।

इमं त्रयोदशं चाण्डं सतीसरसि शोभने।[1]
गत्वा निक्षिप[2] भद्रं ते ततः श्रेयो भविष्यति ॥

शुभ सतीसर में जाकर इस १३ वें अण्डे को फैंक दो, तुम्हारा कल्याण हो, इसके बाद श्रेय होगा।

तत्र सम्पत्स्यते क्षेत्रं [3]मार्त्तण्डं नाम नामतः।
प्रख्यातं[4] त्रिषु लोकेषु मृतोद्धरणमेष्यति ॥

वहां यह क्षेत्र मार्त्तण्ड नाम से होगा, तीनों लोकों में प्रसिद्ध होगा और मृतों का उद्धार करेगा।

इत्युक्त्वा कश्यपं देवि ब्रह्माप्य[5]न्तर्धिमागतः।
कश्यपोऽपि[6] हि तद्देवि मृतमण्डं प्रगृह्य वै।
सतीसरसि पुण्ये[7]ऽस्मिन्प्राक्षिपद्ब्रह्मणो गिरा ॥

हे देवि ! कश्यप से यह कहकर ब्रह्मा अन्तर्ध्यान हो गए और हे देवि ! कश्यप ने भी उस मृत-अण्ड को ब्रह्मा के कहने से इस पुण्य सतीसर में फैंक दिया।

कालेन द्वादशादित्या जाता अण्डेभ्य एव च।
महातेजस्विनः प्रोक्ताः सर्वतेजो[8]ऽभिभाविनः ॥

समय पर अण्डों से ही १२ आदित्य पैदा हुए और वे सभी तेजों को अभिभूत करते हुए महातेजस्वी कहे गए।

तेषां पृथक्-पृथक्[9] नाम स्थानानि[10] च ददौ किल।
कश्यपानां तु देवेशि ब्रह्मलोकपितामहः ॥

हे देवेशि ! ब्रह्मलोकपितामह ने उन कश्यपस्वरूप आदित्यों को अलग-अलग नाम और स्थान दिए।

कदाचित्कालपर्यन्ते कश्यपो जगदम्बिके।
निवृत्तस्तपसस्तीव्राद्[11]ब्रह्माणं तमुवाच ह ॥

हे जगदम्बिके ! कभी कालपर्यन्त में तीव्र तपस्या से निवृत्त होकर कश्यप ने उस ब्रह्मा से कहा।

---

१ शुभने, २ निक्षप, ३ मार्त्तण्डं, ४ प्राख्यतं, ५ ण्यांतर्धि, ६ कश्यपोपि, ७ पुण्योस्मिन्प्रक्षिप, ८ तेजोभिभाविनः, ९ पृथक्पृथं, १० स्थाराणि, ११ स्तीव्रा ब्रह्माणं तंमुवाच,

श्री कश्यप उवाच—श्रीकश्यप बोले—

भगवन्सर्वलोकेश प्रसीद करुणानिधे ।
आगामिनि जगन्नाथ[1] दारुणे[2]ऽस्मिन्कलौ युगे ।
तपो[3]ऽर्थं जगदीशान पुण्यं स्थानं समादिश ।।

करुणानिधि, सर्वलोकेश, भगवन् हे जगन्नाथ ! जगदीशान ! आने वाले इस घोर कलियुग में तपस्या करने के लिए पुण्य स्थान बताइए ।

प्रायः कलियुगो यत्र नास्मा[4]न्नभिभविष्यति ।
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य कश्यपस्य महात्मनः ।
जगाद वचनं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ।।

प्रायः कलियुग जहां हमें अभिभूत नहीं करेगा । उस कश्यप महात्मा के यह वचन सुनकर सर्वलोकपितामह ब्रह्मा ने कहा ।

हरमाराधय क्षिप्रं स ते स्थानं प्रदास्यति ।
श्रुत्वैतद्वचनं तस्य ब्रह्मणो[5]ऽव्यक्तजन्मनः ।।

शीघ्र महादेव की आराधना करो, वह तुम्हें स्थान देगा । अव्यक्तजन्मा उस ब्रह्मा के ये वचन सुनकर—

हरमाराधयामास[6] कश्यपः परया मुदा ।
दिव्यं त्रिवर्षं देवेशि निराहारो जपन्मुहुः ।
अङ्गुष्ठाग्रेण[7] तिष्ठन्स वर्षमेकं महेश्वरि ।।

हे महेश्वरि ! देवेशि ! परम प्रसन्नतापूर्वक कश्यप ने दिव्य तीन वर्ष तक निराहार रहकर बार २ जप करते हुए और एक वर्ष अंगूठे के अग्रभाग से खड़े रह कर महादेव की आराधना की ।

एवं[8] तपस्य[9]मानस्य दुष्करं तप[10] उत्तमम् ।
कश्यपस्य तदा तत्र देवो दर्शनमाययौ ।।

तब वहां इस प्रकार उत्तम और दुष्कर तप तपते हुए कश्यप को देव ने दर्शन दिया ।

दृष्ट्वा देवं महादेवमुग्रं शूलिनमीश्वरि ।
दण्डप्रणाममकरोत्स्तुवन्वाचा[11] मुहुर्मुहुः ।।

हे ईश्वरि ! त्रिशूलधारी, उग्रदेव महादेव को देखकर बार-बार वाणी से स्तुति करते हुए कश्यप ने दण्डवत् प्रणाम किया ।

---

१ जगनाथ, २ दारुणोस्मि, ३ तपोर्त्थं, ४ नास्मानभि०, ५ ब्रह्मणोव्यक्त०, ६ यारादयामासं स्वरार्चिते ७ निष्टंन्स, ८ एवंस्तु, ९ तस्मानस्य, १० तवमुत्तमं, ११ वाच

दृष्ट्वा तु पतितं तत्र दण्डवन्तं[1] सुरार्चिते ।
उत्थाप्य[2] चावदत्तत्र कश्यपं श्लक्ष्णया[3] गिरा ।।

हे सुरार्चिते ! वहां दण्डवत् पड़े हुए उसे देखकर और उठाकर कश्यप को कोशल वाणी से कहा ।

सन्तं त्र्यम्बकं त्र्यैध[4]मीशं त्र्यवर्णं त्रिधाम परमं प्रपद्ये ।
कालमीशं गिरीशं[5] चाष्टमूर्ति त्रीशं शेषं गिरीशं[6] विश्वरूपम् ।।
धीशं ह्रीशं घोरमीशानमुग्रं सूक्ष्मं स्थूल[7]मण्डरूपं महान्तम् ।
प्रपद्ये[8] शरणं तं बृहन्तं वागीश्वरं वागवागम्बरेशम् ।।
वीरेश्वरं वीर्यधं धोरवीरं त्रिधामनं पुरुषं रूपमेकं प्रपद्ये शरणम् ।
देवमुग्रं सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरमाद्य···गोचरम् ।

यं न जानाति योगीशस्तं वन्दे चण्डविक्रमम् ।
देवं वाङ्मनसातीतं त्रिधामात्मानमीश्वरम् ।।

जिसे योगीश नहीं जानता है, मैं उस चण्डविक्रम को नमस्कार करता हूँ तथा वाणी एवं मन से अतीत, तीन धामों वाले, आत्मस्वरूप, ईश्वर—

तेजः पुञ्जस्थमीशानं भूयो भूयो नमामि[9] तम् ।

तेज के पुञ्जस्वरूप उस ईशान को मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ ।

इति स्तुत्वा महादेवं तेजःपुञ्जस्थमीश्वरम् ।
प्रणम्य दण्डवद्भूमौ पतितश्च मुहुर्मुहुः ।।

उस तेज के पुञ्ज, ईश्वर महादेव की इस प्रकार स्तुति कर वह दण्डवत् प्रणाम कर भूमि पर पड़ गया ।

श्रुत्वा स्तुतिं महादेवि तेजःपुञ्जस्थ[10] ईश्वरः ।
करांगयुक्तो देवेशि तत्र दर्शन[11]मैयिवान् ।।

हे देवेशि ! हे महादेवि ! तेजःपुञ्जस्वरूप ईश्वर अपनी स्तुति सुनकर करांगयुक्त वहां दर्शन देने के लिए आए ।

करांगयुक्तो यत्रैव दृष्ट[12]स्तेजस्थ ईश्वरः ।
स ग्रामः प्रथितोऽद्यापि करांगेशाभिधापरः ।।

---

१ दण्डवन्तं, अंगुष्ठाग्रेन, २ उत्थापि, ३ श्लक्ष्ण पाठाभावः, ४ त्र्यैय, ५ गिरिशं, ६ गिरशेशं, ७ स्थूलमण्डः, ८ प्रपद्येम ९ नमाम १० पुञ्जस्थमीश्वरः ११ दर्शिनमै०, १२ दृष्ट्वा ।

जहां ही तेजस्वरूप ईश्वर को करांगयुक्त देखा गया, इसलिए वह ग्राम आज भी करांगेश नाम से कहा जाता है।

करांगेशे[1] कृतं स्नानं दानं होमो[2] जपस्तथा।
देवार्चनं तपश्चापि कृतमक्षय्यतां व्रजेत्॥

करांगेश में किया गया स्नान, दान, होम तथा जप एवं देवार्चन और तप अक्षय्यता को प्राप्त होता है।

तेजःपुञ्जो य एवोक्तः स एवेशः प्रकीर्तितः।

जो ही तेजपुञ्ज कहा गया, वह ही ईश कहा गया।

अथ मार्त्तण्ड[3]ध्यानम्

ॐ भास्वत्पुञ्जकरं प्रसन्नवदनं पीताम्बरालङ्कृतम्।
पद्मं चाभयपुस्तके जपवटीं हस्तैर्दधानं प्रभुम्॥
[4]संवर्ताग्निसमानकान्तिममलं नेत्रत्रयोद्भासितम्।
देवैश्च[5] परितं च वरदं मार्त्तण्डनाथं नुमः॥

चमकती हुई किरणों वाले, प्रसन्नवदन, पीताम्बर से सुसज्जित, संवर्ताग्नि के समान कान्ति वाले, निर्मल, तीन नेत्रों से प्रकाशित, देवताओं से युक्त और वरद मार्त्तण्डनाथ को हम नमस्कार करते हैं।

यस्मान्मृताण्डा[6]त्सम्भूतस्तेजःपुञ्जो महेश्वरि।
तस्मात्प्रोक्तः[7] पुराविद्भिरीशो [8]मार्तण्डसंज्ञितः॥

हे महेश्वरि! जिससे मृत-अण्ड से तेजपुञ्ज पैदा हुआ, इसी से पुरातत्ववेत्ताओं ने ईश को मार्त्तण्ड नाम से कहा है।

अत्र द्वारे [9]महादेवि मार्त्तण्डः[10] समधिष्ठितः।
यत्र ज्वालाप्रकाशो[11]ऽभूत्पाशो दक्षिणको मतः॥

हे महादेवि! यहाँ द्वार में मार्त्तण्ड को स्थापित किया गया, जहाँ ज्वाला का प्रकाश हुआ, पाशदक्षिणक माना गया है।

यत्र व्याप्तं न तत्तेजः[12] स प्रोक्तो वामपार्श्वकः[13]।
यत्र प्रतिष्ठितो देवि वीरो मार्त्तण्ड[14]नाथकः॥

---

१ करांगेशं, २ होमस्जपतथा ३ मार्त्तण्ड ४ सर्वताग्नि ५ देवेभिः ६ न्मृतांण्डाँत्स० ७ त्प्रोक्ता ८ मार्त्ताण्डसज्ञितः ९ माहादेवि १० मार्त्ताण्ड० ११ प्रकाशोभूत्पाशो १२ ततेजः १३ पांचकः १४ मार्त्तांडनाथकः।

जहां वह तेज व्याप्त नहीं हुआ, वह वामपार्श्वक कहा गया। हे देवि ! जहां वीर मार्त्तण्डनायक प्रतिष्ठित है।

विषयस्यास्य नामाभू[1]न्मार्त्तण्डेति तदा प्रिये।
अण्डस्य भवनं यत्र तत्प्रोक्तं भवनं परम् ॥

हे प्रिये ! इस देश (विषय) का नाम तब मार्त्तण्ड हुआ, जहां अण्ड का भवन है, वह परम भवन कहा गया।

सम्पादनान्महेशानि मार्त्तण्डेशस्य[2] सुन्दरि।
ग्रामस्य भवनं नामाख्यातं जगति पावनम् ॥

हे महेशानि ! सुन्दरि ! मार्त्तण्डेश के सम्पादन से जगत् में पवित्र 'ग्रामभवन' नाम से कहा गया।

भवनात्क्षेत्रमुख्यस्य मृतानामपि भावनात्।
तस्माद्भवमित्याख्यां प्रापितो ग्रामसत्तमः ॥

क्षेत्रमुख्य के भवन से और मृतकों की भी भावना से यह श्रेष्ठ ग्राम भव इस नाम को प्राप्त हुया।

गृहं मार्त्तण्ड[3]नाथस्य यतः प्रोक्तं पुरातनैः।
तस्माद्भवनमित्याख्यां प्रापितो ग्राम उत्तमः ॥

क्योंकि पुरातन -पुरुषों ने इसे मार्त्तण्डनाथ का घर कहा है, इसी से इस उत्तम गांव ने 'भवन' यह नाम पाया।

नेत्राभ्यां तस्य यज्ज्वाला सा वै भर्गशिखा मता।
योगीश्वरीति हृदयाद्धोमा प्रोक्ता[4]··· शिवे ॥

उसके नेत्रों से जो ज्वाला पैदा हुई, वह भर्गशिखा मानी गई। हे शिवे ! हे योगीश्वरी······

मुखात्तस्य तु सञ्जाता भास्वती[5] वै महाकला।
भवानी दक्षिणापार्श्वाज्ज्वाला समभिजायते ॥

उसके मुख से भास्वती महाकला पैदा हुई। भवानी, दक्षिणा पार्श्व से ज्वाला पैदा होती है।

अण्डखण्डद्वयं तत्र नागद्वयमभूत्किल।
चक्राच्च निर्गता चाका नदी पुण्यप्रवाहिनी ॥

अण्डे के दो खण्ड हुए और उसमें दो नाग पैदा हुए तथा चक्र से पुण्यप्रवाहिनी चाका नदी निकली।

---

१ हमार्त्तण्डेति २ मार्त्तण्डशस्य ३ मार्त्तंड० ४ स्थतः ५ भास्वते।

तस्मात्प्रोक्ता पुराविद्भिः चाकेति च वरप्रदा ।

इसी से पुरातत्त्ववेत्ताओं ने इसे वर प्रदान करने वाली 'चाका' इस नाम से पुकारा है ।

[1]चाकातिघोरपापानि स्नानदान…… ।
तस्माच्चाकेति नामास्याः प्रथितं भुवनत्रये ॥

इसी से इसका नाम तीनों लोकों में 'चाका' प्रसिद्ध हुआ ।

चकितानि च पापानि स्नाता… वारिणि[2] ।
तस्माच्चाकेति नामास्या नद्या वै प्रथितं भुवि ॥

इसी से इस नदी का नाम पृथ्वी पर 'चाका प्रसिद्ध हुआ ।

जलस्य मलसंयुक्तं कमलं समुदाहृतम् ।
यस्मान्मलविहीनं तदण्डखण्डमभूत्किल ॥

जल के मल से युक्त कमल कहा गया जिससे वह अखण्ड मलविहीन हुआ ।

ततो विमलमित्युक्तमण्डखण्डार्धमीश्वरि ।

इसी से हे ईश्वरि ! वह आधा अण्डखण्ड 'विमल' कहा गया ।

विष्ण्वीशौ यत्र लीयेते… तेजसि वारिणि ।
ततः स नागो[3] विख्यातः कमलस्तत्र पारगैः ॥

विष्णु और ईश जहां—
तदनन्तर वह 'नागकमल' इस नाम से वहां विद्वानों द्वारा प्रसिद्ध हुआ ।

मत्समोपमनुप्राप्तो ह्यत्र स्नानाच्च[4] पुण्यकृत् ।
तस्मा[5]च्छ्रीमत्स्यभवनं प्रथितं भुवनत्रये[6] ॥

जहां स्नान करने से पुण्यात्मा मेरे पास चला आता है, इसी से तीनों भवनों में यह 'मत्स्यभवन' नाम से प्रसिद्ध हुआ ।

मत्स्यानां गेहमुद्दिष्टं श्रीमत्स्यभवनं शुभम् ।
मत्सादृश्यमनुप्राप्तो ह्यत्र स्नातश्च पुण्यकृत् ॥

शुभ श्रीमत्स्यभवन मत्स्यों का··· कहा गया है, इसमें स्नान किए हुआ पुण्यात्मा मेरे सादृश्य को प्राप्त होता है ।

तस्माच्छ्रीमत्स्यभवनं प्रथितं भुवनत्रये ।
स्नानं दानं तपो होमो जपः स्वाध्याय एव च ।
अनन्तं[7]स्यान्महादेवि श्रीमत्स्यभवने शुभे ॥

---

१ चाकांति० २ स्नातामानवारिणि ३ सनागं ४ स्नाना च ५ तस्मा श्री० ६ भुवजये ७ अनन्त ।

इसलिए तीनों भुवनों में श्रीमत्स्यभवन प्रसिद्ध हुआ। हे महादेवि ! शुभ श्रीमत्स्यभवन में किया गया स्नान, दान, तप, होम, जप और स्वाध्याय अनन्त होता है।

इति ते कथितं[1] चाद्य श्रीमत्स्यभवनं परम्।
इदानीं देवदेवेशि किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥

यह तुझे परम श्रीमत्स्यभवन कहा है। हे देवदेवेशि ! अब फिर क्या सुनना चाहती हो।

इति श्रीभृङ्गीशसंहितायां मार्तण्ड[2]विषये श्रीमत्स्यभवनं
नाम प्रथमः पटलः ॥

---

१ कथ्यतं २ मार्त्तंड०।

ॐ श्री देवी उवाच—श्रीदेवी बोलीं

वद सत्यं महादेव योगिन्यष्टकमुत्तमम् ।
कस्मिन्कस्मिन्[1] महास्थाने योगिन्यः संप्रतिष्ठिताः[2] ।।

हे महादेव ! सत्य एवं उत्तम योगिनी-अष्टक कहिए। किस-किस महास्थान में योगिनियाँ संस्थापित हैं।

पूज्याश्चातः[3] कथं देव पूजनाच्चैव किं फलम् ।

हे देव ! उनकी पूजा कैसे करनी चाहिए और उनके पूजन से क्या फल मिलता है ?

श्री भैरव उवाच—श्री भैरव बोले—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि योगिनीस्थानमुत्तमम् ।
पूजनस्य[4] फलं चापि लोकानुग्रहकाम्यया ।।

हे देवि ! सुनिए, मैं उत्तम योगिनियों के स्थान और लोगों पर अनुग्रह करने की कामना से उनके पूजन का फल कहता हूँ ।

पुरा मार्तण्डनाथस्य[5] नेत्रज्वाला[6] समुत्थिता ।
ज्वालन्ती पापसंघांश्च[7] विघ्नांश्चापि महेश्वरि ।।

पूर्वकाल में मार्त्तण्डनाथ की नेत्र-ज्वाला हे महेश्वरि ! विघ्नों और पापसंघों को जलाती हुई पैदा हुई ।

तस्माज्ज्वालेति विख्याता लोके यत्र विशारदैः ।
भर्गो यन्ने[8]त्रयोर्देवि सवै ज्वालेति[9] शब्दिता ।।

इसी से जहां लोक में विद्वानों से 'ज्वाला' इस नाम से प्रसिद्ध हुई । हे देवि ! जो नेत्रों में 'भर्ग' है, वही ज्वाला' इस नाम से पुकारी गई ।

भजनात्कर्मसंघानां पापानामपि सुन्दरि[10] ।
तस्माद्भर्ग इति ख्यातं भुवनेषु महेश्वरि ।।

हे सुन्दरि ! कर्मसंघों के और पापों के भी भजन से हे महेश्वरि ! भुवनों में 'भर्ग' इस नाम से यह प्रसिद्ध हुआ ।

शिरः खात्वोत्थिता यस्माच्छिखेति समुदाहृता ।
भर्गस्तेज इति ख्यातं भुवनेषु महेश्वरि ।।

---

१ पाण्डुलिपि में पाठाभाव २ संप्रतिष्ठितः ३ पूज्याश्चतः ४ पूजनश्च ५ मार्त्तण्ड० ६ नेत्रा जाला० ७ जालन्ती पापसगांश्च ८ न्नेत्रयोदेवि ९ ज्वलति १० स्वन्दरि

शिर का उत्खनन कर पैदा हुई, जिससे 'शिखा' इस नाम से कही गई हे महेश्वरि ! भुवनों में वह भर्ग 'तेज' इस नाम से प्रसिद्ध हुआ।

तस्मात्पुरातनैर्देवि माता भर्गशिखेति सा।
तत्त्वज्ञैरपि सा प्रोक्ता श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी[1] ॥

हे देवि ! इससे पुरातन पुरुषों ने भी इसे माता, भर्ग, शिखा और तत्त्वज्ञों ने भी इसे श्रीमती त्रिपुरसुन्दरी कहा है।

वेदविद्भिश्च गायत्री सावित्री च सरस्वती।
दुर्गा भद्रा भवानीति कालेति त्रिविधा प्रिया ॥

वेदवेत्ताओं ने गायत्री, सावित्री और सरस्वती, दुर्गा, भद्रा और भवानी एवं प्रिया, काला ये तीन प्रकार की कहा है।

भ्रामरी संगली[2]त्याख्या वीजरूपा परापि च।
ॐकारी च तथा माया कामाख्यापि च सुन्दरि[3] ॥

हे सुन्दरि ! भ्रामरी, संगली, वीजरूपा, परा, ओंकारी, माया तथा कामाख्या भी इसे कहा है।

सैव विश्वेश्वरी विश्वा विश्वाज्ञा मन्त्ररूपिणी।
वेदरूपा चिदानन्दा चित्सुरूपा चिदुद्भवा ॥

वही विश्वेश्वरी, विश्वा, विश्वाज्ञा, मन्त्ररूपिणी, वेदरूपा, चिदानन्दा, चित्सुरूपा, चिदुद्भवा,

स्थूल[4]सूक्ष्मतरा सूक्ष्मा सूक्ष्मवृद्धिप्रदा स्मृता।
भक्तानुग्रहमीहन्ती स्थूला सैव बभूव ह ॥

स्थूलसूक्ष्मतरा, सूक्ष्मा, सूक्ष्मबुद्धिप्रदा कहा गया है। भक्तों पर अनुग्रह करना चाहती हुई वही स्थूल हुई।

त्रिनेत्रा चारुवेदानां सूर्यकोटिसमद्युतिः।
रक्ताम्बरधरा तन्वी समु[5]... चारुहासिनी ॥

सुन्दर वेदों के लिए त्रिनेत्रा, करोड़ों सूर्यों के समान द्युति वाली, लाल वस्त्रों को धारण किए हुए, तन्वी, चारुहासिनी।

शंखत्रिशूलवाणैश्च सर्पभूषितबाहुका।
नागयज्ञोपवीता च[4] सर्वाभरणभूषिता ॥

शंख, त्रिशूल और वाणों से एवं सर्पों से आभूषित भुजा वाली, नागयज्ञोपवीत से युक्त और सभी आभरणों से सुसज्जित,

---

१ स्वंदरि, २ ह्यंगलीत्याख्या, ३ स्बन्दरि, ४ यज्ञोपवीताश्च।

सिंहासना शैलपृष्ठे विहरन्ती महेश्वरि ।
भजनीया महेशानि दुर्गा भर्गशिखेति[1] सा ।

हे महेश्वरि ! सिंहासना, पर्वत के पृष्ठ भाग पर विचरण करती हुई उस दुर्गा का भर्गशिखा के रूप में हे महेशानि ! भजन करना चाहिए ।

दृष्ट्वा भर्गशिखां तत्र पर्वतस्थां महेश्वरि ।।
मुच्यते कोटिहत्याभिः सर्वपातकसंचयैः ।।

हे महेश्वरि ! वहां पर्वत पर स्थित भर्गशिखा को देखकर मनुष्य करोड़ों हत्याओं और सभी पापों के समूह से मुक्त हो जाता है ।

गवां कोटिसहस्रस्य सम्यग्दत्तस्य यत्फलम् ।
चन्द्रसूर्योपरागे च कुरुक्षेत्रे महेश्वरि ।।

हे महेश्वरि ! कुरुक्षेत्र में चन्द्र एवं सूर्य को ग्रहण लगने पर हजार करोड़ गायों के अच्छी तरह दान देने का जो फल मनुष्य पाता है वह इसके दर्शन से होता है ।

यत्फलं लभते मर्त्यस्तदस्य दर्शनाद्भवेत् ।
अकामो वा सकामो वा देवि[2] भर्गशिखां श्रयेत् ।
देवतादर्शने तस्या दासवत्तां[3] श्रयिष्यति ।।
पुरश्चरणमत्रैव[4] यः कश्चित्कुरुते नरः ।
स शीघ्रं सिद्धिमाप्नोति नात्र [5]मेऽस्ति विचारणा ।।

हे देवि ! अकाम वा सकाम भाव से जो भर्गशिखा का आश्रय ले और उसके देवदर्शन में दास की तरह जो उसका आश्रय लेगा तथा जो कोई मनुष्य यहीं पुरश्चरण करता है, वह शीघ्र सिद्धि पाता है, इसमें विचार की कोई आवश्यकता नहीं ।

गायत्र्युपासको यश्च श्रयेद्भर्गशिखां प्रिये ।
सिद्धिमाप्नोति मनुजः शीघ्रमेव न संशयः ।

हे प्रिये ! जो गायत्री का उपासक भर्गशिखा का आश्रय ले, वह मनुष्य शीघ्र ही सिद्धि पाता है, इसमें संशय नहीं है ।

चान्द्रायणैः कृच्छ्रशतैर्महा[6]सांतापनैरपि ।
जलकृच्छ्रार्धकृच्छ्रैश्च[7] प्राजापत्यैरपीश्वरि ।।

हे ईश्वरि ! चान्द्रायणों, सैंकड़ों कृच्छ्रों, महासांतापनों से भी, जलकृच्छ्रों से और प्राजापत्यों से—

---

१ शिखीति २ देवी ३ दासवत्तं ४ वै ५ मेस्ति ६र्महासां ७ कृच्छ्रे श्च ।

अश्वमेधैर्वाजपेयै[1]ज्योतिष्टोमादिभिर्मखैः ।
सहस्रशःकृतैश्चापि[2] विधिना सुरसुन्दरि ।
यत्फलं लभते मर्त्यस्तदत्रैकाहपूजनात् ॥

हे सुन्दरि ! विधिपूर्वक हजारों बार किए हुए अश्वमेधों, वाजपेय और ज्योतिष्टोम आदि यज्ञों से जो फल मनुष्य पाता है, वह यहां एक दिन पूजा करने से पाता है ।

महापातकयुक्तो वा युक्तो वा ह्युपपातकैः ।
अर्चयित्वा च देवेशि[3] पुण्यां[4] भर्गशिखां प्रिये ।
पातकैर्मुच्यते मर्त्य इत्याह[5] परमेश्वरी ।

महापातक से युक्त वा उपपातकों से युक्त हे देवेशि ! प्रिये ! पुण्य भर्गशिखा की पूजा कर मनुष्य पापों से मुक्त हो जाता है, यह परमेश्वरी ने कहा है ।

इन्द्रः पातकादत्र मुक्तः सद्यो भवेत्क्षणात् ।
स्त्रीत्वादिलोऽपि[6] भवने पूजयित्वा[7] महेश्वरीम् ।
स्त्रीत्वान्मुक्त इति ख्यातं शास्त्रेषु वरवर्णिनि ॥

इन्द्र जहां पातक से झट क्षण में मुक्त हो गया । स्त्री होने से इला भी भवन में महेश्वरी की पूजा कर स्त्रीभाव से मुक्त हो गई । हे वरवर्णिनि ! यह शास्त्र में प्रसिद्ध है ।

भार्गवो[8]ऽपि पुरा मातृवधात्त्रिपुरसुन्दरि[9] ।
पूजयित्वात्र भवने मुक्तिं प्राप्नोति विश्रुतः ॥

पूर्वकाल में हे त्रिपुरसुन्दरि ! सुविख्यात परशुराम जी भी माता के वध से जहां भवन में पूजा कर मुक्ति को प्राप्त हुए, ऐसा प्रसिद्ध है ।

वृत्रासुरवधाच्चापि शक्रो मुक्तोऽत्र[10]पूजनात् ।
द्रा[11]···दुःखसंतप्तो यः स भर्गा[12] समाश्रयेत् ॥

वृत्रासुर के वध से भी इन्द्र जहां पूजा करने से मुक्त हो गया । जो दुःख से संतप्त हो, वह भर्गा शिखा का आश्रय ले ।

दारिद्र्यान्मुच्यते [13]जन्तुर्दुःखादपि न संशयः ।

दारिद्र्य और दुःख से भी प्राणी मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं है ।

---

१ र्वाजिपेयैंज्योः, २ सहस्रः कृतश्चापि, ३ देवीशो, ४ पुण्यं, ५ इत्या, ६ इंद्रो ७ पूजयित्वं, ८ भार्गवोपि, ९ वधात्रिपुर सुन्दरी, १० मुक्तोत्र, ११ पाण्डुलिपि पाठाभाव, १२ भर्गा, १३ जंतुदुखा, ।

पुण्यकामो[1] महेशानि पुण्यां भर्गां समाश्रयेत् ।
पुण्यमाप्नोति मनुजो[2] वाजिमेधादिकोटिजम्[3] ।

हे महेशानि ! पुण्य की कामना से पुण्या भर्गा (शिखा) का आश्रय ले । मनुष्य करोड़ों अश्वमेध आदि से पैदा होने वाले पुण्य को पाता है ।

अन्नकामो[4] महादेवि पुण्यां[5] भर्गां समाश्रयेत् ।
धनदस्तां[6] महेशानि दासवत्संश्रयिष्यति ।।

हे महादेवि ! अन्न की कामना करने वाला पुण्य भर्गा (शिखा) का आश्रय ले । हे महेशानि ! धन की कामना रखने वाला उसे दास के रूप में आश्रय लेगा ।

पुत्रकामो[7] महेशानि पुण्यां[8] भर्गां समाश्रयेत् ।
[9]पुत्राञ्छूरान्नवाप्नोति पण्डितानपि शोभनान्[10]

हे महेशानि ! पुत्र की कामना करने वाला पुण्य भर्गा (शिखा) का आश्रय ले । शूरवीर, पण्डित और सुन्दर पुत्रों को प्राप्त करता है ।

स्त्रीकामश्च महादेवि पुण्यां[11] भर्गशिखां श्रयेत् ।
स्त्रियं[12] स्वरूपामाप्नोति[13] मनोवृत्तानुसारिणीम् ।।[14]

हे महादेवि ! स्त्री की कामना रखने वाला पुरुष पुण्य भर्गशिखा का भजन करे, जिससे मनचाही और सुन्दर स्त्री को पाता है ।

कन्यां [15]सुशीलामाप्नोति चानुरूपां वरां...[16]।
विद्याकामो महेशानि भर्गां पुण्यां समाश्रयेत् ।।

अपने अनुरूप सुशील कन्या को...पाता है । हे महेशानि ! विद्या की कामना करने वाला पुण्य भर्गशिखा का भजन करे ।

ब्रह्मविद्यामपीशानि प्राप्नोत्येव न संशयः ।
मोक्षकामो महेशानि पुण्यां भर्गां समाश्रयेत् ।।

हे ईशानि ! ब्रह्मविद्या को भी पाता है, इसमें संशय नहीं है । हे महेशानि ! मोक्ष की कामना करने वाला पुण्य भर्गशिखा का भजन करे ।

---

१ पुण्यकाम, २ मनजो, ३ वाज., ४ अनकामो, ५ पुण्यं, ६ धनदस्तं- ७ पुत्रकाम, ८ पुण्यं, ९ पुत्राशूरानवा., १० शोभनात्, ११ पुण्यं, १२ स्त्रियां, १३ स्वरूपांमाप्नोति, १४ वृत्तानुसारिणी, १५ स्वशीला, १६ वरांगनाम् ।

मोक्षमेव[1] समाप्नोति सत्यमेव न संशयः ।

मोक्ष को ही पाता है, यह सच है, इसमें संशय नहीं है ।

दर्शनात्स्पर्शनादस्याः पूजनात्सुरसुन्दरि ।
बलिदानात्तथा होमाज्जपाच्च सुरसुन्दरि[2] ।
इष्टमर्थं समाप्नोति मनुजो[3] भवने प्रिये ।।

हे सुन्दरि ! इसके दर्शन से स्पर्श से, और पूजन से, हे सुरसुन्दरि ! बलिदान से, होम से तथा जप से, हे प्रिये ! मनुष्य भवन में इष्ट अर्थ को पाता है ।

बहुनात्र किमुक्तेन मनसा यद्यदिच्छति ।
मनुजस्तदवाप्नोति नात्र मेऽस्ति[4] विचारणा ।।

यहां बहुत कहने से क्या लाभ ? मनुष्य मन से जो-जो चाहता है, वह पाता है, इसमें कोई विचार वाली बात नहीं है ।

अधुना[5] शृणु देवेशि[6] भवानीं भगिनीं मम ।
[7]महामार्त्तण्डनाथस्य भैरवस्य महात्मनः ।
मुखाद्या[8] निर्गता ज्वाला भवानीति निगद्यते[9] ।।

हे देवेशि ! अब मेरी भगिनी भवानी के विषय में सुनिए । महामार्त्तण्ड-नाथ महात्मा भैरव के मुख से जो ज्वाला निकली, वह 'भवानी' कही जाती है ।

भर्गस्य वर्धयन्तो च नीरूपापायतः स्थिता ।
तस्मात्प्रोक्ता भवानी च [10]विद्वद्भिर्योगिनी यतः ।।

भर्ग (तेज) को बढ़ाती हुई वह आरती के रूप में स्थित है, इससे विद्वानों ने उसे योगिनी के रूप में भवानी कहा है ।

भवं... [11]पताऽऽनीता च रक्षणार्थं च शम्भुना ।
तस्मात्पुरातनी प्रोक्ता भवानी नाम योगिनी ।।

शम्भु रक्षा के लिए इसे लाये, इसी से भवानी नाम की यह योगिनी पुरातनी कही गई ।

---

१ मोक्ष्य., २ स्वरस्वन्दरि, ३ मनजो, ४ मेस्ति ५ अधना, ६ देवोशि, ७ मार्ताण्ड., ८ मुख्याद्या, ९ निगद्यता, १० विद्भि ११ पाण्डुलिपि में पाठाभाव,

भवान्या[1] पूरितो यस्मात्ते···[2]सा सुरसुन्दरि ।[3]
तस्माद्भवानीपूराख्यो ग्रामो जगति कीर्त्यते ।।

हे सुरसुन्दरि ! जिससे भवानी से युक्त वह ग्राम था, इसी से 'भवानीपुर' नामक गांव जगत् में कहा जाता है ।

स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्यायश्च सुरार्चिते ।[4]
कृतो भवानीपूराख्ये ग्रामे[5]ऽनन्तो भवेद् ध्रुवम् ।

हे सुरार्चिते ! भवानीपूर नामक गांव में किया गया स्नान, दान, जप, होम और स्वाध्याय निश्चित अनन्त होता है ।

[6]···भास्वती नाम प्रादुर्भूता महात्मनः ।
भास्वती नाम सा देवी पर्वताग्रस्थिता सदा ।।

भास्वती नामक यह देवी पर्वत के अग्रभाग पर स्थित है ।

यया वै भासितं सर्वं[7] जगत्स्थावर[8]जङ्गमम् ।
सा प्रोक्ता च पुराविद्भिर्भास्वती नाम वै कला ।।

स्थावर-जङ्गम सारा संसार प्रकाशित हुआ, इसीलिए पुरातत्त्ववेत्ताओं ने उसे 'भास्वती' नामक कला कहा ।

ज्ञानेन भासयेत्सर्वमर्चनाद्धनादपि ।
भास्वत्या समीपे तु [9]यत्किंचित्क्रियते नरैः ।।
स्नानं दानं तपो होमो जपः स्वाध्याय एव च ।
तदक्षयं[10] भवेद्देवि नात्र मेऽस्ति[11] विचारणा ।।

वह ज्ञान से, पूजन से धन से सभी को प्रकाशित करे । भास्वती के पास मनुष्यों से स्नान, दान, तप, होम, जप और स्वाध्याय, जो कुछ भी किया जाता है हे देवि ! वह अक्षय होता है, इसमें मुझे विचार नहीं करना है ।

कर्णयो[12]र्नासिकायाश्च या ज्वाला निस्सृता प्रिये ।
भीमा[13] साभवत्तस्याः[14] शक्तिर्भीमेति कथ्यते ।।

हे प्रिये ! कानों से और नासिका से जो ज्वाला निकली, वह 'भीमा' इस नाम से कही जाती है ।

तया चाधिष्ठितं स्थानं भीमं द्वीपमिति स्मृतम् ।

---

१ भवार्न्य, २ पाण्डुलिपि में पाठाभाव, ३ स्वेन्दरि, ४ सुराचिते, ५ ग्रामनतो, ६ अगीम्यो भास्व नाम, ७ जगस्थावर, ८ जगमं, ९ यत्किचिः, १० तदक्षय., ११ मस्ते, १२ कर्णयोर्नासिकायां च, १३ भीमं, १४ तदभवत्तस्य शक्ति ।

उस शक्ति से अधिष्ठित स्थान 'भीम द्वीप' कहा गया।

भीमद्वीपे च यत्किञ्चित्क्रियते वरवर्णिनि।
स्नानं ध्यानं[1] तथा योगः स्वाध्यायश्चार्चनं तथा।
तदनन्तं भवेद्देवि नात्र कार्या विचारणा[2] ॥

हे वरवर्णिनि ! भीमद्वीप में स्नान, ध्यान, योग, स्वाध्याय एवं अर्चना, जो भी कुछ किया जाता है। हे देवि ! वह अनन्त होता है, इसमें संशय नहीं करना चाहिए।

दैत्यानां दानवानां च भूतानां यक्षरक्षसाम्।
क्षेत्रे विघ्नकरा लोकाः प्रादुर्भूताः पुरा किल।

पूर्वकाल में दैत्यों, दानवों, भूतों, यक्षों एवं राक्षसों के क्षेत्र में विघ्नकर लोक पैदा हुए।

लोकोद्विग्नाः पुरा देवा मार्त्तण्डं[3] शरणं ययुः।
श्रीमत्स्यभवने पुण्ये गीर्भिरा...भिरैरयन्[4] ॥

पूर्वकाल में व्याकुल हुए लोक और देवता मार्त्तण्ड की शरण में गए और पुण्य श्रीमत्स्यभवन में वाणियों से स्तुति करने लगे।

श्रीदेवा ऊचुः-- श्रीदेव बोले—

नमो मार्त्तण्डेनाथाय[5] स्थाणवे परमात्मने।
भैरवाय स्वभीमाय त्रिधाम्नेश नमो नमः॥

मार्त्तण्डनाथ, स्थाणु, परमात्मा, भैरव, स्वभीम तुझे नमस्कार है। हे त्रिधाम्नेश ! तुझे नमस्कार है।

मृतोद्धरणदक्षाय गर्भोद्धरणहेतवे।
तेजसां केतवे तुभ्यं हेतवे जगतामपि॥

मरे हुओं का उद्धार करने में चतुर, गर्भ का उद्धार करने में कारण, तेजों के केतु और जगतों के भी हेतु, तुझे नमस्कार है।

धीप्रणोदाय भर्गरूपाय ते नमः।
ॐकारव्याहृतिस्थाय महावीराय ते नमः॥

बुद्धि को प्रेरित करने वाले, भर्गरूप, तुझे नमस्कार है। ॐकारव्याहृति-रूप, महावीर, तुझे नमस्कार है।

वीरेशाय नमस्तुभ्यं क्षेत्रेशाय नमो नमः।
वेदार्थाय च वेदाय वेदगर्भाय शम्भवे॥

---

१ ध्यानं, २ विचारणां, ३ मार्त्तण्डं ४ रात्र्याभि. ५ मार्तण्डनाथाय।

वीरेश तुझे नमस्कार है। क्षेत्रेश, वेदार्थ, वेद, वेदगर्भ, और शम्भु ! तुझे नमस्कार है।

विश्वामित्राय सूर्याय सूराय परमात्मने।
महा[1]भैरवरूपाय भैरवानन्ददायिने[2] ॥

विश्वामित्र, सूर्य, सूर, परमात्मा, महाभैरवरूप और भैरवानन्ददायी,

द्विविधध्वान्तध्वंसाय महामोहविनाशिने।
मायान्धकारनाशाय[3] चक्षुस्तिमिरभञ्जिने।

द्विविधध्वान्तध्वंसक, महामोह का नाश करने वाले, माया रूपी अन्धकार का नाश करने वाले और नेत्रों के अन्धकार को नष्ट करने वाले,

मन्त्राय मन्त्ररूपाय मन्त्राक्षरविचारिणे।
मन्त्रवाच्याय देवाय महामन्त्रार्थदायिने।

मन्त्र, मन्त्ररूप, मन्त्राक्षरविचारी, मन्त्रवाच्य, देव और महामंत्रार्थदायी,

यंत्राय[4] यन्त्ररूपाय यन्त्रस्थाय यमाय ते।
[5]यंत्रे नियन्त्रे नियमैर्यमिनां फलदाय च ॥

यंत्र, यन्त्ररूप, यन्त्रस्थ, यम, नियमों से यन्त्र में नियन्त्रित होने पर यमियों को फल देने वाले,

अज्ञानतिमिरध्वंसकारिणे क्लेशहारिणे।
महापातकहर्त्रे[6] च महाभयविनाशिने ॥

अज्ञानरूपी अन्धकार को नष्ट करने वाले, क्लेशों को दूर करने वाले, महापापों का हरण करने वाले और महाभय को नष्ट करने वाले,

भयदाय सुशीलाय[7] भयानकरवाय ते।
बीभ[8]त्साय च रौद्राय भीताभयप्रदायिने[9]।
तेजस्वि तेजरूपाय[10] चण्डायोग्राय ते नमः ॥

भय देने वाले, सुशील, भयानक शब्द करने वाले, वीभत्स, रौद्र, डरे हुओं को अभय प्रदान करने वाले, तेजस्वी, तेजरूप, चण्ड और उग्र तुझे नमस्कार है।

---

१ माहाभैरव. २ भैरवानंददायिनी, ३ मायांधकर. ४ यत्राय ५ यत्रे ६ हत्रे ७ स्वशीलाय ८ भीभत्साय ९ प्रदायिनी १० तेजरूपा।

वीजाय वीजरूपाय[1] वीजभर्गाय ते नमः।
क्रोधभर्गाय देवाय लोभभर्गाय ते नमः॥

वीज, वीजरूप, वीजभर्ग, तुझे नमस्कार है। क्रोधभर्ग, देव और लोभभर्ग तुझे नमस्कार है।

महोभर्गाय वै तुभ्यं ज्ञानभर्गाय ते नमः।
चोरभर्गाय ते तुभ्यं भीतिभर्गाय ते नमः॥

महोभर्ग, तुझे और ज्ञानभर्ग तुझे नमस्कार है। चोरभर्ग तुझे और भीतिभर्ग, तुझे नमस्कार है।

खगोल्काय विशोल्काय ज्ञानभर्गाय ते नमः।
तत्त्वभर्गाय देवाय मनोभर्गाय वै नमः॥

खगोल्क, विशोल्क और ज्ञानभर्ग, तुझे नमस्कार है। तत्त्वभर्ग, देव और मनोभर्ग, तुझे नमस्कार है।

दारिद्र्यदुःखभर्गाय कामभर्गाय ते नमः।
हिंसाभर्गाय तामिस्रभर्गाय जगदात्मने॥

दरिद्रता और दुःखभर्ग, कामभर्ग, तुझे नमस्कार है। हिंसाभर्ग और तामिस्रभर्ग तथा जगदात्मा, तुझे नमस्कार है।

अतिदुर्वासनाभर्गाय[2] नमस्ते भैरवात्मने।
ध्यायन्ते यं भर्ग इति भर्गभर्गाय ते नमः॥

अतिदुर्वासनाभर्ग और भैरवात्मा तुझे नमस्कार है। जिसका 'भर्ग' रूप में ध्यान लगाया जाता है, उस भर्ग-भर्ग तुझे नमस्कार है।

रोगभर्गाय देवाय पापभर्गाय ते नमः।
महापातकभर्गाय ह्युपपातकभर्गिणे॥

रोगभर्ग, देव, पापभर्ग, तुझे नमस्कार है, महापातकभर्ग और उपपातक-भर्ग, तुझे नमस्कार है।

[3]महानिरयभर्गाय नृतभर्गाय ते नमः।
क्लेशभर्गाय देवाय भौतिकघ्नाय ते नमः॥

महानिरयभर्ग और नृतभर्ग, तुझे नमस्कार है। क्लेशभर्ग, देव और भौतिकघ्न तुझे नमस्कार है।

---

१ भीजभर्गाय २ दुर्वासनाभर्ग ३ पहा।

मृत्युभर्गाय देवाय दुर्गभर्गाय ते नमः ।
ध्यानाद्ध्यायन्ति[1] यद्भर्गं[2] यमिनः[3] संयतेन्द्रियाः[4] ।
नाथाय भर्गनाशाय भर्गाय सततं[5] नमः ।।

मृत्युभर्ग, देव और दुर्गभर्ग, तुझे नमस्कार है। संयतेन्द्रिय और यमी जिस भर्ग का ध्यान से ध्यान लगाते हैं, उस नाथ, भर्गनाश और भर्ग को निरन्तर नमस्कार है।

वीरवीरेश[6] देवेश नमस्ते[7]ऽस्तु त्रिधामक ।
[8]महामार्त्तण्ड वरद सर्वाभयवरप्रद ।।
नमो वीराधिवीरेश सूर्यचन्द्रातिधामक ।
अग्निधामातिधामेति[9] महा[10]मार्त्तण्ड ते नमः ।।

वीरवीरेश, देवेश, त्रिधामक, महामार्त्तण्ड, वरद, सर्वाभयवरप्रद, तुझे नमस्कार है। सूर्यचन्द्रातिधामक, अग्निधामक, अतिधाम, महामार्त्तण्ड, तुझे नमस्कार है।

वीरातिवीर वीरेश[11] घोरघोरार्त्तिघोरक ।
[12]महामार्त्तण्ड देवेश भूयो भूयो नमो नमः ।।

हे वीरातिवीर, वीरेश, घोरघोरार्तिघोरक, महामार्त्तण्ड, देवेश, तुम्हें बार-बार नमस्कार है।

श्री भैरव उवाच—श्री भैरव बोले—

इत्थं स्तुत्वा महादेवि वीरं[13] मार्त्तण्डमादरात् ।
देवानां दर्शने तस्थौ[14] मार्त्तण्डो जगदीश्वरः ।।

हे महादेवि ! वीर मार्त्तण्ड की आदरपूर्वक इस प्रकार स्तुति कर मार्त्तण्ड जगदीश्वर देवताओं के दर्शन में खड़ा हो गया।

तेजोरूपस्त्रि[15]नेत्रस्तु कराभ्यां कमले वहन् ।
वरं चाभयम[16]··· भ्यां धारयन्नग्रतः स्थितः ।।
दृष्ट्वा[17] देवास्तु मार्त्तण्डं[18] पुरःस्थममरेश्वरि ।
दण्डवत्पतिता भूमौ [19]प्रणेमुश्च मुहुर्मुहुः[20] ।।

---

१ ध्यानाद्यावंति २ यद्भर्गं ३ यंमिनः ४ संयतेन्द्रियः ५ संततं ६ वेरवेरेश ७ नमस्तेस्तु ८ मार्त्ताण्ड ९ धाम्ने १० मार्त्ताण्ड ११ वेरेश १२ माहा-मार्त्ताण्ड १३ मार्त्ताण्ड. १४ मार्त्ताण्डो १५ तेनोरूपत्रिनेत्रस्तु १६ मत्याभ्यां १७ दृष्टा १८ मार्त्ताण्डं १९ प्राणेमुश्च २० मुहुमुहुः ।

हे अमरेश्वरि ! देवताओं ने आगे खड़े मार्त्तण्ड को देखकर भूमि पर पड़े दण्डवत् बारम्बार प्रणाम किया ।

उत्थाप्य[१] [२]जगदीशानि देवान्मार्त्तण्ड[३] ईश्वरः ।
उवाच सान्त्वयन्वाचा देवा वृणुत[४] भो वरम् ॥

हे जगदीशानि ! मार्त्तण्ड ईश्वर ने देवताओं को उठाकर वाणी से सान्त्वना देते हुए कहा कि हे देवताओ ! वर मांगो ।

श्रुत्वा देवा वचः सौम्यं देवं[५] प्रणतवत्सलम् ।
प्रत्यूचु[६] र्जगदीशानि विनताक्षरया गिरा ॥

हे जगदीशानि ! देवताओं ने सौम्य वचन सुनकर प्रणतवत्सल मार्त्तण्ड देव से नम्रतायुक्त वाणी से कहा ।

श्रीदेवा ऊचुः—श्रीदेवता बोले—

भगवन्देवदेवेश लोकानुग्रहकारक ।
लोकोद्विग्ना वयं देव त्वत्पादशरणं श्रिताः[७] ॥

हे भगवन्, देवेश, लोकानुग्रहकारक; देव ! हम लोकोद्विग्न होकर आपके चरणों की शरण में आए हैं ।

श्रीमत्स्यभवने[८]ऽमुष्मिन्क्षेत्रे देव विनि…[९] ।
दैत्यलोक…[१०] विघ्नै…[११] विधैरपि ।
तदुद्विग्ना भवत्पादकमलं शरणं श्रिताः[१२] ॥

श्री भैरव उवाच—श्री भैरव बोले—

देवानां वचनं[१३] चेत्थं श्रुत्वा मार्त्तण्ड ईश्वरः ।
क्रोधमाहारयाञ्चक्रे दैत्यान्प्रति महेश्वरि ॥

हे महेश्वरि ! मार्त्तण्ड ईश्वर ने देवताओं के इस प्रकार वचन सुनकर दैत्यों के प्रति क्रोध किया ।

कोपा[१४]ज्जज्वाल मार्त्तण्डो भर्गा प्रादुरभूत्ततः ।
नेत्रास्यश्रोत्रनासाभ्यस्तच्चैव[१५] समगच्छत्[१६] ॥

मार्त्तण्ड क्रोध से जलने लगे, इसके बाद भर्गा पैदा हुई। नेत्र, मुख, कान नासिका से वही निकली ।

---

१ उत्थापि २ जगदेशानि ३ न्मार्त्तण्ड. ४ वृणुतोभवरं ५ देवः ६ प्रत्यूचुजगदेशानि ७ श्रितः ८ भवनेमुष्मि, ९ पाठाभाव १० विनिर्गति ११ पाठाभाव १२ श्रितः १३ वचनोवेत्थ १४ कोपाजात्वलमार्त्तण्डो १५ स्तच्चवा १६ समगच्छत ।

संयोगाद्योगिनी जाता कला मम महेश्वरि ।
रक्तमाल्याम्बरधरा चन्द्रभूषितमस्तका ॥

हे महेश्वरि ! संयोग से लाल माला और वस्त्र धारण किए हुए तथा चान्द से अलङ्कृत मस्तक वाली मेरी कला योगिनी के रूप में पैदा हुई ।

त्रिनेत्रा[1] शङ्खचक्राभ्यां सर्पभूषितपाणिका ।
[2]खङ्ग पद्मं तथान्याभ्यां धारयन्ती पुरः स्थिता ॥

तीन नेत्रों वाली, शङ्ख और चक्र से भूषित हाथ वाली, खड्ग एवं पद्म को धारण करती हुई तथा अन्य दोनों हाथों से युक्त

योगदा योगिनी नाम तेजोयोगाच्च योगिनी ।

वह योगदा, तेज के योग से योगिनी । बनी वह योगिनी नाम से आगे खड़ी हो गई ।

दृष्ट्वा पुरःस्थितां तत्र योगिनीं नाम केवलाम् ।
[3]मार्त्तण्डः पाणिना गृह्य पादेनाभ्यहन्[4] स्थलीम् ॥
अत्रैव वस देवेशि क्षेत्रे रक्षार्थमी[5]श्वरि ।
दैत्यलोकविनाशाय विघ्नसङ्घा[6]न्निवारय ॥

वहां आगे खड़ी केवलस्वरूप योगिनी को देखकर मार्त्तण्ड ने हाथ से पकड़कर और पांओं से स्थली को ताड़ित करते हुए कहा कि हे देवेशि ! ईश्वरि ! इसी क्षेत्र में रहो और दैत्यों का नाश करने के लिए विघ्नसमूह को दूर करो ।

इत्युक्त्वा[7] योगिनीं देवः पुनः पर्वतमाययौ ।
[8]मार्त्तण्डपादक्रमणाकुलं समभिजायत ॥

योगिनी को यह कहकर देव फिर पर्वत पर चले गए और वह स्थान मार्त्तण्ड के पादक्रमण से आकुल हो गया ।

तदा प्रभृति देवेशि पादस्थमभवत्प्रिये ।
योगिनीश्वर्यपि पादस्थातिष्ठत्तत्र महेश्वरि ॥

हे प्रिये ! हे देवेशि ! तब से लेकर वह स्थान पादस्थ हुआ । हे महेश्वरि ! योगिनीश्वरी भी वहां पादस्था होकर ठहरी ।

दैत्यलोकान्विघ्नभूतान्[9] ग्रसन्तो वोरशासनात् ।
लोकानां[10]··· प्रभूता च समयोगीश्वरी कला ॥

---

१ नित्रेना २ खङ्गां ३ मार्त्ताण्डः ४ भ्यहन ५ मेश्वरि ६ संघानिवा. ७ इत्यक्तो ८ मार्त्तण्ड ९ भूतां १० नांशो ।

तेनैव हेतुना तत्र लोकारिरभवद्यतः ।
ततः प्रोक्तं सूर्यपादस्थलं लोकारिसंज्ञितम् ॥

उसी कारण से वहां लोकारि हुआ । इसके बाद वह सूर्यपादस्थल 'लोकारि' नाम से कहा गया ।

लोकारौ[1] च कृतस्नानं चानन्त[2]परपावनम् ।
अक्षयं च भवेद्देवि यावदाभूतसंप्लवम् ॥

लोकारि में किया गया स्नान अनन्त परम पवित्र है । हे देवि ! जब तक प्रलय नहीं होता, तब तक यह अक्षय है ।

श्राद्धं पुण्यं पूजनञ्च जपः स्वाध्याय एव च ।
अनन्तफलदं प्रोक्तं लोकारौ[3] विधिना कृतम् ॥

लोकारि में विधिपूर्वक किया गया श्राद्ध, पुण्य, पूजन, जप और स्वाध्याय अनन्त फल देने वाला कहा गया है ।

प्रयागे शतकल्पस्तु तर्पणात्तृप्तिरुत्तमा ।
जाह्नव्यां च महेशानि गङ्गायां तर्पणादपि ॥

प्रयाग में तर्पण करने से शतकल्प पर्यन्त और हे महेशानि ! जाह्नवी में और गङ्गा में तर्पण से भी जो उत्तम तृप्ति होती है ।

तत्तु [4]मलिम्लुचे मासे लोकारौ तर्पणाद्भवेत् ।

लोकारि में मलमास के महीने में तर्पण करने से वह होती है ।

महापातकयुक्तो वा युक्तो वा ह्युपपातकैः ।
स्नाना[5]ल्लोकारिके तीर्थे सद्यो मुच्येत सुन्दरि[6] ॥

महापातक से युक्त वा उपपातकों से युक्त पुरुष हे सुन्दरि ! लोकारिक तीर्थ में स्नान करने से झट मुक्त हो जाता है ।

यत्किञ्चिन्मानवो देवि लोकारौ श्राद्धमाचरेत् ।
[7]तृप्ताः पितृगणाः प्रीता भविष्यन्ति न संशयः ॥

हे देवि ! लोकारि में मनुष्य जो कुछ श्राद्ध करे, उसके पितर तृप्त हो कर प्रसन्न होंगे, इसमें संशय नहीं है ।

शतकल्पं च नृत्यन्ति वर्धयन्ति स्वकान्धनैः ।

शतकल्प पर्यन्त वे पितर नाचते हैं और अपने को धनों से बढ़ाते हैं ।

---

१ लोकारो २ चानं ३ लोकरो ४ मलिम्लुचे मासि ५ स्नानालोका. ६ स्वंदरि ७ तृप्तः ।

घृतकुल्या मधोः कुल्या:[1] क्षीरकुल्यास्तथव च ।
दध्नस्तु जग[2]दीशानि ह्यु पतिष्ठन्ति तान्प्रिये ।।

घी की नहरें, मधु (शहद) की नहरें दूध की नहरें और दही की नहरें हे जगदीशानि ! प्रिये ! उन्हें प्राप्त होती हैं ।

मनोरथै रात्रिन्दि[3] नमतिवाहन्ति वै गणाः[4] ।
पितॄणां प्रसमीक्षार्थं प्रसन्ना न विचारणा ।।

पितरों को देखने के लिए प्रसन्न हुए गण रात दिन मनोरथों से······ इसमें कोई विचार वाली बात नहीं है ।

अस्माकं च कुले कश्चिद्दायादः स्यात्कदापि च ।
पुण्ये [5]मार्त्तण्डविषये यः कश्चित्तर्पयेच्छुभैः ।।
जलैर्लोकारिक्षेत्रे च तिलदर्भसमन्वितैः ।
मधुक्षीरायुतैश्चैव पुण्ये लोकारिक्षेत्रके ।।

हमारे कुल में कभी कोई दायाद हो, जो पुण्य मार्त्तंड स्थान में पुण्य लोकारि क्षेत्र के अन्दर मधु-दूध से युक्त और तिलदर्भ से युक्त शुभ जलों से तर्पण करे ।

श्राद्धं विधिव[6] त्कुर्यात्तृप्ताः स्युः शतं समाः[7] ।
नृत्यन्तः प्रवदन्तीत्थं [8]स्वदायादान्प्रतीश्वरि ।।

तथा विधिवत् श्राद्ध करे, उसके पितर सैकड़ों वर्ष तृप्त होते हैं और नाचते हुए "हे ईश्वरि ! उन······"इस प्रकार कहते हैं ।

मा गच्छध्वं प्रयागं वै गयां च जाह्नवीं तथा ।
कुरुक्षेत्रं नैमिषं[9] च पुण्यां वाराणसीमपि ।
पृथूदकं प्रभासं च मा प्रयासेन खिद्यत ।।

प्रयाग, गया, जाह्नवी, कुरुक्षेत्र, नैमिष एवं पुण्य वाराणसी में भी मत जाओ । पृथूदक और प्रभास में भी जाने के प्रयास से मत कष्ट को प्राप्त हो ।

पुण्ये मलिम्लुचे मासे[10] मार्त्तण्ड[11]क्षेत्र उत्तमे ।
श्रीमत्स्यभवनाख्ये च ग्रामराजे ह्यतन्द्रिताः[12] ।।
लोकारौ च विशेषेण यतध्वं श्राद्धकर्मणि ।
सक्तु सक्तौ यत्र भवेत्पुण्यं गोकोटिसम्भवम् ।।

---

१ कुल्यः २ जगदेशानि ३ रात्रिदिन ४ गणा ५ मार्त्तण्ड० ६ वदद्यातृप्तः स्याम ७ समः ८ पाण्डुलिपि में पाठाभाव ९ नैमिषं १० मासि ११ मार्तंड० १२ ह्यतन्द्रितः ।

हे अतन्द्रितो ! पुण्य मलमास के महीने उत्तम मार्त्तण्ड क्षेत्र के श्रीमत्स्य-भवन नामक ग्रामराज में विशेषकर लोकारि में श्राद्ध कर्म करो, जहां सत्तू-सत्तू में करोड़ों गायों से होने वाला पुण्य होता है।

शतकल्पं च[1]··· स्तृप्तिश्चात्र भवेत्पुनः।
गयापिण्डैश्च सा तृप्तिर्मलिनैः कार्यतो भवेत् ॥

शतकल्प पर्यन्त······ यहां फिर जो तृप्ति होती है, वह तृप्ति मलमास के दिनों में दिए गए पिण्डों से कार्यरूप में होती है।

गवां कोटिसहस्रस्य सम्यग्दत्तस्य यत्फलम्।
विधिना वेदविदुषे कुरुक्षेत्रे पृथूदके ॥
चन्द्रसूर्योपरागे च मलिने [2] मासि चोत्तमे।
तत्फलं[3] समवाप्नोति लोकारौ[4] पिण्डदानतः[5] ॥

चन्द्र या सूर्य के ग्रहण के समय उत्तम मलमास मास में कुरुक्षेत्र, पृथूदक के भीतर वेदों के विद्वान् को विधिपूर्वक दिए गए करोड़ों हजार गायों से जो फल प्राप्त होता है, वह फल लोकारि में पिण्डदान से प्राप्त होता है।

इतिपितृगणा देवि प्रत्यवोचन्स्व[6] पुत्रकान्।
अंशा न सन्ति देवेशि पितृकामा [7]मुहुर्मुहुः ॥

हे देवि ! इस प्रकार पितृगणों ने······चन्द्र पुत्रों से कहा कि हे देवेशि ! बारम्बार पितृकामना अंश नहीं हैं।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन लोकारौ श्राद्धमाचरेत्।
सूर्यपादेऽत्र[8] गङ्गायां मुक्तिपिण्डान्[9] जले क्षिपेत् ॥

इसलिए लोकारि में सभी यत्न से श्राद्ध करे। जहां सूर्यपाद में गङ्गा के जल में मुक्तिपिण्ड फैंके।

मधुतृप्ताः दुग्धतृप्ता घृततृप्ता महेश्वरि।
दधि[10]तृप्ताश्च पितरो भविष्यन्ति शतं समाः[11] ॥

हे महेश्वरि ! मधु से तृप्त, दुग्ध से तृप्त, घी से तृप्त और दही से तृप्त पितर सौ वर्ष तक तृप्त होंगे।

प्रीता भवन्ति देवेशि दायादान्वर्धयन्ति च।
आयुर्धैर्धान्य[12] सन्तानै[13]र्वृद्धया ऋद्धया सुरेश्वरि ॥

---

१ दायास्तृप्ति० २ मासि ३ तत्फल ४ लोकारो ५ पाण्डुलिपि में पाठाभाव ६ प्रत्यवोचन्त्र० ७ मुहुः मुंहुः ८ पादेत्र मुक्तिपिण्डा ९ पाण्डुलिपि पाठाभाव १० धपितृ० ११ समः १२ धान० १३ सन्तानैबुद्धया।

हे देवेशि ! सुरेश्वरि ! इस तरह से पितर प्रसन्न होते हैं और दायादों को आयु से, धान्य से, सन्तान से, बुद्धि से, तथा ऋद्धि से बढ़ाते हैं।

स्मृत्या[1] ध्यानेन[2] तुष्टया[3] च पुष्टया कान्त्या च प्रज्ञया।
आरोग्यैर्विभवैश्चापि स्वगत्या च तथेश्वरि[4] ॥

एवं स्मृति से, चिन्तन से, तुष्टि से, पुष्टि से, कान्ति से, प्रज्ञा से, आरोग्य से और ऐश्वर्य से तथा स्वगति से हे ईश्वरि ! बढ़ाते हैं।

ततो यतेत क्षेत्रे[5]ऽस्मिच्छ्राद्धकर्मणि नित्यशः।
गोदानं[6] वाजिदानं वा तिलदानमथापि वा ॥
विद्यां रथं च दासीं च महिषीं स्वर्णमेव च।
रौप्यं वाप्यथ निष्कं वा दातव्यमत्र यत्नतः ॥

इसके बाद इस क्षेत्र के भीतर श्राद्ध कर्म में हमेशा गोदान, अश्वदान वा तिलदान करने का यत्न करे और जहां यत्नपूर्वक विद्या, रथ, दासी, महिषी, स्वर्ण, चान्दी वा निष्क देना चाहिए।

अक्षयं फलमाप्नोति यावदाभूतसंप्लवम्।[7]
चान्द्रायणादिभिः पुण्यैश्चातुर्मासैरपीश्वरि ॥
एकान्तरैश्च [8]षड्रात्रैस्तथा मासोपवासकैः।
यत्फलं च भवेन्नृणां[9] तदत्रैकाहतो भवेत् ॥

प्रलयकाल पर्यन्त अक्षय फल पाता है। हे ईश्वरि ! चान्द्रायण आदि पुण्य चातुर्मास, एकान्तर, षड्रात्र तथा मासोपवासों से मनुष्यों को जो फल प्राप्त होता है, वह यहां एक दिन से प्राप्त हो जाता है।

स्नानाद्दा[10]नाज्जपाद्धोमाच्छ्राद्धाद्दे[11]वार्चनादपि।
फलमाप्नोति मनुजो वेदपारायणं शिवे ॥

हे शिवे ! स्नान से, दान से, जप से, होम से, श्राद्ध से, देवार्चन से भी मनुष्य वेदपारायण के समान फल को पाता है।

बहुनात्र किमुक्तेन नरः पातकवान्कलौ।[12]
स्नात्वा लोकारिके क्षेत्रे मुच्यते नात्र संशयः ॥

यहां बहुत कहने से क्या लाभ ? पापी मनुष्य कलियुग में निश्चित लोकारिक क्षेत्र में स्नान कर मुक्त हो जाता है, इस में संशय नहीं है।

---

१ स्मृत्य २ ध्यात्या ३ तुष्टा ४ तथैश्वरी ५ क्षेत्रेस्मि श्राद्ध० ६ गोदाने ७ सस्प्लवं ८ षद्रात्रै० ९ भवेन्तूणां १० स्नानदानाजपा० ११ च्छ्राद्धादेवां० १२ न्किलौ।

इति ते सर्वमाख्यातं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ।
इत्येष पटलो गुह्यो महापातकमुक्तिदः ॥

यह मैंने तुझे सब कुछ कह दिया है, फिर और क्या सुनना चाहती हो। यह गुह्य पटल महापापों से मुक्ति देने वाला है।

श्रुतश्च पठितो ध्यातः पुण्यदः[1] पापनाशनः ।

सुनने से, पढ़ने से, चिन्तन से, पुण्य देने वाला है और पापों को नष्ट करने वाला है।

इति श्री [2]मात्तण्डमाहात्म्ये लोकारिवर्णनं नाम पटलः ।

---

१ पुण्यदो, २ मार्त्तण्ड ।

श्रीदेवी उवाच—श्रीदेवी बोलीं—

[1]मलिम्लुचविधिं ब्रूहि फलं चापि सुरेश्वर।
अयं त्रयोदशो[2] मासः कि[3]मर्थं मलिनः शिव॥

हे सुरेश्वर! मलमास के विधान और फल को कहिए। हे शिव! यह १३ वां महीना किसलिए मलिन है?

मलिनः[4] पावने देशः कुतः प्रोक्तस्त्वयानघ।
[5]सूर्यास्तु द्वादशा वैते प्रोक्ता मासाधिपास्त्वथा॥

हे अनघ! पावन इस क्षेत्र में यह मलिन देश तूने कहाँ से कह दिया, जबकि तुमने ही सूर्य को १२ मासों का स्वामी कहा है।

त्रयोदशेऽत्र[6] मासे[7]ऽस्मिन्न मार्त्तण्डः[8] प्रभुः शिवः।
सूक्ष्मेऽ[9]स्मिञ्छास्त्रजालेऽ[10]स्मिन्न श्रुतः कुत्रचिन्मया॥

हे शिव! इस १३ वें महीने में मार्त्तण्ड मासाधिप नहीं है। इस सूक्ष्म शास्त्र जाल में मैंने कहीं भी इसे मासाधिप नहीं सुना।

अज्ञानान्धाः परिभ्रान्ता अस्मिन्संशयजालके।
लोकानुग्रहकारक॥

इस संशय जाल में अज्ञान से अन्धे हुए हम परिभ्रमित हो गए हैं। हे महादेव! लोकों पर अनुग्रह करने वाले! सच-सच हमें बताइए।

श्री भैरव उवाच--श्री भैरव बोले—

शृणु वक्ष्ये महादेवि विधिं मलिनसम्भवम्।
[11]यच्छ्रुत्वा न पुनर्मोहमेवं[12] यास्यसि सुन्दरि[13]॥

हे महादेवि! सुनिए, मैं तुझे मलिन सम्भव विधि कहता हूँ जिसे सुन कर हे सुन्दरि! तू इस प्रकार मोह को प्राप्त नहीं होगी।

[14]...नवभिर्देवि भाक्तं हृत्वा पतेश्च यः।
मासः स मलिनः प्रोक्तः[15] सर्वकर्मसु गर्हितः॥

---

१ मलिम्लुच० २ त्रियोदशो ३ किंमर्थं ४ मलिने ५ सूर्यस्तु द्वादशैवैते ६ त्नयोदशेत्र ७ मासेस्मि ८ मार्त्तण्डः ९ सूल्मेस्मि शास्त्रजाले १० जालेस्मिन ११ यः श्रुत्वा १२ म्येवं १३ स्वन्दरि १४ रसंबि १५ प्रोक्ता।

हे देवि !...
सभी कामों में निन्दित यह मास 'मलिन' नाम से कहा जाता है।

दर्शश्च पौर्णमासर्षिर्भानुना यत्र लंघितः ।
स भानुमासः कथितो मन्त्रतन्त्रविशारदैः ॥

अमावस और पूर्णमासी जहां सूर्य से लांघी जाती है, वह मन्त्र तन्त्र विशारदों ने भानुमास कहा है।

यावद्वा त्रिशतं मासान्मलः स्याद्दण्डसम्भवः ।
मलिनत्वं च मासस्य प्रोक्तमेतत्पुरातनैः[1] ॥

पुरातन पुरुषों ने उसे मास का मलिनत्व कहा है।

[2]तद्दण्डमलिनं मासं दृष्ट्वा भीतो भवेद्यतः ।
दर्शपूर्णे[3] समाः स्तुत्य संक्रमे चान्यमेव हि ॥
स भानुः लंघितः प्रोक्तो मासे मंगलवर्जितः ।
ब्रह्मणो वरद[4]पाश्च भानुमा..-[5]मीश्वरि ॥
तेजसा[6]भिर्भवेदेष मार्त्तण्ड[7]रविरुत्तमः ।
ततस्तन्मासके तस्य मासे शस्यक्रियाश्च याः ॥

तेज से यह उत्तम मार्त्तण्डरवि पैदा हुआ। इसके बाद

नता:[8] प्रणामं कुर्वन्ति तेजोभिर्भवनाद्रवेः ।
यज्ञोद्वाहोपनयनमंगलोद्यापनादिकाः ।
क्रिया विवर्जनीयाश्च मलमासे न संशयः ॥

रवि के भवन से तेजों द्वारा विनम्र प्रणाम करते हैं। यज्ञ, विवाह, उपनयन, और भी मांगलिक उद्यापन आदि क्रियाएँ मलमास में छोड़ देनी चाहिएँ, इसमें संशय नहीं है।

हिमवत्कुक्षिसम्भूतो[9] मलिम्लुचो[10] न संशयः ।
मासाधिपोऽ[11]पि मलिनो मा[12]र्त्तण्डाभिभवात्प्रिये ॥

मलमास हिम की तरह कुक्षि से पैदा हुआ है, इसमें संशय नहीं है। हे प्रिये ! मार्त्तण्ड के अभिभव से मासाधिप भी मलिन होता है।

यतो भवेत्ततस्तस्मिन् मङ्गल्ये समाचरेत् ।
व्रतं चापि विशेषेण पशुपुत्रधनक्षयात् ॥

---

१ त्पुरातनै २ तदंड० ३ दर्शपूर्णे, ४ पीश्च, ५ मासीनुमी० ६ तेजसाभिर्भवे० ७ मार्त्तण्ड ८ नतः ९ सम्भूताः १० मलिम्लुच० ११ मासाधिपोपि १५ मार्त्तण्डा०।

तीर्थयात्रामपीशानि विना [1]मार्त्तण्डक्षेत्रकम् ।
वर्जनीयश्च द्विविधो[2] मासो मंगलके प्रिये ।।
षष्टाच ... सर्वमंगलवर्जितः ।
द्विविधानां जनानां च ह्यतः प्रोक्तः पुरातनैः ।।
दुर्लभस्य[3]...राज्ञो देशोऽन्य[4] आपतेद्यदा ।
आभिभूमैकतस्तिष्ठेनृ[5]पस्तत्र[6]...एव सः ।।
न षष्टि दिवसो मासः कदाचित्सम्भविष्यति[7] ।
सर्वमंगलके[8] ...[9]व्रतेऽपि [10]सुरसुन्दरि ।।

हे सुरसुन्दरि ! सर्वमंगलक...... व्रत में भी कभी ६० दिन का महीना नहीं होगा ।

दिवसाः षष्टिरित्युक्ता[11] वर्जनार्थं[12] पुरातनः ।
ततो वै मलिनः प्रोक्तः सर्वकर्मसु गर्हितः[13]।।

पुरातन पुरुषों ने ६० दिन छोड़ देने के लिए कहा है । इसीलिए इसे 'मलिन' कहा गया है और वह सभी कार्य्यों में निन्दित है ।

ततो मार्त्तण्ड[14]विषये श्राद्धयागादिकर्मणाम् ।
मलिने[15]ऽपि तिथिश्राद्धं कृत्वा मार्त्तण्डके[16] प्रिये ।
पितरस्तृप्तिमायान्ति शतकल्पं न संशयः ।।

इसके बाद मार्त्तण्ड विषय में श्राद्ध, यज्ञ आदि कार्य्यों के हे प्रिये ! मलिन होने पर भी मार्त्तण्ड क्षेत्र में तिथि श्राद्ध करके पितर शत कल्प पर्यन्त तृप्ति को प्राप्त करते हैं, इसमें संशय नहीं है ।

पावनं चापि मलिने वर्जये[17]त्प्रिये तदा ।

हे प्रिये ! तब मलिन में पावन को भी छोड़ दे ।

सान्मुक्ता मलिनां देवि ततः कार्यं न संशयः ।
स्वकर्मवशतो यस्य मलिने मृतिरापतेत् ।।
अथ...[18]न्मृतौ मध्ये [19]मलिम्लुचसमागमः ।
श्राद्धं कृत्वा विधानेन पिण्डान्सप्तदशान्ददेत् ।।

---

१ मार्त्तण्डः २ द्विवसैर्मासा० ३ दुर्भलस्य पचा ४ देशोन्य... ५ स्तिष्टे नृप० ६ स्तत्रन्य० ७ त्सभविष्यति ८ वतष्ये ९ व्रतेपि १० सुरस्वन्दरि ११ स्त्यिक्तो, १२ वर्जनांर्थ, १३ गहितः १४ मार्त्तण्ड० १५ मलिनोपि १६ मार्त्तण्डके १७ वर्जयेत प्रिये १८ वार्चामृतौ १९ मलिम्लुच० ।

स्वकर्मवश जिसकी मलिन में मृत्यु हो जाए,...... विधिपूर्वक श्राद्ध कर १७ पिण्ड दे।

मलिने[1]ऽपि मृतो देवि तथा मध्यसमागमे।
अष्टादश समादद्याद्विधिनैव समाहितः॥

हे देवि! मलिन में भी तथा मध्यसमागम में यदि कोई मर गया हो तो......विधिपूर्वक १८ पिण्ड दे।

[2] ... षोडश प्रोक्ता वेदतन्त्रविशारदैः।
क्षेत्रं प्राप्य महेशानि वपनं तु समाचरेत्[3]॥

वेदतन्त्र विशारदों ने... १६ कहे हैं। हे महेशानि! क्षेत्र में जाकर वपन करे।

अकृत्वा वपनं[4] जायन्ते ब्रह्मराक्षसाः।
मा श्राद्धं[5] दिवसे कुर्यात्पितृहा चैव जायते॥

वपन किए विना...ब्रह्मराक्षस होते हैं। श्राद्ध दिन में मत करे, पितृहा होता है।

यावन्ति नखरोमाणि संकृतिश्राद्धमाचरेत्।
तावत्कल्पं प्रयान्त्यैव तत्पूर्वं नरकान्बहून्॥

जितने नखरोम हैं, संकृति श्राद्ध करे। कल्प पर्यन्त उससे पूर्व बहुत से नरकों को प्राप्त होते हैं।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पूर्वेद्यु[6]र्वपनं चरेत्।
श्राद्धं कृत्वा तु वपनं यश्चरेत्ज्ञानदुर्लभः[7]।
स याति दारुणां[8]ल्लोकान्पूर्वभिः पितृभिः सह॥

इसलिए सभी यत्नों से पहले दिन वपन करे। जो अज्ञानी श्राद्ध कर वपन करता है, वह अपने पूर्व पितरों के साथ दारुण लोकों को पाता है।

अकृत्वा वपनं श्राद्धं भद्रे[9] यस्तु समाचरेत्।
महेशानि[10] भवेत्प्रेत्य सह पूर्वपितामहैः॥

हे भद्रे! वपन विना किए जो श्राद्ध करे हे महेशानि! वह मर कर अपने पूर्व पितामहों के साथ रहे।

---

१ मालिनेपि २ अंत्यैव ३ समाचरे ४ वपनंतो ५ श्राद्ध ६ पूर्वेद्युबपनं ७ यश्चरेज्ञान० ८ दारुणां लोका० ९ श्री भद्रे १० महेशेम।

तस्मात्कुर्वन्ति पूर्वेद्यु[1]र्वपनं सुरसुन्दरि ।
रोम्णि रोम्णि [2]अश्वमेधं ज्योतिष्टोममवाप्नुयात् ।।

हे सुरसुन्दरि ! इसलिए पहले दिन वपन करे। रोम-रोम में अश्वमेध और ज्योतिष्टोम को पाए ।

चतुरा[3]शीतिलक्षांश्च निरयान्याति दारुणान् ।
प्रयाति क्रमशो देवि श्राद्धाहे वपनं चरन् ।।

हे देवि ! श्राद्ध के दिन वपन करता हुआ क्रमशः ८४ लाख दारुण निरयों को पाता है।

अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयस्य यत्फलम् ।
प्राप्नोति मनुजो [4] देवि पूर्वेद्यु[5] र्वपनान्नरः ।।

सहस्र अश्वमेध का, वाजपेय का जो फल है हे देवि ! मनुष्य वह फल पहले दिन वपन करने से पाता है।

गङ्गायां भास्करे तीर्थे पितृमातृगुरुक्षये ।
मधुसत्यां प्रयागे च वपनं सप्तमाचरेत् ।।

गङ्गा में, भास्कर तीर्थ में, पिता माता और गुरु के क्षय में, मधुसती में और प्रयाग में ७ वपन कराए ।

पुण्ये वै मलिने [6]मासे श्राद्धं यस्तु समाचरेत् ।
गयासहस्रगुणितं फलमाप्नोति पुष्कलम् ।।

पुण्यप्रद मलिन मास में जो श्राद्ध करे, वह सहस्र गया से गुणित पुष्कल फल को पाता है ।

यदा भवति देवेशि रविवारे च सप्तमी ।
शुक्ला श्रवण संयुक्ता करयुक्तादितावपि ।।
पुष्येण सहिता सौम्यनैर्ऋ ताभ्या[7]मथापि वा ।
सा प्रोक्ता[8] विजया नाम सप्तमी बहुपुण्यदा ।।

हे देवेशि ! जब रविवार के दिन सप्तमी, शुक्ला श्रवण से युक्त··· पुष्यनक्षत्र के साथ और···से भी युक्त होती है, वह सप्तमी बहुत पुण्य देने वाली विजया नाम से कही जाती है।

बहुपुण्यैरवाप्नोति दण्डं तस्यापि सुन्दरि ।
दण्डो[9]ऽपि दुर्लभः[10] प्रोक्तो[11] मार्त्तण्डक्षेत्र उत्तमे ।।

---

१ पूर्वेद्युवप० २ रश्वमेधं ३ चतुरांशीति ४ मनुजे ५ पूर्वेद्युवपना ६ मासि ७ नेनृताभ्यांमथापि ८ प्रोक्तं ९ दण्डोपि १० दुर्लभाः ११ प्रोक्ता ।

हे सुन्दरि ! बहुत पुण्यों से हो···उत्तम मार्त्तण्ड क्षेत्र में दण्ड भी दुर्लभ कहा गया है।

श्रेष्ठा च शर्वपार्वत्या प्रोक्ता तन्त्रविशारदैः।
लोकारौ मृत्पात्रे च सप्तम्यां श्राद्धमाचरेत् ॥

तन्त्रविशारदों ने और शर्व एवं पार्वती ने इसे श्रेष्ठ कहा है। और लोकारि क्षेत्र में श्राद्ध-तर्पण पात्र में सप्तमी के दिन श्राद्ध करे।

तृप्ता[1] स्तस्य भवन्त्येव [2]कल्पं पितृ [3]गणाः प्रिये।
यः करोति महेशानि लोकारिक्षेत्र उत्तमे।
श्राद्धतर्पणमीशानि स तु मामुपतिष्ठति ॥

हे प्रिये ! उसके पितर कल्प पर्यंत तृप्त होते हैं, हे महेशानि ! जो उत्तम लोकारि क्षेत्र में श्राद्ध-तर्पण करता है, हे ईशानि ! वह मुझको प्राप्त होता है।

पितृणां[4] श्राद्धं[5] [6]कर्तुं वै पुण्यं भवति निश्चितम्।
ग्रहणे[7]ऽपि च लोकारौ समे दर्शेऽपि[8] सुन्दरि[9] ॥

हे सुन्दरि ! लोकारि क्षेत्र में सम अमावस में भी, ग्रहण होने पर भी पितरों का श्राद्ध करने के लिए निश्चित पुण्य प्राप्त होता है।

श्राद्धं दानं तथा स्नानं कृत्वा मुच्येत संकटात्।
बहुनात्र किमुक्तेन[10] लो[11]कारौ यत्कृतं प्रिये ॥

हे प्रिये ! जहाँ बहुत कहने से क्या लाभ ? लोकारि क्षेत्र में श्राद्ध, दान तथा स्नान करके मनुष्य संकट से मुक्त हो जाता है।

स्नानं दानं तपो होमः[12] स्वाध्यायो [13]देवताचंनम्।
[14]तत्तदक्षय्यतां याति ह्यतिसत्येन ते[15]······ ॥

और यहाँ जो स्नान, दान, तप, होम, स्वाध्याय और देवार्चन करता है, वह अक्षयता को प्राप्त होता है। अतिसत्यपूर्वक मैं तुम्हें यह कह रहा हूं।

इत्थं कृतं मया [16]तेऽद्य [17]······ प्रिये।
मलिनस्य च मासस्य माहात्म्यमपि सुन्दरि ॥

हे प्रिये ! इस प्रकार मैंने तुझे आज···
हे सुन्दरि ! मलिन मास का माहात्म्य भी कहा है।

---

१ तृप्ता तस्य २ गल्पं ३ गणः ४ पितृणां ५ श्राद्ध ६ कर्तुं ७ ग्रहणेपि च लोकारो ८ दर्शेपि ९ सुंदरि १० किमु ११ लोकारो १२ होमाः १३ देवताचंनं १४ दक्षियतां १५ पाठाभाव १६ तेद्य १७ स च ग्रच्छेदने।

अधुना शृणु देवेशि चाकायाश्चैव निर्णयम् ।
यच्छ्रु[1]त्वा मुच्यते जन्तुः कोटिजन्मभवैरघैः ।।

हे देवेशि ! अब चाका नदी के निर्णय को सुनिए, जिसे सुनकर जन्तु करोड़ों जन्मों में पैदा हुए पापों से मुक्त हो जाता है ।

चक्रधाराभि[2]र्घातश्च श्रिते रन्ध्रो भवेत्किल ।
अस्पृश[3]न्तु तदा विष्णुरङ्गुष्टाग्रेण [4]सुन्दरि ।
तस्मद्विनिस्सृतस्तोयप्रवाहः[5] सुरसुन्दरि ।।

हे सुन्दरि ! तब विष्णु ने अङ्गुष्ठ के अग्रभाग से इसका स्पर्श किया । हे सुरसुन्दरि ! उससे जलप्रवाह निकला ।

स एव पवनो जातो मार्त्तण्ड[6] विषये किल ।
चाकेति नाम्ना प्रथितः[7] प्रवाहः[8] सुरसिन्धुजः[9] ।।

वही मार्त्तण्ड विषय में 'पवन' हो गया और देवगङ्गा से पैदा हुआ वह प्रवाह 'चाका' नाम से प्रसिद्ध हुआ ।

चक्रघाताद्योऽति[10]विष्णोर्जात[11]स्तोयप्रवाहकः ।
स एव नाम्ना चाकेति प्रथितो भुवनत्रये ।।

जो जलप्रवाह चक्र के प्रहार से अति विष्णु से पैदा हुआ, वही तीनों भुवनों में 'चाका' इस नाम से प्रसिद्ध हुआ ।

चाकन्ति घोरपापानि विघ्नान्यपि महेश्वरि ।
[12]स्नातानामपि विधिवत्तस्माच्चाकेति वै स्मृता ।।

हे महेश्वरि ! विधिवत् स्नान किए हुओं के घोर पापों को और विघ्नों को भी नष्ट करती है, इसलिए यह 'चाका' नाम से स्मरण की जाती है ।

चलितानि च पापानि दृष्ट्वापि ..सुन्दरि ।
चाकेति कथिता तस्माद्वेदतन्त्रविशारदैः ।।

हे सुन्दरि ! इसे देखकर पाप चकित हो गए, इसलिए वेदतन्त्र विशारदों ने इसे 'चाका' नाम से कहा है ।

चाकिता कालवेगेन[13] जाह्नवी हरिणा यतः ।
ग्रामस्य पावनार्थञ्च तस्माच्चाकेति कथ्यते[14] ।।

गाँव को पवित्र करने के लिए विष्णु भगवान् ने जो गंगाको काल वेग से प्रेरित किया इसलिए इसे 'चाका' नाम से कहा जाता है ।

[15]इति चाकामाहात्म्यम्

---

१ यः श्रुत्वा २ धाराभि, ३ अस्पृशं तु ४ स्वन्दरि ५ प्रवाहा ६ मार्त्तण्डा-विशये ७ प्रथिता ८ प्रवाहा ९ सिधुजः १० घाताद्यौति ११ विष्णोजातः १२ स्नातानांमपि १३ नेगेन १४ कथिता १५ मू. पा. लि. में पाठाभाव ।

श्री भैरवी उवाच—श्री भैरवी बोलीं—

ॐ श्रुत्वा माएहिग्रामस्य महिमानमनन्तकम् ।
उच्चैः [1]शोर्णस्य क्षेत्रस्य कृतार्थास्मि न संशयः ।।

उच्चैःशीर्ण क्षेत्र के माएहि गांव के अनन्त माहात्म्य को सुनकर मैं कृतार्थ हूं, इसमें संशय नहीं है ।

अधुना श्रोतुमिच्छामि गङ्गामुकुटसम्भवाम् ।
यत्र स्नात्वा च पीत्वा च मुच्यते ब्रह्महत्यया ।।

अब मैं गङ्गामुकुट से पैदे होने वाले माहात्म्य को सुनना चाहती हूं, जहां स्नान कर और जलपान कर मनुष्य ब्रह्महत्या से मुक्त हो जाता है ।

अस्थिक्षेपं कथं कुर्यात्कथं[2] यात्री महेश्वर ।
किं फलं च महेशान शत्रगेहस्य किं फलम् ।।

हे महेश्वर ! अस्थिक्षेप कैसे करे ? यात्री को वहां आने से क्या फल प्राप्त होता है ? और 'शत्रगेह' का क्या फल है ?

केशवा[3]···दर्शनात्किं फलं लभेत् ।
माहिषी[4]··· चैव तथा ब्रह्मसरोवरे ।।
हंसद्वारस्य माहात्म्यं तथा कौलसरोवरे ।
[5]···श्च माहात्म्यं नन्दिक्षेत्रे फलं तथा ।।
तथा मुकुटमाहात्म्यं दर्शनात्किं फलं लभेत् ।

········· दर्शन से क्या फल प्राप्त होता है ?

वद सत्यं महादेव कृपया परमेश्वर ।

हे महादेव ! कृपा करके सच-सच बताइए ।

श्रीभैरव उवाच—श्रीभैरव बोले—

वक्ष्ये मुकुटगङ्गाया माहात्म्यमुत्तरोत्तमे ।
येन वै श्रुतमात्रेण सद्यो मुच्येत पातकात्[6] ।।

हे उत्तरोत्तमे ! मुकुटगङ्गा का माहात्म्य कहता हूं, जिसके सुनने मात्र से प्राणी झट पाप से मुक्त हो जाए ।

---

१ उच्चैशीर्णस्य २ कुर्या कथं ३ पस्यदृश्यदां ४ यद्धत्ते ५ अस्त्रबिंदुश्च ६ पातकात् ।

हरमुकुटेऽटते[१] यस्मान्मुकुटगङ्गिका।
मुक्त्वा कुटिलतां[२] भूमौ गता यस्मान्महेश्वरि।
तस्मान्मुकुटगङ्गाख्या प्रसिद्धा पृथिवीतले ॥

जिससे मुकुटगङ्गा हर के मुकुट में विचरती है। हे महेश्वरि! जिससे कुटिलता को छोड़कर गङ्गा भूमि पर आ गई, इसी से पृथिवी पर 'मुकुट-गङ्गा' के नाम से प्रसिद्ध हुई।

मुक्ता कुतूहलाद्यस्माद्देव्या[३] दर्शनकांक्षया।
अटते भूमिगा नित्यं तस्मान्मुकुटगङ्गिका[४] ॥

देवी ने लोगों के दर्शन करने की आकांक्षा से कुतूहलपूर्वक इसे छोड़ा और यह नित्य भूमि पर आकर विचरती है, इसीसे इसे 'मुकुटगङ्गा' नाम से पुकारा जाता है।

पुरा कैलाश[५]शिखरे क्रीडमानस्य धूर्जटेः[६]।
प्रमोदः प्रबभूवात्र मानसः कोऽपि सुन्दरि ॥

पूर्वयुग में कैलाश शिखर पर खेलते हुए धूर्जटि महादेव को हे सुन्दरि यहां कोई अपूर्व मानसिक प्रसन्नता हुई।

गङ्गा प्रादुरभूत्तत्र तथा क्रीडितुमिच्छति।
विमर्शा[७]नन्दलहरी हृदया[८]काशमध्यतः ॥

वहां गङ्गा पैदा हुई और हृदय रूपी आकाश के मध्य से विमर्शानन्दलहर से युक्त वह खेलना चाहती है।

द्रवीभूतोद्गता शम्भुमुकुटा[९]न्निःसृता प्रिये।
प्रमोदलहरी जाता[१०]नन्दाश्रुजलात्मिका ॥

हे प्रिये! द्रवीभूत होकर गङ्गा शम्भु के मुकुट से निकली और आनन्दाश्रु के जल से युक्त प्रमोद रूपी लहरों वाली हो गई।

निस्सृता नेत्रमध्याच्च शिवस्याद्भुतरूपिणः[११]।
प्रोक्ता चाकाशगङ्गेति अन्तराकाशनिर्गता ॥

अद्भुतरूप वाले शिव के नेत्रों के मध्यभाग से निकली, इसीलिए भीतरी आकाश से निकलने के कारण 'आकाशगङ्गा' इस नाम से कही गई।

निर्गतत्वाच्च मनसो मानसं सर उच्यते।
पतितोत्तारणाच्चेयं नित्यं चोत्तर[१२]—कथ्यते ॥

---

१ हरमुक्ताकावटते २ कुटिलता ३ द्यस्मा देव्या ४ गगिका ५ कैलास ६ दूर्जटेः ७ विभषा ८ हृदयः काश्य ९ कटिनिसि १० जाता आनन्दास्तु ११ रूपिणो १२ मंतराकाश

मन से निकलने के कारण 'मानस सर' कही जाती है। पतितों को नित्य तारने के कारण यह 'उत्तरगङ्गा' कही जाती है।

मानसोत्तरगङ्गा सा[1] शिवसायुज्यदायिनी।
भगीरथी[2]··· गङ्गा स्वपितृमुक्तये॥

वह मानसोत्तरगङ्गा शिवसायुज्य प्रदान करने वाली है। भगीरथी··· गङ्गा अपने पितरों की मुक्ति के लिए—

सा स्वर्गदा देवि[3]········· मोक्षदा।
विशिष्टा सर्वगङ्गानां गङ्गा चोत्तरमानसे॥

हे देवि! वह स्वर्ग देने वाली······ और उत्तरमानस में वह गङ्गा सभी गङ्गाओं से विशिष्ट है।

मुख्या महेश[4]मूर्ध्निस्था महापा[5]तकनाशिनी।
या पार्वत्या स्पर्धयन्ती मुहुर्मुहुरनेकदा॥

जो अनेक बार, बारम्बार पार्वती से स्पर्धा करती हुई, महादेव जी के मस्तक पर विराजमान और महापापों को नष्ट करने वाली वह गङ्गा मुख्य है।

शिवस्य क्रीडामनसो गङ्गा प्रादुरभूत्पुरा।
कृत्वा स्वविग्रहं देवि[6] निर्मलं चातिसु[7]न्दरम्॥

पूर्वकाल में शिवजी के क्रीडामन से निर्मल और अतिसुन्दर अपने शरीर को धारण कर हे देवि! वह गङ्गा पैदा हुई।

तया चिक्रीड भगवान्कैलासो[8]पवने शुभे।
क्रुद्धा देवी ततो याता गङ्गा दृष्ट्वातिविह्वलाम्॥

भगवान् शिव ने शुभ कैलाश के उपवन में उस गङ्गा के साथ क्रीडा की। इसके बाद अति विह्वल गङ्गा को देख कर देवी पार्वती क्रुद्ध हो गई।

दृष्ट्वा तथा तु क्रीडन्तं ईशानमपराजितम्।
क्रोधमाहारयाञ्चक्रे हरं प्रति महेश्वरी॥

उस गङ्गा के साथ क्रीडा करते हुए अपराजित ईशान को देखकर महेश्वरी ने महादेव के प्रति क्रोध को उतार दिया।

हरं जघान गिरिजा[9]क्रुद्धा माल्यैः[10] सुशोभनैः।

---

१ सां २ नयानेता ३ काचगंगांशत्वांत् ४ मूध्नि ५ पाकनाशिनी ६ देवी ७ स्वंदरं ८ कैलासो ९ क्रद्धा १० माल्यै।

क्रुद्धां देवीं तथा यान्तीं दृष्ट्वा[1] गङ्गाति[2] विह्वला ।
अन्तर्घिमगमत्सद्यो [3] मुकुटे ह्रीश्वरस्य च ॥

पार्वती ने क्रुद्ध होकर सुन्दर मालाओं से महादेव पर प्रहार किया और इस प्रकार व्यवहार करती हुई क्रुद्ध देवी को देखकर गङ्गा अति व्याकुल हो कर झट महेश्वर के मुकुट में अन्तर्धान हो गई ।

दृष्ट्वा देवोऽहसद्वाक्यम[4] ब्रवीद्गिरिजां प्रिये ।

हे प्रिये ! गिरिजा को देखकर हँसते हुए महादेव जी ने कहा ।

किं गतं किं च सम्पन्नं यद्हंसि विविधैः प्रिये ।
माल्यैः कटाक्षैः कुटिलैः[5]··· पुनः पुनः ॥

हे प्रिये ! क्या गया और क्या हुआ जिससे तू बार-बार मुझे अनेक प्रकार के कुटिल कटाक्षों और मालाओं से प्रहरित कर रही हो ।

श्रुत्वैतद्गिरिशस्यैवं[6] वचो[7]···पुनः ।
पार्वती प्रत्युवाचेदं गिरीशं सुमनोहरम् ॥

फिर इस प्रकार महादेव जी के सनम्र इन वचनों को सुनकर पार्वती ने सुन्दर महादेव जी से यह कहा ।

कयाचित्क्रीडमानस्य वदतीव हि विह्वला[8] ।
मनश्च व्याकुलं तेऽद्य[9] शरीरं चैव कम्पती ॥
रोमोद्भेदश्च भवति शङ्करस्य[10] काकवत् ।
निर्लज्जश्च[11] त्वमेवासि मां निर्लज्जां[12] वदेः[13] कथम् ॥
श्रुत्वैतद्[14] गिरिशो वाक्यं प्रत्युवाचेश्वरीं तथा ।
का दृष्टा कुत्र सा देवी[15] वदन्ती त्वं न लज्जसे ॥

यह वचन सुनकर महादेव ने ईश्वरी से कहा—कौन तूने देखी, वह देवी कहां है ? इस प्रकार कहते तुझे लज्जा नहीं आती है ।

एतच्छ्रुत्वा[16] भगवतो वचो[17] देव्यतिसुन्दरम् ।
[18] करेण जग्राह ततो जटाजूटं महेशितुः[19] ॥

देवी पार्वती ने भगवान् शिव के यह वचन सुनकर इसके बाद महादेवजी के अति सुन्दर······ जटाजूट को हाथ ने पकड़ा ।

---

१ दृष्टा २ गगाति ३ मुक्तक जगदीशितुः ४ द्वाक्यं अब्रवी ५ विलज्ञासि ६ स्यैव ७ नर्ममहं ८ विह्वलां ९ तेद्य १० शंकमारस्य, ११ निर्लजश्च १२ निर्लजां १३ वदे १४ गिरिशो १५ देविः १६ एतच्छत्वं १७ देव्येति० १८ करण १९ महेश्वरस्य तु ।

तद्बन्धं शिथिलं कृत्वा कटाक्षैस्तं जघान सा।

और उन जटाओं के बन्धन को ढीला कर उसने उस महादेव को कटाक्ष-पातों ने प्रहरित किया।

घ्नन्तीं[1] दृष्ट्वा कटाक्षैस्तं देव[2]देवं महेश्वरम्।
गङ्गा कुतूहलाविष्टा मुकुटाच्च पपात ह॥

उन कटाक्षपातों से देवाधिदेव महादेव पर प्रहार करती हुई उस पार्वती को देखकर कुतूहल से भरी वह गङ्गा मुकुट से गिर गई।

पतितां तां हरो दृष्ट्वा हसन्प्रोवाच पार्वतीम्।
स्वयं पतति वै देवि प्रच्छन्नपापकृन्नरः॥

गिरी हुई उसे देखकर महादेव जी ने हंसते हुए पार्वती से कहा कि हे देवि! पाप को छिपाने वाला मनुष्य स्वयं गिर जाता है।

तस्माद्गङ्गा स्वयं देवि पतिता तव पादयोः।
प्रसन्नाऽभवद् देव्यस्य[3] मुकुटात्पतितायां सति॥[4]

हे देवि! इसलिए गङ्गा स्वयं तेरे पाओं में गिर पड़ी है। देवी पार्वती इस महादेव के मुकुट से गङ्गा के गिरने पर प्रसन्न हुई।

कुर्याद्यदि पतेत्सद्यो नरकानेकविंशतिम्॥

यदि कोई अपने पाप को छिपाने का कार्य करे तो वह झट अनेक बीसियों नरकों में गिरे।

नरो वा यदि वा नारी प्रच्छन्नं[5] पापमाचरेत्।
सद्यः पतति देवेशि गङ्गायाश्चैव दुर्गतिम्[6]॥

मनुष्य हो या स्त्री, जो भी कोई प्रच्छन्न पाप करे हे देवेशि! वह झट गिर जाता है और गङ्गा की दुर्गति को पाता है।

संश्रुत्य वचनं भर्त्तु[7]र्देवदेवी महेश्वरी।
उवाच वचनं देवं हसन्ती वाक्यकोविदा॥

वाक्यकोविद, देवदेवी महेश्वरी पति के वचन सुनकर हंसते हुए महादेव जी से बोली।

यस्मात्प्रच्छन्ना प्राक्रीडन्मम[8] पत्या स्वयं चिरम्।
तस्मादटन्ती[9] भूमिस्था देवि मद्वाक्यतो भृशम्॥
मुकुटात्पतिता देवभूमावटतु सुन्दरि।
पुनर्मुकुटमारोढुं नार्हति[10] कृतपातकी[11]॥

---

१ घ्ननंतीं २ स्तंदेव ३ भवदेव्यस्यं, ४ त्पतिता सती ५ प्रच्छंनं ६ गंगायश्चैव दुर्गति ७ भर्तुदेव० ८ प्राक्रीडमंम ९ दटत० १० नार्हंती ११ कृतपातक

जिससे छिपकर मेरे पति के साथ चिरकाल पर्यन्त स्वयं इसने क्रीडा की, इसीसे हे देवि ! यह मेरे वाक्य से विचरती अत्यधिक समय तक भूमि पर रहेगी। हे सुन्दरि ! मुकुट से गिरी हुई वह देवभूमि पर विचरण करे और यह पापिन फिर मुकुट पर स्थान प्राप्त करने के योग्य नहीं है।

जटापीठाद्[1]भगवतः पतिता धरणीतले[2]।
त्रिभि[3]मार्गैर्गता यस्मात्तस्मात्ख्याता त्रिमार्गगा ॥

भगवान् शिव के जटापीठ से गिरी हुई जिससे यह तीन मार्गों से गई, उसी से, 'त्रिमार्गगा' नाम से प्रसिद्ध हुई।

इत्युक्त्वा[4] वचनं देवी [5]क्रोधाच्च विरराम ह।

देवी यह वचन कहकर क्रोध से विराम को प्राप्त हुई।

तथा शप्तां[6] हरो दृष्ट्वा भवान्या जगदम्बिके।
[7]गङ्गां प्रोवाच वचनं सद्यः प्रीतिकरं प्रिये ॥

हे जगदम्बिके ! इस प्रकार भवानी से अभिशप्त गङ्गा को देखकर हे प्रिये ! महादेव जी ने झट यह कहा।

पुण्ये भाद्रपदे मासे[8] सिंहसंस्थे दिवाकरे।
अष्टम्यां...[9] देवेशि पावयन्पतितान्बहून् ॥

सूर्य के सिंह में स्थित होने पर पुण्यप्रद भाद्रपद मास में हे देवेशि ! अष्टमी के दिन बहुत से पापियों को यह पवित्र करेगी।

पुण्ये भाद्रपदे [10]मासे सिंहसंस्थे दिवाकरे।
पतितास्थिसमापातात्पुण्या भागीरथी नदी ॥
मलिनापि सरोभिश्च सरिद्भिः सागरैः समम्।
आयान्तु [11]तास्त्वत्संगमे ताः पुनीहि स्वयं चिरम् ॥
भागीरथीदेविकाद्या अंशभूतास्तथैव हि।
यः कश्चिन्मानवो[12]ऽत्रैव भाद्राष्टम्यां महेश्वरि ॥
स्नानं दानं तपो होमः[13] स्वाध्यायं चास्थिक्षेपणम्।
करोति विधि[14]वद्देवि तस्य पुण्यफलं शृणु ॥

सूर्य के सिंह में स्थित होने पर पुण्य भाद्रपद मास में पतितों की अस्थियों के प्रक्षेप से पुण्यप्रद भागीरथी नदी, सरोवरों, सरिताओं और सागरों के

---

१ पीद्यभगवता २ रणीतले ३ त्रिभिः मार्गगता ४ इत्युक्ता ५ क्रीधाच्च ६ शप्ता ७ गंगा ८ मासि ९ मू० पा० लि० में पाठाभाव १० मासि ११ स्त्वदत्सगेता १२ न्मान वोत्रैव १३ होमो १४ विदि०।

अंशभूत भागीरथी-देविका आदि जहां वे तुम्हारे संग आए तुम वहीं चिरकाल तक स्वयं पवित्र करो।

हे महेश्वरि ! जो कोई मनुष्य यही भाद्रपद-अष्टमी के दिन स्नान, दान, तप, होम स्वाध्याय एवं अस्थिक्षेप विधिपूर्वक करता है, उसका पुण्यफल सुनिए।

शतकल्पं महेशानि काशीवासी न यत्फलम्।
तत्फलं लभते [1]मर्त्यो दर्शनान्मुकुटस्य[2] हि ॥

हे महेशानि ! शतकल्प काशीवासी जो फल नहीं पाता है, वह फल मनुष्य मुकुटगङ्गा के दर्शन से पाता है।

प्रयागे माघमासे हि स्नात्वा वर्षसहस्रकम्।
यत्फलं लभते मर्त्यस्तदेकदिनतः प्रिये ॥

प्रयाग में माघमास के भीतर सहस्र वर्ष स्नान कर मनुष्य जो फल प्राप्त करता है, हे प्रिये ! वह फल एक दिन—

[3]स्नानान्मुकुटगङ्गायाः प्राप्नोत्येव न संशयः।

मुकुटगङ्गा का स्नान करने से पाता है, इसमें संशय नहीं है।

ब्रह्महा हेमहारी तु सुरापो गुरुतल्पगः।
तत्संसर्गी च मुच्येत [4]स्नानेनात्र महेश्वरि ॥

ब्रह्महत्यारा, सोना चुराने वाला, शराब पीने वाला, गुरुशय्या गमन करने वाला और इसका संसर्ग करने वाला यहां स्नान करने से मुक्त हो जाता है।

अविद्यो वा सविद्यो वाप्यकामी चाथ काम[5]वान्।
स्नात्वा मुकुटगङ्गायां मुच्येदपि[6] न संशयः ॥

विद्याहीन विद्यायुक्त, अकामी वा कामवान् मुकुटगङ्गा में स्नान कर मुक्त हो जाए, इसमें संशय नहीं है।

गोघ्नो[7]ऽप्यथ कृतघ्नो[8]ऽपि स्त्रीघ्नो मातृघ्न एव च।
स्नात्वा मुकुटागङ्गायां सद्यो मुच्येत सुन्दरि ॥

गोहत्यारा, कृतघ्न, स्त्रीहत्यारा और मातृहत्यारा भी हे सुन्दरि ! मुकुटगङ्गा में स्नान कर झट मुक्त हो जाए।

नातः[9] परं तीर्थवरं नातः[10] पुण्यं महेश्वरि।
नातो धर्मो न यज्ञो[11]ऽपि जपो होमो[12]ऽथ पार्वति ॥

---

१ मत्यो २ दर्शनात्मुकुटस्य ३ स्नानात्मु० ४ स्नंनेनात्र, ५ कासवान् ६ मुच्येतापि ७ गोघ्नोप्यथ ८ कृतघ्नोपि ९ नतः १० नतः ११ यज्ञोपि १२ होमोथ

हे महेश्वरि ! इससे परे कोई तीर्थ श्रेष्ठ नहीं हैं, इससे परे कोई पुण्य नहीं है और हे पार्वति ! इससे परे कोई धर्म नहीं है। एवं इससे परे कोई यज्ञ जप तथा होम भी नहीं है।

य: स्नाति मुकुटाद्योऽपि[1] पतिते जल उत्तमे ।
बहुनात्र किमुक्तेन नर: पातकवान्कलौ ।।
यात्रां मुकुटगङ्गाया: प्रकुर्वीत च यत्नत: ।
हरद्वाराच्छतगुणं वाराणस्या: सहस्रकम् ।
पुण्यं मुकुटागङ्गाया: कथितं शिवशासने ।।

जो मुकुटगङ्गा के नीचे भी पड़े उत्तम जल में स्नान करता है, बहुत कहने से क्या लाभ ? कलियुग में पापी भी मनुष्य मुकुटगङ्गा की यत्नपूर्वक यात्रा करे।

शिवशासन में मुकुटगङ्गा का पुण्य हरद्वार से सौ गुणा और वाराणसी से हजार गुणा अधिक कहा है।

करंकक्षेत्रं देवेशि शत्रगेहाभिधं तथा ।
रामाराधनतीर्थं च पुण्यो वै भारते गिरि: ।

हे देवेशि ! करंक क्षेत्र तथा शत्रगेह और रामाराधन तीर्थ वं भारत में पुण्य पर्वत है।

केशवापसुरूपस्य भार्गवस्य महेश्वरि ।
दृषत्क्षेत्रमपि तथा यत्र नित्यं प्रतिष्ठितम् ।।

हे महेश्वरि ! केशवापसुरूग भार्गव का दृषत्क्षेत्र भी जहां नित्य प्रतिष्ठित है।

माहिषी पदतिश्चापि तथा ब्रह्मसरोवर: ।
हंसद्वारं क्रौञ्चरन्ध्रमश्रुबिन्दुर्महेश्वरि ।।

हे महेश्वरि ! माहिषी, पदति, ब्रह्मसरोवर, हंसद्वार, क्रौञ्चरन्ध्र और अश्रुबिन्दु

नन्दिक्षेत्रं महाकालक्षेत्रं परमपावनम् ।
तथा हरमुखाख्यं च गिरितुङ्गं महत्तरम् ।।
पुण्या मुकुटगङ्गा च महापातकनाशिनी ।
मायापुर्या: शतगुणा माया तस्मात्प्रकाशिता ।।

नन्दिक्षेत्र, परमपापन महाकालक्षेत्र तथा हरमुख एवं महत्तर गिरितुङ्ग—

---

१ मुकुटाधोपि

और मुकुटगङ्गा पुण्यप्रद एवं महापापों को नष्ट करने वाले हैं तथा मायापुरी से शतगुणा माया उससे प्रकाशित होती है।

अत्र यात्रा प्रयत्नेन कर्त्तव्या मोक्षकांक्षिभिः।
नरो वाप्यथवा नारी स्नात्वा गङ्गासरोवरे।
धर्मं परममाप्नोति सत्यं सत्यं वरानने।।

मोक्ष की आकांक्षा रखने वालों को यहां यात्रा यत्नपूर्वक करनी चाहिए। हे वरानने! पुरुष हो वा नारी, इस गङ्गासरोवर में स्नान कर परम धर्म को पाता है, यह सत्य है, सत्य है।

इति श्रीसंहितायां लहरविषयोपजाततीर्थसंग्रहे
हरमुकुटगङ्गामाहात्म्यं नाम पटलः।

श्रीभैरव उवाच—भैरव बोले

यात्रामुत्तरगङ्गायाः प्रभासे कृपया वद ।
यां कृत्वा मुच्यते जन्तुर्जन्मान्तरभवैरघैः ।।

प्रभास क्षेत्र में उत्तरगङ्गा की यात्रा के विषय में कृपापूर्वक कहिए, जिसे करके जन्तु जन्मान्तर में पैदा हुए पापों से मुक्त हो जाता है ।

भैरव उवाच--भैरव बोले

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि यात्रामुत्तरमानसे ।
यां श्रुत्वापि महेशानि गङ्गायात्राफलं लभेत् ।।

हे देवि ! सुनिए, उत्तरमानस में यात्रा के विषय में मैं कहता हूँ, जिसे सुनकर भी हे महेशानि ! गङ्गा की यात्रा का फल पाया जाता है ।

आदौ शुभे मुहूर्ते तु श्राद्धं कृत्वा विधानतः ।
अम्बुज[1]पात्रे चास्थीनि स्थापयेद्विधिवद्द्विजः[2] ।।

आदि में शुभ मुहूर्त पर विधान के साथ श्राद्ध करके ब्राह्मण कमलपात्र में अस्थियों को रखे ।

अभ्युक्ष्य[3] पञ्चगव्यैस्तु संपूर्य तिलसर्षपैः ।[4]
कृष्णैः सितैश्च संवेष्ट्य क्षोभैर्मन्त्रैश्च[5] वैदिकैः ।।
संमान्य विधिवद्देवि सम्पूज्या···[6]विनायकम् ।
ततो गेहाद्विनिर्गत्य गच्छेच्चैवोत्तरां दिशम् ।।

पञ्च गव्य से सिंचित कर, तिल और सर्षप से भरकर तथा कृष्ण एवं सफेद रेशमी धागे से वेष्टित कर तदनन्तर वैदिक मन्त्रों से सम्मानित कर हे देवि ! विधिपूर्वक······ विनायक की पूजा कर, इसके बाद घर से निकलकर उत्तर दिशा को जाए ।

ततो विचारकुण्डेऽत्र[7] स्नात्वा गच्छेत्ततोऽम्बिके ।
अम्बु[8]रुहवने पुण्ये स्नात्वा पाद···[9]वारिणि ।।

हे अम्बिके ! इसके बाद जहां विचारकुण्ड में स्नान कर तदनन्तर पुण्यकर अम्बुरुह वन में······ जल में स्नान कर जाए ।

---

१ अम्बोज २ विधिवद्विजः ३ अभ्युक्ष्य य ४ सर्षियैः ५ मंत्रैश्च ६ मू० पा० लि० में पाठाभाव ७ कुण्डेत्र ८ अम्बोरुह० ९ पाद मू०पा०लि० पाठाभाव

ततो हिरण्यगङ्गायां स्नात्वा व्यूहाश्रमं व्रजेत् ।
ततः स्नात्वा महेशानि गन्धर्व[1]पुरमाव्रजेत् ॥

इसके बाद हिरण्यगङ्गा में स्नानकर व्यूहाश्रम को जाए, हे महेशानि ! वहां स्नान कर गन्धर्वपुर जाए ।

तत्र स्नात्वा महेशानि षोडशीं समुपाश्रयेत् ।
षोडशीं तत्र संस्मृत्य ततो न्नोरं[2] संव्रजेत् ॥

हे महेशानि ! वहां षोडशी का स्मरण कर इसके बाद 'न्नोर' को जाए ।

ततो व्रजेन्महेशानि बात्यालिग्राममुत्तमम् ।
तत्र स्नात्वा व्रजेद् देवि करंकं तीर्थमुत्तमम् ॥

हे महेशानि ! तदनन्तर उत्तम बात्यालिग्राम को जाए, हे देवि ! वहां स्नान कर उत्तम करंक तीर्थ को जाए ।

तत्र स्नात्वा समभ्युक्ष्य कीकसानि च वारिणा ।
श्राद्धं कृत्वा व्रजेत्तत्र शत्रगेहं पुनः प्रिये ॥

वहां स्नान कर और जल से कीकसों को सींच कर हे प्रिये ! वहां श्राद्ध कर फिर शत्रगेह को जाए ।

ततो रामाराधनकं तीर्थं परमपावनम् ।
दृष्ट्वा स्नात्वा च विधिवत्ततो भरतमारुहेत् ॥

इसके बाद परम पवित्र रामाराधनक तीर्थ के दर्शन कर और वहां स्नान कर तदनन्तर विधिपूर्वक भरत पर सवारी करे ।

दृषत्क्षेत्रं ततो दृष्ट्वा प्रभाते विमले शुभे ।
महिषीपद्धतीश्चैव यायाद्ब्रह्मसरः शुभम् ॥

इसके बाद शुभ विमल प्रभात में दृषत्क्षेत्र के दर्शन कर महिषी पद्धतियों और शुभ ब्रह्म सर को जाए ।

स्नात्वा तत्र महेशानि श्राद्धं कुर्याद्विधानतः ।
हंसद्वारं ततो यायाद्भृगुतुङ्गं विशेषतः ॥

हे महेशानि ! वहां स्नान कर विधिपूर्वक श्राद्ध करे । इसके बाद हंसद्वार तदनन्तर विशेषकर भृगुतुङ्ग को जाए ।

अश्रु[3]बिन्दौ यतः स्नात्वा गच्छेत्कौलं सरः शुभम् ।
तत्र स्नात्वा महेशानि नन्दिक्षेत्रं समाश्रयेत् ॥

---

१ गन्धर्वापुर० २ न्नोर ३ अस्रुबिन्द्वोस्ततः ।

तदनन्तर अश्रुबिन्दु में स्नान कर शुभ कौल सर को जाए, हे महेशानि ! वहां स्नान कर नन्दिक्षेत्र का आश्रय ले।

सम्प्राप्य वपनं कुर्यादुपवासमपीश्वरि[1] ।
द्वितीये दिवसे[2] स्नात्वा ह्यस्थिक्षेपं समाचरेत् ॥

हे महेशानि ! वपन करके उपवास भी करे और दूसरे दिन स्नान कर अस्थिक्षेप करे।

श्राद्धं कृत्वा तु विधिवद्विप्रान्संपूज्य भोजनैः ।
चतुर्विधैः स्कन्ध[3]मूलैः फलैश्चैव विशेषतः ॥
वस्त्रैः क्षौमै[4]राभरणैर्गोभिरश्वैर्गजैरपि ।[5]
रत्नैर्दा[6]सीभिरीशानि दासै[7]श्चैव तथा प्रिये[8] ॥
तर्पयेद्[9]ब्राह्मणान्सम्यक् श्रद्धया परया प्रिये ।
स याति ब्रह्मसदनं यत्र गत्वा न शोचते ॥

विधिवत् श्राद्ध कर और ब्राह्मणों को भोजनों से पूजकर हे ईशानि ! चार प्रकार के कन्दमूलों और विशेशकर फलों से, रेशमी वस्त्रों, आभरणों, गायों, घोड़ों और हाथियों से भी, हे प्रिये ! रत्नों, दासिओं और दासों से परम श्रद्धापूर्वक अच्छी तरह ब्राह्मणों का तर्पण करे, वह ब्रह्मलोक को जाता है, जहां जाकर शोक नहीं होता।

गङ्गाप्रतिकृतिं कृत्वा मत्स्ययुक्तां महेश्वरि ।
पद्मस्थां ताम्रकुम्भस्थां चतुर्भिश्च सुवर्णकैः ॥
क्षौमैः सुशोभनैश्चैव वस्त्रैराभरणैरपि ।
गङ्गां सम्पूज्य विधिवदाचार्याय समर्पयेत् ॥

हे महेश्वरि ! मत्स्ययुक्त, पद्मस्थित और ताम्रकुम्भ से स्थित गङ्गा की प्रतिकृति बनाकर चार सुवर्णों, सुन्दर रेशमी वस्त्रों और आभरणों से भी गङ्गा की पूजा कर विधिपूर्वक आचार्य को दे।

गङ्गायाः प्रतिमा[10]मादाय प्रभावाद्य[11]न्मयार्जितम् ।
पुण्यं तदस्तु मोक्षाय पितॄणां[12] मम चापि भोः ॥

गङ्गा की प्रतिमा लेकर...वह पुण्य पितरों और मेरे मोक्ष के लिए हो।

---

१ वासं अपी० २ द्विवसे ३ स्कन्द० ४ राभरणैः गोभि ५ रश्वैगजै० ६ रत्नैदासी० ७ दासश्चैव ८ प्रियेः ९ दब्रह्मणा० १० प्रतिमादाय ११ प्रभत्त्वा० १२ पितृणां।

यात्रासाफल्यहेत्वर्थं[1] मया दानमिदं कृतम् ।
इति मन्त्रेण चेशानि दत्वा[2] विप्रं क्षमापयेत् ॥

यात्रा में सफलता प्राप्त होने के लिए मैंने यह दान किया है; इस मन्त्र से हे ईशानि ! ब्राह्मण को देकर

एवं कृत्वा तु यो यात्रां गङ्गायाः[3] कुरुते नरः ।
सद्यः स रुद्रो भवति विष्णुर्वा जगदम्बिके ॥

ऐसा करके जो मनुष्य गङ्गा की यात्रा करता है, वह हे जगदम्बिके ! झट रुद्र वा विष्णु हो जाता है ।

इति प्रोक्ता मया तेऽद्य[4] यात्रा परमपावनी ।
यां श्रुत्वा प्राप्नुया[5]ज्जन्तुर्गङ्गास्नानं दिने दिने ॥

इस प्रकार यह परम पवित्र यात्रा आज तुझे मैंने कही है, जिसे सुनकर प्राणी प्रतिदिन गङ्गास्नान को प्राप्त करे ।

इति श्री[6]संहितायां हरमुकुटयात्रावर्णनं नाम पटलः ॥

---

१ हेत्वथं २ दत्वं ३ गंगायं ४ तेद्य ५ प्राप्नुया जंतु० ६ श्री श्री ।

श्रीभैरवी उवाच—श्रीभैरवी बोली

अस्थिक्षेपमपीशान श्राद्धमपि महेश्वर।
वद[1] केन विधानेन ह्यस्थिक्षेपणमुत्तमम् ।।

हे ईशान ! महेश्वर ! अस्थिक्षेप और श्राद्ध भी कहिए, किस विधान से करे।

नरः कुर्याद्यथाशक्ति तत्सर्वं वद विस्तरात् ।

यह उत्तम अस्थिक्षेपण मनुष्य यथाशक्ति करे, वह सब विस्तार पूर्वक कहिए ।

शृणु वक्ष्यामि देवेशि सुशुभे दिन उत्तमे।
स्नात्वास्थीनि समुद्धृत्य श्राद्धं कृत्वा प्रयत्नतः ।।

हे देवेशि ! सुनिए, कहता हूँ—उतम शुभ दिन में स्नान कर और अस्थियों को उठा कर तथा यत्नपूर्वक श्राद्ध कर—

भुक्त्वा किंचित्स्वके गेहे प्रतिष्ठेत ततः पुरा ।
श्रीषोडशीं नमस्कृत्य तथा युद्धविनायकम् ।
तीर्थे करंकके पुण्ये स्नायाच्च विधिवत्ततः ।।

इसके बाद कुछ खाकर अपने घर में रहे। और श्री षोडशी को नमस्कार कर तथा··· विनायक को नमस्कार कर पुण्य करंकक तीर्थ में विधिपूर्वक स्नान करे।

श्राद्धं कुर्यात्प्रयत्नेन ह्यस्थीन्यभ्युक्ष्य वारिणा ।
यात्रां च सफलां कुर्याद्विधिज्ञो विधिना ततः ।।

अस्थियों को जल से सींचकर यत्न से श्राद्ध करे और इस प्रकार विधिज्ञ विधिपूर्वक यात्रा को सफल करे।

यः कश्चिच्च महादेवि करंकेनाम्बुना नहि ।
अभ्युक्ष्य ह्यस्थिनिचयं विघ्नं गङ्गा[2] करोति च ।।

हे महादेवि ! जो कोई करंक के जल से अस्थिसमूह को नहीं सींचता है, गङ्गा विघ्न उपस्थित करती है।

भैरवी उवाच—भैरवी बोलीं—

कथं करंकके ग्रामे नदी कारंगिकाभिधा ।
पूताधिका मता देव तत्सत्यं कृपया वद ।।

---

१ वध   २ गंगं ।

हे देव ! करंकक गांवों में कारंगिका नाम की नदी कैसे पूताविका मानी गई है, कृपा कर वह सत्य-सत्य बताइए ।

श्रृणु देवि पुरा वृत्तं यद्भूतं पृथिवीतले ।
यस्य श्रवणमात्रेण वाजपेयं लभेन्नरः ।।

हे देवि ! पुरा वृत्त सुनिए, जो पृथिवी पर हुआ, जिसके सुनने मात्र से मनुष्य वाजपेय यज्ञ के फल को पाए ।

दधीचर्षेश्च पृष्ठास्थि[1]निचयेन प्रचक्रिरे ।
देवै[2]र्वज्रं गिरिपक्षच्छेदनार्थं महेश्वरि ।।

हे महेश्वरि ! पर्वतों के पक्ष (पंख) काटने के लिए देवताओं ने दधीचि ऋषि के पीठ की हड्डियों के समूह से वज्र का निर्माण किया ।

स करंकः प्रभासे[3]ऽभूत्पतितः सैकतोक्षितः ।
विष्णुना तार्क्ष्य आज्ञप्तः[4] क्षिपेत्स मुकुटा[5]म्भसि ।।

वह करंक (अस्थिपिञ्जर) प्रभास क्षेत्र में पड़ा और सिकता से सिंचित हुआ । विष्णु ने गरुड़ को आज्ञा दी कि वह इसे हरमुकुट गङ्गा के जल में फैंको ।

गृहीत्वा स करंकं तं दधीचर्षेर्महात्मनः ।
आगत्य प्राप्तो हरविषयं तत्र दृष्टवान् ।।

वह महात्मा दधीचि ऋषि के उस करंक को लेकर हर विषय को चला । और वहां आकर देखा ।

सर्पाणां क्रन्दनं तच्च दृष्ट्वा देवः शिवः स्वयम् ।
प्रतिषेधयामास[6] गरुत्मन्तं विरमेति पुनः ।।

सांपों के उस भक्षण को देखकर स्वयं देव शिव ने गरुड़ को मनाह किया कि रुको ।

गरुत्मान्नपि[7] तं प्राह भगवन्तं शिवं तदा ।
यत्र यत्र च ते दृष्टिः सर्पास्तत्र भवन्तु वै ।।

तब गरुड ने भी भगवान् शिव से कहा कि जहां-जहां तुम्हारी दृष्टि है वहां वहां सर्प रहें ।

अन्यथा कदनं ह्येषां करोम्यद्याविचारयन् ।
तथेत्युक्ता भगवता पुनः सर्पा[8]ञ्जघान ह ।।

---

१ पृष्टास्थाँ २ देवैवज्रं ३ प्रभासेभू० ४ आज्ञाप्तः ५ क्षिपे संमुकुटा० ६ प्रतिषेध ७ गरुत्मानपि ८ सर्पां जघान ।

अन्यथा इनका भक्षण बिना विचारे मैं करता हूं। भगवान् शिव से उस प्रकार रोके जाने पर भी उसने फिर सांपों को मारना शुरू कर दिया।

आज्ञापयामास ततो गणान्देवः शिवः स्वयम्।
सुपर्णं निष्कासयत[1] सद्यः[2]···प्रमथा इति ।।

इसके बाद स्वयं देव शिव ने गणों को आज्ञा दी कि गरुड़ को झट निकाल दो, मारना मत।

गणैर्निषिद्धः स ततो गरुत्मांश्च[3]स्वमालयम्।
जगाम त्यक्त्वा त्वरितं[4] करंकं नभसस्तलात् ।।

इसके बाद वह गरुड़ गणों से मनाह किये जाने पर करंक को छोड़ कर आकाश तल से शीघ्र अपने निवास स्थान को चला गया।

यस्मात्करंके देवेशि···[5]त्सृष्टो गरुत्मता।
तस्मात्करंको ग्रामश्च प्रथितो भुवनत्रये ।।

जिससे हे देवेशि ! गरुढ़ ने करंक में······ इसी से यह करंक ग्राम तीन धुवनों में प्रसिद्ध हुआ।

तस्मात्क्षेत्रं समुत्पन्नं करंकं नाम विश्रुतम्।
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च मुच्यते ब्रह्महत्यया ।।

इसी से करंक नामक क्षेत्र प्रसिद्ध हुआ, वहां स्नान कर और जल पीकर मनुष्य ब्रह्महत्या से मुक्त हो जाता है।

करंकाख्ये सुतीर्थे[6] वै स्नातव्यमविशङ्कया।
श्राद्धं कृत्वा यथान्याय[7]मस्थीन्यभ्युक्ष्य वारिणा।
यात्रा सफलतामेति सत्यं सत्यं वरानने ।।

करंक नामक इस शुभ तीर्थ में निश्शङ्क होकर स्नान करना चाहिए। हे वरानने ! श्राद्ध कर यथान्याय जल से अस्थियों को सींचकर यात्रा सफल होती है, यह सत्य, सत्य है।

[8]······न्मुच्येत करंके[9] जल उत्तमे।
स्नात्वा पीत्वा च भुक्त्वा च श्राद्धं कृत्वा महेश्वरि ।।

हे महेश्वरि ! करंक के भीतर उत्तम जल में स्नान कर, पीकर, खाकर और श्राद्ध कर······ मुक्त हो जाए।

यः करंकं महाक्षेत्रं समुल्लङ्घ्या[10]न्यतो व्रजेत्।
स याति नरकं घोरं यात्रा तस्य च निष्फला ।।

---

१ स्वपर्णं निष्कालयत २ सद्यत्पाः ३ गरुत्मां च ४ त्वरितः ५ ततोत्सृ०
६ स्वतीर्थे ७ यर्थं ८ ग्रापेयमानान्मु० ९ कठंके, १० समुल्लघन्यतो।

जो करंक महाक्षेत्र का उल्लंघन कर दूसरी ओर जाए, वह घोर नरक को पाता है और उसकी यात्रा निष्फल होती है।

तस्मात्करंकं तीर्थं वै यत्नतः समुपाश्रयेत्।
स्पृष्ट्वा स्नात्वा जलं तत्र मुच्यते ह्युपपातकैः॥

इसलिए यत्नपूर्वक करंक तीर्थ का सेवन करे, उसमें जल का स्पर्श कर तथा स्नान कर उपपापों से मुक्त हो जाता है।

पितरंस्तृप्तिमायान्ति दत्तैः कारंककैर्जलैः।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन करंके निर्मले जले।
तर्पणं तत्र कर्त्तव्यं पितृणां तृप्तिहेतवे॥

करंक के जल देने से पितर तृप्त होते हैं। इसलिए सभी यत्नों से करंक के निर्मल जल में पितरों की तृप्ति के लिए तर्पण करना जाहिए।

करंकं जलमाश्रित्य पितरः स्वर्गतः सदा।
आस्फोटयन्ति नृत्यन्ति गाथां कुर्वन्ति सर्वतः॥

करंक के जल का आश्रय लेकर पितर सदा स्वर्ग से स्फोट करते है, नृत्य करते हैं और सब तरह से गाथा करते हैं।

अपि नः सुकुले[1] कश्चिज्जायते[2] जगतीतले।
तीर्थं करंकं श्रयते तर्पयेन्नः[3] समागतान्॥

क्या हमारे सुन्दर कुल में इस संसार के भीतर कोई पैदा होता है, जो करंक तीर्थ पर जाए और आए हुए हमारा तर्पण करे।

इति नित्यं महेशानि स्वर्गे पितृगणाः सदा।
सर्वतो गीतिकां देवि गायन्ति च विशेषतः॥

हे महेशानि! इस प्रकार नित्य पितर स्वर्ग में हे देवि! सब तरह से गीतिकाएं विशेष कर गाते हैं।

इति सर्वं मयाख्यातं[4] क्षेत्रं कारंकमुत्तमम्।
अधुना शृणु देवेशि शत्रगेहाभिधं पुरम्।

हे देवेशि! इस प्रकार मैंने उत्तम करंक क्षेत्र के विषय में सब कुछ कह दिया है। हे देवेशि! अब तुम शत्रगेह नामक पुर के विषय में सुनो।

इति [5]श्रीसंहितायां करंकनदीमाहात्म्यं नाम पटलः।

---

१ सकुले २ जायंती ३ तर्पये नः ४ ख्यातां ५ श्री श्री संहितायां।

भैरव उवाच—भैरव बोले—

[1]शत्रगेहाभिधं वक्ष्ये शृणु पापभयापहम् ।
यस्य श्रवणमात्रेण न विघ्नाः प्रभवन्ति हि ॥

पापों के भय को नष्ट करने वाले 'शत्रगेह' नामक तीर्थ के विषय में मैं कहता हूँ, सुनिए, जिसके सुनने मात्र से विघ्न पैदा नहीं होते हैं ।

पुरा परशुरामेण कार्तिकेयो विनायकः ।
स्पर्धां चक्रे ततो राम[2]··· ॥

पूर्वयुग में कार्तिकेय और विनायक ने परशुराम जी के साथ स्पर्धा की । इसके बाद···

आधिक्याल्लाघवादासीदधिको[3]ऽपि तयोश्च सः ।
विघ्नान्नाज्ञापयामास गणेशः सुरसुन्दरि ॥

उन दोनों में वह गणेश आधिक्य लाघव से अधिक भी था । हे सुरसुन्दरि ! गणेश ने विघ्नों को आज्ञा दी ।

रामशस्त्रं नाशयन्तु विघ्ना ह्यते मयोदिता[4] ।
शत्रुभूता भवन्त्यद्य चास्त्रैर्वै विघ्नकारिणः ॥

रामशस्त्र को नष्ट कर दो, यह मैंने विघ्नों को कहा । तुम आज ही अपने अस्त्रों से शत्रु बनकर विघ्न करने वाले हो जाओ ।

रामस्य शस्त्रभूतास्ते ह्यभवन्[5]-लक्ष्यपातने[6] ।
रामो[7]······तस्थौ के [8]विघ्नं प्रचरन्ति मे ॥

राम के शस्त्र बने हुए वे लक्ष्य···

ईशं विज्ञाप्य देवेशि शब्दपातिनमाहरत् ।
मन्त्रं जजाप [9]विधिवच्छब्दपातिनमाहवे ॥

हे देवेशि ! ईश से निवेदन कर शब्दपाती अस्त्र को उठाया और युद्ध में विधिपूर्वक शब्दपाती (अस्त्र) मन्त्र का जप किया ।

---

१ शत्रुगेहा., २ उत्प्राश्रमकरोतु यो:, ३ दधिकोपि, ४ मयोदितः,५ ह्यभवं ६ लक्ष्य., ७ रामोर्ध्वयंश्चिरं, ८ विघ्नं, ९ विधिवशब्द. ।

तेनास्त्रेण महेशानि भार्गवो विधिना ततः ।
विघ्नान्संक्षोभयामास शत्रुगेहस्थितांस्तदा ॥

हे महेशानि ! इसके बाद भार्गव ने विधिपूर्वक उस अस्त्र से तब शत्रुगेह में स्थित विघ्नों को······ क्षुब्ध किया ।

रामेण क्षोभिता ह्यासन्बाणेन शब्दपातिना ।
यत्र स्थिता महाविघ्नाः शत्रुभूता महेश्वरि ॥

शब्दपाती बाण द्वारा राम से क्षुब्ध किये हुए वे महाविघ्न हे महेश्वरि !

तस्मात्प्रसिद्धो ग्रामो ऽ[1]भूच्छत्रुगेहाभिधः प्रिये ।
शत्रुगेहे जपो होमस्तपः[2] स्वाध्याय एव च ।
यात्यानन्त्यं महेशानि सत्यं सत्यं मयोदितम् ॥

हे प्रिये ! इसी से वह 'शत्रुगेह' नाम से गाँव प्रसिद्ध हुआ । शत्रुगेह में जप, होम, तप और स्वाध्याय, हे महेशानि ! अनन्तता को प्राप्त होता है । यह मैंने सच-सच कहा है ।

न विघ्नाः[3] प्रभवन्त्यत्र शत्रुगेहे महेश्वरे ।
दृष्ट्वा वै शत्रुगेहाख्यं नगरं सुन्दरं[4] प्रिये ॥

इस महेश्वर शत्रुगेह में हे प्रिये ! शत्रुगेह नामक सुन्दर नगर को देखकर विघ्न पैदा नहीं होते हैं ।

नश्यन्ति पापसंघाताः पुण्यं चैव विवर्धते ।
यः शत्रुगेह[5]······पूजिते स्नायाच्च तत्पुण्यजले विधिज्ञः ।
पितॄंश्च[6] संतर्प्य[7] विभुं प्रपूज्य स याति सायुज्यमपीश्वरस्य ॥

और पापसमूह नष्ट हो जाता है तथा पुण्य बढ़ता है । जो विधिज्ञ······ पूजित उस पुण्य-जल में स्नान करे और पितरों का तर्पण तथा विभु की पूजा करे वह ईश्वर के सायुज्य को प्राप्त होता है ।

शत्रुगेहं[8] गतस्यापि पितॄणां श्राद्धकारिणः ।
पितरस्तृप्तिमायान्ति यात्रा[9] च सफला भवेत् ॥

शत्रुगेह में जाकर पितरों का श्राद्ध करने वाले के पितर तृप्त होते हैं और यात्रा सफल होती है ।

शत्रुगेहं समासाद्य विष्णुपूजां करोति यः[10] ।
स याति विष्णुसायुज्यं यत्र गत्वा न शोचते ॥

---

१ ग्रामोभूशत्रु., २ होमोस्तपः, ३ विघ्नः, ४ स्वन्दरं, ५ सुवर्द्यं ६ पितॄंश्च, ७ संवर्प्य, ८ शत्रगेहं, ९ यत्रा, १० या ।

शत्रुगेह को पाकर जो विष्णु की पूजा करता है, वह विष्णु के सायुज्य को पाता है, जहां जाकर शोक नहीं होता।

शत्रुगेहं समासाद्य पुरश्चर्यां करोति यः।
मन्त्रसिद्धिर्भवेत्तस्य देवदर्शनमाप्नुयात्[1] ॥

शत्रुगेह को पाकर जो पुरश्चर्या करता है, उसे मन्त्रसिद्धि प्राप्त होती है और देवदर्शन होता है।

शत्रुगेहं परो गच्छेद्रामाराधनमीश्वरि।
यत्र स्नात्वा च जप्त्वा च परं पदमवाप्नुयात् ॥

हे ईश्वरि ! शत्रुगेह के बाद रामाराधन को जाए, जहां स्नान कर और जप कर परम पद को पाता है।

इति ते कथितं देवि शत्रुगेहाभिधं पुरम्।
करंकमपि ईशानि तीर्थं परमपावनम् ॥

हे देवि ! यह शत्रगेह नामक पुर तुझे कहा है। हे ईशानि ! और करंक नामक भी परम पवित्र तीर्थ कहा है।

यच्छ्रुत्वा च पठित्वा च गङ्गास्नानफलं[2] लभेत्।

जिसे सुनकर और पढ़कर गङ्गा स्नान का फल प्राप्त करता है।

इति श्री[3]संहितायां लहरविषयोपजाततीर्थसंग्रहे शत्रुगेहनाम-माहात्म्यं पटलः ॥

१ दर्शनकां मा. २ गङ्गास्नानं, ३ इति श्रीश्रीसंहितायां।

भैरवी—

वद सत्यं महादेव रामाराधनकं पुरम्।
देवदेवो महेशानो रामेणाराधितः कथम्॥

हे महादेव ! रामाराधनक पुर के विषय में सत्य-सत्य कहिए। देवाधि-देव महादेव जी की राम ने आराधना कैसे की ?

तीर्थं कथं समुद्भूतं कृपया परमेश्वर।

हे परमेश्वर ! वह तीर्थ कैसे पैदा हुआ, कृपा करके कहिए।

श्रीभैरव उवाच—श्री भैरव बोले—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि रामेणा[1]राधितं यथा।
देव्या सह महादेवो भैरवो[2]··· रसार्तिहा॥

हे देवि ! सुनिए, मैं कहता हूँ—जैसे राम ने देवी के साथ महादेव-भैरव की आराधना की।

अस्त्रं जिज्ञासमानेन रामेण सुमहात्मना।
अत्रैव सुमहत्तप्तं तपः परमदारुणम्॥

महात्मा राम ने अस्त्र की जिज्ञासा करते हुए यहीं परमदारुण और महान् तप तपा।

निराहारो महाकालं काल्या सह महेश्वरि।
सम्यगा[3]सादयामास समा द्वादश [4]सुन्दरि॥

हे महेश्वरि ! सुन्दरि ! निराहार रहकर काली के साथ महाकाल को अच्छी तरह १२ वर्षों के बाद प्राप्त किया।

तस्यैवं वर्तमानस्य भार्गवस्य महात्मनः।
कल्पैः[5] सह महाकालो दर्शनं [6]समुपेयिवान्॥

उस महात्मा भार्गव को वर्षों पर्यन्त तपस्या करते हुए महाकाल के दर्शन हुए।

दृष्ट्वा देवं महाकालं कालिकाङ्गं महाप्रभुम्।
भार्गवः पतितो भूमौ दण्डवत्सुरपूजिते॥

---

१ रामेणाधितो, २ ण्णरसा., ३ सम्यक्यसादया., ४ स्वन्दरि, ५ कल्पा सह, ६ समुपेयित्वान्।

हे सुरपूजिते ! कालिका के साथ महाकाल देव को देखकर भार्गव जी दण्डवत् प्रणाम करते हुए भूमि पर पड़ गए ।

हर्षगद्गदया वाचा भैरवं समुदैरयत् ।

हर्ष से गद्गद वाणी से भैरव जी को कहा ।

भार्गव उवाच—भार्गव बोले—

कल्पान्तकालाग्निसमानभासं चतुर्भुजं कालिकयोपजुष्टम् ।
कलापखट्वाङ्गवरभयाढ्यकरं [1]महाकालमनन्तमीडे[2] ॥

प्रलयकाल की अग्नि के समान तेज वाले, चार भुजाओं से युक्त, कालिका से सेवित और······अनन्त महाकाल की स्तुति करता हूँ ।

नमः परमरूपाय परामलसुरूपिणे ।
नियतिप्राप्तदेहाय तत्त्वरूपाय ते नमः ॥

परमरूप और परामलसुरूप, तुझे नमस्कार हो । नियतिप्राप्तदेहयुक्त और तत्त्वरूप तुझे नमस्कार है ।

नमः परमरूपाय परमायैकरूपिणे ।
वियन्मायास्वरूपाय भैरवाय कपर्दिने ॥

परमरूप, परम, एकरूप, बियन्मायास्वरूप, सुरूप, भैरव और कपर्दी को नमस्कार हो ।

ॐ नमः परमेशाय परतत्त्वार्थदर्शिने ।
वियन्मात्राद्यधीशाय धीविचित्राय शम्भवे ॥

परमेश, परतत्त्वार्थदर्शी, वियन्मात्रादियों का अधीश धीविचित्र, शम्भु को नमस्कार हो ।

त्रिलोकेशाय [3]गूढाय सूक्ष्मायाव्यक्तरूपिणे ।
पराकाष्ठादिरूपाय पराय शम्भवे नमः ॥

त्रिलोकेश, गूढ, सूक्ष्म, अव्यक्तरूप वाले, पराकाष्ठादिरूप वाले, पर शम्भु को नमस्कार हो ।

ॐ नमः कालिकांकाय कालांजननिभाय ते ।
जगत्संहारकर्त्रे[4] च महाकालाय ते नमः ॥

कालिकांक, कालांजन के समान, तुझे नमस्कार हो । संसार का संहार करने वाले और महाकाल तुझे नमस्कार हो ।

नमः उग्राय देवाय[5] भीमाय भयदायिने ।[6]
महाभयहृते तुभ्यं सृष्टिसंहारकारिणे ॥

१ माहाकालंमनंत, २ मीरे, ३ गूढा; ४ कत्रे, ५ देवा, ६ दायि दायिने ।

उग्र, देव, भीम, भय देने वाले, महाभय का हरण करने वाले और सृष्टि का संहार करने वाले, तुझे नमस्कार हो ।

नमः परपरानन्दस्वरूपाय महात्मने ।
परप्रकाशरूपाय[1] प्रकाशानां प्रकाशिने ।।

परपरानन्दस्वरूप, महात्मा, परप्रकाशरूप और प्रकाशों को प्रकाशित करने वाले, तुझे नमस्कार हो ।

ॐ नमो ध्यानगम्याय योगिहृत्पद्मवासिने ।
वेदतन्त्रार्थगम्याय वेदतन्त्रार्थदर्शिने ।।

ध्यानगम्य, योगिहृत्, पद्मवासी, वेदतन्त्रार्थगम्य और वेदतन्त्रार्थदर्शी, तुझे नमस्कार हो ।

वेदागमपरामर्शपरमानन्ददायिने ।
तन्त्रवेदान्तवेद्याय शम्भवे विभवे नमः ।।

वेदागमपरामर्श, परमानन्ददायी, तन्त्रवेदान्तवेद्य, विभु, शम्भु, तुझे नमस्कार है ।

धियां प्रवोधकं[2] यत्तु परमं ज्योतिरुत्तमम् ।
तत्प्रेरकाय देवाय परमज्योतिषे नमः ।।

जो बुद्धियों का प्रेरक है, जो उत्तम परम ज्योति है । उसके प्रेरक, परमज्योतिष, देव को नमस्कार है ।

गुणाश्रयाय देवाय निर्गुणाय कपर्दिने ।
अतिस्थूलाय देवायातिसूक्ष्माय ते नमः ।।

गुणाश्रय, देव, निर्गुण, कपर्दी, अतिस्थूल और अतिसूक्ष्म देव, तुझे नमस्कार है ।

त्रिगुणाय[3] अर्धांशाय[4] शक्तित्रितयशालिने ।
नमस्त्रिज्योतिषे तुभ्यं [5]त्र्यक्षाय च त्रिमूर्तये ।।
वाचा[6]मगोचरं देवमनन्तं चित्सुरूपिणम् ।
भक्त्या स्तुवन्मुहुश्चापि न जिह्लेमि[7] महेश्वर ।।

हे महेश्वर ! वाणियों से अगोचर, देव, अनन्त, चित्सुरूप, तेरी भक्ति पूर्वक बार-बार स्तुति करते हुए, मैं लज्जित नहीं होता हूँ ।

---

१ रूपा, २ प्रवोदकं, ३ त्रिगुणाय, ४ अर्धांशाय, ५ त्रिक्षाय, ६ मघोचरं, ७ जिह्लीमि ।

कीर्त्यमाने यन्महिम्नि ब्रह्मादीनामपीश्वर ।
वाचः प्रकुण्ठिता यत्र मम का तत्र वर्णना ।।

हे ईश्वर ! जो तुम्हारी महिमा का वखान करने पर ब्रह्मा आदि की भी वाणिएं जहाँ कुण्ठित हो जाती हैं वहाँ मेरी क्या वर्णना है ।

भैरव उवाच—भैरव बोले

इति स्तुत्वा महेशानं दण्डवत्पादयोः पतन् ।
[1]मुहुर्मुहुः स चोत्थाय नमः चक्रे स भार्गवः ।।

इस प्रकार महेशान की स्तुति कर, पैरों में दण्डवत् गिरते हुए उस भार्गव ने उठकर बार-बार नमस्कार किया ।

श्रुत्वा स्तवं महाकालो भार्गवस्य महेश्वरि ।
उवाच सान्त्वयन्रामं वाचा परमयानिशम् ।।

हे महेश्वरि ! महाकाल भार्गव की स्तुति सुनकर परमवाणी से बार-बार राम को सान्त्वना देते हुए बोले ।

देव उवाच— देव बोले

सा[2]···भार्गव तुष्टो[3]ऽस्मि भक्त्या[6]परमया भृशम् ।
शमेन च दमेनापि तपसापि स्तवेन च ।।

हे भार्गव ! मैं तेरी परम भक्ति, शम, दम, तप और स्तुति से बहुत प्रसन्न हूँ ।

इदं स्तोत्रं च यो नित्यं पठति[4] नियतः सदा ।
स चाप्नोति महत्पुण्य[5]मश्वमेधादियज्ञजम् ।।

जो सदा संयमित होकर नित्य यह स्तोत्र पढ़ता है, वह अश्वमेध आदि यज्ञों से पैदा होने वाले महापुण्य को पाता है ।

इदं स्तोत्रं पठन्वीरः साधकः सिद्धिमाप्नुयात् ।
पुरश्चरमवाप्नोति वेदपारायणं फलम् ।।

वीर साधक इस स्तोत्र को पढ़ते हुए सिद्धि को पाए । पुरश्चरण और वेदपारायण के फल को पाता है ।

इमं स्तवमधीयानः शुचिस्तद्गतमानसः ।
यद्यन्मनसि कुर्याद्वै तत्तदाप्नोत्यसंशयम् ।।

इस स्तोत्र को पढ़ते हुए शुद्ध-बुद्ध और उसी में मन लगाए हुए जो-जो

---

१ महर्मुहुः, २ मू० पा० लि० में पाठाभाव, ३ तुष्टोस्मि, ४ पठते, ५ त्पुण्यं अश्व., ६ 'नः मू० पा० लि० में नहीं है ।

मन में करे, वह-वह पा लेता है। इसमें संशय नहीं है।

कामिनां[1] कामदं नोक्त[2]मकामानां च मोक्षदम्।
बहुनात्र किमुक्तेन पठन्स्तवमनुत्तमम्॥

कामियों के लिए यह काम देने वाला है और अकामियों को यह अत्युत्तम स्तोत्र पढ़ते हुए मोक्ष देने वाला है। इसमें बहुत कहने से क्या लाभ?

शृण्वन्नपि समाप्नोति शिवज्ञानमसंशयम्।
श्रुत्वैतद्वचनं देवि भार्गवो द्विपदां वरः।
प्रोवाच तं महादेवं[3] भक्तिनम्रः कृताञ्जलिः॥

सुनकर भी निस्सन्देह शिवज्ञान पाता है। हे देवि! यह वचन सुनकर मनुष्यों में श्रेष्ठ भार्गव भक्तिपूर्वक नम्र हो कर और दोनों हाथ जोड़कर उस महादेव से बोले।

योगिनां[4] यो हृदि गम्यं स सन्दर्शपदं गतः।
पदे पदे महाकालस्तस्मात्को वर उत्तमः॥

योगियों के भी जो हृदय में गम्य है वह महाकाल कदम-कदम पर दृष्टिगोचर हुए, इससे बढ़कर कौन सा उत्तम वर है।

तथापि या च देवेशि अस्त्राणां विधि[5]रुत्तमा।

हे देवेशि! तो भी अस्त्रों की जो उत्तम विधि है, उसे कहिये।

इति श्रुत्वा वचस्तस्य भार्गवस्य महात्मनः।
प्रोवाच वचनं देवो हर्षयन्परया गिरा॥

इस प्रकार उस महात्मा भार्गव के वचन सुनकर प्रसन्न होते हुए देव ने परम वाणी से कहा।

देव उवाच—देव बोले—

इहैव [6]सुरगिरौ रम्ये तथाभारमहे दृढे।
अस्त्राणि मत्तः शिक्षस्व[7] सरहस्यानि चानघ॥

इसी रमणीय देवगिरि पर...

हे अनघ! रहस्ययुक्त अस्त्रों की मुझ से शिक्षा प्राप्त करो।

भरतं तरति चास्त्राणां यतस्त्वत्तेजसो[8]ऽपि च।
तस्मात्प्रोक्तः[9] पुराविद्भिर्भरतो नाम वै गिरिः॥

अस्त्रों के और तुम्हारे तेज से भी...

---

१ कामिना २ प्रोक्तमकामानां ३ महादेव, ४ योगिना, ५ विधिमुत्तमं, ६ सुगिरी, ७ शिक्ष्यस्व, ८ त्तेजसोपि, ९ त्प्रोक्ता।

इसी से पुरातत्ववेत्ताओं ने इसे भरत नामक पर्वत कहा है।

भरतो नति (?) चास्त्राणां यतो भार्गवतेजसः।
तस्माद्भविष्यति ख्यातो भरतो गिरिरुत्तमः॥

क्योंकि भार्गव के तेज से……इसी से वह उत्तम भरत गिरि प्रसिद्ध हुआ।

तस्मात्त्वं[1] पठ विप्रर्षे कुमारेण समं तथा।
गणेशेनापि चास्त्राणि सांगोपांगानि भार्गव॥

हे विप्रर्षे ! भार्गव ! इसलिए तुम कुमार और गणेश के साथ साङ्गोपाङ्ग अस्त्रों को पढ़ो।

कुमाराद्गणपाच्चापि प्रियो मे त्वं भविष्यसि।

कुमार से और गणेश से भी तू मेरा प्रिय होगा।

इमं रामाराधनकं तीर्थं परमपावनम्।
यत्र स्नानं जपं[2] होमं स्वाध्यायं तप उत्तमम्।
करोति विधिवद्विप्रः स याति परमं पदम्॥

यह परमपवित्र रामाराधनक तीर्थ है, जहां जो ब्राह्मण स्नान, जप, होम, स्वाध्याय और उत्तम तप करता है, वह परम पद को पाता है।

भैरव उवाच—भैरव बोले—

इति दत्वा वरं तस्मै भार्गवाय महात्मने।
महाकालो महेशानि तत्रैवान्तरधीयत॥

हे महेशानि ! इस प्रकार उस महात्मा भार्गव को वर देकर महाकाल वहीं अन्तर्धान हो गए।

तदा प्रभृति तत्रैव भूतेशमर्चयन्मुहुः।
अशिक्षत्परमास्त्राणि सरहस्यानि भार्गवः॥

तब से लेकर वहीं उस भार्गव ने बार-बार भूतेश की अर्चना की और रहस्यपूर्ण परम-अस्त्रों की शिक्षा प्राप्त की।

तदा प्रभृति देवेशि रामाराधनकं परम्।
पावनं पतितानां च महापातकिनामपि॥

हे देवेशि ! तब से लेकर यह परम रामाराधनक पतितों और पापियों को भी पवित्र करने वाला है।

---

१ तस्मात्ते, २ जपो।

रामाराधनकं तीर्थं दृष्ट्वा मुच्येत संकटात् ।
स्नात्वापि प्रतिमुच्येत जन्मान्तरभवैरघैः ।।

रामाराधनक तीर्थ को देखकर संकट से मुक्त हो जाए और स्नान करके भी जन्मान्तर में पैदा हुए पापों से छुटकारा पा ले ।

रामाराधनकं तीर्थं दृष्ट्वा[1] स्नाति न यो नरः ।
तस्य स्नानं निष्फलं स्याद्गंगायाः[2] सुरपूजिते ।।

रामाराधनक तीर्थ को देखकर जो मनुष्य स्नान नहीं करता है, हे सुरपूजिते ! उसका गङ्गास्नान निष्फल होता है ।

तस्माद्रामाराधनकं तीर्थं परमपावनम् ।
स्नायाच्च परया भक्त्या नरो मुक्तिमवाप्नुयात् ।

इसलिए परम पावन रामाराधनक तीर्थ में परम भक्तिपूर्वक स्नान करे और मनुष्य मुक्ति पाए ।

इति ते कथितं देवि रामाराधनकं परम् ।
यच्छ्रुत्वा मुच्यते जन्तुर्महापातककोटिभिः ।।

हे देवि ! इस प्रकार यह परम रामाराधनक तीर्थ तुम्हें कहा है, जिसे सुनकर जन्तु करोड़ों महापापों से मुक्त हो जाता है ।

दर्शनान्नरस्तस्येह[3] गिरेः परमपावनात् ।
मोक्षमाप्नोति मनुज इति सत्येन ते शपे ।।

उस गिरि के परमपावन दर्शन से मनुष्य मोक्ष पाता है, यह सत्य की सौगन्ध खा कर मैं तुझे कहता हूँ ।

इति [4]श्रीसंहितायां समाराधनभरतगिरिवर्णनं नाम चतुर्थः पटलः ।

---

१ पश्येत्स्नाति, २ स्या गंगायाः, ३ दर्शनान्नर तस्येह, ४ श्री श्रीसंहितायां ।

श्रीभैरवी उवाच—श्री भैरवी बोलीं

श्रावं श्रावं महादेव रामाराधनकं परम्।
तीर्थं च परमेशान भरतं गिरिमुत्तमम्॥

हे महादेव! परमेशान! परम रामाराधनक और उत्तम भरत गिरि तीर्थ के विषय में सुन-सुन कर—

कृतार्थास्मि कृतार्थास्मि कृतार्थास्मि न संशयः।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि दृषत्क्षेत्रमपीश्वर॥

कृतार्थ हूं, कृतार्थ हूँ, कृतार्थ हूँ, इसमें संशय नहीं है। हे ईश्वर! अब दृषत्क्षेत्र के विषय में भी मैं सुनना चाहता हूँ।

महिषीमार्गमीशान तथा ब्रह्मसरो महत्।
हंसद्वारमपीशान वद मे कृपया शिव॥

हे ईशान! शिव! महिषीमार्ग तथा महाब्रह्म सरोवर एवं हंसद्वार के विषय में भी कृपा करके कहिए।

भैरव उवाच—भैरव बोले—

शृणु सुन्दरि [1]वक्ष्येऽहं दृषत्क्षेत्रं महत्परम्।
यद्दर्शनादवाप्नोति गङ्गास्नानं दिने दिने॥

हे सुन्दरि! महान् और परम दृषत्क्षेत्र के विषय में सुनिए, जिसके दर्शन से प्राणी प्रतिदिन गङ्गास्नान को पाता है।

अस्त्राण्यभ्यस्यमानस्य भार्गवस्य महात्मनः।
कलहः समभूद्देवि गणेशेन समं तदा॥

हे देवि! अस्त्रों का अभ्यास करते हुए महात्मा भार्गव का झगड़ा गणेश के साथ तब हुआ।

कुमारेण[2] च देवेशि खुरलीकलहोऽभूत्।

और हे देवेशि! कुमार के साथ खुरली कलह हुआ।

तथा विवादमानस्य बाणान्संघर्षयन्भृशम्।
भर्त्सय[3]न्कार्तिकेयं च गणेशमपि सुन्दरि।
तथा विवदतोरेवं भृगुगणपयोःभृशम्।
शिवयोश्च मिथो जातो हासः परमहर्षतः॥

---

१ वत्स्येहं, २ कुमारीण ३ भत्सयं कार्तिकेयं,

हे सुन्दरि ! इस तरह झगड़ते हुए उसके बाणों को बार बार घिसते हुए तथा कार्तिकेय और गणेश को भी डांटते हुए एवं भार्गव और गणपति इस तरह बहुत झगड़ते हुए, शिवस्वरूप दोनों में परस्पर परम हर्षकपूर्वक हास हुआ।

शिवश्च कथयामास भार्गवं गणपं तथा।
कुमारमपि[1] चेशानो गिरिं प्रहरन्तं[2] भृशम् ।।

शिव, ईशान ने भार्गव, गणपति एवं गिरि पर प्रहार करते हुए कुमार को भी बहुत कहा।

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य कुमारः प्राहरच्च तम्।
अर्धं गिरिं प्रहृत्वा तु विरमद्गण उत्तमः ।।

उसके वचन को सुनकर कुमार ने उस पर प्रहार किया। आधे गिरि पर प्रहार कर उत्तम गणपति विराम करने लगे।

दृष्ट्वा[3] गिरिं ह्यर्धच्छिन्नं शिवः प्रोवाच भार्गवम्।
अस्त्रं दर्शय विप्रर्षे प्रहर गिरिमुत्तमम् ।।

आधे कटे गिरि को देखकर शिव ने भार्गव से कहा — हे विप्रर्षे। अस्त्र दिखाओ और उत्तम गिरि पर प्रहार करो।

श्रुत्वैतद्वचनं तस्य देवदेवस्य सुन्दरि।
प्राहरद्भार्गवः शीघ्रं गिरितुङ्गं महेश्वरि।

हे सुन्दरि ! उस देवाधिदेव के ये वचन सुनकर हे महेश्वरि ! भार्गव ने शीघ्र उस ऊँचे गिरि पर प्रहार किया।

छित्वा तु गिरि[4]शृङ्गं तं भार्गवो हर्षितः प्रिये !
रामः प्रोवाच वचनं घर्षयन्बाणमुत्तमम् ।।

हे प्रिये ! उस गिरिशिखर को काटकर भार्गव प्रसन्न हुए और उत्तम बाण को घिसते हुए परशुराम जी ने यह वचन कहा।

दृषत्सु[5] बाणैर्युवयोः श्मश्रूणि[6] निर्वपयाम्यहम्[7]।
यस्मात्कृतोऽत्र[8] संघर्षो बाणानां श्मश्रुलुञ्चने।
भार्गवेण[9] दृषत्क्षेत्रे नापिताख्यं मतं पुरा ।।

तुम दोनों के बाणों से पत्थरों पर श्मश्रुओं को मैं काटता हूं जिससे

---

१ कुमारं अपि, २ प्रहरतं, ३ दृष्टं, ४ गिशृगं, ५ दृष्यत्सु, ६ श्मश्रुनि, ७ वीपया०, ८ तकृतोत्र, ९ भार्गवेन।

यहां श्मश्रुश्रों के काटने में बाणों का संघर्ष हुश्रा। पूर्व युग में दृषत्क्षेत्र के भीतर भार्गव ने नापित का कार्य किया ऐसा माना गया है।

दृषद्दर्शनमात्रेण वाजपेयफलं लभेत्।
प्रभाते विमले शुद्धे दृषत्क्षेत्रस्य सुन्दरि।
दर्शनं कुरुते यस्तु स याति परमं पदम्॥

दृषत् के दर्शनमात्र से मनुष्य वाजपेय यज्ञ के फल को पाए। हे सुन्दरि ! शुद्ध-विमल प्रभात के समय दृषत्क्षेत्र का जो मनुष्य दर्शन करता है, वह परम पद को पाता है।

दृष्ट्वैतच्चरितं तस्य भार्गवस्य महात्मनः।
जहास परमेशानो विस्मितः परहर्षितः॥

उस महात्मा भार्गव के इस चरित्र को देखकर परम प्रसन्न और विस्मित परमेशान हँसने लगे।

[1]हसन्तं तं महादेवं दृष्ट्वा देव्यतिकोपिता[2]।
हरं जगाद गिरिजा ··[3]र्वाग्भिरुत्तमम्॥

हंसते हुए उस महादेव को देखकर देवी बहुत क्रुद्ध हो गईं और पार्वती ने उत्तम महादेव को··· वाणियों से कहा।

श्मशानमाश्रय विभो गार्हस्थ्ये[4] च किं तव।
यत्परं शिक्षयस्वैवं स्वतनूजौ[5] न शिक्षयेः॥
मूर्खौ स्वौ दृष्टौ तनुजौ हसन्हृष्टो न लज्जसे।
यथेच्छं कुरु शम्भो त्वं गच्छ वा तिष्ठ वा शिव॥

अपने मूर्ख तनूजों को देखो, प्रसन्न होकर हँसते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आती है। हे शम्भो ! अपनी इच्छानुसार तुम काम करो। हे शिव ! तुम जाओ या ठहरो।

एतच्छ्रुत्वा वचो देव्याः शिवः परमदारुणाम्।
रूपं कृत्वा महेशानि ह्यन्तर्धानमभूत्तदा॥

हे महेशानि ! देवी के परमदारुण वचन सुनकर तब रूप को धारण कर शिव अन्तर्धान हो गए।

देव्यदृष्ट्वा[6] महादेवं पश्चात्तापमगात्ततः।
तथा सन्तप्यमाना तु जगाम सुरसुन्दरि॥

---

१ हेसग्तं, २ कोपितः, ३ मू० पा०लि० में पाठाभाव, ४ स्त्येन च, ५ तनोजा, ६ देव्यदृष्टा।

इसके बाद महादेव को न देख कर देवी पश्चात्ताप को प्राप्त हुई तथा हे सुरसुन्दरि ! सन्तप्त हुई चली गई ।

तेन मार्गेण सन्तप्ता महिषीवदधोमुखी ।
यस्मादधोमुखी देवी तेन मार्गेण सुन्दरि ।[1]
तस्मात्पुरातनैः प्रोक्तो महिषीमार्ग उत्तमः ।।

जिस मार्ग से सन्तप्त हुई वह महिषी की तरह नीचे की ओर मुख किए हुए चल पड़ी उसी से पुरातन पुरुषों ने उसे उत्तम महिषीमार्ग कहा है ।

यो गच्छेन्महिषीमार्गे ब्रह्मणः सर उत्तमम्[2] ।
पदे[3] पदेऽश्वमेधस्य फलमाप्नोति [4]सुन्दरि ।।

जो महिषी मार्ग से ब्रह्मा के उत्तम सरोवर को जाए । हे सुन्दरि ! वह पद-पद पर अश्वमेध के फल को पाता है ।

गंगायात्रा द्विगुणा[5] स्यात्त्रिगुणा वा महेश्वरि ।
[6]स ··स्तु गच्छेत्पादे···देव्याः[7] प्रयत्नतः ।
स मज्जतः पदे तस्याः शुभे ब्रह्मसरोवरे ।।
दृष्ट्वा ब्रह्मसरस्तत्र पप्रच्छ जगदम्बिका ।
किं त्वया देवदेवेशो न दृष्टः[8] शम्भुरुत्तमः ।।

वहां ब्रह्मसर को देखकर जगदम्बिका ने पूछा—क्या तूने देवदेवेश उत्तम शम्भु को देखा है ?

श्रुत्वैत[9]त्सरो वाक्यमुवाच जगदम्बिकाम् ।
न मया देवदेवेशि शम्भुर्दृष्टो ह्यनुत्तमः ।।

यह वचन सुनकर सर ने जगदम्बिका से कहा कि हे देवदेवेशि ! मैंने अत्युत्तम शम्भु को नहीं देखा है ।

श्रुत्वैतत्सरसो वाक्य[9]···मम्बिका स्वयम् ।
जगाम परसन्तापं तस्मिन्गिरिवटे[10] तदा ।।
मुञ्चन्ती परमा[11]श्रूणि ह्यरुद[12]ज्जगदम्बिका ।
तदात्र शोकजैरेवाश्रुभिः[13] समपद्यत ।।
[14]उष्णं सरोवरं दिव्यं महापातकनाशनम् ।

परम आँसुओं को बहाती हुई जगदम्बिका रोने लगी । तब वहां शोक से

---

१ सुन्दरी, २ उत्तमः, ३ पदेश्व., ४ स्वन्दरि ५ स्यात्रिगुणा, ६ संतपायास्तु, ७ त्पादेवदेव्या प्रय., ८ दृष्टाः, ९ श्रुत्वौतत्सरसो, १० निरिवरे, ११ मास्रणि, १२ ह्यरुदजग., १३ रेवमस्रुभिः १४ उस्मं ।

पैदा हुए आँसुओं से महापापों को नष्ट करने वाला दिव्य गर्म सरोवर पैदा हुआ ।

ततो जगाम देवी सा ह्यु च्चैर्हरमुखाभिधम् ।
ददर्श देवदेवेशं तत्रैव सुरपूजिते ॥

इसके बाद वह देवी ऊँचे हरमुख नामक स्थान पर गई और हे सुरपूजिते ! वहीं देवेदेवेश को देखा ।

दृष्ट्वा हर्ष [1] परीताङ्गी प्रफुल्लवदनप्रभा ।
हरेणा[2] लिङ्गयामास हर्षनिर्भरमानसा ॥

उन्हें देखकर हर्षयुक्त अङ्गों से और फूले हुए वदन की प्रभा से युक्त और हर्ष से भरे मन वाली उसने महादेव का आलिङ्गन किया ।

[3]तत्तीर्थेन सहिता च ह्यागता च महेश्वरि ।
पुनरश्रूणि मुञ्चन्ती हर्षनिर्भरमानसा ॥

हे महेश्वरि ! उस तीर्थ के साथ हर्ष से भरे मन वाली वह फिर आंसु को बहाती आई ।

तदभूच्च सरो देवि द्वितीयं शीतलं[4] महत् ।
तदा शशाप देवेशि शुभं ब्रह्मसरो महत् ॥

हे देवि ! वह दूसरा महाशीतल सरोवर हुआ । हे देवेशि । तब शुभ उस महाब्रह्म सरोवर को शाप दिया ।

[5]···तु भवेद्दत्तं विशीर्णं सर उत्तमम् ।
तदा प्रभृति देवेशि विशीर्णमभवत्सरः ॥

हे देवेशि ! तब से लेकर वह सर विशीर्ण हो गया ।

देवः[6] प्रोवाच दृष्ट्वा तच्छप्तं ब्रह्मसरोवरम् ।
पतिता[7]न्पावयंस्तिष्ठ सरोवर स्वयं चिरम् ॥

उस अभिशप्त ब्रह्मसरोवर को देखकर देव ने कहा कि हे सरोवर ! पतितों को पवित्र करते हुए तुम स्वयं चिरकाल पर्यन्त ठहरो ।

यावन्न क्रियते स्नानं श्राद्धं तज्जल उत्तमे ।
अस्थी-अभ्युक्षणे चैव तावद्गंगाफलं नहि ॥

उस उत्तम जल में जब तक स्नान और श्राद्ध नहीं किया जाता, तब तक अस्थियों के सींचने में गङ्गा का फल नहीं है ।

---

१ परीगी, २ हरसालि., ३ तेत्तेर्थेन ४ शीतल, ५ अनृता तु भवेदत्ते, ६ देवाः, ७ पतिता पाव.,

यावन्न क्रियते स्नानमस्मिंञ्जलसमागमे ।
तावन्न यात्रासाफल्यं भवेद्देव न संशयः ।।

जब तक इस जल समागम में स्नान नहीं किया जाता, तब तक हे देव ! यात्रा में सफलता नहीं है । इसमें संशय नहीं है ।

तस्मात्त्वमत्र तिष्ठस्व यावद्गंगा च तिष्ठति ।
पावयन्पतितान्[1] जन्तून्महापातकिनोऽपि[2] च ।।

इसलिए जब तक गंगा रहती है तब तक तुम पतितों और महापापी जन्तुओं को भी पवित्र करते हुए यहीं ठहरो ।

इति दत्वा वरं शम्भु[3]स्तत्रैवान्तरधीयत ।

यह वर देकर शम्भु वहीं अन्तर्धान हो गए ।

तस्मा[4] द्देवि प्रयत्नेन स्नायाद्ब्रह्मसरोवरे ।
मुच्यते सततं देवि कोटिजन्मभवैरघैः ।।

हे देवि ! इसलिए ब्रह्मसरोवर में यत्न से स्नान करे । हे देवि ! निरन्तर करोड़ों जन्मों में पैदा हुए पापों से मुक्त हो जाता है ।

किं पुरश्चरणे यत्नं करोति मूढधीः नरः ।
स्नात्वा ब्रह्मसरस्तोये पुरश्चरणमाप्नुयात् ।।

मूर्खबुद्धि पुरुष पुरश्चरण में क्या यत्न करता है । ब्रह्म सरोवर के जल में स्नान कर पुरश्चरण को पाए ।

इति ते कथितं देवि दृषदः[1]क्षेत्रमुत्तमम् ।
महिषीमार्गमीशानि[5] ब्रह्मणः सर उत्तमम् ।।

हे देवि ! इस प्रकार तुझे यह उत्तम दृषत्क्षेत्र और हे ईशानि ! महिषी मार्ग तथा ब्रह्मा के उत्तम सरोवर के विषय में कहा है ।

श्रुत्वा पठित्वा मुच्येत ब्रह्महत्यादिपातकैः ।

सुनकर और पढ़कर ब्रह्महत्या आदि पापों से मुक्त हो जाए ।

इति लहरविषयोपजाततीर्थसंग्रहे
दृषत्क्षेत्रमहिषीमार्गब्रह्मसरोवर्णनं नाम पटलः ।

---

१ न्पतिता जंतू., २ जे पातकिनोपि, ३, शम्भुः तत्रै., ४ तस्मादेवि ५ दृषदोक्षेत्र.

श्री भैरवी उवाच—श्री भैरवी बोलीं

स्मारं स्मारं महादेव पुण्यं ब्रह्मसरोवरम् ।
अद्य भाग्यवती चास्मि[1] कृतार्थास्मि न संशयः ।।

हे महादेव ! पुण्य ब्रह्म सरोवर को स्मरण कर, स्मरण कर आज मैं भाग्यवती हूँ, कृतार्थ हूं, इसमें संशय नहीं है ।

[2]अधुना श्रोतुमिच्छामि पुण्यं चाश्रु[3]जतीर्थजम् ।
हंसद्वारस्य माहात्म्यं तथा कौलसरोवरम् ।।

अब मैं पुण्य अश्रुजतीर्थ से पैदा हुए हंसद्वार के माहात्म्य और कौल सरोवर के विषय में सुनना चाहता हूं ।

वद मे कृपया शम्भो ! [4]नन्दिक्षेत्रं तथैव च ।

हे शम्भु ! कृपा करके मुझे नन्दिक्षेत्र के विषय में कहिए ।

भैरव उवाच—भैरव बोले—

शृणु वक्ष्ये महादेवि [5]माहात्म्यमश्रुक्षेत्रजम् ।
हंसद्वारस्य पुण्यं वै श्रुत्वा मुच्येत संकटात् ।।

हे महादेवि ! सुनिए, मैं आपको अश्रुक्षेत्रज के माहात्म्य को कहता हूँ । हंसद्वार के पुण्य माहात्म्य को सुनकर मनुष्य संकट से मुक्त हो जाए ।

हन्त्यविद्यां यतो देवि ततो हंसः[6] प्रकीर्तितः ।
हंसानां च यतो द्वैतं [7]गृह्णाति वरवर्णिनि ।।

हे देवि ! क्योंकि यह अविद्या को नष्ट करता है और हे वरवर्णिनि ! क्योंकि यह हंसों के द्वैत को ग्रहण करता है इसलिए इसे हंस कहा गया है ।

ततः प्रोक्तं पुराविद्भिर्हंस[8]द्वारमिदं जनैः[9] ।
मोक्ष[10]द्वारमिदं प्रोक्तं स्वर्गद्वारमिदं परम् ।।
ब्रह्मद्वारमिदं देवि शिवद्वारमनुत्तमम् ।
देवीनां च बुधैः प्रोक्तं श्रीविष्णु[11]द्वारमुत्तमम् ।।

इसके बाद पुरातत्ववेत्ताओं ने इसे हंसद्वार कहा है, यह मोक्षद्वार कहा है, यह परम स्वर्गद्वार है, यह ब्रह्मद्वार है और हे देवेशि ! यह अत्युतम शिवद्वार है तथा विद्वान् पुरुषों ने इसे उत्तम श्रीविष्णुद्वार कहा है ।

---

१ चास्मिन्कृता., २ अधना, ३ चास्रुज., ४ नन्दिक्षेत्रं, ५ महात्म्य., ६ हंसा, ७ गृह्णाति, ८ विदभिर्हंस., ९ जनेः, १० मो द्वार, ११ विष्णोद्वार.,

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन हंसद्वारं व्रजेद्बुधः ।
मोक्षं प्रयाति देवेशि नात्र कार्या विचारणा ।।

इसलिए विद्वान् पुरुष सभी यत्नों से हंसद्वार को जाए, हे देवेशि ! मोक्ष को प्राप्त करता है । इसमें विचार नहीं करना चाहिए ।

गर्भागारं न संविशेद्यो[1] विशेद्धंसद्वारकम् ।
यो नरो याति हंसानां द्वारं सुरवरार्चिते ।।

गर्भागार में प्रवेश न करे, जो हंसद्वार में प्रवेश करे, हे सुरवरार्चिते ! जो मनुष्य हंसों के द्वार को जाता है—

हंसानां गतिमाप्नोति मम नास्त्यत्र संशयः ।
संन्यासिनो महाभागा जितद्वैताः[2] सनातनाः[3] ।
यां गतिं प्रतिपद्यन्ते तां दर्शनकृतो नरः ।।

वह हंसों की गति पाता है, मुझे इसमें कोई संशय नहीं है । संन्यासी महाभाग, जितद्वैत, सनातनी जिस गति को पाते हैं, उसे मनुष्य इसका दर्शन करने वाला पा लेता है ।

निर्ममा निरहङ्कारा जितश्वासाश्च योगिनः ।
न तां गतिं प्रयान्त्येवं यां दर्शनकृतो नरः ।।

निर्मम, निरहङ्कार जितश्वास और योगी उस गति को इस तरह नहीं पाते हैं, जिसे इसका दर्शन करने वाला पाता है ।

तपस्विनो दानपराः साधका व्रतिनस्तथा ।
न तां सिद्धिं प्रयान्त्येवं यां दर्शनकृतो नरः ।।

तपस्वी, दानी, साधक तथा व्रती उस सिद्धि को इस तरह नहीं पाते हैं जिसे इसका दर्शन करने वाला मनुष्य पाता है ।

गर्भागारं संस्मृतिं[4] च मरणं चापि सुन्दरि ।
न ते दुःखं प्रयान्त्येव ये [5]दर्शनकृताः[6] नराः[7] ।।

हे सुन्दरि ! गर्भागार, संस्मृति, मरण और दुःख को वे नहीं पाते हैं, जिन्होंने इसका दर्शन किया हुआ होता है ।

बहुनात्र किमुक्तेन कलौ मलभयापहम् ।
हंसद्वारं समाश्रित्य[8] मोक्षं[9] यान्ति नरोत्तमाः[10] ।।

यहां बहुत कहने से क्या लाभ ? कलियुग में पापमल के कालुष्य को नष्ट

---

१ सविशेद्यो, २ द्वैता, ३ सनातनः, ४ संस्मृति, ५ ददर्शन., ६ कृतो, ७ नरः, ८ समाश्रि, ९ मोक्ष, १० नरोत्तमः ।

करने वाले इस द्वार का आश्रय लेकर मनुष्य मोक्ष पाते हैं।

घोरं कलियुगं प्राप्य निकटस्थं विलोक्य यः।
ततः सर्वं समुत्सृज्य हंसद्वारं समाश्रयेत्[1] ।।

घोर कलियुग को पाकर या निकटस्थ देखकर मनुष्य सब कुछ छोड़ कर हंसद्वार का आश्रय ले।

हंसद्वार[2]मतीत्यैव यत्किञ्चित्क्रियते नरः।
तत्सर्वं च वृथा याति[3] नात्र कार्या विचारणा ।।

हंसद्वार को छोड़कर मनुष्य जो कुछ करता हैं, वह सब कुछ वृथा जाता है, इसमें कोई विचार नहीं करना चाहिए।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन हंसद्वारं विशेन्नरः।[4]
सर्वं सफलतां याति[5] चेति[6] सत्यं वरानने ।।

इसलिए सभी यत्नों से मनुष्य हंसद्वार में प्रवेश करे। सब कुछ सफल हो जाता है, हे वरानने ! यह सत्य है।

बहुनात्र किमुक्तेन भूयो भूयो महेश्वरि।
हंसद्वारमुपाश्रित्य सिद्धिमाप्नोति मानवः ।।

हे महेश्वरि ! बार-बार यहां बहुत कहने से क्या लाभ ? हंसद्वार का आश्रय लेकर मनुष्य सिद्धि पाता है।

हंसद्वारमिदं प्रोक्तं पापानां[7] पापमोक्षदम्।
शुद्धानां ज्ञानदं देवि मुमुक्षूणां च मोक्षदम् ।।

यह हंसद्वार पापियों को पाप से छुटकारा देने वाला है। हे देवि ! शुद्धों को ज्ञान देने वाला और मुमुक्षुओं को मोक्ष देने वाला है।

शिवद्वारकवाटस्य पाटनं द्वारमुत्तमम्।
इति ते कथितं देवि पुण्यं वै हंसद्वारजम् ।।

शिवद्वारकवाट का पाटन उत्तम द्वार है। इस प्रकार हे देवि ! यह हंसद्वार से पैदा होने वाला पुण्य कहा है।

यच्छ्रुत्वा मुच्यते जन्तुर्महापातककोटिभिः।
अधुना[8] श्रृणु देवेशि माहात्म्यमश्रुजं[9] परम् ।।

जिसे सुनकर प्राणी करोड़ों महापापों से मुक्त हो जाता है। हे देवेशि ! अब परम अश्रुज के माहात्म्य को सुनिए।

---

१ समाश्रयेयेत्, २ हंसद्वारं अतीत्यैव, ३ यांति, ४ विशेनरः, ५ यांति, ६ चेत्यसत्ये, ७ पापिनां, ८ अधना, ९ मस्रुजं।

यच्छ्रुत्वा मुच्यते जन्तुर्जन्मकोटिभवैरघैः ।
यः स्नाति शोकजे तोये देवीनेत्रसमुद्भवे ।
स तु संसारदुःखं न प्राप्नोति च महेश्वरि ॥

जिसे सुनकर जन्तु करोड़ों जन्मों में पैदा हुए पापों से मुक्त हो जाता है। जो देवी के नेत्रों से पैदा हुए शोकज जल में स्नान करता है, हे महेश्वरि ! वह संसार रूपी दुःख से छुटकारा पा लेता है।

दारिद्र्यदुःखमरणं च दुःखं[1] तु रोगोद्भवम्[2] ।
[3]ईश्वरीह यः स्नाति नित्यं गिरिजाश्रुतोये ।
शोकोद्भवे नैव पुनः स चाप्नुयात् ॥

हे ईश्वरि ! जो पुरुष नित्य शोकोद्भव गिरिजा के आंसुओं के जल में स्नान करता है वह फिर दारिद्र्य, दुःख, मरण और रोगों से पैदा होने वाले दुःख को प्राप्त नहीं होता है।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन नेत्रजं वारि चाश्रयेत् ।
सर्वसिद्धिमवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥

इसलिए सभी यत्नों से नेत्रों से पैदा हुए जल का आश्रय ले, वह सर्वसिद्धि को पाता है। इसमें विचार वाली कोई बात नहीं है।

हर्षवारि महादेव्या नेत्रोद्भूतं महेश्वरि ।
समाश्रित्य नरो याति[4] परमं हर्षमुत्तमम् ॥

हे महेश्वरि ! महादेवी के नेत्रों से पैदा हुए हर्ष के जल का आश्रय लेकर मनुष्य उत्तम हर्ष को पाता है।

स्नात्वा हर्षोद्भवे तोये महेज्यः[5] शीतले शुभे ।
नरो मुक्तिमवाप्नोति न मेऽत्रास्ति[6] विचारणा ॥

शीतल और शुभ हर्षोद्भव जल में स्नान कर मनुष्य मुक्ति पाता है। इसमें मुझे कोई विचारणा नहीं है।

[7]अतीत्य सरसी द्वे तु यो मज्जेद्गांगवारिणि ।
स तीर्थद्रोही भवति यात्रा तस्य च निष्फला ॥

इन दो सरोवरों को छोड़कर जो गङ्गा के जल में स्नान करे; वह तीर्थद्रोही होता है और उसकी यात्रा निष्फल होती है।

---

१ दुःखं दुःखं तु. २ रोगोद्भकमी., ३ मीश्वरीह, ४ यांति, ५ महेज्यः
६ मेंत्रास्ति ७ अतीति, सरसी द्वौ तु ।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सरसी [1]द्वेऽवगाह्य च ।
यायात्कौलसरो[2] दिव्यं कौलानां सिद्धिदं परम् ।।

इसलिए सभी यत्न से दोनों सरोवरों में स्नान कर कौलों को सिद्धि देने वाले परम दिव्य कौलसर को जाए ।

यत्समाश्रित्य देवेशि कौला:[3] संसिद्धिमागता: ।
कलावस्मिन्महाघोरे कौलधर्मिण एव च ।।

हे देवेशि ! जिसका आश्रय लेकर इस महाघोर कलियुग में कौलधर्मी कौल सिद्धि को प्राप्त हुए ।

स्नानं दानं तपश्चैव व्रतं स्वाध्याय एव च ।
यद्यत्र कुरुते तत्र तदानन्त्याय कल्पते ।।

स्नान, दान, तप, व्रत और स्वाध्याय जो-जो वहां करता है वह अनन्तत्व की ओर ले जाता है ।

भूय: किं बहुभाषणेन गिरिजे य: स्नाति शोकोद्भवे ।
तोये हर्षसमुद्भवे[4]ऽपि च तथा कौलसरस्यद्भुते ।।

हे गिरिजे ! बहुत कहने से क्या लाभ ? जो कौल सरोवर के अद्भुत और शोकोद्भव एवं हर्षसमुद्भव जल में स्नान करता है ।

न[5] रोगो न भयं न शोको[6]ऽपि वा न[7] दासभाव:[8] प्रिये !
न स्त्रीत्वं न च कालभयमपि न जन्तु: कदाप्याप्नुयात् ।।

वह प्राणी कभी न रोग, न भय, न शोक, न स्त्रीत्व और हे प्रिये ! न काल···भी पाए ।

इत्थं प्रकाशितं तेऽद्य[9] मया पुण्यं हि तीर्थजम् ।
महाफलं समुद्दिष्टं किं भूय: श्रोतुमिच्छसि ।।

इस प्रकार तुझे मैंने आज यह तीर्थ से पैदा होने वाला पुण्य बताया है और महाफल भी कहा है, फिर और क्या सुनना चाहती हो ?

इति लहरविषयोपजाततीर्थसंग्रहे हंसद्वार[10]सुक्षेत्रमहिमा नाम पटल: ।।

---

१ द्वेवगाह्य, २ सरं, ३ कौल, ४ समुद्भवेपि, ५ नो, ६ शोकोपि, ७ नो, ८ भावं, ९ तेद्य १० हंसद्वारा ।

भैरवी उवाच—भैरवी बोली

पुनर्वद महादेव किं कौलं सर उच्यते।
माहात्म्यमपि देवेश सर्वपापभयापहम् ।।

हे महादेव ! फिर कहिए, कौल सर क्यों कहा जाता है ? हे देवेश ! सभी पापों के भय को दूर करने वाले माहात्म्य को भी कहिए।

भैरव उवाच—भैरव बोले

शृणु कौलं सरो दिव्यं तस्मिन्गिरिवरे शुभे।
यच्छ्रुत्वा साधको देवि अत्र सिद्धिमवाप्नुयात् ।।

उस शुभ गिरिवर पर दिव्य कौल सर के विषय में सुनिए जिसे सुनकर हे देवि ! साधक यहां सिद्धि को पाए।

मातृहत्याप्रतप्तेन भार्गवेण[1] महात्मना।
अस्मिन्गिरिवरे पुण्ये सुघोरं चरितं तपः ।।

माता की हत्या करने से सन्तप्त महात्मा परशुराम जी ने इस पुण्यकर गिरि श्रेष्ठ पर घोर तप किया।

निराहारो यतात्मासौ वायुभक्षो जितेन्द्रियः।
कालीसमर्चनरतो बभूव सुरसुन्दरि ।।

हे सुरसुन्दरि ! वह निराहार, यतात्मा, वायुभक्षण करने वाला, जितेन्द्रिय होकर काली की पूजा करने में संलग्न हुआ।

श्यामाराधनतीर्थस्य भार्गवस्य महात्मनः।
व्यतीतं सुचिरं कालं दिव्यं वर्षशतं पुरा ।।

इस तीर्थ पर श्यामा की आराधना करने में लगे हुए महात्मा परशुराम जी का पूर्वयुग में बहुत समय दिव्य सौ वर्ष व्यतीत हो गए।

तथा सन्तप्यमानस्य तपो घोरं महात्मनः।
कालो जगाम गिरिजे काले दर्शनकांक्षिणः[2] ।।

इस प्रकार घोर तप तपते और काल में देखने की आकांक्षा करते हुए उस महात्मा का हे गिरिजे ! बहुत समय बीत गया।

---

१ भार्गवेन, २ दर्शनकांक्षण।

तामदृष्ट्वा महादेवि रामः शोकं परं ययौ ।
तथा संशोचतस्तस्य भार्गवस्य महात्मनः ।।

हे महादेवि ! उस श्यामा के दर्शन न होने पर परशुराम जी शोक को प्राप्त हुए । इस प्रकार उस महात्मा भार्गव के शोक करते हुए—

सततं तप्यमानस्य वाक् च प्राहाशरीरिणी ।
पुरश्चरणमातिष्ठ [1]मन्त्रसिद्धिमवाप्स्यसि ।।

और निरन्तर तप करते हुए को अशरीरिणी वाणी ने कहा कि तुम पुरश्चरण करो, मन्त्रसिद्धि पाओगे ।

पुरश्चरणहीनस्य का बुद्धिरिह भार्गव ।
पुरश्चरणकृन्मन्त्री [2] अत्र सिद्धिमवाप्नुयात् ।।

हे भार्गव ! पुरश्चरण हीन की यहां क्या बुद्धि है ? पुरश्चरण करने वाला मन्त्री यहां सिद्धि को पाए ।

न कुर्याच्च पुरश्चर्यां यः कश्चित्साधको भुवि ।
न स सिद्धिमवाप्नोति वर्षलक्षै[3]रपि द्विजः ।

जो कोई साधक पृथ्वी पर पुरश्चर्या करे, वह द्विज लाख वर्षों से भी सिद्धि नहीं पाता है ।

तस्माद्राम[4] पुरश्चर्यां कुरु नित्यं समाहितः ।
कालीदर्शनं[5] सम्प्राप्य [6]भविष्यति न संशयः ।।

हे परशुराम ! इसलिए तुम नित्य समाहित होकर पुरश्चर्या करो । काली के दर्शन अवश्य पाओगे । इसमें संशय नहीं है ।

इत्युक्त्वा विरमद्वाणी देवदूतस्य सुन्दरि ।
श्रुत्वा तु देवदूतस्य वचनं भृगुनन्दनः ।
चकार [7]विधिवत्तत्पुरश्चरणमुत्तमम् ।।

हे सुन्दरि ! यह कह कर देवदूत की वाणी चुप हो गई । परशुराम जी ने देवदूत के वचन सुनकर विधिपूर्वक उत्तम पुरश्चरण किया ।

कौलधर्मेण विधिना जजाप [8]मन्त्रमुत्तमम् ।।
इत्थं संजप्यमानस्य भार्गवस्य महेश्वरि ।
महाकालेन सहिता श्यामा दर्शनमागमत् ।।

---

१ मत्रसिद्धिमावाप्स्यसि, २ कृन्मंत्रीमत्र, ३ लक्षेरपि, ४ तस्मंद्रामं, ५ दर्शनं, ६ भंविष्यति, ७ विधिवतत्व०, ८ मत्रमुत्तमं

कौलधर्म के अनुसार विधिपूर्वक उत्तम मन्त्र का जप करे। हे महेश्वर! इस प्रकार जप करते हुए भार्गव को महाकाल के साथ श्यामा के दर्शन हुए।

कालीं दृष्ट्वा पुनस्तेन करालवदना शुभा।
विस्रस्तकेशाभरणा पाशखट्वांगधारिणी।
[1] नृमुण्डमालाभरणा कपाल... [2] ॥

फिर उसने कराल बदन वाली, शुभा, बिखरे केशों और आभरणों वाली, पाश-खट्वांग धारण किए हुए, नरमुण्डमाला के आभरण से युक्त और कपाल ......काली के दर्शन किए।

दृष्ट्वा तु तां तदा रामो भक्त्या त्रिभुवनेश्वरीम्[3]।
सहस्रैर्नामभिर्दिव्यैस्तुष्टाव सुसमाहितः।

तब परशुराम जी ने उस भुवनेश्वरी को देखकर भक्तिपूर्वक सुसमाहित होकर देवी की दिव्य हज़ारों नामों से स्तुति की।

स्तुत्या प्रसन्ना[4] ह्यभवन्महादेवी तु भार्गवम्।
प्रोवाच श्लक्ष्णया वाचा भार्गवं जमदग्निजम्॥

स्तुति से प्रसन्न होकर महादेवी ने कोमल वाणी से जमदग्नि के पुत्र भार्गव परशुराम से कहा।

ब्रह्महत्यां[5] हनिष्यामि पाशैर्बध्नामि भार्गव।
प्रसन्नास्मि द्विजश्रेष्ठ त्वदाराधनतो मुने॥

हे भार्गव! ब्रह्महत्या को मैं नष्ट करूँगी और पाशों से बांधती हूँ। द्विजश्रेष्ठ! मुने! मैं तुम्हारी आराधना से प्रसन्न हुई हूँ।

इत्युक्त्वा मातृहत्यां तां निर्गतां तच्छरीरतः।
वबन्ध पाशैः श्यामाङ्गी खट्वाङ्गेनाहनद्भृशम्॥

यह कहकर उसके शरीर से निकली हुई उस मातृहत्या को श्यामाङ्गी ने पाशों से बान्धा और खट्वाङ्ग से मारा।

पुनः प्रोवाच तं काली कृशो[6]ऽसि तपसा मुने।
पिबामृतं प्रदत्तं हि मया तेऽत्र[7]...... ॥

फिर काली ने उसे कहा कि हे मुने! तपस्या से कृश हो गए हो, मुझ से दिए गए अमृत को पीओ......

---

१ नृमण्ड०, २ मू० पा० लि० में पाठाभाव ३ त्रिभुवनेश्वरी ४ प्रसंन्ना, ५ ब्रह्महत्या, ६ कृशोसि, ७ तेत्र,

इत्युक्त्वा[1] प्राहनच्छ्यामा खट्वांगेन क्षितिं तदा ।
सरः कौलं समुद्भूतं जीवनं कुलधर्मिणाम् ॥

यह कहकर श्यामा ने खट्वांग से तब पृथ्वी पर प्रहार किया जिससे कुलधर्मियों को जीवन प्रदान करने वाला कौल सर पैदा हुआ ।

कालीनममृतं काल्या खट्वांगेनोद्धृतं यतः ।
ततः प्रोक्तं पुराविद्भिः शुभं कौलसरोवरम् ॥

तत्कालीन अमृत को काली ने खट्वांग से उद्धृत किया, इसी से पुरातत्त्व वेत्ताओं ने उसे शुभ कौल सरोवर कहा है ।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कौलं सर उपाश्रयेत् ।
तमुपाश्रित्य देवेशि ब्रह्महत्या व्यपोहति ॥

इसलिए सभी यत्न से कौल सर का सेवन करे । हे देवेशि ! कौलसर का सेवन करने से ब्रह्महत्या नष्ट हो जाती है ।

कौलसरसमुद्भूते तोये पुण्यप्रदे कलौ ।
सोऽ[2]मज्जद्रामो गिरिजे पपौ चामृतमुत्तमम् ॥

कलियुग में कौलसर से पैदा हुए पुण्यप्रद जल में हे गिरिजे ! उसने स्नान किया और अमृत का पान किया ।

तदा प्रभृति रामो[3]ऽसौ चिरजीव्यभवत्प्रिये ।
श्यामापीत्थं वरं दत्वा तत्रान्तर्धानमागता ॥

हे प्रिये ! तब से लेकर वह परशुराम जी चिरजीवी हुए । श्यामा भी इस प्रकार वर देकर वहां अन्तर्धान हो गई ।

रामोऽपि[3] तत्र देवेश समीपमगमत्पुनः ।
यः कश्चिदत्र मनुजः कौलं सर उपाश्रयेत् ।
पुरश्चरणमाप्नोति वेदपारायणे फलम् ॥

हे देवेश ! परशुराम जी भी वहां फिर समीप आए ।

जो कोई मनुष्य वहां कौलसर का सेवन करे, वह पुरश्चरण और वेद पारायण के फल को पाता है ।

मायापुर्याः शतगुणं काशीवासात्सहस्रकम् ।
पुण्यं द्विगुणमाप्नोति कौले सरसि स्नानतः ॥

कौलसर में स्नान करने से मायापुरी से सौ गुणा और काशीवास से सहस्रगुण द्विगुण पुण्य पाता है ।

---

१ इत्युक्ता २ सोमज्जत् ३ रामोसौ, ४ रामोपि,

गवां कोटिसहस्रस्य सम्यग्दत्तस्य यत्फलम् ।
कुरुक्षेत्रे सूर्यग्रहणे[1] ब्राह्मणे वेदपारगे ।
तत्फलं समवाप्नोति स्नात्वा कौलसरोवरे ।।

सूर्यग्रहण के समय कुरुक्षेत्र में वेदपाठी ब्राह्मण को कोटिसहस्र गायों देने का जो फल है, वह कौलसरोवर में स्नान करने से मिलता है ।

अविद्यो वा सविद्यो वाप्यकामी वाथ कामवान् ।
स्नात्वा सिद्धिमवाप्नोति स्नात्वा कौलसरोवरे ।।

विद्याहीन हो या विद्यायुक्त हो, अकामी हो वा कामवान् हो, कौल सरोवर में स्नान कर सिद्धि पाता है ।

अतीत्य कौलं यो गच्छेद्गंगां[2] त्रिभुवनेश्वरीम् ।
[3]... माप्नोति गङ्गाया भुवनेश्वरि[4] ।।

कौलसर को छोड़कर जो त्रिभुवनेश्वरी गंगा के पास जाता है, हे भुवनेश्वरि ! वह

नास्ति कौलसमं तीर्थं भुवि दिव्यन्तरिक्षगम् ।[5]
गङ्गायात्रातिफलदं मन्त्रसिद्धिप्रदं कलौ ।।

कलियुग में मन्त्रसिद्धि प्रदान करने वाला और गंगायात्रा का अतिफल देने वाला कौल के समान तीर्थ पृथ्वी, द्युलोक और अन्तरिक्ष में दूसरा कोई नहीं है ।

इति ते सर्वमाख्यातं तीर्थं परमपावनम् ।
दिव्यं कौलसरो नाम सर्वपापभयापहम् ।।

इस प्रकार यह तुम्हें सभी पापों को नष्ट करने वाले, दिव्य और परम पवित्र कौलसर नामक तीर्थ के विषय में सब कुछ कहा है ।

अधुना शृणु देवेशि नन्दिक्षेत्रं महत्सरः ।
महाकालं तथेशानि ब्रह्महत्यानिवारकम्[6] ।।

हे देवेशि ! ईशानि ! अब तुम नन्दिक्षेत्र नामक महासर और ब्रह्महत्या को दूर करने वाले महाकाल के विषय में सुनो ।

प्रसन्नो[7]ऽभूद्यदा देव्या महाकालो महेश्वरि ।
तदा स देवदेवेशो भृत्यमाज्ञापयत्स्वयम् ।।

हे महेश्वरि ! जब देवी से महाकाल प्रसन्न हुए, तब उन देवदेवेश ने स्वयं भृत्य को आज्ञा दी ।

---

१ सूर्यग्रहे, २ द्गंगा, ३ वृथादर्शन, ४ भुवनेश्वरी, ५ रक्षगं ६ निवारणं, ७ प्रच्छन्नोभू० ।

नन्दिन्[1] कश्चिदत्र[2] मे दर्शनं प्राप्तु[3]मर्हति ।
सावधानो भव द्वारि मा कश्चिद्विशतामिह ।।

हे नन्दिन् ! यदि कोई यहां मेरे दर्शन करने आता है तो तुम द्वार पर सावधान रहो, मत कोई यहां प्रवेश करे ।

तथेत्युक्त्वा ततो नन्दी सावधानोऽ[4]भवत्प्रिये ।
द्वारसंरक्षणे तत्र गिरौ हरमुखे तदा ।।

हे प्रिये ! 'तथास्तु' कह कर नन्दी तब उस हरमुख पर्वत पर द्वार संरक्षण में सावधान हो गए ।

ततो देव्यत्र सम्प्राप्तान्वेष्टुं[5] पतिमागता ।
दृष्टवा तु गिरिजां[6] तत्र पतिमन्वेष्टु[7]मागताम् ।।
नन्दी संशयमाविष्टश्चिरं दध्यौ तथा प्रिये ।
किं निषिध्यापि देवेशी[8] मथवा जगदीश्वरीम्[9] ।।

इसके बाद पार्वती पति को खोजने के लिए यहां आई और देखकर नन्दी संशय में पड़ गए और चिर काल तक सोचने लगे कि क्या मैं जगदीश्वरी-देवेशी को रोकूं ?

विचिन्त्य बहुधा नन्दी[10] निश्चयं चाजगाम ह ।
देवदेवी महेशानी न निषेद्धुमिहार्हति ।।

बहुत सोच कर नन्दी इस निश्चय पर पहुँचे कि मुझे यहां देवदेवी महेशानी को नहीं रोकना है ।

अनया देवदेवेश्या शप्तं ब्रह्मसरः शुभम् ।
तस्मादारोहतु गिरिं हरदर्शनलालसे[11] ।।

इस देवदेवेशी ने शुभ ब्रह्मसर को शाप दिया । इसी से महादेव जी के दर्शन करने की लालसा से युक्त हे देवि ! आप इस पर्वत पर चढ़िए ।

इत्युक्त्वा[12] देवदेवेशीं नमस्कृत्य स्वयं तदा ।
प्रोवाच विनयेनात्र भृत्यो वै [13]नन्दिकेश्वरः ।।

इस प्रकार तब स्वयं नमस्कार कर और देवदेवेशी को यह कहकर नम्रतापूर्वक यहां नन्दिकेश्वर भृत्य ने कहा ।

---

१ नन्दिन, २ कश्चिदिह, ३ प्राप्तमर्हति, ४ सावधानोभवत्प्रिये, ५ सम्प्राप्ता अन्वेष्टं, ६ गिजां, ७ मन्वेष्ट०, ८ देवीशी०, ९ जगदीश्वरं, १० नंन्दी, ११ लालसा १२ इत्युक्ता, १३ नंन्दिकेश्वर ।

गिरिमारोहतु स्वयं देवदेवि[1] महेश्वरि[2] ।
गिरा[3]वत्र हरमुखं पश्यतु स्वयमीश्वरि[4] ॥

हे देवदेवि ! महेश्वरि । आप स्वयं पर्वत पर आरोहण कीजिए और हे ईश्वरि । जहां पर्वत पर हरमुख को आप स्वयं देख लीजिए ।

श्रुत्वा तु नन्दिनो वाचं देवी हर्षमुपागता ।
पुत्रं[5] संजीव हि चिर[6]माशिषः प्रयुयोज तम् ॥

नन्दी के वचन को सुनकर देवी परम प्रसन्न हुईं । हे पुत्र ! चिर काल तक जीते रहो···

इत्युक्त्वा गिरिमारुह्य दृष्ट्वा हरमुखं तदा ।
सती विस्मयमापन्ना जहर्ष च मुहुर्मुहुः ॥

यह कह कर और पर्वत पर चढ़ कर तथा हरमुख को देखकर सती विस्मय को प्राप्त हुई और बार-बार प्रसन्न हुई ।

आलिलिङ्ग हरः तत्र मुहुर्मुहुरतन्द्रितः ।
हरो विस्मयमापन्न[7]स्तथा दृष्ट्वागतां सतीम् ॥

और वहां बार-बार महादेव ने उनका आलिगन किया । अतन्द्रित महादेव इसप्रकार वहां आई हुई सती को देखकर आश्चर्यान्वित हुए ।

प्रोवाच नन्दिनं देवो देवदेवो वृषाकपिः ।
यस्माज्जडः स्वयं भूत्वा मदाज्ञा[8] मतिलङ्घसे ।
तस्मादत्र गिरौ पुण्ये जडरूपो भविष्यसि ॥

देवाधिदेव-वृषाकपि महादेव जी ने नन्दी से कहा कि जिससे तू स्वय जड़ होकर मेरी आज्ञा का उल्लंघन करते हो, इससे तुम इस पुण्य पर्वत पर जड़रूप हो जाओगे ।

श्रुत्वा तत्[9] प्रभोर्वाक्यं सरो भूत्वा महेश्वरि[10] ।
तदेव नरकोद्धारः सप्तभिः पुरुषं समम् ॥

हे महेश्वरि ! प्रभु के उस वाक्य को सुनकर सरोवर बनकर

यस्यास्थीनि महेशानि गङ्गाम्भसि निमज्जयेत् ।
स्वर्गद्वारकवाटं च पा······ येन्महेश्वरि ॥

हे महेशानि जिसकी अस्थिएं गंगा के जल में डुबोए, हे महेश्वरि । स्वर्गद्वार के किवाड़ को खोलकर

---

१ देवदेवी, २ महेश्वरी, ३ गिरौ अत्र, ४ मीश्वरी, ५ पुत्रं, ६ चिरं आसिषः, ७ मापन्नास्तथा, ८ मदाज्ञ अति, ९ तत्व, १० महेश्वरेश्वरि ।

मातृगामी स्वसृगामी भ्रातृजायाग इत्यपि ।
पितृस्वसृमातृस्वसृगुरुपत्नीग इत्यपि ।
स्नात्वा मुकुटगङ्गायां सद्यो मुच्येत पातकात् ।।

मातृगामी, स्वसृगामी, भ्रातृजायागामी, पितृस्वसृगामी, मातृस्वसृगामी, गुरुपत्नीगामी भी मुकुटगंगा में स्नान कर झट पाप से मुक्त हो जाता है ।

स्वर्णस्तेयी मद्यपः स्त्रीलोलुपः स्त्रीघ्न एव च ।
गोघ्नः कृतघ्नो[1]ऽपीशानि सद्यो मुच्येत पातकात् ।।

सोना चुराने वाला, शराब पीने वाला, स्त्री का लालची, स्त्रीहत्यारा, गोहत्यारा और हे ईशानि ? कृतघ्न भी झट पाप से मुक्त हो जाता है ।

प्रायश्चित्तं [2]नृणां येषां न दृष्टं शास्त्रसंग्रहे ।
तेषा[3]मत्र मया दृष्टं भाद्रे हरमुखे जले ।।

जिन मनुष्यों का शास्त्रसंग्रह में प्रायश्चित्त नहीं देखा गया है, उनका मैंने यहां भाद्रपद महीने में हरमुख के जल में देखा है ।

भाद्राष्टम्यां तु शुक्लायां वर्षासु [4]भुवनेश्वरि ।
काले मुकुटगङ्गायां कथितः शुभदः शुभः ।।

हे भुवनेश्वरि ! भाद्रपद-शुक्ल-अष्टमी के दिन वर्षाकाल में मुकुटगंगा में शुभ देने वाला शुभ काल कहा गया है ।

यदा भवति वै कालस्तदा[5] मुकुटमाश्रयेत् ।
न वारो न ग्रहः[6] कश्चिद्विषमो वा समो[7]ऽपि वा ।।
गङ्गायां विषमः प्रोक्तो यदाकालं समागमः ।
तदाश्रयेत देवेशि पुण्यं मुकुटजं जलम् ।।

जब काल होता है, तब मुकुट का सेवन करे । न वार है, न कोई ग्रह है अथवा विषम हो वा सम । जब गंगा में विषम होता है हे देवेशि ! तब पुण्यप्रद मुकुट से पैदा होने वाले जल का आश्रय ले ।

मलिनानि भवन्त्येव महापातकिसंगतः ।
[8]तीर्थानि जगदीशानि तान्यायान्ति जले शुभे ।
स्नातुं मुकुटगङ्गायां भाद्राष्टम्यां महेश्वरि ।।

महापापियों के संग से तीर्थ मलिन हुआ ही करते हैं । हे जगदीशानि !

---

१ कृतघ्नोपी०, २ नृणां, ३ तेषां मत्र, ४ भवनेश्वरि, ५ काल तदा, ६ ग्रहा, ७ समोपि, ८ तीथानि ।

महेश्वरि ! भाद्रपद-अष्टमी के दिन मुकुटगंगा के शुभ जल में स्नान करने के लिए वे तीर्थ आते हैं।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन[1]…रं ज्ञात्वा कलिप्रिये[2]।
कालं वा स्वशिरस्थं च शीघ्रं हरमुखं व्रजेत् ।।

हे कलिप्रिये ! इसलिए सभी यत्न से……शीघ्र हरमुख को जाए।

न यत्र कालो देवेशि ! महाकालप्रभावतः।
कालभङ्गो न चास्त्येव निरयो वापि [3]सुन्दरि ।।

हे देवेशि ! महाकाल के प्रभाव से जहां काल नहीं है, हे सुन्दरि ! तथा निरय भी नहीं है।

न भयं संसृतं चापि मरणं चापि चेश्वरि।
ग्रहपीडा न चास्त्येव नास्ति दुर्भिक्षजं भयम्।
ईतिभ्यो[4]ऽपि भयं नास्ति स्नात्वा मुकुटगङ्गिकाम्[5] ।।

मुकुटगंगा में स्नान कर हे ईश्वरि। न मृत्यु का, न ग्रहपीड़ा का भय है और ना ही दुर्भिक्ष से पैदा होने वाला भय है, ईतिओं से भी भय नहीं हैं।

नातः परतरं पुण्यं तीर्थं नातः परं शुभम्।
न [6]दानं न व्रतं पुण्यं न…[7] तप उत्तमम् ।।
समं मुकुटगङ्गाया न भूतं न भविष्यति।
सत्यं सत्यं महादेवि कलौ घोरे सुदारुणे।
स्नात्वा मुकुटगङ्गायां न समा मखजाः[8] क्रियाः ।।

इससे परे कोई पुण्य नहीं है और इससे परे कोई शुभ तीर्थ नहीं है। मुकुटगंगा के समान न कोई दान, न कोई व्रत, न कोई पुण्य और न कोई उत्तम तप हुआ है और न कोई होगा। हे महादेवि ! यह बिलकुल सत्य है कि दारुण और घोर कलियुग में मुकुटगंगा के भीतर स्नान कर उसके समान योग आदि से पैदा होने वाली क्रियाएं भी नहीं हैं।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गङ्गां मुकुटजां प्रिये !

हे प्रिये ! इसलिए सभी यत्न से मुकुटगंगा को जाए।

नश्यन्ति दर्शनात्तस्या निरयानां च कोटयः।
[9] ऋणत्रयान्मुक्तिमाप्नोति गत्वा मुकुटजां प्रिये ।।

उसके दर्शन से करोड़ों निरय नष्ट हो जाते हैं। हे प्रिये ! ऋषिऋण-

---

१ मू० पा० लि० में पाठाभाव २ कलिप्रये, ३ स्वंदरि, ४ ईतिभ्योपि, ५ गंगिका, ६ दानेन, ७ मू०पां०ल० में पाठाभाव ८ मखजा, ९ त्रिऋणान्मु०।

देवऋण-पितृऋण-तीनों ऋणों से मुकुटगंगा में जाकर मनुष्य मुक्ति पाता है ।

स्नात्वा च [1]तर्पयित्वा तु देवान्पितृ[2]न्समाहितः ।
पितृलोकस्थिता[3]………… विधानतः ।।
तर्पणं वा प्रकुरुते श्राद्धं वा विधिनाथवा ।
अस्थीन्युत्तरगङ्गायां प्रक्षिपेत विधानतः ।।

समाहित होकर, स्नान कर, देवताओं और पितरों का तर्पण कर……जो तर्पण करता है वा विधिपूर्वक श्राद्ध करता है अथवा उत्तरगंगा में विधान से अस्थियों का प्रक्षेप करता है ।

तर्पणं वा प्रकुरुते श्राद्धं वा विधिनाथवा ।
ब्राह्मणान्भोजयित्वा तु पुण्ये गङ्गातटे शुभे ।
इति पितृगणा गाथाः प्रगायन्ति महेश्वरि ।।

पुण्य और शुभ गंगातट पर ब्राह्मणों को भोजन कराकर जो तर्पण करता है अथवा विधिपूर्वक श्राद्ध करता है हे महेश्वरि ! पितृगण इस प्रकार गाथाएं गाते हैं ।

प्रस्थितं गोत्रजं दृष्ट्वा हरिं हरमुखं प्रिये !
आस्फोटयन्ति[4] नृत्यन्ति माद्यन्ति पितरो मुदा ।।

हे प्रिये ! हरि वा हरमुख पर जाते हुए गोत्रज को देखकर पितर प्रसन्नता से……नाचते हैं और…

भूयो भूयः किं प्रलापैर्नरः पातकवान्कलौ ।
गङ्गां मुकुटजां स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।

बार-बार प्रलापों से क्या लाभ? कलियुग में पापी मनुष्य मुकुटगंगा में स्नानकर सभी पापों से मुक्त हो जाता है ।

माहात्म्यमपि देवेशि ! पुण्ये हरमुखे गिरौ ।
वक्तुं मुकुटगङ्गाया न शक्नोति[5] शतं समाः ।।

हे देवेशि ! पुण्यप्रद हरमुख पर्वत पर मुकुटगंगा का माहात्म्य सौ वर्ष तक भी कहने में समर्थ नहीं हो सकता है ।

[6]इदं मुकुटगङ्गाया माहात्म्यमसुरोत्तमे ।
सर्वपापहरं[7] देवि तव स्नेहात्प्रकाशितम् ।।

---

१ तर्पयत्वा, २ पितृन्स०, ३ योषांप्रक्षप०, ४ अस्फोटयति, ५ शक्नोपि, ६ इद, ७ पापहरा,

हे असुरोत्तमे ! सभी पापों का हरण करने वाला यह मुकुटगंगा का माहात्म्य मैंने तुम्हारे स्नेह से प्रकाशित किया है ।

इदं रहस्यं परमं नाख्येयं[1] वेदनिन्दके ।
शठे क्रूरे तथा दूते मधुपे तत्र दूषके ॥
चौरहीने कुचाले च गुरुनिन्दाप्रवर्तिनि ।
गङ्गाभक्तिविहीने च तथैव वेदनिन्दके ।
तीर्थनिन्दापरे चापि नाख्येयं गुह्यमुत्तमम् ॥

यह परम रहस्य वेदनिन्दक, शठ, क्रूर, दूत, मद्यप, दूषक, चौर, हीन, कुचाल और गुरुनिन्दाप्रवर्तक को नहीं कहना चाहिए। यह उत्तम गुह्य रहस्य गंगाभक्तिविहीन, वेदनिन्दक और तीर्थनिन्दापरक को नहीं कहना चाहिए ।

इदं रहस्यं देवेशि तव स्नेहात्प्रकाशितम् ।
गुह्यं गोप्यतमं चैव[2]··· सत्येन ते शपे ॥

हे देवेशि ! यह गुह्य-गुह्यतम रहस्य मैंने तुम्हारे स्नेह से प्रकाशित किया है। मैं तुझे सत्य की सौगन्ध खाकर कहता हूं ।

इति गुह्यतमं शास्त्रं श्रुत्वा प्राप्नोति यज्ञजम् ।
फलं पठित्वापि तथा गङ्गास्नानं दिने-दिने ॥

दिन-दिन गंगास्नान कर और यह गुह्यतम शास्त्र सुनकर वा पढ़कर भी यज्ञ से पैदा होने वाले फल को पाता है ।

इदं पठन्नरो मुच्येद्घोराद्वै कलिजाद्भवेत् ।
शृण्वन्नपि महेशानि वाजपेयफलं लभेत् ॥

हे महेशानि । इसे पढ़ते हुए मनुष्य कलियुग से पैदा होने वाले घोर पाप से मुक्त हो जाता है और सुनते हुए भी वाजपेय यज्ञ के फल को पाता है ।

इति प्रोक्तं मया तेऽ[3]द्य फलं मुकुटजं प्रिये ।
यत्पृष्टं च त्वया देवि[4] किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥

हे प्रिये ! यह मैंने तुझे आज मुकुटगंगा से पैदा होने वाले उस फल के विषय में कहा है हे देवि जो तुमने पूछा था अब और क्या सुनना चाहती हो ?

इति श्री[5]लहरविषयोपजाततीर्थसंग्रहे हरमुकुटगङ्गामाहात्म्य-
वर्णनं नाम पटलः ॥

---

१ नाख्येय २ चैत्य, ३ तेद्य, ४ किमन्य०, ५ श्री श्री लहर ।

ॐ नमः श्रीगङ्गा भगवत्यै

अथ पौराणिकं[1] गङ्गामाहात्म्यं लिख्यते

श्रीसनत्कुमार उवाच—

अथैशानदिशं प्राप्य[2] त्यक्त्वा[3] षट्क्रोशमात्रकम् ।
प्रकाशते महाक्षेत्रं हिमाचलगुहान्तरे ।।

इसके बाद ईशान दिशा को पाकर और छः कोस मात्र को छोड़कर हिमाचल की गुहा के बीच में महाक्षेत्र प्रकाशित होता है ।

अस्मिन्क्षेत्रे पुरा नन्दी भगवन्तं वृषध्वजम् ।
प्रणम्य[4] भूतनाथत्वं प्राप्तो[5]ऽमृत्युं व्यतीत्य[6] च ।।

पूर्वयुग में इस क्षेत्र में नन्दी ने भगवान् वृषध्वज को प्रणाम कर और मृत्यु को पार कर भूतनाथत्व को पाया ।

व्यास उवाच—व्यास बोले—

भगव[7]ञ्छ्रोतुमिच्छामि [8]नन्दिक्षेत्रकथां शुभाम् ।
माहात्म्यं च समासीननन्दिक्षेत्रस्य सर्वथा ।।

हे भगवन् ! मैं सब तरह से समासीन नन्दिक्षेत्र के माहात्म्य और शुभ नन्दिक्षेत्र की कथा को सुनना चाहता हूँ ।

केन कारणयोगेन भगवान्नन्दिकेश्वरः[9] ।
प्राप्य मृत्यु[10]कथां शक्तः[11] कथं वा सिद्धिमागतः ।।

भगवान् नन्दिकेश्वर किस कारण योग से मृत्युकथा को पाने में समर्थ हुए वा कैसे सिद्धि प्राप्त की ।

संक्षेपेण कथां दिव्यां क्षेत्रमाहात्म्यमुत्तमम् ।
कथयस्व प्रसादेन तृप्तिरस्त्यत्र मे प्रभो ।।

हे प्रभो ! कृपा करके संक्षेप से दिव्य कथा और इस उत्तम क्षेत्र के माहात्म्य को कहिए, जिससे मुझे यहां तृप्ति हो ।

सनत्कुमार उवाच—

पाराशर्यकथां पुण्यां नन्दिक्षेत्रसमुद्भवाम् ।
शृणु सम्यग्नमस्कृत्य देवं त्रिपथगाधरम् ।।

---

१ पौराणिके, २ प्राप्या, ३ त्यक्तं, ४ प्राणम्य, ५ प्राप्नो मृ०, ६ यतोत्य, ७ भगवञ्शोतु०, ८ नन्दिक्षेत्र०, ९ भगवां नन्दिकेश्वरः, १० मृत्युंकथां ११ शक्त कथं ।

गङ्गा को शिर पर धारण करने वाले महादेव को नमस्कार कर नन्दिक्षेत्र से पैदा हुई पुण्य पाराशर्य कथा को सुनिए।

दक्षाध्वरे समाविश्य[1] ध्वसिते वै शिवाज्ञया।
वीरभद्रेण विबुधैस्सा कालानलत्विषा॥
दक्षपुत्री सती देहं विहाय निजमक्षयम्।
रुद्रपत्नी पुरा भूत्वा मन्युना पितुराश्रुता।
दुहितृत्वं प्रपेदे सा देवी हिमवतः स्वयम्॥

पूर्वकाल में महादेव जी की आज्ञा से वीरभद्र द्वारा वहां जाकर दक्ष के यज्ञ को नष्ट कर देने पर

[2]...सर्वजगतां मात्कारणयोगतः।
प्राप्य सा जन्म भगवन्नचले[4]...माह्वयत्॥
आराधयामास तदा तपसा नीलकंधरम्।
तस्मिन्हिमालये पुण्ये देवगन्धर्वसेविते॥

तब उसने देवता और गन्धर्वों से सेवित पुण्यप्रद उस हिमालय पर तपस्या से नीलकण्ठ महादेव की आराधना की।

भगवान्नपि शैलेन्द्रे तस्मिन्नेव महेश्वरः।
तपस्तेपे महद्युक्तः प्रमथैस्तद्वियोगतः॥

भगवान् महादेव जी ने भी अपने गणों के साथ सती वियोग से उसी पर्वत पर महातप करना प्रारम्भ कर दिया।

अथ कालेन बहुना भगवन्तं पिनाकिनम्।
पतिमासादयामास तपसा पर्वतात्मजा॥

इसके बाद बहुत समय बीत जाने पर पर्वतपुत्री पार्वती ने तपस्या से भगवान् पिनाकी महादेव को पति पाया।

निर्वर्तिते परिणये कदाचिच्चन्द्रशेखरः।
स्मि...[६]श्यामेति तामाह र...[४] सिप्रेतमानसः॥

विवाह हो जाने पर कभी महादेव ..

तन्मन्युना तदा भूयश्चक्रे सा मन्दरे गिरौ।
तपो घोरं येन लेभे गौरी त्वं यदसम्भवात्।
गच्छन्त्या तपसा सिद्धौ हरस्य परमात्मनः।
देव्या[५]...मुदितया प्रोक्तश्चिन्ता...[६] भृशम्।

---

१ समाविश्र, २ मू० पा० लि० में पाठाभाव ३ चन्द्रशेखरः, ४-५ मू० पा० लि० मेंपाठाभाव ६ श्चिताकरो।

मा···[1]नन्दी···[2]प्रवक्ष्येति हरान्तिके ।
कश्चिद्भूयो न गन्तास्मि यावत्कृत्वा तपो महत् ॥
इत्युक्त्वा नन्दिनं देवी जगाम तपसे गिरिम् ।
मन्दरं रत्नकनकमूर्धोद्भासितकन्धरम् ॥

वह नन्दी को कहकर देवी तपस्या करने के लिए रत्न-सुवर्ण मूर्धा से उद्भासित कन्धरा वाले मन्दराचल पर्वत पर चली गई ।

एतस्मिन्नन्तरे कृत्वा देवीरूपं महासुर:[3] ।
अजानन्हरमाहात्म्यं तज्जिघांसा[4]समुत्सुक: ।
आधिनामासुर: कृत्वा देवीरूपमुपागत: ॥

इसी बीच आधि नामक महासुर महादेव के माहात्म्य को न जानते हुए उसे मारने की इच्छा से उत्कण्ठित हो कर देवी का रूप बना कर आया ।

[5]···विना देवीं देवो दृष्ट्वा[6]···रिपुम् ।
दृशैव ध्वंसयामास रोषानल[7]···॥

इसके बाद······ महादेव ने······ क्रोध की अग्नि से धधकती हुई आँख से ही उसे नष्ट कर दिया ।

ल[8]···पद्मोद्भवा देवी गौरीत्वमात्मन: पुन: ।
हरान्तिकमुपागच्छज्ज्योत्स्नीव शिखरत्विषम् ॥
कालेन गच्छता देवी बुद्ध्वा दग्धं महासुरम् ।
शम्भुना कुप्यति ··स्माकं नन्दिनं प्रति दुर्धरा ॥
उक्त[9]···नन्दी[10] गत्वा मृत्यु···अवाप्स्यति ॥
यदा तदा मर्त्यं···[11]गत्वा मृत्यु···[12]अवाप्स्यति ॥
प्रसादिताथ देवेन भूय:[13] नन्दिनम् ।
गिरीन्द्रतनया प्रीत्या मातेव तनयं निजम् ॥
प्राप्तो मनुष्यतां वत्स त्वां मृत्यो·····[14] ।
देवेन सहिता भूयो मोक्षयिष्यामि सर्वथा ॥
सायुज्यतां विभुर्भूयो वीरक प्राप्स्यसि स्फुटम् ।
दृष्टमेतत्पुरा वत्स मासे मन्युं वृथा कृथा: ॥

---

१ पाठभाव२ स वनिता, ३ महास्वर:, ४ तज्जिगाघांसा०, ५ निसंघोथ, ६ वतंरिपुं, ७······८······९······१०······११ तात्वां, १२ मृत्यु अवाप्स्यसि । १३ ······ १४हरमञ्जसा,

आसाद्य वीरकश्चापं[1]······ पुत्रताम् ।
मुने नवं नन्दिगिरौ संस्मर[2]······ आत्मनः ।।
बाल एव स शैला[3]······
दानवाग्विचरन्कृत्स्नां महीं[4]······ मुनिस्तुताम् ।
अथ सिद्धैर्मुनिगणः शिला ······ प्रमुखैर्वृतः ।
नौबन्धनं परित्यज्य नन्दी श्वेतगिरिं ययौ ।।
त्रिनेत्रं मुकुटान्तस्थं सरो वैडूर्यनिर्मलम् ।
आसाद्य वीरका दध्यौ शिवं परमकारणम् ।।
अन्तर्जलमथाविश्य शिलां कृत्वा[6] शिरः[7]स्थलम् ।
तस्मिन्सरसि नन्दीशो ध्यायन्छि[8] वमवस्थितः ।

इसके बाद जल के भीतर प्रवेश कर······ नन्दीश शिव का ध्यान लगाए उस सरोवन में ठहर गए ।

एतस्मिन्नन्तरे सर्वे वशिष्ठ[9] प्रमुखास्ततः ।
तेपिरे[10]ऽतिचिरं कालं तीर्थे[11] वै वीरमोचने ।।

इसके बाद इसी बीच बशिष्ठ आदि प्रमुख सभी ऋषि वीरमोचन तीर्थं पर अति चिरकाल तक तप करने लगे ।

गिरीशं[12] द्रष्टुकामास्ते पार्वत्या सहितं चिरम् ।
चक्रुस्तपो[13] वशिष्ठस्य[14] मुनेरायतने शुभे ।।

पार्वती के साथ महादेव जी को देखने की कामना से उन्होंने बशिष्ट मुनि के शुभ आयतन में चिर काल तक तपस्या की ।

अद्य कालःप्राणहरो भूतानां वीरकार्त्तिकम् ।
अभ्याजगाम तं देशं ग्रसितुं तं[15] समुत्सुकम् ।।
तद[16]··· भगवान्कपर्दी वृषभास्थितः ।
द्रष्टुं[17] नन्दिनं[18]··· दन्तर्जलमुपस्थितः ।।
प्राणैरभ्यधिकं[19] शम्भुरपश्यन्नन्दिनं[20] गणम् ।
चचार पृथिवीं सर्वां सहदेव्या वृषध्वजः ।।

१पाठाभाव २संस्मर··· ३ दिर्जघान सुरकंठकान्, ४ सिद्धि, ५ शिलाद०, ६ कृत्वं, ७ शिवस्थलं, ८ ध्यायञ्शिव०, ९ वसिष्ट०, १० तेपिरेतिच्चिरं, ११ तीर्थं वै १२ गिरिशं द्रष्टकामास्ते, १३ चक्रस्तपो, १४ वसिष्टस्य, १५ ग्रसितुंतुंतमुत्सकं, १६ ······ १७ द्रष्टं, १८······१९ रभ्यंधिकं, २० शभुंरपश्यनंदिनं,

प्राणों से भी अधिक प्रिय नन्दी गण को शम्भु ने देखा और देवी पार्वती के साथ महादेव सभी पृथिवी पर घूमने लगे।

वीरकोऽपि[1] परं ब्रह्म जपन्नन्तर्जले[2] तदा ।
अपश्यद्धृदयान्तस्थं देवदेवमुमापतिम् ॥

वीरक ने भी तब जल के भीतर परब्रह्म को जपते हुए हृदय के भीतर स्थित देवाधिदेव महादेव को देखा।

तदन्तर[3] प्रेप्सुरथ कालपाश महा...[4] ।
तस्मिन्नेव सुरस्यादौ तस्थौ हन्तुं[5] तमेव हि ॥
अथारुह्य वृषं देवो [6]नन्दिनन्दनलालसः ।
बभ्राम जगतीं कृत्स्नां सशैलवनकाननाम् ॥

नन्दिनन्दन की लालसा से युक्त महादेव इसके बाद वृषभ पर सवार होकर पर्वत-वन-कानन से युक्त समस्त जगत् में घूमने लगे।

महेन्द्रमलयंसह्यं पारियात्रं च पर्वतम् ।
शुक्तिमन्तं दक्षमुखं विन्ध्यं मन्दरमेव च ॥
सुमेरुं निषधं देवो हेमकूटमनन्तकम्
[7]...हिमगिरिं प्राप नन्दिदर्शनलालसः ॥

नन्दी के दर्शन की लालसा से उस देव ने महेन्द्र आदि पर्वतों को एवं सुमेरु निषध, अनन्तक, हेमकूट और हिमगिरि को पाया।

सलिलान्तःस्थितं मत्वा भगवान्नीललोहितः ।
उवाच वीरकं प्रीतो मृत्युं विद्राव्य दर्शनात् ॥

भगवान् नीललोहित ने जल के भीतर स्थित समझ कर प्रसन्न हो कर दर्शन से मृत्यु को भगा कर वीरक से कहा।

वत्स प्रीतोऽस्मि तपसा दुष्करेणाधुना[8] तव ।
प्रयच्छ स्ववस[9]... तान्प्रब्रूहि यथासुखम् ।

हे बेटा ! मैं अब तेरी इस दुष्कर तपस्या से प्रसन्न हो गया हूँ।......

अथोत्थाय जलान्तःस्थाद्वीरको वीटवन्दितः ।
अष्टाङ्गप्रणिपातेन तोषयामास शूलिनम् ॥

वीरों से बन्दित वीरक ने इसके बाद जल के भीतर से उठकर अष्टाङ्ग नमस्कार से त्रिशूलधारी महादेव को प्रसन्न किया।

---

१ वीरकोपि, २ जपनंतर्जले, ३ तदंतरप्रेप्सु०, ४ महा...५ हतुं, ६ नन्दि० ७ तीत्वा, ८ दुष्करणाधुना, ९ न्द्वैरंतान्प्र०,

ओं नमः शिवाय शर्वाय शङ्कराय हराय च ।
कर्पादिनीविरूपाय स्वरूयापाव्ययाय च ॥
अघोराय महोग्राय स्थाणवे[१] पुरुषाय च ।
व्योमरूपाय सौम्याय त्रिपुरुषाय[२] शूलिने ॥

शिव, शर्व, शङ्कर हर, कर्पादिनीविरूप, स्वरूप, अव्यय, अघोर, महोग्र, स्थाणु, पुरुष, व्योमरूप, सौम्य, त्रिपुरुष और त्रिशूली को नमस्कार है ।

नमो रुद्राय भीमाय भवाय भवभेदिने ।
तुभ्यं पशूनां पतये नीलग्रीवाय वेधसे ॥
महादेवाय दान्ताय यमिने ब्रह्मचारिणे ।
नमः सेनाधिपतये सर्वमन्त्रमयाय[३] च ॥

रुद्र, भीम, भव, भवभेदी, पशुपति, नीलग्रीव, वेधा, महादेव, दान्त, यमी, ब्रह्मचारी, सेनाधिपति और सर्वमन्त्रमय तुझे नमस्कार है ।

प्रधानाय कनिष्ठाय नमः कालान्तकाय च ।
भस्मानिष्टाय शान्ताय गङ्गाधौतजटाय च ॥
जटिने खङ्गिने[४] तुभ्यं नमः सिद्धस्तुताय च ।
उग्राय प्रमथेशाय सर्पमालाधराय च ॥

प्रधान, कनिष्ठ, कालान्तक, भस्मानिष्ट, शान्त, गङ्गाजल से धुली जटाओं वाले, जटी, खगी, सिद्धों से स्तुत, उग्र, प्रमथेश और सांपों की माला को धारण करने वाले, तुझे नमस्कार है ।

ब्रह्मण्याय वशिष्ठाय[५] मीढुषे पञ्चमूर्तये ।
उमादेहाय शक्ताय नमस्ते दिव्यचक्षुषे ॥
संसारोत्तारमुक्ताय सत्त्वानुग्रहशालिने ।
नमोऽनन्तस्वरूपाय[६] प्रणतानन्ददायिने ॥

ब्रह्मण्य, वशिष्ठ, मीढु, पञ्चमूर्ति, उमादेह शक्त' दिव्यचक्षु, संसारोत्तार मुक्त, सत्त्वानुग्रहशाली, अनन्तस्वरूप और प्रणतानन्ददायी, तुम्हें नमस्कार है ।

त्र्यम्बकाय भवायाथ कुमारगुरवे नमः ।
विलोहिताय पिंगाय धूमरूपाय रोममे (?) ॥
व्याधाय व्याप्तविश्वाय विश्वरूपाय योगिने ।
सर्वदेवनमस्याय सर्वदेहमयाय च ॥

---

१ स्थानवे, २ त्रिपुरषाय, ३ सर्वमंत्रमयाय ४ खड्गिने, ५ वसिष्ठाय, ६ नमोनन्त,

त्र्यम्बक, भव, कुमारगुरु, विलोहित, पिंग, धूमरूप,……व्याध, व्याप्तविश्व, विश्वरूप, योगी, सर्वदेवनमस्य, और सर्वदेहमय, तुझे नमस्कार है।

अभावभावरूपाय भवातीताय ते नमः।
वृषध्वजाय दीप्ताय प्रमथानन्दिताय च ॥
ब्रह्मवक्त्राय मुख्याय[1]…… प्रहराय च।
विशुद्धज्ञानदेहाय प्रजासंहारकारिणे ॥

अभावभावरूप, भवातीत, वृषध्वज, दीप्त, प्रमथानन्दित, ब्रह्मवक्त्र, मुख्य,… प्रहर, विशुद्धज्ञानदेह और प्रजासंहारकारी, तुझे नमस्कार है।

नमो दक्षाध्वरध्वंसकारिणे[2]…… पाणये।
प्रजापतीनां पतये जगतां[3] प्रभवे नमः ॥
सलिले तप्यमानाय सेव्याय मुदिताय च।
नमः कपालहस्ताय[4] श्मशाननिलयाय च ॥
महास्थिमयमालाय व्यालयज्ञोपवीतिने।

दक्ष के यज्ञ को नष्ट करने वाले,…पाणी, प्रजापतियों के पति, जगत् के प्रभु, जल में तपते हुए, सेव्य, मुदित, कपालहस्त, श्मशाननिलय, महास्थिमयमाला और सांपों के यज्ञोपवीत को धारण किए हुए तुझे नमस्कार है।

अम्बिकाशापदग्धं मां पाहि मन्मथसूदन।
नापराधं मया देव कदाचिदपि ते नमः ॥

हे मन्मथसूदन! अम्बिका के शाप से जले हुए मेरी रक्षा कीजिए। हे देव! मुझ से कभी अपराध नहीं हुआ, तुझे नमस्कार है।

अन्येषां गतिरन्यो[5]ऽस्ति[6]…… कर्मगतिः किल।
त्वद्विना देव[7]…… … कुत्रचिदनामयम् ॥
निशम्य भगवा[8]न्नेवं सह देव्या वृषध्वजः।
ददौ[9]………… न्नन्दिने लोकनन्दिने ॥

भगवान् शिव ने पार्वती के साथ इस तरह सुनकर लोगों को आनन्दित करने वाले नन्दी को… दिया।

अथोवाच महादेवं नन्दी लोकनमस्कृतः।
प्रणिपत्य[10]…… कुङ्कुमारुणविग्रहः ॥

---

१ मगने, २ टंकपाणये, ३ जगता प्रभवे, ४ कपालहस्तं ५ रन्योस्ति, ६……७……८ भगवानेवं, ९…… १० ……

इसके बाद लोगों से नमस्कृत और केसर आदि लाल शरीर वाले नन्दी ने महादेव जी को नमस्कार कर कहा।

हिमवच्छिखरे पुण्ये यस्मिन्नाराधितो मया।
त्वं देवदेव तत्क्षेत्रं ख्यातिं व्रजतु शाश्वतीम्॥

हे देवाधिदेव ! जिस हिमालय के पुण्यप्रद शिखर पर मैंने तुम्हारी आराधना की है, वह क्षेत्र शाश्वती प्रसिद्धि को प्राप्त हो।

एवमुक्तो हरः[1] प्राह नन्दिनं कश्मलापहम्।
स्मितज्योत्स्नाप्रभापूरैः शुक्लीकुर्वन्निदं जगत्॥

इस प्रकार कहे गए महादेव जी ने अपनी मुस्कराहट की ज्योत्स्ना प्रभा के समूह से इस जगत् को सफेद करते हुए संकट को हटाने वाले नन्दी से कहा।

दृष्टमेतत्पुरा वत्स देशस्त्रैलोक्यवन्दितः।
भविष्यति न सन्देह[2]स्तपो यत्र त्वया कृतम्॥
अस्य क्षेत्रस्य माहात्म्यं शृणु प्रयतमानसः।
[3]यद्दृष्टं पूर्वमेवेह पुराणेषु पृथक्पृथक्॥

यह देश, जहाँ तूने तप किया है तीनों लोकों में मान्य होगा।

संयत मन वाले होकर तुम इस क्षेत्र के माहात्म्य को सुनो, जो पहले ही पुराणों में अलग-अलग देखा गया है।

लोकद्वारात्समारभ्य यावत्कनक[4]नन्दिनम्।
तावन्महाक्षेत्रवरं भविष्यति न संशयः॥

लोकद्वार से लेकर कनकनन्दी तक जो क्षेत्र है, वह श्रेष्ठ महाक्षेत्र होगा, इसमें सन्देह नहीं है।

[5]नन्दिक्षेत्रमिति ख्यातं वन्दितं विबुधा[6]सुरैः।
[7]पुण्यायतनगम्भीरं भविष्यति शिलादज॥

देवता और असुरों से वन्दित यह नन्दिक्षेत्र प्रसिद्ध हुआ। हे शिलादज ! यह पुण्यायतनगम्भीर होगा।

अत्र तीर्थानि यावन्ति यानि चायतनान्यलम्।
कथयिष्यामि तानीत्थं[8] समाधिपरमं शृणु॥

---

१ हर प्राह २ संदेहोस्तपो ३ यदृष्टं ४ नंन्दिनं ५ नन्दि० ६ विबुधास्वरैः, ७ पुण्यं, ८ तनीत्थं,

जहां जितने तीर्थ और जो आयतन हैं, उन्हें मैं इस प्रकार कहूंगा, परमसमाधिस्थ होकर सुनिए।

लोकद्वारं महत्क्षेत्रं प्रमथेश्वरमण्डितम्।
पुण्यमायतनं पूर्वं सिन्धु[1]तीर्थपरिप्लुतम् ॥

पहले सिन्धुतीर्थ से युक्त पुण्यप्रद आयतन प्रमथेश्वर से मण्डित लोकद्वार महाक्षेत्र है।

अत्र स्नातो नरो नूनं श्रद्धाभक्तिसमन्वितः।
प्राप्नोति लोकं[2]शुभं गणेन्द्रस्य महात्मनः ॥

जहां श्रद्धा और भक्ति से युक्त मनुष्य स्नान करने पर निश्चित महात्मा गणेन्द्र के शुभ लोक को पाता है।

ततः पथेश्वरं यायाद्[3]भरताचलमुत्तमम्।
नदी यत्र महापुण्या नाम तीर्थ विमिश्रिता ॥

इसके बाद उत्तम भरताचल-पथेश्वर को जाए, जहां महापुण्या-तीर्थ विमिश्रिता नदी है।

तत्र गौर्य्याश्रमं पुण्यं यत्र गौरी स्वयं स्थिता।
लोकानां तु हितार्थाय प्रमथेश्वरगोपिता ॥

वहां पुण्यप्रद गौरी का आश्रम है, जहां लोगों के हित के लिए प्रमथेश्वर से गोपित गौरी स्वयं विद्यमान है।

पुण्ये भाद्रपदे[4]मासे चतुर्थ्यां तत्र पूजयेत्।
शुक्लपक्षे तु तां गौरीममरेन्द्रमुनिस्तुताम् ॥

वहां पुण्य भाद्रपद मास में शुक्लपक्ष चतुर्थी के दिन देवेन्द्र और मुनियों से जिसकी स्तुति की जाती है, उस गौरी की पूजा करे।

भक्तानां चिन्तितान्कामान्सा प्रसन्ना प्रदास्यति।
पूजिता[5].................... महिषासुरनन्दिनी ॥

......पूजित वह महिषासुरनन्दिनी प्रसन्न होकर मनुष्यों को सोची हुई कामनाएं देगी।

[6]पितॄन्नुद्दिश्य यत्तत्र[7]जलदानादिकल्पितम्।
पुंभिस्तद[8]क्षयगुणं प्राप्यते तैस्त्रिविष्टरे ॥

---

१ तीय २ लोकंमशुभ, ३ याया भरता०, ४ मासि ५...... ६ पितॄनुद्दिश्य, ७ जजल, ८ दक्षयय०

पितरों को लक्ष्य रखकर वहां जो जल दान आदि किया जाता है, उन मनुष्यों से स्वर्ग में अक्षय गुण पाया जाता है।

गौरीपूजां तु निर्वर्त्य पथेश्वरगिरौ ततः ॥
आरुह्य त्पर्वतं धीमाञ्जिताहारक्रमेण तु ॥

गौरी पूजा से निवृत्त होकर पथेश्वर गिरि पर बुद्धिमान पुरुष जिताहार क्रम से आरोहण करे।

नानौषधिलताजालदिव्यपादपमण्डितम् ।
शुभप्रस्रवणोपेतं भरताचलसंज्ञितम् ॥

नाना-औषधि-लताजाल एवं दिव्य वृक्षों से सुशोभित, शुभ झरनों से युक्त भरताचल नामक पर्वत पर आरोहण करे।

सम्यग्दत्तस्य नन्दीश गोसहस्रस्य यत्नतः ।
फलं प्राप्नोति भरतपर्वतारोहणान्नरः ॥

हे नन्दीश ! यत्नपूर्वक अच्छी प्रकार से दी गई सहस्र गायों के फल को मनुष्य भरतपर्वत पर आरोहण करने से पाता है।

तत्पूर्वं हि ब्रह्मसुरसरः[1] कनकपङ्कजम् ।
प्राकाशितो नरः स्नातो यत्र ब्रह्मपदं व्रजेत् ॥

उससे पहले सुवर्णकमलों से युक्त ब्रह्मसुर नामक सरोवर है, जिसमें स्नान करने से मनुष्य ब्रह्मपद को पाता है।

कार्पण्यतीर्थं तत्रैव स्वल्पोदकपरिस्नुतम् ।
यत्रोपस्पृश्य[2] विधिना गोधनं प्राप्नुयान्नरः ॥

वहीं थोड़े जल से युक्त कार्पण्य तीर्थ है, जहां विधिपूर्वक आचमन कर मनुष्य गोधन को पाता है।

अथ पूर्वदिशं[3] गत्वा दृश्यते शिखरोपरि ।
मायान्यस्तं शिलायां तु चरणं सूक्ष्मरूपकम्[4] ॥

इसके बाद पूर्वदिशा को जाकर शिखर के ऊपर जो शिला है, उस पर माया से लगा सूक्ष्म रूप में चरण दिखाई देता है।

यमभ्यर्च्य नरो याति दग्धः[5] सारपञ्जर ।
मदन्तिकमयत्नेन यत्सुरैरपि दुर्लभम् ॥

जिसकी पूजा कर मनुष्य अस्थिपञ्जर शरीर के जल जाने पर मेरे पास बिना यत्न से चला आता है, जो देवताओं के लिए भी दुर्लभ है।

---

१ सुरस्मरः, २ यत्रोपस्पृ०, ३ पूर्वां दिशि, ४ सूक्ष्मरूपकः ५ दग्धं ।

तदधो विद्यते वत्स तीर्थं कनकपङ्कजम् ।
नाम्ना कनकनन्दीति संसारभयमर्दनम् ।

उसके नीचे हे बेटा ! सोने के कमलों से युक्त और संसार के भय को नष्ट करने वाला,

कक्कूलनागैर्गोपितं तच्छ्‌भ्रप्रतिष्ठितम् ।
अलभ्यं त्रिदशाधीशं कूपाकारं स्वभैरवम् ।।

कक्कूलनागों से सुरक्षित, श्वेतगर्त में प्रतिष्ठित, दुर्लभ, त्रिदशाधीश, कूपाकार और भैरव 'कनकनन्दी' नामक तीर्थ है ।

न तदासाद्यते देवैः किं पुनर्मानुषैरपि ।

वह देवताओं से भी नहीं पाया जाता, फिर मनुष्यों का कहना ही क्या ?

रक्ष्यते [1]किङ्करैर्घोरैस्तीक्ष्णदंष्ट्रैस्तथाहिभिः ।
तत्प्राप्या सशरीरी वै नरो याति शिवालयम् ।

उसकी घोर किङ्करों और तेज दान्त वाले सांपों से रक्षा की जाती है, उसे पाकर मनुष्य सशरीर शिवालय को प्राप्त करता है ।

पाराशर्य न सन्देहस्तत्र सत्यं ब्रवीमि ते ।

हे पाराशर्य ! इसमें सन्देह नहीं है, यह मैं तुझे सत्य कहता हूँ ।

अनुक्तेऽथ तीर्थेषु स्नात्वाधिगतकल्मषः ।
[2]हसद्वारेण यातव्य कर्मणोत्तरमानसम् ।

इसके बाद अधिगत कल्मष (पापी) पुरुष को अनकहे तीर्थों में स्नान कर हंसद्वार से कर्मणोत्तर मानस को जाना चाहिए ।

हंसद्वारमुपारूढो नामकीर्तिप्रकाशकः ।
अवश्यं त्रिदिवं याति नरः[3] कालेन संयुतः ।।

अपने नाम और यश को प्रकाशित करने वाला पुरुष हंसद्वार को पाकर कालानुसार अवश्य स्वर्ग को प्राप्त करता है ।

तदतीत्य ततः[4] पुण्यान्यनेकान्याप्लवेन्नरः ।
विबुधैः[5] कल्पितैः[6] पुण्यैस्ते[7]षु स्नातो दिवं व्रजेत् ।।

उसे फांदकर तदनन्तर मनुष्य अनेक पुण्यों को प्राप्त करे और उनमें स्नान करने से विद्वान् पुरुषों से कल्पित पुण्यों से स्वर्ग को जाए ।

---

१ किंखैरै., २ हसद्वारेण, ३ नरकालेन, ४ तुतः, ५ विवुधै, ६ कल्पितै, ७ पुण्यै तेषु ।

तत्र यातं च खण्डञ्च[1] विमलं स्वर्गमेव च।
आसुर[2]तीर्थमतुलमृणमोचनमुत्तमम् ॥
कपिलातीर्थमन्यच्च[3] देव रामह्रदं तथा।
गदा शार्ङ्गं तदा चक्रापगाः सरितां वराः[4]।

वहां⋯अतुल आसुर तीर्थ, उत्तम ऋणमोचन, कपिला तीर्थ⋯रामह्रद, गदा, शार्ङ्ग, चक्र एवं नदियों में श्रेष्ठ नदिएं,

नन्दितीर्थं कालतोयं रम्यं गौरिसरस्तथा[5]।
पृथूदकं प्रभासं च केदार तुहिनाचलम् ॥
एतान्यन्यानि[6]⋯⋯⋯⋯ ⋯ यतनमण्डले।
तीर्थानि सन्ति नियतं येषु स्नातो दिवं व्रजेत् ॥

नन्दितीर्थ, कालतोय रमणीय गौरीसर, पृथूदक, प्रभास. केदार और तुहिनाचल, ये और अन्य ⋯आयतनमण्डल में तीर्थ हैं, निश्चित है कि जिनमें स्नान करने से द्युलोक को प्राप्त होता है।

[7]नन्दिकुण्डे नरः स्नात्वा तत्समीपे व्रजेन्नरः[8]।
कालोदके कृतस्नानो याति[9] वैवस्वतान्तिकम्।

नन्दी कुण्ड में स्नान कर मनुष्य उसके पास जाए। कालोदक में स्नान करने से मनुष्य वैवस्वत के पास जाता है।

[10]नन्दितीर्थसमं नास्ति त्रैलोक्ये तीर्थमुत्तमम्।
वसामि नियतं यत्र[11] सह देव्या त्वदन्तिके ॥

नन्दीतीर्थ के समान त्रिलोकी में अन्य कोई उत्तम तीर्थ नहीं है। जहां मैं निश्चित पार्वती के साथ तुम्हारे पास रहता हूँ।

पूर्वोक्तेषु च तीर्थेषु यो हि मज्जति मानवः।
ब्रह्माच्युतमहेन्द्राणां याति सायुज्यमक्षयम् ॥

उपर्युक्त तीर्थों में जो मनुष्य स्नान करता है, वह ब्रह्मा, विष्णु और महेन्द्र के अक्षय सायुज्य को पाता है।

चतुर्थीतः समारभ्य तीर्थेष्वेतेषु मानवः।
आस्नुतः सप्तमीं यावत्फलं प्राप्नोति पुष्कलम्।

चतुर्थी से लेकर सप्तमी तक इन तीर्थों में स्नान करने से मनुष्य पुष्कल फल पाता है।

---

१ षंड च, २ अप्सर., ३ मन्यश्च, ४ वरः, ५ गारिसर., ६ भूरःणि दत्वा., ७ नंदि., ८ व्रजेन्नर, ९ यांति, १० नन्दि., ११ यत्रं,

अष्टम्यां तु ततो गच्छेत्पुण्यमुत्तरमानसम् ।
नीलोत्पलदल [1]श्यामं सलिलौघे[2]परिस्नुतम् ।।

अष्टमी के दिन नील कमलों की पंखुड़ियों से श्याम वर्ण वाले, जलप्रवाह से युक्त, पुण्यप्रद उत्तरमानस को जाए ।

यत्र भागीरथी देवी हरमौलिपथच्युता ।
मुक्तामालीलि पतति[3] हिमवच्छिखरा……[4] ।।

जहां गङ्गा देवी महादेव के मस्तकमार्ग से गिरी हुई…

तत्तीर्थमासाद्य तदा गङ्गा हिमव[5]त्सुता ।
अन्तर्धानमुपातिष्ठे[6]द्देवगन्धर्व[7]वन्दिता ।।

तब देवता और गन्धर्वों से वन्दित हिमालय पुत्री गङ्गा उस तीर्थ को पाकर अन्तर्धान हो गई ।

तस्मिंस्तीर्थवरे स्नातो गङ्गाजलपरिप्लुतः ।
ब्रह्मलोकं[8] न सन्देहः[9] प्राप्नोति पितृभिः सह ।।

उस तीर्थ श्रेष्ठ में स्नान करने से गङ्गाजल से शुद्ध हुआ मनुष्य पितरों के साथ ब्रह्मलोक को पाता है, इसमें सन्देह नहीं है ।

तज्जलेन दिवं यान्ति पितरः[10] कालमक्षयम्[11] ।
देदीप्यमाना विबुधैर्बन्दिताः[12] संशयं विना ।।

उसके जल से पितर प्रदीप्त हुए और विद्वद्-पुरुषों से बन्दित निस्सन्देह अक्षय काल तक स्वर्ग को जाते हैं ।

[14]मृतानामस्थिनिचयं तस्मि[13]स्तीर्थे विनिक्षिपेत् ।
सुसंस्कृत्य यथान्यायं मनुष्याणां नरोत्तमः ।।

मरे हुए मनुष्यों के अस्थिसमूह को यथाविधि सुसंस्कृत कर मनुष्य उस तीर्थ में फेंक दे ।

जाह्नवीजलसंस्पर्शात्स्नानादृत्रिदिवमुत्तमम् ।
मृतास्ते यान्ति नियतं यावदाभूमिसंप्लवम् ।।

गङ्गा के जलस्पर्श से एवं स्नान से मरे हुए निश्चित भूमिप्रलय तक उत्तम त्रिदिव को पाते हैं ।

जपितं प्रहुतं दत्तं तप्तं सुकृतं…[15] ।
अक्षयञ्च[16] सम्भवति तत्र ब्रह्मादिना विधि ।।

---

१ श्यामां २ सलिलौघ ३ पतिति, ४ त्वरं ५ हिमवतसुता ६ मुपातिष्ट देव, ७ दन्दिता, ८ ब्रह्मलोक, ९ संदेह, १० पितर, ११ ममक्षय, १२ वन्दिता, १३ मृतानांमस्थि, १४ तस्मिं तीर्थं, १५ पाठाभाव, १६ अक्षयश्च स भवति ।

जलेन पूजयेद्देवं तस्मादुत्तरमानसम् ।
शशाङ्कशेखरं मत्य:[1] शिवलोकसमुत्सुकः ॥

शिवलोक के लिए उत्कण्ठित मनुष्य उससे उत्तर मानस में स्थित शशाङ्कशेखर देव को पूजे ।

तत्र श्राद्धं पितॄणां[2] तु कृतमक्षयतां व्रजेत् ।
तदम्भस्तर्पिता यान्ति त्रिदिवं पितरः सदा ॥

वहां पितरों के निमित्त किया गया श्राद्ध अक्षयता को प्राप्त हो, उसके जल से तर्पण किये जाने पर पितर सदा त्रिदिव (स्वर्ग) को पाते हैं ।

तत्रोष्य रजनीमेकां क्षपास्त्रिपञ्चसप्त वा[3] ।
ब्रह्मलोकं[4] नरः सम्यक् लभते त्रिदशैः[5] समम् ॥

वहां एक रात वा तीन, पांच या सात रात्रि वास कर मनुष्य देवताओं के साथ ब्रह्मलोक को अच्छी तरह पाता है ।

न पुण्यं शक्यते वक्तुं काले चोत्तरमानसे ।
वदनानां[6] सहस्रेण देवेन हरिणाप्यलम् ॥

उत्तरमानस में हजारों मुखों से भी उसका पुण्य नहीं कहा जा सकता है । देवहरि से भी नहीं ।

नरः शिवपुरं गच्छेत्स्नातश्चोत्तरमानसे ।
परं ध्यानपरोक्षं[7] यदासाद्य न जायते ॥

उत्तरमानस में स्नान कर मनुष्य परम ध्यान परोक्ष शिवपुर को जाए, जिसे पाकर पुनर्जन्म होता है ।

तदतीत्य ततो यायादैरावणसरः शुभम् ।
यत्र स्नातो नरो याति दिवमिन्द्रादिपूजितः ॥

उसे फांदकर इसके बाद शुभ ऐरावण सरोवर को जाए । जहां स्नान कर मनुष्य इन्द्र आदि से पूजित होकर स्वर्ग को पाता है ।

ततश्चन्द्रसरो[8] गच्छेत्तारकासर एव च ।
घृतस्य च सरो[9]ऽत्रैव सरस्वत्यास्तथैव च ॥

इसके बाद चन्द्रसर और तारकासुर जाए, यही घृत का सर और सरस्वती का सर है ।

---

१ मर्त्यं २ पितृणां ३ सप्तवान्, ४ ब्रह्मलोके, ५ त्रिदशैं समं, ६ वदनानानां, ७ परोक्ष्यां, ८ ततः इचन्द्रसरो, ९ सरोत्रैव,

ततो विष्णुसरो गच्छे[1]त्कुमारसर एव च।
ब्राह्मं सरः[2] शूलभेदे यत्र पञ्चाग्नयः[3] सदा॥

इसके बाद विष्णुसर तथा कुमारसर एवं ब्राह्म सर जाए, जहां शूलभेद के समय सदा पञ्चाग्नियों का वास है।

[4]... यत्र तत्रैव प्राप्नोति सहजोत्तमः।
कालीशका नदी पुण्या नाम्ना कनकवाहिनी॥
निर्याति हेम्नो[5] वहति या सदैवामलोदकः॥[6]

कनकवाहिनी नाम कालीशका पुण्या नदी हेम से निकली है और जो सदैव निर्मल जल से वहती है।

[7]तस्यास्तीर्थसहस्राणि लक्षाण्यपि बहून्यपि[8]।
वसन्ति यानि वै स्नातं पावयन्ति यथोदितम्॥

उस नदी के हजारों, लाखों और बहुत से तीर्थ हैं, जो स्नान करने वाले को यथोदित पवित्र करते हैं।

निर्गता सा पतत्युच्चैर्नदी कनकनन्दिनी।
मूर्ध्नि गङ्गेव जगतां तत्र शम्भोर्मलापहा॥

वहां जगत् के मल को नष्ट करने वाली शम्भु के मस्तक पर विराजमान गङ्गा की तरह वह कनकनन्दिनी नदी निकली हुई ऊँचे गिरती है।

कालोदकेति सा पूर्वं ततः कनकवाहिनी।
कथिता[9] सर्वलोकेषु पुंसां[10]...मोदिनी॥

पहले वह 'कालोदका' इस नाम से थी, इसके बाद सभी लोकों में पुरुषों के .. कनकवाहिनी प्रसिद्ध हुई।

तत्फलं शक्यते वक्तुममरैर्नैव कालजैः।
किमु मर्त्यैरल्पबोधैर्महापुण्यैः[11] समुद्भवम्॥

उसका फल देवता भी कहने में समर्थ नहीं हैं, फिर स्वल्पज्ञान वाले मनुष्यों का महापुण्यों से पैदा हुए उसके फल को कहने के विषय में क्या कहना?

वृषभावलमासाद्य पार्श्वे कनकनन्दिनः।
वसेत्तत्र नरो रात्रौ रुद्रलोकसमुत्सुकः॥

---

१ गच्छे कुमारा., २ ब्राह्मं सर, ३ पंचाग्नय, ४... ..., ५ हेम्ना, ६ मलोदकः, ७ तस्या तीर्थ., ८ बहूनिपि, ९ कथितः, १०......, ११ पुण्यै समु.,

रुद्रलोक के लिए उत्कण्ठित मनुष्य वृषभावत्व को पाकर कनकनन्दी के पास ही रात्रि के समय रहे।

हेमनन्दिजलैः[1] स्नात[2]स्तन्माहात्म्योपवृंहितः।
रुद्रलोके नरो याति विधूय विपुलं तमः॥

हेमनन्दी के जल से स्नान कर और उसके माहात्म्य से युक्त मनुष्य विपुल अन्धकार को नष्ट कर रुद्रलोक में जाता है।

स्नात्वा सप्तसरःकुल्यां सलिले मानवोत्तमः।
पुनाति निखिलं पापं सप्तकुलसम्भवम्॥

सप्तसर नदी के जल में मानव स्नान कर सात कुलों में भी पैदा हुए समस्त पाप को पवित्र कर देता है।

...विबुधैरपि पूज्यते दशाश्वमेधसेवितः[4]।
गच्छेत्सायुज्यमादराच्चरणकस्य मुनेः देवो मे शिवमव्ययम्॥
चीरमोचनमासाद्य रात्रि...[5]
तत्र ते मुनयः[6] श्रेष्ठा वसिष्ठप्रमुखगतज्वराः[7]॥
स्वर्गमार्गप्रदं प्रोक्तं तीर्थ...[8]प्रमोचनम्।
स्नात्वा तत्र दिवं याति[9] योऽपि [10]पापकृतो नरः॥

यह चीरप्रमोचन तीर्थ स्वर्गमार्गप्रद कहा गया है। इसमें स्नान कर, जो भी पापी मनुष्य होता है, वह स्वर्ग को पाता है।

अद्यापि तत्र दृश्यन्ते चीराड्यसमुत्सुकाः[11]।
तत्र ये तर्पयिष्यन्ति पितृंस्तु[12] ते[13]मनुजोत्तमाः[14]॥

आज भी वहां...... देखे जाते हैं। वहां जो पितरों का तर्पण करेंगे, वे मनुष्य श्रेष्ठ होंगे।

नित्यं सन्निहित[15]स्तस्मिंस्तीर्थमन्त्रमहातनुः।
नदीमध्यगतं गच्छेत्तमालपुर[16]मुत्तमम्॥

उसमें नित्य तीर्थमन्त्रमहातनु पास है। नदी के मध्य में स्थित उत्तम तमालपुर को जाए।

---

१ जलैस्नात, २ तन्माहात्म्यो ३ पाठाभाव, ४ सवितः, ५ मादराव् चरणकस्य, ६ मुनयश्रेष्टा, ७ प्रमुगतज्वरः ८ चेर., ९ यांति, १० येपि, ११ समुत्सुकः, १२ पितृंस्तु, १३ त, १४ मनुजोन्तमः, १५ हितांतर्स्मि, १६ पुर उत्तमः।

आकर्ण्यते जनैः[1] सम्यग्पितृभ्यो[2] दत्तमक्षयम् ।
श्राद्धं तिलोदकार्थे च भैरवे च महालये ।।
आचम्य...[3] स्वयमस्मिंस्त्वया[4] सह ।
तिष्ठामि यावत्तीर्थान्यायतनानि च ।।
ज्येष्ठ[5] न्दिक्षेत्रमिति ख्यातं तत्क्षेत्रं सुरवन्दितम् ।
तत्र सन्निहितो वत्स भविष्यसि[6] मया सह ।।

यह 'ज्येष्ठन्दिक्षेत्र' के नाम से प्रसिद्ध हुआ, यह क्षेत्र देवताओं से वन्दित है। हे बेटा ! तुम वहां मेरे साथ मेरे पास होगे।

अत्र ज्येष्ठेश्वरः शम्भुरत्र[7] नन्दीश्वरो विभुः ।
[8]नरः स्नातो ब्रह्महत्यां व्यपोहति ।।

यहां ज्येष्ठेश्वर शम्भु है और यहां विभु नन्दीश्वर हैं।...... मनुष्य स्नान करने से ब्रह्महत्या को नष्ट करता है।

नर[9] चणकेश इति श्रुतम् ।

मनुष्य...... 'चणकेश' यह सुना गया।

शिवमभ्यर्च्य मनुजो ददौ दर्शनमीश्वरः ।
भित्वा शिलां तत्र युक्तः[10] वसेत्तु यः ।।
विधूय सर्वपापानि स याति[11]... ।।
कृत्वा तपो महासिद्धि लेभि[12] गतानि तु ।
उज्झितानि मुनीन्द्रैस्तु[13] [14]तद्दर्शन...।।
तैः सार्धं शिवलोकं ते यास्यन्ति [15]तीर्थे कनकवाहिने ।
गर्भस्थो भगवा[16]...यज्ञमनुत्तमम् ।।

उनके साथ वे कनकवाहिनी तीर्थ में शिवलोक को जाएगे।...

अद्यापि हि निशा[17] गीतस्वरैस्तथा ।
तस्मिंस्तीर्थवरे पुण्ये विसृष्टमुपतिष्ठते ।।
केदारे सोमतीर्थे च गाणपत्यमवाप्यते ।
[18]वशिष्ठस्याश्रमे तत्र शब्दितो[19]...।।

---

१ जनै, २ ग्पितृभ्यो, ३ प्रियतो पुण्ये, ४ मस्मिस्त्वया, ५ ज्येभृतरे, ६ भविष्यति, ७ शम्भुः रत्र, ८ कासंगय., ९ विधूतकथे, १० सलेमेकां, ११ परखाश्चिरं १२ लोभिरिम्भो., १३ मुनीद्रैस्तु, १४ लिलादिभिः, १५यास्यंतिर्थे, १६पाठाभाव, १७पाठाभाव, १८ वसिष्ठस्या., १९......,

केदार और सोमतीर्थ में गाणपत्य को पाया जाता है। वहां वशिष्ठ के आश्रम में...

ब्रह्माण्डपादे तिष्ठन्ति तानि नन्दीश्वरान्तिके[1]।
न भविष्यत्पुराणेषु दृश्यमेव पुरैव हि॥

नन्दीश्वर के पास ब्रह्माण्डपाद में वे रहते हैं।

नियतं [2] सर्वगन्धर्वसुरासुरनमस्कृतः।
नित्यं सन्निहितश्री[3]...सुरासुरवन्दितः॥

वहां प्रथितात्मा द्वारा ज्येष्ठनाथ के दर्शन करने से हे बेटा! सैकड़ों ब्रह्महत्याएं नष्ट हो जाती हैं, इसमें संशय नहीं है।

दर्शना[4] ज्ज्येष्ठनाथस्य तत्र च प्रथितात्मना।
ब्रह्महत्याशतं वत्स नश्यत्यत्र न संशयः॥
उत्तीर्य नन्दिकुण्डात्त्वं[5] स्वयं सत्सोदरे स्थिता।
भूतेश्वर इति ख्यातः[6] कृत्स्नपापप्र...[7]दरः॥
स्वयमर्चां ग्रहीष्यामि भक्त्याहं [8]प्रतिपादिताम्।
भक्तमुत्सुकमेवाहं ग्रहीष्यामि न संशयः॥

भक्तिपूर्वक प्रतिपादित अर्चा को मैं स्वयं ग्रहण करूंगी। मैं उत्सुक भक्त को ही ग्रहण करूंगी, इसमें संशय नहीं है।

देवदानवगन्धर्व[9]सप्तर्षिमहोरगाः[10]।
इहार्चयन्ति मां नित्यं[11] सन्निहिता[12]...॥

देव, दानव, गन्धर्व, सप्तर्षि, महोरग, यहाँ नित्य... मेरी अर्चना करते हैं।

मनुष्याणां महत्पापं महज्जन्मसहस्रकम्।
[13]क्षपयिष्यामि यत्नेन तमः सूर्य इवोदितः[14]॥

मनुष्यों के महापाप और हजारों महाजन्म नष्ट करूंगा। जिस तरह सूर्य अन्धकार को नष्ट कर देता है।

मदन्तिके महापुण्यं सुतीर्थमिति विश्रुतम्।
सदावतिष्ठते तीर्थं सर्वपापप्रमोचनम्॥

---

१ नन्दीश्वरातिके, २ गधर्व., ३ श्रीन्स., ४ दर्शनाज्येष्ट., ५ कुण्डात्वं, ६ ख्यात, ७ प्रनोदरः ८ भक्त्यांहं, ९ ससप्तर्षि, १० महोरगः, ११ नित्य, १२ सन्निहितो द्विधा, १३ क्ष्यपयिष्यामि, १४ तमसूर्य,

मेरे पास महापुण्यप्रद यह सुतीर्थ प्रसिद्ध हुआ। यह सभी पापों से छुटकारा दिलाने वाला तीर्थ सदा मेरे पास रहता है।

अस्नुतो मनुजस्तस्मिन्सुतीर्थे लोकविश्रुते।
पीत्वोदकञ्च तत्रैव स्नात्वा पुण्यं महच्छृणु॥

उस लोकप्रसिद्ध सुतीर्थ में मनुष्य स्नान करे और वहीं स्नान करने एवं जल को पीने का महापुण्य सुनो।

साग्रं कुलं शतं सम्यङ्नरकात्तारयिष्यति।
स यज्ञयाजी सर्वज्ञः[1] स गयां पुष्करं गतः॥
स सर्ववेद[2]...दद्यात्पितॄणां सोदरं जलम्।

वह आगे आने वाले सौ कुल को अच्छी तरह नरक से तारेगा। वह यज्ञयाजी, सर्वज्ञ.... गया और पुष्कर को चला गया, सभी वेदों को जानने वाला पितरों को सोदर का जल दे।

अल्पतः सोदरे मर्त्यः[3] शिवगङ्गापरिप्लुते।
कुलानां शतमुत्तार्य गाणपत्यमवाप्नुयात्॥

सोदर में थोड़ा भी शिवगङ्गा में स्नान करने पर सौ कुलों को तार कर गाणपत्य को पाए।

न समं सर्वलोकेषु सतीर्थस्य द्विजोत्तम।
विद्यते यज्जलैस्तृप्ताः पितरो यान्ति मत्पुरम्॥

हे द्विजोत्तम! सभी लोकों में सुतीर्थ के समान अन्य तीर्थ नहीं हैं, जिसके जलों से तृप्त हुए पितर मेरे पुर को जाते हैं।

ब्रह्माण्डाभ्यन्तरे यानि तीर्थान्यसुर[4]वन्दिते।
तानि सन्निहितानीह सुतीर्थे सर्वदैव हि॥

हे असुरवन्दिते! ब्रह्माण्ड के बीच जो तीर्थ हैं, वे इस सुतीर्थ में सर्वदा ही पास रहते हैं।

सुतीर्थजलसंसिक्तः पक्षो[5]पपक्षान्याप्नोति यः।
देशान्तरे चेद्देशो[6]ऽसौ पूतो भवति नान्यथा॥

सुतीर्थ के जल से सिक्त जो पक्ष-उपपक्षों को पाता है, विदेश में भी वह देश क्यों न हो, वह पवित्र होता है, यह अन्यथा नहीं है।

---

१ सर्वज्ञः स गयां २ वेद यो. ३ मर्त्य ४ न्यसर., ५ पक्षोपक्षान्यनोति, ६ द्देशोसौ,

फलाद्यैः सक्तुना वापि शालिश्यामाकत ड्डुलैः ।
श्राद्धं सुतीर्थे विदधत्तारयेत्स पित्[1]न्नरः ॥

फल आदि से, सत्तू से वा शालि अथवा श्यामाक तण्डुलों से सुतीर्थ पर श्राद्ध करता हुआ मनुष्य पितरों को तारे ।

त्रैलोक्या[2]...... पुण्यं तत्रापि तु हिमाचलः ।
सारं हिमवतस्तीर्थं सुतीर्थं लोकविश्रुतम् ॥

हिमालय का सार लोकप्रसिद्ध सुतीर्थ तीर्थ है ।

न गङ्गा न कुरुक्षेत्रं प्रयागः[3] सिन्धुसागरः ।
नैमिषं पुष्करं चैव सदृशं[4] सोदराम्भसः ॥

सोदर के जल के समान न गंगा है, न कुरुक्षेत्र है, न प्रयाग है और न सिन्धुसागर है, न नैमिष है, न पुष्कर है ।

सुतीर्थाच्च परं नास्ति ब्रह्माण्डे तीर्थमुत्तमम् ।
सुतीर्थे निवसन्नित्यं सुतीर्थं संस्मरन्सदा ॥
सुतीर्थजल[5]सुस्नातो दृष्ट्वा तीर्थं सुनन्दिनम् ।
नरो याति परां सिद्धिं यामासाद्य न जायते ॥

सुतीर्थ से परे ब्रह्माण्ड में उत्तम तीर्थ नहीं है । सुतीर्थ में नित्य रहता हुआ और सदा सुतीर्थ का स्मरण करता हुआ, सुतीर्थ के जल में स्नान कर तथा सुनन्दी तीर्थ के दर्शन कर मनुष्य परम सिद्धि को पाता है, जिसे पाकर पुनर्जन्म नहीं होता है ।

शर्वनन्दिमहाकालदेवीवदनमण्डितम् ।
भूतेश्वरं भूतपतिं दृष्ट्वा मर्त्यो विमुच्यते ॥

शर्व, नन्दी, महाकाल और देवी के वदन से अलङ्कृत भूतपति भूतेश्वर का दर्शन कर मनुष्य मुक्त हो जाता है ।

पश्चिमे वदने वीर समं[6] वत्स्यसि वत्स हे ।
भूतेश्वरसर्वभूतशरीरान्तर्गतो विभुः ॥

हे वत्स ! वीर ! पश्चिम वदन में भूतेश्वर सर्वभूत के शरीर के तुम अन्तर्गत विभुस्वरूप रहोगे ।

श्रीकण्ठः पूर्ववदने महाकालोऽथ[7] दक्षिणे ।
पश्चिमे नन्दिरुद्रस्तु देवी सौम्ये प्रतिष्ठिता ॥

---

१ पितृन्नरः, २पाठाभाव, ३ प्रयाग, ४ सदृश्यं, ५ सस्नातो ६ सम, ७ महाकालोघ,

पूर्ववदन में [illegible], दक्षिण में महाकाल, पश्चिम में नन्दिरुह और सौम्य (उत्तर) में देवी प्रतिष्ठित है ।

भूतेश्वरस्य देवस्य नन्दिक्षेत्रे महाबले ।
दृश्यते[1] वदने श्वेते देवीपतिर्महाशिवः ।।

भूतेश्वर देव के महाबल नन्दिक्षेत्र में श्वेतवदन में देवीपति महाशिव देखे जाते हैं ।

ये द्रक्ष्यन्ति[2] नराः[3] सम्यग्देवं नन्दीश्वरं शिवम् ।
ज्येष्ठस्थाने ध्रुवं लोकं शम्भोर्यास्यन्ति ते चिरात् ।।

ज्येष्ठस्थान में जो मनुष्य अच्छी तरह नन्दीश्वर शिव देव को देखेंगे, वे निश्चित चिर से शम्भुलोक को जाएंगे ।

तेषां[4] लोचने करौ तु सकायोऽ[5]नुपमस्तथा ।
स्थाने स्पृश्यते यैस्तु ज्येष्ठ[6]नाथः सनन्दिकः ।।

जिनसे सनन्दिक ज्येष्ठनाथ देखा जाता है व स्पर्श किया जाता है उनके नेत्र, हाथ और शरीर अनुपम हो जाते हैं ।

अथ किं बहुनोक्तेन नन्दिक्षेत्रादनन्तरम् ।
स्नानं न विद्यते शम्भोः सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ।।

इसके बाद बहुत कहने से क्या लाभ ? नन्दिक्षेत्र के अनन्तर शम्भु का स्नान नहीं है । यह मैं तुम्हें सत्य कहता हूं ।

स्नातः कनकवाहिन्यां दृष्ट्वा ज्येष्ठं सनन्दिनम् ।
नरः शिवपुरे श्रीमान्मोदते रुद्रवत्किल ।।

कनकवाहिनी में स्नान कर और नन्दी सहित ज्येष्ठ के दर्शन कर मनुष्य श्रीयुत होकर शिवपुर में रुद्र की तरह प्रसन्न होता है ।

यथाशक्तिनरो ज्येष्ठं यो[7]ऽर्चयेन्नन्दिना सह ।
[8]......वर्जयित्वा सो[9]ऽन्ते रुद्रत्वमाप्नुयात् ।।

जो मनुष्य नन्दी के साथ यथाशक्ति ज्येष्ठ की पूजा करे, वह...... को छोड़कर अन्त में रुद्रत्व को प्राप्त करे ।

यस्तु भाद्रपदाष्टम्यां ज्येष्ठमभ्यर्चयेन्नरः ।
शिवगङ्गाजलस्नातः[10] स याति परमां गतिम् ।।

जो मनुष्य भाद्रपद-अष्टमी में ज्येष्ठ की पूजा करे, वह शिवगङ्गा के

---

१ दृश्यंते, २ द्दक्षंति, ३ नरः, ४ ते, ५ सकायोनुपमस्तथा, ६ ज्येष्ठानाथः ७ योर्चयेन्नंदिना, ८ वितुशादिं, ९ सोन्ते, १० जलास्नात ।

जल से स्नान कर परम गति को पाता है ।

सर्वसन्धिषु[1] यो ज्येष्ठं विशेषविधिना यजेत् ।
तत्पुण्यं शक्यते वक्तुं न तु वर्षशतैरपि ।।

सर्वसन्धियों में जो ज्येष्ठ की विशेष विधि से पूजा करे, उससे प्राप्त होने वाले पुण्य का सौ वर्षों के भीतर भी बखान नहीं किया जा सकता है ।

सुतीर्थपुण्यगणना तथा वै चीरमोचने ।
[2]नद्यां कनकवाहिन्यां नास्ति सत्यं ब्रवीमि ते ।।

चीरमोचन एवं कनकवाहिनी नदी में सुतीर्थ के पुण्यों की गणना नहीं है, यह मैं तुझे सच कहता हूं ।

पश्चिमां दिश[3]मासाद्य प्रख्यातां रामनर्मदाम् ।
ज्येष्ठस्याग्रे नन्दीं दृष्ट्वा ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ।।

पश्चिम दिशा में प्रख्यात[4] राम नर्मदा को पाकर ज्येष्ठ के आगे नन्दी के दर्शन कर ब्रह्मलोक को पाए ।

सङ्गमे हेमवाहिन्या यत्र सारोजनर्मदा ।
पुण्यं प्रकाशते तत्र स्नातो···दिवं व्रजेत् ।।

हेमवाहिनी के सङ्गम में जहां सारोज नर्मदा है, पुण्य प्रकाशित होता है, वहां स्नान करने से······ स्वर्ग को जाए ।

[5]···तीर्थे नरः स्नात्वा कृतश्राद्धविधिस्त्वलम् ।
[6]वह्नेः सायुज्यतां[7] याति नमस्कृत्य पिनाकिनम् ।।

···तीर्थ में मनुष्य स्नान कर और वहां विधिपूर्वक श्राद्ध कर महादेवजी को नमस्कार कर वह्नि की सायुज्यता को प्राप्त करता है ।

अनन्ते सलिले स्नातः कर्कोटकमहाह्रदे ।
नरो भगवतीं याति सर्वकामोपसेविताम् ।।

कर्कोटकमहासरोवर के अनन्त जल में स्नान कर मनुष्य सभी कामनाओं से उपसेवित भगवती को प्राप्त करता है ।

अथ रुद्रेश्वरं गच्छेत्तीर्थं विबुधनन्दितम् ।
नन्दीञ्च शृणुतां वत्स पुण्यां कनकवाहिनीम् ।।

इसके बाद देवताओं से अभिनन्दित रुद्रेश्वर तीर्थ को जाए और नन्दी को जाए । हे बेटा ! अब पुण्यप्रद कनकवाहिनी के विषय में सुनो ।

---

१ सर्वसंन्धिषु, २ नद्या, ३ दिश्यमासाद्य, ४ पाठाभाव, ५ पाठाभाव, ६ वह्ने, ७ सायुज्यता यांति ।

पूर्ववदन में [illegible], दक्षिण में महाकाल, पश्चिम में नन्दिरुह और सौम्य (उत्तर) में देवी प्रतिष्ठित है ।

भूतेश्वरस्य देवस्य नन्दिक्षेत्रे महाबले ।
दृश्यते[1] वदने श्वेते देवीपतिर्महाशिवः ॥

भूतेश्वर देव के महाबल नन्दिक्षेत्र में श्वेतवदन में देवीपति महाशिव देखे जाते हैं ।

ये द्रक्ष्यन्ति[2] नराः[3] सम्यग्देवं नन्दीश्वरं शिवम् ।
ज्येष्ठस्थाने ध्रुवं लोकं शम्भोर्यास्यन्ति ते चिरात् ॥

ज्येष्ठस्थान में जो मनुष्य अच्छी तरह नन्दीश्वर शिव देव को देखेंगे, वे निश्चित चिर से शम्भुलोक को जाएंगे ।

तेषां[4] लोचने करौ तु सकायोऽ[5]नुपमस्तथा ।
स्थाने स्पृश्यते यैस्तु ज्येष्ठ[6]नाथः सनन्दिकः ॥

जिनसे सनन्दिक ज्येष्ठनाथ देखा जाता है व स्पर्श किया जाता है उनके नेत्र, हाथ और शरीर अनुपम हो जाते हैं ।

अथ किं बहुनोक्तेन नन्दिक्षेत्रादनन्तरम् ।
स्नानं न विद्यते शम्भोः सत्यमेतद्‍ब्रवीमि ते ॥

इसके बाद बहुत कहने से क्या लाभ ? नन्दिक्षेत्र के अनन्तर शम्भु का स्नान नहीं है । यह मैं तुम्हें सत्य कहता हूं ।

स्नातः कनकवाहिन्यां दृष्ट्वा ज्येष्ठं सनन्दिनम् ।
नरः शिवपुरे श्रीमान्मोदते रुद्रवत्किल ॥

कनकवाहिनी में स्नान कर और नन्दी सहित ज्येष्ठ के दर्शन कर मनुष्य श्रीयुत होकर शिवपुर में रुद्र की तरह प्रसन्न होता है ।

यथाशक्तिनरो ज्येष्ठं यो[7]ऽर्चयेन्नन्दिना सह ।
[8]......वर्जयित्वा सो[9]ऽन्ते रुद्रत्वमाप्नुयात् ॥

जो मनुष्य नन्दी के साथ यथाशक्ति ज्येष्ठ की पूजा करे, वह...... को छोड़कर अन्त में रुद्रत्व को प्राप्त करे ।

यस्तु भाद्रपदाष्टम्यां ज्येष्ठमभ्यर्चयेन्नरः ।
शिवगङ्गाजलस्नातः[10] स याति परमां गतिम् ॥

जो मनुष्य भाद्रपद-अष्टमी में ज्येष्ठ की पूजा करे, वह शिवगङ्गा के

---

१ दृश्यंते, २ द्क्षंति, ३ नरः, ४ ते, ५ सकायोनुपमस्तथा, ६ ज्येष्ठानाथः ७ योर्चयेन्नंदिना, ८ वितुशार्दि, ९ सोन्ते, १० जलास्नात ।

जल से स्नान कर परम गति को पाता है ।

सर्वसन्धिषु[1] यो ज्येष्ठं विशेषविधिना यजेत् ।
तत्पुण्यं शक्यते वक्तुं न तु वर्षशतैरपि ॥

सर्वसन्धियों में जो ज्येष्ठ की विशेष विधि से पूजा करे, उससे प्राप्त होने वाले पुण्य का सौ वर्षों के भीतर भी बखान नहीं किया जा सकता है ।

सुतीर्थपुण्यगणना तथा वै चीरमोचने ।
[2]नद्यां कनकवाहिन्यां नास्ति सत्यं ब्रवीमि ते ॥

चीरमोचन एवं कनकवाहिनी नदी में सुतीर्थ के पुण्यों की गणना नहीं है, यह मैं तुझे सच कहता हूं ।

पश्चिमां दिश[3]मासाद्य प्रख्यातां रामनर्मदाम् ।
ज्येष्ठस्याग्रे नन्दीं दृष्ट्वा ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ॥

पश्चिम दिशा में प्रख्यात[4] राम नर्मदा को पाकर ज्येष्ठ के आगे नन्दी के दर्शन कर ब्रह्मलोक को पाए ।

सङ्गमे हेमवाहिन्या यत्र सारोजनर्मदा ।
पुण्यं प्रकाशते तत्र स्नातो···ऽदिवं व्रजेत् ॥

हेमवाहिनी के सङ्गम में जहां सारोज नर्मदा है, पुण्य प्रकाशित होता है, वहां स्नान करने से······ स्वर्ग को जाए ।

[5]···तीर्थे नरः स्नात्वा कृतश्राद्धविधिस्त्वलम् ।
[6]वह्नेः सायुज्यतां[7] याति नमस्कृत्य पिनाकिनम् ॥

···तीर्थ में मनुष्य स्नान कर और वहां विधिपूर्वक श्राद्ध कर महादेवजी को नमस्कार कर वह्नि की सायुज्यता को प्राप्त करता है ।

अनन्ते सलिले स्नातः कर्कोटकमहाह्रदे ।
नरो भगवतीं याति सर्वकामोपसेविताम् ॥

कर्कोटकमहासरोवर के अनन्त जल में स्नान कर मनुष्य सभी कामनाओं से उपसेवित भगवती को प्राप्त करता है ।

अथ रुद्रेश्वरं गच्छेत्तीर्थं विबुधनन्दितम् ।
नन्दीञ्च शृणुतां वत्स पुण्यां कनकवाहिनीम् ॥

इसके बाद देवताओं से अभिनन्दित रुद्रेश्वर तीर्थ को जाए और नन्दी को जाए । हे बेटा ! अब पुण्यप्रद कनकवाहिनी के विषय में सुनो ।

---

१ सर्वसंन्धिषु, २ नद्या, ३ दिश्यमासाद्य, ४ पाठाभाव, ५ पाठाभाव, ६ वह्ने, ७ सायुज्यता यांति ।

हेमनन्दिजलस्रावं मिश्रीकृत्य प्रयत्नतः ।
सुरर्षिगणगन्धर्वचारणाध्युषितं द्विज ।।
तत्र [1]प्लुतो नरः क्षिप्रं [2]याति ब्रह्म सनातनम् ।
सर्वपापविशुद्धात्मा प्रसादादम्बिकापतेः ।।

हे द्विज ! सुर, ऋषिगण गन्धर्व और चारण जहां वास करते हैं, उस हेमनन्दिजलस्राव को यत्न से मिलाकर, उसमें स्नान करने से मनुष्य महादेव जी की कृपा से सभी पापों से विशुद्ध आत्मा वाला होकर सनातन ब्रह्मलोक को शीघ्र प्राप्त करता है ।

आत्मा···[3] प्रक्षिपेत्काले प्राप्ते यो नरसत्तमः ।
मुद्राप्रतिष्ठमभ्यर्च्य[4] पादं मे सुरपूजितम् ।।
शिवरात्र्यां निशावक्त्रे तत्त्वनिष्ठः स्वभावितः ।
[5]···शरीरेण याति रुद्रस्वरूपताम् ।।
उत्तरं मानसं क्षेत्रं चीरमोचनमेव च ।

उत्तर मानस क्षेत्र चीरमोचन रुद्रेश्वर को पाकर समयपर शरीर को छोड़ दे ।

[6]······ सायुज्यतां याति[7] स नरः संशयं विना ।
विधूय निखिलं पापं प्रसादादम्बिकापतेः ।।

वह मनुष्य महादेव जी के प्रसाद से समस्त पाप को नष्ट कर निस्सन्देह ···सायुज्यता को प्राप्त करता है ।

सङ्गमे हेमवाहिन्याः सिन्धोश्च नरपुङ्गवः ।
स्नातो रुद्रत्वमायाति[8] माया[9]बन्धबहिष्कृतः ।।

हेमवाहिनी और सिन्धु के सङ्गम में स्नान कर नरश्रेष्ठ माया के बन्धन से मुक्त होकर रुद्रत्व को प्राप्त कर लेता है ।

तत्रैव द्वारपालेशं शिवमभ्यर्चयेत्ततः ।
भक्त्या परमया युक्तः सोऽन्ते रुद्रत्वमाप्नुयात् ।।

इसके बाद परम भक्तिपूर्वक वहीं द्वारपालेश शिव की पूजा करे, वह अन्त में रुद्रत्व को पा लेता है ।

---

१ प्लतो, २ यांति, ३ ने, ४ मभ्यच्य, ५ अमुनैव, ६ विर., ७ यांति ८ मायांति, ९ मयाबन्ध. ।

य: स्नात: सिन्धुसलिले लोकद्वारस्य दक्षिणे ।
स विधूयाखिलं पापं मोदते दिवि देववत् ।।

लोकद्वार के दक्षिण में, सिन्धु के जल के भीतर जो स्नान करता है, वह समस्त पाप को नष्ट कर स्वर्गलोक में देवता की तरह प्रसन्न होता है ।

दक्षिणस्यां दिशि विभो पर्वताग्रं प्रकाशते ।
तीक्ष्णेश्वरस्वयम्भूवँ यं दृष्ट्वा मुच्यते नर: ।।

हे विभो ! दक्षिण दिशा में पर्वत का अग्रभाग प्रकाशित होता है । वह तीक्ष्णेश्वर स्वयम्भू है, जिसका दर्शन कर मनुष्य मुक्त हो जाता है ।

इति निखिलमनन्यं देवदेवस्य शम्भो-
श्चरितमुचितसिद्धस्थानतीर्थावितानम् ।
कथितममरवृन्दैर्वन्दितं यत्सभक्त्या
विषमनरकपातत्राणभूतं नराणाम् ।।

इस प्रकार देवताओं से भक्तिपूर्वक वन्दित और मनुष्यों को विषम नरकपात से बचाने वाला एवं उचित सिद्धस्थान तीर्थों का अवतान यह देवाधिदेव महादेव का अनन्य समस्त चरित्र है ।

इति श्री···तारे नन्दिक्षेत्रप्रशंसा नाम षष्ठोऽध्याय: ।।
समाप्तं गङ्गामाहात्म्यम् ।।

ॐ श्रीगणेशाय नमः ।

ॐ नमः शिवाय ।

ॐ श्रीदेव्युवाच— श्रीदेवी बोलीं—

ॐ श्रावं श्रावं[1] महादेव महिमानमनुत्तमम् ।
पुण्यं ह्यनन्तनागस्य सूर्यक्षेत्रस्य वै तथा ।।
अधुना श्रोतुमिच्छामि यात्राममरनाथजाम् ।
रसलिङ्गस्य माहात्म्यं श्रुत्वा मुच्ये[2]न्महदघात् ।।
यात्रामकृत्वा देवेश यो लिङ्गं पश्यति प्रभो ।
स कां गतिं प्रयातीह[3] वद शीघ्रं दयानिधे ।।

हे महादेव ! सूर्यक्षेत्र अनन्तनाग की पुण्यप्रद, अत्युत्तम महिमा को सुन-सुन कर मैं अब अमरनाथ की यात्रा के विषय में सुनना चाहता हूं । रसलिङ्ग के माहात्म्य को सुनकर महापाप से मुक्त हो जाए । हे देवेश ! प्रभो ! यात्रा बिना किए जो लिङ्ग को देखता है, वह किस गति को पाता है। हे दयानिधे ! यह तुम मुझे शीघ्र कहो ।

श्री भैरव उवाच— श्री भैरव बोले—

यात्रामकृत्वा देवेशि लिङ्गं पश्यति यो नरः ।
स याति नरकं घोरं तीर्थद्रोही भवेन्नरः ।।

हे देवेशि ! यात्रा बिना किए जो मनुष्य लिङ्ग के दर्शन करता है, वह घोर नरक को जाता है और वह मनुष्य तीर्थद्रोही होता है ।

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि यात्राममरनाथगाम् ।
यां श्रुत्वापि नरः पुण्य[4]माप्नुयात्तीर्थजं प्रिये ।।

हे देवि ! सुनिए, मैं अमरनाथ को जाने वाली यात्रा के विषय में कहूंगा, जिसे सुनकर मनुष्य हे प्रिये ! तीर्थ से पैदा होने वाले पुण्य को पाए ।

आदौ षोडशक्षेत्रे तु शिवपारं[5] ततः परम् ।
ततोऽ[6]पस्पृश्य पुण्ये गङ्गाम्भसि प्रिये ।।

आदि षोडशक्षेत्र में, इसके बाद शिवपार तदनन्तर हे प्रिये ! पुण्यप्रद गङ्गाजल में जल का आचमन करे ।

पद्मपुरे सिद्धक्षेत्रे स्नात्वा[7] यायादतः परम् ।
ततो ..... [8] सिद्धक्षेत्रके ।।

---

१ श्राव, २ मुच्येतमहादघात् ३ प्रयातेह, ४ पुण्यंमाप्नुया., ५ शिवपार, ६ ततोपस्पृशपहष्टौ, ७ पात्वा, ८ युवद्यांमिष्टो देवर्त्तिका ।

इसके बाद सिद्धक्षेत्र पद्मपुर में स्नान कर आगे जाए, तदनन्तर

तत्रोपस्पृश्य च जलं महानागस्य सुन्दरि[1] ।
हरिद्राख्यं गणपतिं नुत्वा स्नात्वा व्रजेत्ततः ॥

हे सुन्दरि ! वहां महानाग के जल का आचमन कर फिर हरिद्राख्य गणपति को नमस्कार कर तदनन्तर स्नान कर जाए ।

बलिहारे महाक्षेत्रे स्नात्वा प्रायादतः परम् ।
बागाश्रमे हस्तिकर्णे नत्वोपस्पृश्य च व्रजेत् ॥

बलिहार महाक्षेत्र में स्नान कर आगे जाए । तदनन्तर बागाश्रम में नमस्कार कर और हस्तिकर्ण में आचमन कर जाए ।

चक्रेशे च ततः स्नायात्ततो देवकतीर्थके ।
स्नात्वा पुनः हरिचन्द्रतीर्थे यायात्ततः प्रिये ॥

इसके बाद चक्रेश में स्नान करे, तदनन्तर देवक तीर्थ में स्नान करे हे प्रिये ! फिर हरिचन्द्रतीर्थ में जाए।

स्थलवारे ततः[2] स्नात्वा मृततीर्थे महेश्वरि ।
ततो गच्छेत्[3]सूर्यस्य गुहवाटं महेश्वरि ॥

हे महेश्वरि ! स्थलवाट में स्नान कर तदनन्तर मृततीर्थ में स्नान करे सूर्य के गुहवाट को जाए ।

तत्र लम्बोदरीस्नानं कुर्यादेवमतन्द्रितः ।
ततः सूर्याश्रमं गत्वा सूर्यगङ्गाजले शुभे ।
स्नात्वा दत्वा च विधिवन्मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥

अतन्द्रित होकर वहां लम्बोदरी का स्नान करे । इसके बाद सूर्याश्रम जाकर शुभ सूर्यगङ्गाजल में स्नान कर और विधिपूर्वक दान देकर ब्रह्महत्या से मुक्त हो जाता है ।

ततः स करमासाद्य स्नात्वाश्वतरनागके ।
सम्पूज्य गणपं याया[4]द्बुद्धोरसि महेश्वरि ॥

इसके बाद वह कर को पाकर और उसके पादमूल में स्नान कर हे महेश्वरि ! गणपति की पूजा कर बुद्धोरस् में जाए ।

हयशीर्षाश्रमे पुण्ये स्नात्वाश्वतरनागके ।
बद्धोरसि पुनर्गङ्गामवगाह्य सुरेश्वरि ॥
गच्छेत्सरलके ग्रामे तत्र स्नात्वा पुनः प्रिये ।

---

१ सुंदरि २ तत ३ गच्छेत सूर्यस्य, ४ यायाद्बुद्भोरसि ।

हे सुरेश्वरि ! पुण्यप्रद हयशीर्षाश्रम में अश्वतरनागक के भीतर स्नान कर फिर बुद्धोरस में गङ्गा के भीतर स्नान कर हे प्रिये ! वहां फिर स्नान कर सरलक ग्राम में जाए ।

तत्र खिल्यायने[1] पुण्ये प्रणम्य विधिवद्धरिम् ।
नारायणं महापुण्यं तीर्थं तत्र पुरातनम् ।।
महाग्रामे मामलके गणशं समुपाश्रयेत् ।
दृष्ट्वा मामेश्वरं लिङ्गं स्नात्वा मामेशवारिणि ।।
स्नायाद्भृगुपतेः क्षेत्रे[2] नीलगङ्गाजले तथा ।।

वहां महापुण्यप्रद पुरातन तीर्थ और मामलक महाग्राम में गणेशजी की पूजा करे । तदनन्तर मामेश्वर लिङ्ग के दर्शन कर मामेश जल में स्नान कर भृगुपतिक्षेत्र के भीतर नीलगङ्गा के जल में स्नान करे ।

स्थाण्वाश्रमे नदीं पुण्यां कोटिजन्माघनाशिनीम् ।
तत्र पञ्चतरङ्गिण्यां जलं तदवगाह्य वै ।।
आरुह्य पर्वतं देवि गर्भागारस्य मध्यतः ।
अवरुह्यामरावत्यां[3] स्नानं भस्माङ्गलेपनम् ।।
विभूतिसितदेहश्च नृत्यमानो दिगम्बरः[4]
[5]अवरुहेत्पर्वतगुहां महापातकनाशिनीम् ।।

स्थाणु-आश्रम में करोड़ों जन्मों के पापों को नष्ट करने वाली, पुण्यप्रद नदी में स्नान कर वहां पञ्चतरंगिणी में उस जल का अवगाहन कर हे देवि ! पर्वत पर चढ़कर गर्भागार के मध्य से अमरावती में स्नानकर एवं अङ्गों पर भस्मलेप करे और विभूति से श्वेत शरीर वाला नृत्य करता हुआ, दिशाओं के ही वस्त्र को धारण किए महापापों को नष्ट करने वाली पर्वतगुहा में जाए ।

प्रणम्य विधिवद्भक्त्या स्वधालिङ्गं सनातनम् ।
नरो न लिप्यते पापैः कोटिजन्मसमुद्भवैः ।।

विधिपूर्वक भक्ति से सनातन स्वधालिङ्ग को प्रणाम कर मनुष्य करोड़ों जन्मों में पैदा हुए पापों से लिप्त नहीं होता है ।

दर्शनात्स्पर्शनाच्चापि पूजनाच्चापि वन्दनात् ।
अमरेशस्य लिङ्गस्य मुच्यते सर्वकिल्विषैः ।।

---

१ खिल्यायणे २ क्षत्रे ३ मरावद्यां ४ दिगस्वरः ५ आवरुहे० ।

अमरेश लिङ्ग के दर्शन, स्पर्शन, पूजन और वन्दन से मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है।

षट्स्नानानि वितस्तायां प्रोक्तानि जगदम्बिके।
सप्तदशस्थलस्थानि स्नानान्यन्यानि सुन्दरि॥

हे जगदम्बिके ! वितस्ता में छः प्रकार के स्नान और अन्य १७ स्थलस्थ स्नान कहे गए हैं।

त्रयोविंशाभिधा यात्रा स्मृता ह्यमरनाथगा।
एवं कृत्वा नरो यात्रां पश्येल्लिङ्गरसात्मकम्।
स याति शिवसायुज्यं यत्र नास्ति कृताकृतम्॥

इस प्रकार यह अमरनाथ जाने वाली २३ प्रकार की यात्रा कही गई है। इस प्रकार मनुष्य यात्रा कर रस लिङ्ग के दर्शन करे, वह शिवसायुज्य को पाता है, जिसमें कृत-अकृत नहीं है।

इति श्रीदक्षिणपार्श्वोपतीर्थसङ्ग्रहे अमरनाथयात्रावर्णनं नाम प्रथमः पटलः।

ॐ श्रीभैरव्युवाच— श्री भैरवी बोलीं—

सरलग्राममाहात्म्यं श्रुत्वा प्रीतास्मि सुन्दर ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि तीर्थं खिल्यायनं महत् ।।

हे सुन्दर ! सरलग्राम के माहात्म्य को सुनकर मैं प्रसन्न हूँ । अब मैं खिल्यायन महातीर्थ के विषय में सुनना चाहती हूं ।

ग्रामे[1] खिल्यायने पुण्ये तीर्थं नारायणाभिधम् ।
यदभूद्भगवन्सर्वं तन्मे त्वं कृपया वद ।।

पुण्यप्रद ग्राम में खिल्यायन तीर्थ है, हे भगवन् जो सरल नारायण नाम से प्रसिद्ध हुआ, तुम मुझे कृपा करके वह बताओ ।

श्री भैरव उवाच—श्री भैरव बोले—

शृणु वक्ष्ये महादेवि तीर्थं खिल्यायनं परम् ।
यच्छ्रुत्वा मुच्यते जन्तुर्महापातकसञ्चयात् ।।

हे महादेवि ! सुनिए, मैं खिल्यायन परम तीर्थ का माहात्म्य कहता हूं जिसे सुनकर प्राणी महापापों के समूह से मुक्त हो जाता है ।

पुरा महर्षयः सिद्धा बालखिल्याभिधाः शिवे ।
चेरुस्तपो दुश्चरन्ते नियमेनोर्ध्वरेतसः ।।

पूर्व युग में हे शिवे ! बालखिल्य नामक महर्षि सिद्धों ने नियम से ·· दुश्चर तप किया ।

निराहारा यतात्मानः पादाङ्गुष्ठाग्रसंस्थिताः ।
समाविलीना ह्यभवन्सहस्रं परिवत्सरान् ।।

निराहार रहकर, यतात्मा होकर और पांओं के अंगूठे के अग्रभाग पर खड़े रहकर···

विष्णुध्यानपरासक्ताः शान्तात्मानो महौजसः ।
चिरेण भगवान् विष्णुर्द[2]र्शनमीयिवान्प्रभुः ।।[3]

शान्त आत्मा वाले, महातेजस्वी वे विष्णु के ध्यान में लगे रहे । कालानन्तर प्रभु भगवान् विष्णु दर्शनार्थ आए ।

समाधिमुक्ता दृष्ट्वा[4] तं भगवन्तं[5] सनातनम् ।
उत्थायोत्थाय सहसा प्रणम्य दण्डव[6]त्स्थिताः ।।

---

१ पुण्ये २ विष्णुदर्शन॰ ३ न्प्रतुः ४ दृष्ट्या ५ भगवानं ६ दण्डवस्थिताः

समाधिमुक्त होकर वे अपने सामने सनातन उस भगवान् को देखकर सहसा उठ-उठ कर दण्डवत् प्रणाम कर खड़े रहे।

नीलजीमूतसंकाशं प्रफुल्ल[1]जलजेक्षणम्।
शखचक्रगदापद्मपाणिं पापहरं हरिम्॥
गरुडस्थं[2]···विष्णुं गिरा[3]···

नीले बादल के समान, खिले कमल के समान नेत्रों वाले, हाथ में शंख, चक्र, गदा और पद्म लिए हुए, पापों को नष्ट करने वाले गरुड पर सवार।

ऋषय ऊचुः— ऋषि बोले —

महाविष्णुं प्रभविष्णुं पुराणं···
गरीयांसं···वसिष्ठं प्रपद्ये···शिष्टम्॥

वेदात्मकं वेदवेद्यं पुराणं वरं वरेण्यं वरदं त्वां शरण्यम्।
हिरण्यगर्भं[4]मादिदेवाधिदेवं हिरण्यबाहुं शरणं त्वां प्रपद्ये॥

वेदात्मक, वेदवेद्य, पुराण, वरवरेण्य, वरद हम तुम्हारी शरण में हैं। हिरण्यगर्भ, आदिदेवाधिदेव, हिरण्यबाहु, हम तुम्हारी शरण में हैं।

त्रिलोकनाथं लोकद्वारं विश्वरूपं
पुराणलोकात्मकं त्वां शरणं प्रपद्ये।

[5]···पार्थरूपं क्षणं बालं तरुणं वै क्षणं त्वाम्।
क्षणं पुमान्मन्त्रीस्वरूपं क्षणं वा महानटं शरणमुपैमि दिव्यम्॥

त्रिलोकनाथ, लोकपालेश, ईश, लोकाधार, लोकवन्द्य, महेश, लोकद्वार, विश्वरूप, पुराण, लोकात्मक, हम तुम्हारी शरण में हैं।

······पार्थरूप, क्षण में बाल, क्षण में तरुण, क्षण में पुरुष मन्त्रीस्वरूप और क्षण में महानर, दिव्य मैं तुम्हारी शरण में आता हूं।

प्रसार्य जालं रागदोषादितन्त्रं दृष्टं मनः पक्षिणं प्राणमध्ये।
दशग्राहं परिगृहातिसत्यं महापदं शरणं प्रपद्ये॥

रागदोष आदि तन्त्र स्वरूप जाल को फैलाकर प्राणों के बीच में मनरूपी पक्षी को जिसने देखा है, दशग्राह, परिग्रहातिसत्य महापाद मैं तुम्हारी शरण में आता हूं।

---

१ प्रफुल०, २ यत, ३ पामैयतयन्, ४ गर्भ आदि०, ५. पाठाभाव।

अनाद्यनन्तं[1] सवितारमजेशं पुरातनं[2] नवं नवं जायमानम् ।
वेदान्तवेद्यं सांख्ययोगेन योग्यं भूयो भूयः शरणं त्वां[3] प्रपद्ये ।।

अनादि, अनन्त, सविता, अजेश, पुरातन, नए-नए पैदा होते हुए, वेदान्तवेद्य, सांख्ययोग से योग्य हम तुम्हारी बार-बार शरण में आते हैं ।

श्री भैरव उवाच— श्रीभैरव बोले—

इति स्तुत्वा महेशानं महाविष्णुं महेश्वरम् ।
प्रणम्य पतिता भूमौ पुनरुत्थापिताः[4] प्रिये ।।

हे प्रिये ! इस प्रकार महेशान महाविष्णु महेश्वर की स्तुति कर प्रणाम कर भूमि पर पड़े हुए फिर उठाए गए ।

उवाच तांस्तदा विष्णुर्मेघगम्भीरया गिरा ।
[5]उपासनेन तुष्टो[6]ऽस्मि वारयध्वं[7] वरं पुनः ।
[8]ददामि दुर्लभं विप्रा देवासुर[9] सुदुर्लभम् ।।

मैं आपकी उपासना से प्रसन्न हो गया हूँ, वर मांगिए । हे विप्रो ! देवों और असुरों के लिए दुर्लभ वर मैं तुम्हें देता हूँ ।

श्रुत्वा तु वचनं तस्य विष्णोरमिततेजसः ।
प्रत्यूचुस्तं[10] महादेवं बालखिल्या महर्षयः ।।

उस अमित तेज वाले विष्णु के वचन को सुनकर महर्षि बालखिल्यों ने उस महादेव को कहा ।

[11]...नात्परः को[12]ऽन्यो वरः श्रेष्ठो महेश्वर ।
तथापि वरदा[13]...मस्तीर्थमुत्तमम् ।।

हे महेश्वर !......से परे अन्य कौन श्रेष्ठ वर है, तो भी......

यत्र वासान्महाविष्णोः[14] सिद्धिं प्राप्नो[15]त्यनुत्तमाम् ।
श्रुत्वा[16] तेषां वचस्सौम्यमानन्दाश्रु[17]परिप्लुतः ।
दृष्टिं पदोः समाधाय गङ्गां समुदचालयत् ।।

जहां वास करने से महाविष्णु की अनुत्तम सिद्धि को प्राप्त करता है । उनके सौम्य वचन सुनकर आनन्दाश्रुओं से परिप्लुत उसने चरणों में दृष्टि स्थित कर जङ्गा को प्रेरित किया ।

---

१ अनाद्यन्तं २ पारातन ३ प्रपन्नाः ४ पुनरुथापि० ५ उपसानेन ६ तुष्टोस्मि ७ वारयधुंवरं ८ ददापि ९ देवासर० १० प्रत्युचु० ११ पाठाभाव १२ कोन्यो १३ पाठाभाव १४ विष्णो १५ प्राप्तुमनुत्तमां १६ श्रवा १७ मानन्दास्र० ।

पावनं चाश्रमं तेषां मुनीनां भावितात्मनाम् ।
स्वयं [1]तस्थौ च तत्रैव ग्रामे खिल्याभिधे··· ।।

भावितात्मा उन मुनियों का पवित्र आश्रम है । और वहां ही खिल्या-नामक गाँव में स्वयं वह ठहर गया ।

आभूतसंप्लवं[2] तावदिदं परमपावनम् ।
बालखिल्याभिधं तीर्थं भविष्यति न संशयः ।।

तब तक यह परम पवित्र संप्लब हुआ । बाल-खिल्य नामक यह तीर्थ होगा, इसमें संशय नहीं है ।

इत्युक्त्वा तांस्तदा विष्णुभर्गो[3]ऽन्तर्धानमच्युत ।
बालखिल्या यत्र चेरु[4] स्तपः परमकारणम् ।।

इस प्रकार उन्हें कह कर तब अच्युत विष्णु अन्तर्धान हो गए । बाल खिल्यों ने जहां परम कारण तप तपना शुरू किया ।

ततस्तु प्रथितो ग्रामो बालखिल्यायतः परः ।
नारायणपदोद्भूतं क्षेत्रं यदभवत्किल ।।

इसके बाद वह बालखिल्यायत ग्राम प्रसिद्ध हुआ जो नारायण के चरणों से पैदा हुआ क्षेत्र हुआ ।

ततश्च प्रथितं क्षेत्रं तीर्थं नारायणाभिधम् ।

इसके बाद वह क्षेत्र नारायण तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हुआ ।

महापातकयुक्तो वा युक्तो वा ह्युपपातकैः ।
सद्यः प्रमुच्यते स्नात्वा[5] क्षेत्रे नारायणाभिधे ।।

महापापों से वा उपपापों से युक्त मनुष्य इस नारायण नामक क्षेत्र में स्नान कर झट मुक्त हो जाता है ।

नारायणाभिधे[6] क्षेत्रे स्नातव्यमविशङ्कया ।
घोरात्कलियुगाद्देवि भीरुणा पुरुषेण हि ।।[7]

हे देवि ! भीरु पुरुष को निश्शङ्क होकर नारायण नामक क्षेत्र में स्नान करना चाहिए । घोर कलियुग से मुक्त हो जाता है ।

आजन्म यदि देवेशि पीयते मदिरां मुदा ।
मासमात्रं जलं तत्र पीत्वा मुच्येदसंशयम् ।।

---

१ सुयंतस्थौ २ अभूत सप्लवं ३ गतोर्तधान० ४ चेदुस्तपः ५ स्नाना ६ भिदे ७ ह

हे देवेशि ! आजन्म यदि प्रसन्नता से मदिरा पी जाती है तो महीना भर वहां जल पीकर निःसन्देह उस पाप से मुक्त हो जाए ।

अभक्ष्यभक्षणाद् वि [1]अपेयस्य च पानतः ।
[2]खिल्यायने प्रमुच्येत जलपानान्न[3] संशयः ।।

हे देवि ! नहीं खाने योग्य पदार्थ के खाने से और नहीं पीने योग्य पेय के पीने पर भी खिल्यायन में जल पीने से निःसन्देह मुक्त हो जाता है ।

नारी[4] वा पुरुषो वापि ग्रामे खिल्यायने परे ।
स्नात्वा पीत्वा च विधिवन्मुच्यते वर्षतः प्रिये ।।

चाहे वह नारी हो व पुरुष हो, खिल्यायन ग्राम में, हे प्रिये ! विधिपूर्वक स्नान कर और जल पीकर वर्ष भर में मुक्त हो जाए ।

मातृष्वसृपितृश्वसृ[5]भ्रातृजायाभिकामुकः ।
भ्रूणहा ब्रह्महा चापि व्यभिचारी तथैव च ।।
वृषलीपतिश्वपाकेशः[6]...श्चापि सुन्दरि !
स्नात्वा पीत्वा च विधिवन्मुच्यते वर्षतः प्रिये ।।

मातृष्वसा, पितृष्वसा और भ्रातृजाया गमन करना चाहने वाला, भ्रूणहा, ब्रह्महा एवं व्यभिचारी हे सुन्दरि ! प्रिये ! वृषलीपति, श्वपाकेश और.....भी विधिवत् स्नान कर तथा जल पीकर वर्षभर में मुक्त हो जाए ।

रजस्वलाभिगामी च पूतिकाकामुकोऽपि[7] च ।
गोघातकः पितृहा च मातृहा सुरसुन्दरि ।।
गरदो ह्यग्निदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः[8] ।
स्त्रीघाती बालघाती च मुच्यते[9] वर्षतः प्रिये ।।

रजस्वलाभिगामी, पूतिका और कामुक भी तथा गोघातक, पिता का हत्यारा, माता का हत्यारा, हे सुरसुन्दरि ! प्रिये ! गरद, अग्निद, शस्त्रपाणि, धनापह, स्त्रीघाती और बालघाती वर्ष भर में मुक्त हो जाता है ।

पुण्ये खिल्यायने ग्रामे क्षेत्रे विष्णोरनुत्तमे ।
स्नात्वा जन्मभवैः[10]पापैर्मुच्येद्देवि न संशयः ।।

विष्णु के अत्युत्तम, पुण्यप्रद खिल्यायन ग्राम नामक क्षेत्र में स्नान कर हे देवि ! जन्मों में पैदा हुए पापों से मुक्त हो जाए, इसमें संशय नहीं है ।

---

१ तपे यस्य २ पिल्यायने ३ जलपाशान्न ४ नागो ५ पितृष्वस्र ६ पुरक० ७कामुकोपि ८ र्धनापहाः ९ मुच्येताषसतः १० भवै पापैमु०

प्रायश्चित्तविहीनोऽपि[1] यः [2]कश्चिन्म्रियते शिवे ।
पुण्ये खिल्यायने ग्रामे विष्णोः क्षेत्रे परे शिवे ।।

हे शिवे! विष्णु के परम क्षेत्र पुण्यकर खिल्यायन ग्राम में जो कोई प्रायश्चित्तविहीन भी मर जाता है ।

याति विष्णोः[3] परं स्थानं यत्र गत्वा न शोचते ।

विष्णु के परम स्थान को प्राप्त करता है, जहां जाकर उसे शोक नहीं होता है ।

खिल्यायनसमं तीर्थं न भूतं न भविष्यति ।
नरो मुक्तिमवाप्नोति स्नानदानजपार्चनैः ।।

खिल्यायन के समान तीर्थ न हुआ है और न होगा । अत्युत्तम विष्णु के क्षेत्र खिल्यायन नामक पुण्य ग्राम में मनुष्य स्नान, दान और पूजा करने से मुक्ति पाता है ।

इति खेलनके ग्रामे क्षेत्रं[4] नारायणाभिधम् ।
श्रुत्वा पठित्वा मुच्येत महापातककोटिभिः ।।

इस खेलनक ग्राम में नारायण नामक क्षेत्र है । यह पापों को नष्ट करने वाला गुह्य पटल है , इसे सुनकर और पढ़कर मनुष्य करोड़ों महापापों से मुक्त हो जाए ।

इति श्रीदक्षिणपार्श्वोपतीर्थसंग्रहे श्रीअमरनाथ-माहात्म्ये
खिल्यायनो नाम द्वितीयः पटलः ।।

---

१ विहीनोपि २ कश्चि म्रि० ३ विष्णो ४ क्षत्रं

श्रीदेव्युवाच—श्रीदेवी बोलीं—

अधुना श्रोतुमिच्छामि पुण्ये मामलके शुभे ।
क्षेत्रं मामलकं नाम महापातकनाशनम् ।।

अब मैं पुण्यप्रद-शुभ मामलक में महापापों को नष्ट करने वाले मामलक नामक क्षेत्र के विषय में सुनना चाहता हूँ ।

कथं मामलके नाम महागणपते:[1] फलम् ।
यदि ह्यहमनुग्राह्या[2] प्रिया तेऽस्मि[3] तदा वद ।।

मामलक में महागणपति का क्या फल है ? यदि मैं आपकी अनुग्राह्या हूँ और तुम्हारी प्रिया हूँ, तब कहिए ।

भैरव उवाच—भैरव बोले—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि स्थानं मामलकं शुभम् ।
यस्य दर्शनमात्रेण नश्यन्ते विघ्नराशय: ।।

हे देवि ! सुनिए, मैं तुझे शुभ मामलक के विषय में कहूंगा, जिसके दर्शनमात्र से विघ्नसमूह नष्ट हो जाते हैं ।

पुरा भक्तस्य कस्यचिन्नाम्ना सो[4]ऽभूदजापह: ।
क्रीतो[5]ऽहं तपसा तेन तदर्थं च कृतं मया ।।

पूर्वकाल में किसी भक्त के नाम से वह अजापह हुआ । उसने मुझे तपस्या से खरीद लिया और उसके लिए मैंने किया ।

स्थानं स्थल[6]वाटिकायां सर्वविघ्ननिवारणम् ।
स्थलवाटात्पुरा देवि प्राचलत्स महेश्वर: ।।

स्थलवाटिका में सभी विघ्नों को दूर करने वाला यह स्थान है । हे देवि ! पूर्वकाल में वह महादेव स्थलवाट से चला ।

संस्थाप्य गणपं देवं [7]द्वारस्थं कक्षा[8]द्वये शिवे ।
गत: खेलनकादूर्ध्वं दण्डकस्य मुनेर्वनम् ।।

हे शिवे ! कक्षाद्वय में द्वार पर खड़े गणपति की स्थापना कर खेलनक से ऊपर दण्डक मुनि के वन को गया ।

तत्र क्षणं च विश्रम्य देवास्तत्रागमन्मुदा ।
दृष्ट्वा देवान्समायातान्मामेति प्रावदन्मुहु:[9] ।।
मा मागच्छत देवास्तु प्राक्रोशच्च[10] मुहुर्मुहु: ।।

---

१ महागणपते फलं २ मनुग्रह्या ३ तेस्मि ४ सोभूद० ५ क्रीताह ६ स्थलावाटि० ७ द्वारस्यं ८ कक्ष्या० ९ प्रवदन्मुहु: १० प्राक्रोशश्च

वहां क्षणभर विश्राम किया ही था कि देवता प्रसन्नतापूर्वक वहां आ गए। देवताओं को आए हुए देखकर 'मत-मत' यह बार-बार उसने कहा। हे देवताओ! मत-मत आओ, इस प्रकार बार-बार क्रोध से कहने लगे।

दृष्ट्वा क्रोशन्तमीशानं देवो गणपतिस्त्वरन्।
स्वयम्भूः[1] सम्भ्रमयुतः पातालादुत्थितः[2] तदा॥

ईशान को क्रुद्ध हुए देखकर देव गणपति स्वयम्भू जल्दी-जल्दी में व्याकुल से हुए तब

मामेति प्रावदन्देवा[3] प्रगृह्य परशुं स्वयम्।

स्वयं अपना परशु उठाकर पाताल से उठे और कहने लगे कि हे देवताओ! मत-मत,

मा मैवं[4] प्रवदत्येव महागणपतिस्तदा।
सर्वे देवास्तु तच्छब्दे[5]ऽभूवंल्लीना ह्यसंशयम्॥

मत, ऐसा मत, इस प्रकार महागणपति कहते ही है कि तब सभी देवता उस शब्द में निस्सन्देह लीन हो गए।

यतः प्रलीना देवौघा ईश्वरे सच्चिदात्मनि।
ततः स प्रथितो ग्रामो मामलाख्यो जगत्त्रये॥

क्योंकि सभी देवता सच्चिदात्मा ईश्वर में लीन हो गए इसीलिए वह ग्राम तीनों जगत् में मामल नाम से प्रसिद्ध हुआ।

मा मागच्छत देवौघा भयाल्लीनाः परे शिवे।
ततः स प्रोक्तो देवेशि ग्रामो मामलसंज्ञकः[6]॥

परम शिव में भय से लीन हुए हे देवताओ! मत जाओ, मत जाओ। हे देवेशि! इसीलिए वह ग्राम मामलक नाम से प्रसिद्ध हुआ।

दृष्ट्वा गणपतिं त्रस्ताः पाताला[7]दुत्थितं प्रिये।
तदा प्रोवाच तं देवं गणेशं वै शिवः स्वयम्॥

हे प्रिये! पाताल से उठे हुए गणपति को देखकर देवता डर गए। तब उस गणेशदेव को स्वयं शिव ने कहा।

यस्मान्मामेति शब्दं त्वं कृत्वा चोदचलः स्वयम्।
तस्मादत्र चिरं तिष्ठ विघ्नसंघान्प्रभाशय[8]॥

---

१ सुयंभूः २ दुक्तितः ३ प्रवदन्देपा ४ मामेव ५ तच्छब्देभूवल्लीना ६ सज्ञकः ७ दुःथितं ८ न्प्रनाशनं

जिससे 'मत-मत 'मा-मा' यह शब्द कह कर तू स्वयं चल पड़ा, इसलिए तुम जहां चिर काल तक रहो विघ्नों को नष्ट करो।

यः कश्चिन्मानवो लोके ह्यत्र त्वां पूजयिष्यति।
सर्वान्विघ्नान्विनिर्जित्य सिद्धि[1] समधिगच्छति॥

जगत् में जो कोई मनुष्य यहां तेरी पूजा करेगा, वह सभी विघ्नों को विजित कर सिद्धि को पायेगा।

सर्वान्कामानवाप्नोति[2] गणपति[3] प्रसादतः।
वर्षे वर्षे तु यः कश्चि[4]न्माधवे मासे[5] नित्यशः[6]॥

वर्ष-वर्ष में जो कोई माधव (वैशाख) के महीने में नित्य शुक्ल पक्ष चतुर्दशी के दिन इसकी पूजा करता है, वह गणपति की कृपा से सभी कामनाओं को पाता है।

विनायकचतुर्थ्यां वा पूजयेद्यो गणेश्वरम्।
मामेश्वरसमीपे तु ह्यनन्तं फलमाप्नुयात्॥

विनायक चतुर्थी के दिन जो गणपति को पूजे, वह मामेश्वर के पास अनन्त फल पाए।

त्वां पूजयित्वा यो देवं मामेशं पूजयेन्नरः।
स पुण्यफलमाप्नोति न पुनः स्तन्यपो भवेत्॥

तुम्हारी पूजा कर जो मनुष्य मामेशदेव की पूजा करे वह पुण्य फल पाता है और शिशुरूप में फिर स्तनों का दुग्धपान नहीं करता है।

इति दत्वा वरं देवो गणेशस्य[7] स्वयं हरः।
पुण्ये वै दण्डकारण्ये लीनो मामेश्वराख्यया॥

इस प्रकार महादेव स्वयं गणेश को वर देकर मामेश्वर के साथ पुण्यकर दण्डकारण्य में लीन हो गये।

दृष्ट्वा मामेश्वरं लिङ्गं पुण्ये मामलके नरः।
पूजयित्वा गणपतिमश्वमेधमवाप्नुयात्॥

पुण्यप्रद मामलक में मनुष्य मामेश्वर लिङ्ग के दर्शन कर और गणपति की पूजा कर अश्वमेध फल को पाए।

[8]स्नात्वा मामेश्वरे कुण्डे दृष्ट्वा मामलकं विभुम्।
नरो न लिप्यते पापैः पद्मपत्रमिवाम्भसा॥

---

१ सिधि २ कामान्नवा० ३ गणपत्य ४ कच्चि ५ मासि ६ नित्यदा ७ गणेश्यस्य ८ स्नाता।

मामेश्वर कुण्ड में स्नान कर और विभु मामलक के दर्शन कर मनुष्य जल के साथ कमलपत्र की तरह लिप्त नहीं होता है।

स्वयम्भुवं[1] गणपतिं मामलेश्वरसन्निधौ।
यः पूजयेत्[2] त्परं भक्त्या ज्योतिष्टोममवाप्नुयात्॥

मामलेश्वर के पास स्वयम्भू गणपति की जो परम भक्तिपूर्वक पूजा करे, वह ज्योतिष्टोम को पाए।

विनायकं च मामेशं दृष्ट्वा प्राप्नोति पुष्कलम्।
फलं च सोमयागस्य नरो नियमसंयुतः[3]॥

विनायक और मामेश के दर्शन कर नियमों से युक्त मनुष्य सोमयाग के पुष्कल फल को पाता है।

इत्थं मामलके ग्रामे[4] माहात्म्यं गणपस्य ते।
कथितं कृपया देवि महापातकनाशनम्॥

हे देवि ! इस प्रकार मामलक ग्राम में महापापों को नष्ट करने वाला गणपति का माहात्म्य कृपा कर मैंने कहा है।

इत्येष पटलो गुह्यो मया तेऽद्य[5] प्रकाशितः।
श्रुत्वापि पठितश्चापि विघ्नसंघा[6] प्रमुच्यते॥

इस प्रकार यह गुह्य पटल मैंने तुझे आज बताया है, जिसे सुनकर और पढ़ने पर भी मनुष्य विघ्न समूह से मुक्त हो जाता है।

इति श्री अमरनाथ[7] माहात्म्ये मामलेश्वरमहिमा नाम
द्वितीयः पटलः॥ २॥

---

१ स्वयंभूवं २ पूजये परं ३ नियममंयुतः। ४ ग्राम ५ तेद्य ६ संघाद
७ महात्म्ये।

श्री देव्युवाच – श्रीदेवी बोलीं—

श्रुत्वा महागणपते[1]र्महिमानमनुत्तमम् ।
मामेश्वरस्य च तथा क्रीतास्मि जगदीश्वर ।।

हे जगदीश्वर ! महागणपति और मामेश्वर की अत्युत्तम महिमा के विषय में सुनकर मैं खरीदी जा चुकी हूँ ।

इदानीं[2] श्रोतुमिच्छामि नदी लम्बोदरी तथा ।
अनुग्राह्या[3] प्रिया तेऽस्मि[4] तदा मे कृपया वद ।।

अब मैं लम्बोदरी नदी के विषय में सुनना चाहता हूँ, मैं तुम्हारा अनुग्राह्या (कृपापात्रा) हूं, तब कृपा करके मुझे कहिए ।

श्रीईश्वर उवाच—श्रीईश्वर बोले—

एकदा संस्थितस्यापि कैलाशे[5] परमेशिनः[6] ।
द्वारस्थोऽ[7]भूद्देवदेवेशि स्वयं गणपतिस्तदा ।।

हे देवदेवेशि ! एक बार कैलाश में रहते हुए महादेव के द्वार पर तब स्वयं गणपति खड़े हो गए ।

गणेशं कथयामास स्वयं स[8]भगवान्हरः ।
मा कश्चिदत्र देवोऽपि[9] ह्यागच्छेदित्यभाषत ।।

उस भगवान् महादेव ने स्वयं गणेश से कहा कि यहां मत कोई आए । यह कहा ।

श्रुत्वा वाक्यं महेशस्य महागणपतिस्तदा ।
[10]...नन्दिना सार्धं शासनं पालयन्प्रभोः ।।

महादेव के वचन को सुनकर तब महागणपति ने नन्दी के साथ प्रभु का आज्ञा का पालन करते हुए...

देव्या सह महादेवः क्रीडालापपरो[11]ऽभवत् ।
तयोरेव निवसतोः कैलाशे[12] शुभमन्दिरे ।।
एतस्मिन्नन्तरे देवि शक्रो देवगणैःसह[13] ।
त्रिपुरा...[14]ह्याजगाम द्रष्टुं[15]कामो महेश्वरम् ।।

---

१ गणपतेर्महि० २ इदानी ३ अनुग्रह्या ४ तेस्मि ५ कैलासे ६ परमेशिः ७ द्वाभ्योभू० ८ सा ९ देवोपि १० निषेध ११ परोभवत् १२ कैलासे १३ सहा १४ त्रिपुरान्दितो १५ द्रष्टुकामो

देवी पार्वती के साथ महादेव क्रीडालाप में संलग्न हो गए। शुभ कैलास मन्दिर में इन दोनों के ही रहते हुए हे देवि ! इसी बीच त्रिपुरासुर से...... इन्द्र देवताओं के साथ महादेव जी के दर्शन करने की इच्छा से आए।

स्वयं गणपतिस्तत्र न्यषेधत्सुरपं तदा।
शक्रः क्रोधसमाविष्टो वज्रघातं समादधे[1] ॥

तब स्वयं गणपति ने इन्द्र को रोका, जिससे क्रुद्ध हुए इन्द्र ने वज्र का प्रहार किया।

हुङ्कारेण[2] गणेशोऽपि[3] बाहुमस्तम्भयद्धरेः।
स्वबाहुं स्तम्भितं दृष्ट्वा शक्रो गणपतिं तदा।
तुष्टाव वाग्भि[4]दण्डवत्प्रणिपत्य सः ॥

गणेश जी ने भी हुङ्कार से इन्द्र का स्तम्भन कर दिया। तब अपनी बाहु को स्तम्भित हुआ देख कर दण्डवत् प्रणाम कर इन्द्र ने गणपति की......वाणियों से स्तुति करना शुरू किया।

अप्रमेयगुणं नित्यं गणेशं सुरपूजितम्[5]।
पार्वतीप्रियपुत्रं च प्रणमंस्ये गणेश्वरम् ॥

अप्रमेय गुण वाले, नित्य देवताओं से पूजित, पार्वती के प्रियपुत्र गणेश्वर (गणेश) को प्रणाम करता हूं।

देवानामादिकर्तारमादिमध्यान्तवर्जितम्।
[6]चिदचित्पदगम्भीरं प्रणमामि विनायकम् ॥

देबताओं के आदिकर्ता आदि-मध्य-अन्त रहित, चित् स्वरूप, अचित्रूप पद गम्भीर विनायक को मैं प्रणाम करता हूं।

वेदान्तैः [7]सुरसिद्धैश्चागमैरपि सुन्दरम्।
सूक्ष्मं शान्तं [8]बृहत्स्थूलं प्रणमामि गणेश्वरम् ॥

वेदान्त, सुर, सिद्ध और आगमों से भी सुन्दर, सूक्ष्म, शान्त, बृहत्, स्थूल, गणेश्वर को मैं प्रणाम करता हूँ।

शान्तं चिदद्वयं देवं विमर्शोद्भवरूपितम्।
तत्त्वसारं महत्तत्वं प्रणमंस्ये गणेश्वरम् ॥

शान्त, चित्, अद्वय, देव, विमर्शोद्भवरूप वाले तत्त्वसार, महत्तत्व गणेश्वर को प्रणाम करता हूँ।

---

१ समाधदे २ हंकारेण ३ गणेशोपि ४ रक्ष्याभि० ५ स्वरपूजितं ६ चिदचित्यद ७ सिद्धैश्च आगमैरपि ८ वृहत् स्थूलं।

ब्रह्माद्वयानवच्छेद्यं शिवाद्वयविबोधितम् ।
स्वप्रकाशं परात्पारं प्रपद्ये तं विनायकम् ।।

ब्रह्माद्वय, अनवच्छेद्य, शिवाद्वय से विबोधित, स्वप्रकाश, पर से पार उस विनायक की मैं शरण जाता हूँ।

मोदकाहारपरमं साक्षमालाकरं परम् ।
त्रिनेत्रं गणवक्त्रं च तं प्रपद्ये महेश्वरम् ।।

लड्डुओं के भोजन से प्रसन्न, परम अक्षमाला हाथ में लिए हुए त्रिनेत्र, गणवक्त्र उस महेश्वर की मैं शरण जाता हूं।

सुदत्तं परशुं चैव धारयन्तं भुजद्वये ।
रक्तवस्त्राम्बरधरं रक्तमालाधरं तथा ।।

दिए हुए परशु को दोनों भुजाओं में धारण किए हुए, रक्त वस्त्र के कपड़े धारण किए हुए और रक्तमाला धारण किए हुए—

विघ्नराशीन्विकिरन्तं करोत्क्षेपं [1]मुहुर्मुहुः ।
अनन्तं परमं तत्त्वं सारात्सारतरं परम् ।
वेदागमं[2] प्रपद्ये गणनायकम् ।।

विघ्नसमूह को नष्ट करने वाले, बार-बार करोत्क्षेप करते हुए, अनन्त, परम तत्त्व, सार से सारतर, पर और वेद-शास्त्र…

[3]अप्रमेयगुणायापि त्र्यक्षाय वरवर्णिनि !
विनायकाय देवाय भूयो भूयो नमोनमः ।।

अप्रमेय गुण स्वरूप, त्र्यक्ष विनायक देव को मैं हे वरवर्णिनि ! बार-बार नमस्कार करता हूं।

श्री भैरव उवाच—श्री भैरव बोले

इत्थं गणपतिः श्रुत्वा वाचं सुरपते[4]स्तदा ।
परं क्रोधं सञ्जहार दृशापश्यत्सुरेश्वरम्[5] ।।

इस प्रकार तब इन्द्र के वचन सुनकर गणपति ने क्रोध को दूर किया और इन्द्र की ओर दृष्टिपात किया।

मोचयामास तं बाहुं गणेशः परया मुदा ।
देवोऽपि[6] स्वं जगामाशु धाम कामसमन्वितः ।।

गणेश ने परम प्रसन्नता से उस बाहु को स्तम्भन से मुक्त किया और

---

१ महुर्मुहुः २ दुर्वेद्यं ३ अप्रेमये ४ सुरपतेः तदा ५ त्स्वरेश्वरं ६ देवोपि

देवेन्द्र भी कामना परिपूर्ण होकर महादेव के पुत्र मन्त्रविनायक को प्रणाम कर शीघ्र अपने धाम चले गए ।

प्रणिपत्य महेशस्य सूनुं मन्त्रविनायकम् ।
क्रोधसंहारकं नाम स्तोत्रं गणपतेः[1] सदा ।।
त्रि[2]कालं श्रद्धया युक्तः पठन्मुच्येत संकटात् ।

महादेव के पुत्र मन्त्र विनायक को नमस्कार कर क्रोधसंहारक नामक गणपति के स्तोत्र को श्रद्धापूर्वक तीनों काल पढ़ता हुआ मनुष्य संकट से मुक्त हो जाता है ।

ततो गणपतिर्देवि तृषितः क्षुधितो[3]ऽपि च ।
भुक्त्वा स्वादुफलं तत्र पपौ गङ्गां सुपुष्कलाम्[4] ।।

हे देवि ! इसके बाद भूखे-प्यासे गणपति ने स्वादिष्ठ फल खाकर वहां सुपुष्कल गङ्गा का जल पिया ।

पीत्वा गङ्गां स विघ्नेशस्तदा लम्बोदरोऽ[5] भवत् ।
लम्बोदरोति[6] वै नाम्ना ह्याजुहाव रहस्तदा ।।

वह विघ्नेश गणपति गंगा जल पी कर लम्बोदर हो गए और जिससे वे 'लम्बोदर' नाम से पुकारे जाने लगे ।

विघ्नराशीन्विकिरन्तं करोत्क्षेपं [7]मुहुर्मुहुः ।
अनन्तं परमं तत्त्वं सारात्सारतरं परम् ।।

विघ्न समूहों को बिखेरते हुए, बार-बार करोत्क्षेप करते हुए, अनन्त, परमतत्त्व, सार से सारतर, परम —

वेदागमदुर्विन्ध्यं प्रपद्ये गणनायकम् ।

वेद और आगमों से भी दुर्विन्ध्य गणनायक की शरण में जाता हूं ।

[8]अप्रमेयगुणायापि त्र्यक्षाय वरवर्णिनि !
विनायकाय देवाय भूयो भूयो नमो नमः ।।

हे वरवर्णिनि ! अप्रमेय गुण वाले, त्र्यक्ष, विनायक देव को बार-बार नमस्कार है ।

श्री भैरव उवाच—श्री भैरव बोले

इत्थं गणपतिः श्रुत्वा वाचं सुरपतेस्तदा[9] ।
परं क्रोधं सञ्जहार दृशापश्यत्सुरेश्वरम् ।।

---

१ गणपते सदा २ त्रिःकालं ३ क्षुधितोपि ४ सुपुष्कलान् ५ लम्बोदरो-भवत् ६ लम्बोदरोति ७ महुर्मुहुः ८ अप्रेमये ९ सु रपतेः तदा

इस प्रकार गणपति ने इन्द्र के वचन सुनकर परम क्रोध को दूर किया और इन्द्र की ओर देखा।

मोचयामास तं बाहुं गणेशः परया मुदा।
देवोऽपि[1] स्वं जगामाशु धाम कामसमन्वितः॥

गणेश जी ने परम प्रसन्नता से उस बाहु को स्तम्भन से मुक्त किया। इन्द्र भी इच्छापरिपूर्ण हो शीघ्र अपने धाम चले गए।

प्रणिपत्य महेशस्य सूनुं मन्त्रविनायकम्।
क्रोधसंहारकं नाम स्तोत्रं गणपतेः[2] सदा।
त्रि[3]कालं श्रद्धया युक्तो पठन्मुच्ये[4]तसङ्कटात्॥

महादेव के पुत्र मन्त्र विनायक को नमस्कार कर क्रोध संहारक नामक गणपति के स्तोत्र को श्रद्धायुक्त हो कर तीन काल पढ़ता हुआ मनुष्य संकट से मुक्त हो जाता है।

ततो गणपतिर्देवि तृषितः क्षुधितो[5]ऽपि च।
भुक्त्वा स्वादुफलं तत्र पपौ गङ्गां सुपुष्कलाम्॥

हे देवि! इसके बाद भूखे-प्यासे गणपति ने वहां स्वादुफल खा कर सुपुष्कल गंगाजल का पान किया।

पीत्वा गङ्गां स विघ्नेशस्तदा[6] लम्बोदरो[7]ऽभवत्।
लम्बोदर इति नाम्ना ह्याजुहाव रहस्तदा॥

गंगाजल को पीकर गणेश 'लम्बोदर' हो गए। तब 'लम्बोदर' ने इस नाम से एकान्त में होम किया।

शुष्कां दृष्ट्वा तत्र गङ्गां हरो गणपतेः प्रिये।
डमरुणा[8]हन्तस्य ह्युदारमुदरन्तदा[9]॥

हे प्रिये! महादेव जी ने वहां गंगा को सूखा हुआ देखकर उस गणपति के उदार पेट को डमरू से प्रहार किया।

अवम[10]न्मुखतो गङ्गां तदा गणपतिः प्रिये!

हे प्रिये! तब गणपति ने गंगा को मुख से उगल दिया।

यस्माल्लम्बोदरात्तस्य गणेशस्य विनिःसृता।
तस्मात्प्रोक्ता पुराविद्भिर्महालम्बोदरी नदी॥

---

१ देवोपि २ गणपते सदा ३ त्रिःकाशं ४ न्मुच्येत सं ५ क्षुधितोपि ६ विघ्नेशतदा ७ लम्बोदरोभवत् ८ हनंतपय० ९ मुदरस्तदा १० अवमत्मुखतो

जिससे उस गणेश के लम्बोदर से गंगा निकली, इसीलिए पुरातत्त्व वेत्ताओं ने इसे महालम्बोदरी नदी कहा।

लम्बोदर्यां नरः स्नात्वा मुच्यते सर्वकिल्विषैः।

लम्बोदरी नदी में मनुष्य स्नान कर सभी पापों से मुक्त हो जाता है।

गोभूहिरण्यवासांसि लम्बोदरनदीतटे।
यो ददाति द्विजश्रेष्ठो ह्यनन्तफलमाप्नुयात् ॥

जो द्विजश्रेष्ठ लम्बोदरी नदी के तट पर गाय, भूमि, सोना, वस्त्र देता है वह अनन्तफल पाता है।

लम्बोदरनदीतीरे[1] यः स्नायात्परया मुदा।
स याति शिवसालोक्यं यत्र गत्वा न शोचते ॥

जो लम्बोदरी नदी के किनारे परम प्रसन्नता से स्नान करे, वह शिव सालोक्य को जाता है, जहां जाकर शोक नहीं होता।

इति ते कथितं देवि लम्बोदरी नदी शुभा।
श्रुत्वा सुभक्तितः पुंभिर्महापातकनाशिनी ॥

हे देवि! इस प्रकार तुम्हें यह शुभ लम्बोदरी नदी के विषय में कहा गया है, मनुष्यों से भक्तिपूर्वक सुनकर यह महापाप को नष्ट करने वाली है।

इत्येष पटलो गुह्यः कलिकल्मषनाशनः।
श्रुतो[2]ऽनुध्यातः पठितो महापापापनुत्तये ॥

इस प्रकार यह कलियुग के पापों को नष्ट करने वाला गुह्य पटल सुनने से, चिन्तन से, पढ़ने से, महापापों को नष्ट करने के लिए होता है।

इति लम्बोदरीमहिमा नाम पटलः ॥

---

१ तेरे २ श्रुतोनुध्यातः।

श्री भैरव उवाच—श्री भैरव बोले—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि भृगुतीर्थमनुत्तमम् ।
यच्छ्रुत्वा मुच्यते जन्तुर्महापातकपिञ्जरात्[1] ॥

हे देवि ! सुनिए, मैं तुम्हें अत्युत्तम भृगु तीर्थ के विषय में कहता हूं, जिसे सुनकर प्राणी महापापपिञ्जर से मुक्त हो जाता है ।

भृगुर्मुनिवरो देवि परिशीलवने शुभे ।
तपश्चचार सुमहद्देवैरपि सुदुष्करम् ॥

हे देवि ! मुनिश्रेष्ठ भृगु ने शुभ परिशील वन में देवताओं के लिए भी दुष्कर महातप किया ।

दिव्यं वर्षसहस्रं तु परिशीलयुते वने[2] ।
जगाम परमर्षेश्च नियतस्य परात्मनि[3] ॥

परिशीलयुत वन में परमात्मा में नियत परम ऋषि को दिव्य सहस्र वर्ष बीत गए ।

आजगाम तदा तं तु विष्णु[4]र्दर्शयितुं मुदा ।
सर्वैर्देव[5]गणैः सार्धं भृगुः प्रोवाच तं हरिम् ॥

तब विष्णु प्रसन्नता से दर्शन देने के लिए आए । सभी देवताओं के साथ भृगु ने उस हरि से कहा ।

भृगुरुवाच—भृगु बोले—

विष्णो जिष्णो महाविष्णो प्रभविष्णो जगत्पते ।
अप्रमेयानन्तगुण भूयो भूयश्च ते नमः ॥

हे विष्णो, जिष्णो, महाविष्णो, प्रभविष्णो, जगत्पते, अप्रमेय, अनन्तगुण तुझे बार-बार नमस्कार है ।

इति स्तुत्वा महाविष्णुं प्रभविष्णुं सुरेश्वरम् ।
दण्डवत्प्रणिपत्याशु भूयो भूयो नमस्करोत् ॥

इस प्रकार महाविष्णु, प्रभविष्णु, सुरेश्वर की स्तुति कर और शीघ्र दण्डवत् प्रणाम कर मुनि ने बार-बार नमस्कार किया ।

---

१ पंजरात् २ वनं ३ परात्मनि ४ विष्णुदर्श० ५ सर्वैर्देव०

उत्थाप्य प्रणतं तत्र भृगुं विष्णुः सनातनः ।
आनन्दा[1]श्रुपरिक्लिन्नं ...[2]न्मूर्धनि तं मुनिम् ।।

वहां सनातन विष्णु ने नमस्कार करते हुए और आनन्द के आंसुओं से भीगे उस मुनि को उठाकर मस्तक...

आलिलिङ्गतु[3]रन्योन्यं भृगुविष्णू महेश्वरि ।

हे महेश्वरि ! उन दोनों भृगु और विष्णु ने परस्पर आलिंगन किया ।

तदङ्गप्रस्वेद[4]भवैर्जलैः परमपावनैः ।
पुण्यं तीर्थमभूद्देवि परिशूलवने शुभे

हे देवि ! उसके अङ्ग के पसीने से पैदा हुए परम पवित्र जलों से उस शुभ परिशूलवन में पुण्य तीर्थ हुआ ।

भृगोरालिङ्गनाद्यस्माद्धरिस्वेदसमुद्भवम् ।
पुण्यं तत्प्रथितं[5] तस्माद्भृगुतीर्थं महेश्वरि ।।

हे महेश्वरि ! भृगु के आलिंगन से हरि के पसीना पैदा हुआ, इसलिए वह पुण्यकर भृगुतीर्थ प्रसिद्ध हुआ ।

भृगुतीर्थे नरः[6] स्नात्वा दत्वा ताम्रं...[7] ।
वस्त्रं च रत्नदीपं च दद्याद्यत्नेन मानवः ।।

भृगुतीर्थ में मनुष्य स्नान कर और ताम्र का दान कर......एवं वस्त्र और रत्नदीप को मनुष्य यत्नपूर्वक प्रदान करे ।

भृगुतीर्थे नरः स्नात्वा पुण्यं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ।

भृगुतीर्थ में मनुष्य स्नान कर अत्युत्तम पुण्य को पाता है ।

भृगुतीर्थे महाविष्णुस्वेदोद्भूते महेश्वरि ।
स्नात्वा पीत्वा प्रमुच्येत्तु ब्रह्महत्यादिकोटिभिः ।।

हे महेश्वरि ! महाविष्णु के पसीने से पैदा हुए भृगुतीर्थ में स्नान कर और जल पीकर मनुष्य करोड़ों ब्रह्महत्या आदि से मुक्त हो जाता है ।

श्राद्धं कुर्या[8]त्तीर्थवरे भृगोः[9] परमपावने ।
पितर[10]स्तृप्तिमायान्ति शतकल्पं न संशयः ।।

परमपवित्र भृगु के श्रेष्ठ तीर्थ में श्राद्ध करे, पितर तृप्ति को शतकल्प पर्यन्त प्राप्त होते हैं, इसमें संशय नहीं है ।

---

१ आनन्दास्रुपरिक्लिनं २ शुस्वन्मू० ३ आलिलिङ्गतरन्यो० ४ प्रसेद-भवैः जलैः ५ स प्र० ६ नर स्ना० ७ तथाक्षिपन् ८ कुर्यातीर्थवरी ९ भृगो १० पितरस्त्रिप्ति०

शुभे वै भार्गवे क्षेत्रे स्नात्वा पीत्वा च सुन्दरि ।
नरो न लिप्यते पापैः पद्मपत्रमिवाम्भसि ।।

हे सुन्दरि ! शुभ भार्गव क्षेत्र में स्नान कर और जल पीकर मनुष्य जल में कमल के पत्ते की तरह पापों से लिप्त नहीं होता है ।

भूयो भूयः किमुक्तेन नरः पातकवान्कलौ ।
भृगुतीर्थं समासाद्य मुच्यते सर्वकिल्विषात् ।।

बार-बार कहने से क्या ? कलियुग में पापी मनुष्य भृगुतीर्थ को पाकर सभी पापों से मुक्त हो जाता है ।

श्री देव्युवाच—श्री देवी बोलीं—

भृगुतीर्थमाहात्म्यं श्रुत्वा प्रीतास्मि सुन्दर !
इदानीं श्रोतुमिच्छामि नीलगङ्गासमुद्भवम् ।।

हे सुन्दर ! भृगुतीर्थ के माहात्म्य को सुनकर मैं प्रसन्न हूँ । अब नीलगंगासमुद्भव को सुनना चाहती हूँ ।

यच्छ्रुत्वा मुच्यते जन्तुः कोटिजन्मभवैरघैः ।

जिसे सुनकर प्राणी करोड़ों जन्म में पैदा हुए पापों से मुक्त हो जाता है ।

श्री ईश्वर उवाच[1] श्री ईश्वर बोले—

शृणु देवि प्रवक्ष्येऽहं[2] नीलगङ्गासमुद्भवम् ।
यच्छ्रुत्वा प्राप्यते मर्त्यैरग्निष्टोमफलं प्रिये ।।

हे देवि ! सुनिए, मैं नीलगंगा समुद्भव के विषय में कहता हूँ जिसे सुनकर हे प्रिये ! मनुष्यों से अग्निष्टोम यज्ञ का फल पाया जाता है ।

एकदा क्रीडतस्तस्य शिवस्य वरवर्णिनि !
देव्यां सौरतसंलापै रन्यैः[3] क्रीडनकैरपि ।।
अक्षिणी[4]··· तस्य पार्वत्या वरवर्णिनि !
कालाञ्जनाथं वदनं[5] ·· सभूतस्य सुन्दरि[6] ।।

हे वरवर्णिनि ! एक बार देवी पार्वती के सुरतकाल से सम्बद्ध आलापों और क्रीडनकों से उस शिव की दोनों आँखें···

---

१ ईश्वरुवाच २ प्रवक्ष्येह ३ रन्यैक्रीड० ४ शुमुतः ५ सा ६ स्वन्दरि

कालाञ्जनाङ्कितं दृष्ट्वा मुखं देवस्य [1]पार्वती।
दर्शयामास वै तस्मै ह्यादर्शं विमलं तदा ।।

कालाञ्जन से अङ्कित महादेव के मुख को देखकर पार्वती ने तब उसे आईना दिखाया।

दृष्ट्वा[2]ञ्जनाक्त वदनं स्वं देवो[3] भगवान्हरः।
जटाभिरौक्षद्वदनं कालाञ्जनयुतं शुभम् ।।

भगवान् महादेव ने अञ्जनयुक्त अपने मुख को देखकर शुभ काले अञ्जन से युक्त वदन को जटाओं से पोंछा।

प्रक्षालयामास तदा वदनं गङ्गया शिवे !
[4]सा वै गङ्गा समुत्पन्ना[5] कालाञ्जननिभाभवत् ।।

हे शिवे ! तब महादेव ने गंगा जल से अपने वदन को धोया। वह गंगा पैदा हुई और काले अञ्जन के समान हो गई।

नीलगङ्गेति विख्याता महापातकनाशिनी।
नीलगङ्गां नरः [6] स्नात्वा महापापैः प्रमुच्यते ।।

महापापों को नष्ट करने वाली वह 'नीलगंगा' इस नाम से प्रसिद्ध हुई। नीलगंगा में स्नान कर मनुष्य महापापों से मुक्त हो जाता है।

नीलयङ्गधारणस्पर्शात्तद्वत्संसर्गतो...[7] ।
आत्मदोषादिस्त्रीणां वै नाशं सानयति परम् ।।

नीली को अंगों पर धारण करने, स्पर्श करने वा उसकी तरह संसर्ग से......स्त्रियों के परम आत्मदोष आदि कौ वह दूर करती है।

नीलगङ्गामृदं चापि यो दद्यादङ्गके स्वके।
स याति ब्रह्मसदनं यत्र गत्वा न शोचते ।।

नीलगंगा की मिट्टी को भी जो अपने अंग में लगाये, वह ब्रह्मसदन को पाता है, जहां जाकर शोक नहीं होता है।

तथा नीलजलं पुण्यं महापापप्रणाशनम्।

तथा यह पुण्यप्रदत नीलजल महापापों को नष्ट करने वाला है।

नीलगङ्गानदीपुण्ये स्नानाज्जलशुभे जले।
स याति शिवसायुज्यं यत्र गत्वा न शोचते ।।

---

१ पावती २ दृष्टा ३ स्वन्देवो ४ स वै ५ समुत्यन्ना ६ नर स्ना० ७ संसर्गतो सतां।

नीलगंगा नदी के पुण्यकर शुभ जल में स्नान करने से मनुष्य शिव सायुज्य को पाता है जहां जाकर शोक नहीं होता।

इति ते कथितं देवि माहात्म्यममरोत्तमे !
भृगोः क्षेत्रस्य नीलाया महापापप्रणाशनम् ।।

हे अमरोत्तमे ! देवि ! इस प्रकार यह भृगु के क्षेत्र में नीला का माहात्म्य महापापों को नष्ट करने वाला तुझे मैंने कहा है।

इत्येष पटलो गुह्यो स्त्रीणां पापप्रणाशनः ।
ईश्वरीवचना[1]द्देवि त्रिमलघ्नः प्रकीर्त्तितः ।।

हे देवि ! स्त्रियों के पापों को नष्ट करने वाला यह गुह्य पटल ईश्वरी-पार्वती के कहने से तीनों मलों को नष्ट करने वाला कहा गया है।

इति श्रीपरिशीलवने भृगुतीर्थनीलगङ्गानाम पटलः ।।

---

१ वचनादेवि ।

भैरव उवाच— भैरव बोले—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि स्थाण्वाश्रमवनं महत् ।
यच्छ्रुत्वा मुच्यते जन्तुर्महापातककोटिभिः ॥

हे देवि ! महास्थाणु-आश्रम वन के विषय में सुनिए, जिसे सुनकर प्राणी करोड़ों महापापों से मुक्त हो जाता है ।

पुरा चचार सुमह[1]त्तपो हैमवते नगे ।
गिरीशो[2] द[3]क्षतनुजाविश्लेषिततनु शिवः ॥

पूर्वयुग में दक्षपुत्री सती से आलिङ्गित शरीर वाले गिरीश शिव ने हिमालय पर्वत पर महान् तप किया ।

दिव्यंवर्षसहस्रान्ते समाधिनिरतोऽ[4]भवत् ।
तत्रैव पार्वती देवी हरसेवार्थमागता ॥

वे दिव्य सहस्रवर्ष पर्यन्त समाधि में लग गए । वहीं पार्वती देवी महादेव की सेवा के लिए आई ।

सेवापरा ह्यभूत्तत्र[5] चिरं देवी म[6]हेश्वरी ।
स्थाणुवत्संस्थितो यत्र महेशस्तपसि स्थितः ॥

महेश्वरी देवी वहां चिरकाल सेवा में लग्न हो गई, जहां महादेव स्थाणु की तरह तपस्या करने में स्थित थे ।

स्थाण्वाश्रमस्ततः प्रोक्तो[7] महापातकनाशनः ।

इसके बाद वह महापापों को नष्ट करने वाला स्थाणु-आश्रम के नाम से कहा गया ।

स्थाण्वाश्रमसमीपे तु यः स्नायात्सुरवन्दिते ।
स याति शिवसदनं यत्र गत्वा न शोचते ॥

हे सुरवन्दिते ! स्थाणु-आश्रम के पास जो स्नान करे, वह शिवलोक को जाता है, जहां जाकर शोक नहीं होता है ।

स्थाण्वाश्रमे तु यो देवि श्राद्धं कृत्वा विधानतः ।
पितर[8]स्तृप्तिमायान्ति शतकल्पं न संशयः ॥

---

१ सुमहतपो २ गिरिशो ३ दंक्ष० ४ निरतोभवत् ५ ह्यभूतत्र ६ माहेश्वरी ७ प्रोक्तो ८ स्स्वर० ९ स्तिृप्ति :

हे देवि ! स्थाणु-आश्रम में जो विधिपूर्वक श्राद्ध करे, उसके पितर शतकल्पपर्यन्त तृप्ति को प्राप्त होते हैं, इसमें संशय नहीं है।

महापातकयुक्तो वा युक्तो वा ह्युपपातकैः।
स्थाण्वाश्रमवने पुण्ये मुच्यते सर्वकिल्विषैः॥

महापापों से युक्त वा उपपातकों से युक्त पुरुष पुण्यकर स्थाणु-आश्रम वन में सभी पापों से मुक्त हो जाता है।

गवां कोटिसहस्रस्य सम्य[1]ग्दानस्य यत्फलम्।
तत्फलं कोटिगुणितं स्नात्वा स्थाण्वाश्रमे जले॥

सहस्रकोटि गायों के अच्छी प्रकार दान करने का जो फल है, वह फल करोड़ों गुणा-स्थाणु-आश्रम के जल में स्नान कर प्राप्त होता है।

कुरुक्षेत्रे प्रयागे च गङ्गासागरसङ्गमे।
स्नात्वा यत्फलमाप्नोति तत्स्थाणोर्दर्शनात्प्रिये॥

हे प्रिये ! कुरुक्षेत्र में, प्रयाग में और गङ्गासागर सङ्गम में स्नान कर जो फल प्राप्त होता है, वह स्थाणु के दर्शन से पाता है।

स्थाण्वाश्रमसमीपे तु स्नानं कृत्वा विधानतः।
अश्वमेधादियज्ञानां[2] गोदानानां परं फलम्॥

स्थाणु-आश्रम के पास विधिपूर्वक स्नान कर अश्वमेध आदि यज्ञों और गोदानों के परम फल को पाता है।

क्षौमं हिरण्यं वस्त्रं वा परमं पुण्यमाप्नुयात्।
देवार्चनमत्र कुर्वं[3]स्तिलतर्पणमेव च।
जपंश्च मुच्यते जन्तु[4]र्महापातककोटिभिः॥
स्थाण्वाश्रमे भक्त्या कुर्वन्वै किल्विषापहम्।
न करोति महास्नानं दानं वा जगदम्बिके।
स याति नरकं घोरं जन्म[5]जन्मनि पातकी॥

रेशमी वस्त्र, सुवर्ण वा वस्त्र का दान करने से परम पुण्य पाए। जहां देवार्चन और तिलों से पितरों का तर्पण एवं जप करता हुआ प्राणी करोड़ों महापापों से मुक्त हो जाता है। हे जगदम्बिके ! स्थाणु-आश्रम में मनुष्य भक्तिपूर्वक पापों को नष्ट करने वाले महास्नान दान को नहीं करता है, वह जन्म-जन्मान्तर का पापी घोर नरक को पाता है।

---

१ सम्यग्दातुस्य २ यज्ञाना ३ कुर्वंस्तिल० ४ जन्तु. महा० ५ जन्मे जन्मे

तस्मात्स्थाण्वाश्रमे भक्त्या सन्ध्यातर्पणमाचरेत् ।
सन्ध्याकोटिगुणा प्रोक्ता तर्पणं[1] स्यादनन्तमम् ॥

इसलिए स्थाणु-आश्रम में भक्तिपूर्वक सन्ध्या-तर्पण करे । सन्ध्या करोड़ों गुणा कही गई है और तर्पण अनन्त गुण होता है ।

श्री ईश्वर[2]उवाच—श्री ईश्वर बोले—

राक्षसाश्च पुरा देवं दर्शनार्थमुपागताः ।
[3]देवैः सार्धं च मिलिताः स्थाण्वाश्रमे समन्ततः ॥

पूर्वकाल में चारों ओर से देवताओं के साथ मिले हुए राक्षस देव का दर्शन करने के लिए स्थाणु-आश्रम में आए ।

अहं पूर्वमहं पूर्वमित्येवं स्पर्धया[4] पुरा ।
कलहं चक्रिरे[5] ऽन्योन्यं भुजाभुजि महेश्वरि ॥

हे महेश्वरि ! पूर्वयुग में मैं पहले-मैं पहले, इस प्रकार स्पर्धा से परस्पर भुजा-भुजा में लड़ाई करने लगे ।

गिर्यारोहणकाले तु दैत्याः पिष्टाः सुरोत्तमैः ।
पिष्टा दैत्यास्तत्र गिरौ लीनास्तत्रैव सुन्दरि ॥

हे सुन्दरि ! पर्वत पर चढ़ते समय देवताओं ने दैत्य पीस डाले । उस पर्वत पर पीसे गए दैत्य उसी में लीन हो गए ।

दैत्यान्पिष्टान्देवगणा दृष्ट्वा हर्षमवाप्नुयुः ।

देवता पीसे गए दैत्यों को देखकर प्रसन्न हुए ।

यस्मिन्[6] गिरौ देवगणैः पिष्टाः दैत्याः समन्ततः[7] ।
स गिरिः परमोद्धारः पेषाख्यः[8] प्रथितो भुवि ॥

जिस पर्वत पर देवगणों से चारों ओर दैत्य पीसे गए, वह परमोद्धार पर्वत 'पेष' नाम से पृथ्वी पर प्रसिद्ध हुआ ।

कुरुक्षेत्रे प्रयागे च गङ्गासागरसङ्गमे ।
स्नानाद्यत्फलमाप्नोति तत्पेषस्य तु दर्शनात् ॥

कुरुक्षेत्र, प्रयाग और गङ्गासागर के सङ्गम में स्नान करने से जो फल पाता है, वह पेष के दर्शन से पाता है ।

गिरेरारोहणे देवि यावन्तो रेणुबिन्दवः ।
तावन्ति वाजपेयानि प्राप्नोत्येव न संशयः ॥

---

१ तर्पण २ श्री ईश्वरुवाच ३ दैवैः ४ स्पर्दया ५ चक्रिरेन्योन्यं । ६ यस्मि गिरौ ७ समन्तता ८ येषाख्यो प्रथि०

हे देवि ! पर्वत के चढ़ने में जितने रेणुबिन्दु हैं, उतने ही वाजपेय यज्ञ पाता है। इसमें संशय नहीं है।

नैमिषे च प्रयागे च गङ्गासागरसङ्गमे।
वाराणस्या शतगुणं सहस्रं कुरुजाङ्गलात्।
लक्ष्मीमानसक्षेत्रात्तु[1] पेषाख्यो गिरिरुत्तमः॥

नैमिष में, प्रयाग में, गङ्गासागर के सङ्गम में और वाराणसी में सौ गुणा और...... तथा लक्ष्मीमानस क्षेत्र से 'पेष' नामक गिरि उत्तम है।

पिनष्टि यत्र पापानि नरो नियतमानसः।
ततः प्रोक्तं पुराविद्भिः पेषाख्यो गिरिरुत्तमः[2]॥

नियत मन वाला पुरुष जहां पापों को पीसता है, इसीलिए पुरातत्त्ववेत्ताओं ने इसे 'पेष' नामक उत्तम गिरि कहा है।

आरोढुमिच्छति[3] यस्तु [4]गिरिन्देवि समन्ततः।
श्री श्री श्री शितिकण्ठेश इमं मन्त्र[5]मनुस्मरेत्॥

हे देवि ! जो चारों ओर से पर्वत को चढ़ना चाहता है, वह 'श्री श्री श्री शितिकण्ठ' इस मन्त्र का स्मरण करे।

स ब्रह्मभवनं याति यत्र गत्वा न शोचते।

वह ब्रह्मभवन को जाता है, जहां जाकर शोक नहीं होता है।

महान्ति मेरुतुल्यानि पापानि यदि सुन्दरि।
तान्यस्य दर्शनादेवं नाशमायान्ति तत्क्षणात्॥

हे सुन्दरि ! मेरु के समान महान् जितने भी पाप हैं वे इसके दर्शन से ही तत्क्षण नष्ट हो जाते हैं।

स याति च शिवस्थानं यत्र नास्ति कृताकृतम्।
विधिना यो नरो देवि पेषमारुहते नरः॥

हे देवि ! जो मनुष्य विधिवत् पेष गिरि का आरोहण करता है, वह शिवस्थान को जाता है, जहां कृत-अकृत कुछ नहीं है।

पापसंघान्स पिष्ट्वात्र पदं सादाशिवं व्रजेत्।
पेषदर्शनमात्रेण भूताः प्रेताः पिशाचकाः॥
डाकिन्याद्याश्च सर्वास्ता नाशमायान्ति तत्क्षणात्।

जहां वह पापसमूहों को पीसकर...... सादाशिव को जाए। भूत,

---

१ क्षेत्रातु २ मुरुत्तमाः ३ मिच्छते ४ गिरेन्देवि ५ इममत्रमनु०।

प्रेत, पिशाच, डाकिनी आदि वे सभी पेष के दर्शनमात्र से तत्क्षण नाश को प्राप्त होते हैं ।

नमस्करोति देवेशि पुण्यं पेषगिरिं नरः ।
आरुह्य पुण्यमाप्नोति सत्यं सत्यं वरानने ।।

हे देवेशि ! वरानने ! जो मनुष्य पुण्यकर पेषगिरि पर चढ़ उसे नमस्कार करता है, वह पुण्य को प्राप्त करता है, यह सत्य है, यह सत्य है ।

इति प्रोक्तो मया देवि पेषस्य[1] महिमा गिरेः ।
श्रुतो[2]ऽनुध्यातः पठितः महापातकनाशनः ।।

हे देवि ! यह मैंने पेष गिरि की महिमा तुझे कही है, यह सुनने, चिन्तन करने तथा पढ़ने से महापाप को नष्ट करने वाली है ।

इत्येष पटलो गुह्यः[3] प्रोक्तस्तव वरानने !
श्रुतश्च पठितश्चापि ज्योतिष्टोमादियज्ञदः ।।

हे वरानने ! इस प्रकार यह मैंने गुह्य पटल तुझे कहा है, जो सुनने और पढ़ने से भी ज्योतिष्टोम आदि यज्ञ के फल को देने वाला है ।

इति स्थाण्वाश्रमपेषमहिमा पटलः ।।

---

१ पेशस्य २ श्रुतोनुध्यातः ३ गुह्योः ।

श्री भैरव्युवाच— श्री भैरवी बोलीं—

पेषो गिरिर्मया देव श्रुतो भवदनुग्रहात् ।
सु श्रम:[1] नागराज:[2] सर्पगोनास[3]मण्डित: ।।
कृतार्थास्मि कृतार्थास्मि कृतार्थास्मि न संशय: ।
अधुना श्रोतुमिच्छामि नागस्यापि महेश्वर ।।
प्रभावं च समुत्पत्ति कथयस्व प्रसादत: ।।

हे देव ! आपकी कृपा से मैंने सुश्रम, नागराज, सर्पगोनासमण्डित पेष नामक गिरि के विषय में सुन लिया है, जिससे मैं कृतार्थ हूँ, कृतार्थ हूँ इसमें संशय नहीं है । हे महेश्वर ! अब मैं नाग के भी प्रभाव और उत्पत्ति के विषय में सुनना चाहता हूँ, कृपा करके कहिए ।

भैरव उवाच— भैरव बोले—

शृणु [4]सुश्रोणि वक्ष्यामि शेषस्य नागरूपिण: ।
माहात्म्यं च प्रभूतिं च सर्वपापप्रणाशनम् ।।

हे सुश्रोणि ! सुनिए, मैं सभी पापों को नष्ट करने वाले नागरूपी शेषनाग के माहात्म्य और उत्पत्ति के विषय में कहता हूँ ।

पुरा कृतयुगे देवि स्थानं चक्रे हिमालये ।
शिखरे वं महापुण्ये चामरेश्वर[5]सन्निधौ ।।

हे देवि ; प्राचीन काल में सत्ययुग में चामरेश्वर के पास महापुण्यप्रद हिमालय के शिखर पर स्थान किया ।

पूजार्थं दर्शनार्थं तपोऽर्थं सुरसुन्दरि !
त्रिदशा: सिद्धगन्धर्वा देवजातिसमन्विता: ।।

हे सुरसुन्दरि ! देवजाति से युक्त देवता, सिद्ध और गन्धर्व पूजा के लिए, दर्शन के लिए और तपस्या के लिए एकत्रित हुए ।

एतस्मिन्न[7]न्तरे कश्चिद्वातरूपधरो बली ।
[8]दैत्येन्द्रो भूर्महावीर्यस्तपोगर्वेण गर्वित: ।।
[9]अत्रस्थान्समृद्धान्देवान्नीरयामास शक्तित: ।।

इसी बीच तपस्या के गर्व से गर्वित, भूस्वरूप, महापराक्रमी, वायु के रूप को धारण किए हुए बली किसी दैत्येन्द्र ने शक्ति से जहां स्थित समृद्ध देवताओं को प्रेरित किया ।

---

१ सु श्रमं २ नागराजं ३ मंडितं ४ स्वश्रेणि ५ संनिधौ: ६ समन्विता ७ एतस्मिन्नतरे ८ अत्रस्थासमूहादेवानीरयामास

ततो देवा[1] महेन्द्रेण शरणं परमेश्वरम्।
निकटस्थं समाजग्मुः [2]स्तुतिभिः परितोषयन् ॥

इसके बाद इन्द्र के साथ सभी देवता स्तुतिओं से प्रसन्न करते हुए निकटस्थ परमेश्वर की शरण में गए।

देवा [3]ऊचुः—देवता बोले—

नमस्ते देवदेवाय शम्भवे परमात्मने।
[4]जगत्स्थितिविनाशाय हेतुभूताय वै नमः ॥

देवाधिदेव, शम्भु, परमात्मा, तुझे नमस्कार है। जगत् की स्थिति और विनाश में कारण तुझे नमस्कार है।

त्वं माता सर्वभूतानां त्वमेव जगतां पिता।
त्वं [5]सुहृद्बन्धुरेवासि ततो नान्यज्जगत्त्रये ॥

तू ही सभी प्राणियों की माता है, तू ही संसार का पिता है, तू मित्र है और तू ही विद्वान् है, तुझसे परे तीनों युगों में अन्य कुछ नहीं है।

अनाथानां तु नाथ[6]स्त्वमगतीनां गतिस्थता।
आर्त्तानामार्तिहा त्वं वै त्वमेव शरणं विभो ॥

अनाथों का तू नाथ है, गतिहीनों की तू गति है और दुःखियों के दुख को नाश करने वाले हो, हे विभो ! हम तुम्हारी ही शरण में हैं।

इति स्तुत्या महादेवः[7] प्रादुरासीद्दयानिधिः।
उवाच श्लथया वाचा देवानां दुःखभाजिनाम् ॥

इस प्रकार स्तुति से दया के सागर महादेव जी का प्रादुर्भाव हुआ और दुखी देवताओं को कोमल वाणी से कहा।

सर्वं श्रुतं मया देवा [8]दैत्येन्द्रस्य दुरात्मनः।
मया संवर्धिता दैत्याच्छेत्तुं नार्हाः सुराधिपाः ॥

हे देवताओ ! दुरात्मा दैत्येन्द्र के विषय में मैंने सब कुछ सुन लिया है। ये दैत्य मैंने पाले-पोसे हैं, इसलिए हे देवताओं ! ये काटने योग्य नहीं हैं।

तस्माद्[9]व्रजध्वं शरणं [11]शरणार्तिप्रणाशनम्।
भगवन्तं चतुर्बाहुं शङ्खचक्रगदाधरम्।
क्षीरसागरमध्यस्थं शेषशायिनमेव च[12] ॥

---

१ देवाः २ स्तुंतिभिः ३ ऋचुः ४ जगत् स्थिवि० ५ स्वहृद्बुधरेवास्वि ६ नाथस्तु मगतीनां ७ प्रादुरामी० ८ दैत्य ९ नार्हा १० तस्माद व्रज ११ शरणार्ति० १२ मैव च

इसलिए शरण में आए हुए की पीड़ा को नष्ट करने वाले, चार भुजा वाले, शङ्ख-चक्र और गदा को धारण किए हुए, क्षीर सागर के मध्य में रहने वाले, शेषनाग पर शयन करने वाले भगवान् की शरण में जाओ।

इति विसृज्य [1]तान्देवानन्तर्धिं प्राप्तवान्[2] हरः।
ततो देवगणाः[3] सर्वे हर्षसम्पूर्णमानसाः।
क्षीराम्बुधिं प्राप्य तुष्टा[4]स्तुष्टुवुर्जगतांपतिम् ॥

इस प्रकार उन देवताओं को विदाकर महादेव अन्तर्ध्यान हो गए। इसके बाद सभी देवता हर्ष से भरे मन वाले क्षीरसागर को पाकर प्रसन्न हुए जगत्पति को प्रसन्न करने लगे।

देवा ऊचुः[5]—देवता बोले—

नमो नमो ह्यनन्ताय रूपातीताय वै नमः।
नमः सर्वस्वरूपाय सर्वातीताय वै[6] नमः ॥

अनन्तस्वरूप, रूपातीत, तुझे नमस्कार है। सर्वस्वरूप, सर्वातीत, तुझे नमस्कार है।

गणेशाय[7] गुणज्ञाय गुणातीताय वै नमः।
सर्वेशाय च सर्वस्मै[8]···च नमः ॥

गणेश, गुणज्ञ, गुणातीत, तुझे नमस्कार है। सर्वेश, सर्वस्वरूप,··· तुझे नमस्कार है।

वेदाय वेदरूपाय वेदगम्याय ते नमः।
ध्यानाय ध्यान[9]गम्याय [10]ध्यानातीताय वै नमः ॥

वेदस्वरूप, वेद, वेदगम्य तुझे नमस्कार है। ध्यानस्वरूप, ध्यानगम्य और ध्यानातीत, तुझे नमस्कार है।

जगत्कर्त्रे[11] नमस्तुभ्यं जगद्धर्त्रे च वै नमः।
जगत्पालनसंसक्त[12]चित्ताय चित्स्वरूपिणे[13] ॥

जगत्कर्त्ता, जगत्-हर्त्ता, तुझे नमस्कार है। जगत् का पालन करने में संसक्त चित्त वाले, चित्स्वरूप, तुझे नमस्कार है।

एवं स्तुत्या तु देवेशः प्रसन्नो[14]ऽभूद्दयापरः।
उवाच वचनं [15]देवान्सर्वदुःखनिवारणम् ॥

---

१ तान्देवानतर्धि० २ प्राप्नुवान् ३ वा गणाः, ४ तुष्टा तुष्टावुजं० ५ ऊचु ६ वैमः ७ गणेशय ८ सर्वाय स चगाय ९ ध्यान गंम्याय १० ध्यानतीत ११ जगत्कर्त्र्वे १२ संसक्तंचित्ताय १३ चित्सरूपायणे १४ प्रसन्नोभू० १५ वासर्व०

इस प्रकार स्तुति से दयालु देवेश प्रसन्न हुए और सभी दुःखों का निवारण करने वाले वचन बोले ।

गच्छध्वं देवदेवेशा नाकं शोकहरं परम् ।
तं दुष्टं सकुलं हन्मि वातरूपं दुरासदम् ॥

हे देवदेवेशो ! परमशोक को हरने वाले स्वर्ग को चले जाओ । मैं दुरासद, वातरूप उस दुष्ट का कुल सहित नाश कर देता हूँ ।

इत्युक्त्वा तदाथ[1] विष्णुर्भक्तानामार्तिनाशनः ।
पातालाद्गिरिराजे वै प्रादुर्भूतो जगत्प्रभुः ॥

यह कहकर तब भक्तों के दुःख को नाश करने वाले जगत्प्रभु विष्णु का पाताललोक से गिरिराज पर प्रादुर्भाव हुआ ।

शेष[2]श्चतुर्बाहुः सलक्ष्मीकोऽ[3]पि सायुधः ।
आज्ञापयामास तदा शेषं शतफणान्वितम् ॥

शेष को मस्तक पर धारण किए, चार भुजा वाले, लक्ष्मी सहित, सायुध विष्णु ने तब शत फणों से युक्त शेषनाग को आज्ञा दी ।

वातं पिव फणोद्भूतं[4] सहस्रवदनैस्तथा[5] ।
प्राणांस्तर्पय नागेश[6] यतस्त्वं [7]पवनाशनः ॥

हे नागेश ! तुम अपने सहस्र मुखों से फण से पैदा हुए वायु को पियो और प्राणों को तृप्त करो, क्योंकि तुम पवनाशन हो ।

एवं श्रुत्वा भगवतो वचनम[8]मृतोपमम् ।
प्रादुर्भूय च तं दैत्यं वायुरूपं पपौ क्षणात् ॥

इस प्रकार भगवान् के अमृत के समान मधुर वचन को सुनकर उस शेषनाग ने प्रादुर्भूत होकर उस वायुरूप दैत्य को क्षण भर में पी लिया ।

पुनर्वातस्य शेषो वै प्राभवत् गिरिमस्तके ।
पुनश्च वसतिं चक्रे[9]···परमपावने ॥

फिर वायु के शेष रूप में पर्वतशिखर पर प्रकट हुआ और फिर उस परमपवित्र पर्वतशिखर पर ही अपना वास किया ।

तदा प्रभृति देवा निर्विघ्ना[10]···तदा ।
पुनः प्रोवाच भगवा[11]ञ्छेषं च पवनाशनम् ॥

---

१ ध २ चूढ० ३ कोपि ४ फणोद्धतं ५ वदनेस्तथा ६ नागेश ७ यतः त्वं पवनाशनः ८ वचनंममृतापमम् ९ तगे १० परमयावने स्माज्वित्वबे ११ भगवा शे

तब से लेकर देवता……फिर भगवान् ने पवनाशन शेषनाग से कहा—

अत्र तिष्ठ फणेन्द्र त्वं भयं नाशय वातजम् ।
तदा प्रभृति देवेशि नागो[1]ऽभूच्छेषसंज्ञकः ।
सु श्रसो[2]ऽप्याभिधो नागो वर्णितो योगिसत्तमैः ।।

हे फणेन्द्र ! तुम जहां ठहरो और वातज अर्थात् वायु से पैदा हुए भय को नष्ट करो। हे देवेशि ! तब से लेकर शेषनाग नाम उसका हुआ। योगी श्रेष्ठों ने भी 'सुश्रस' नाम से इस नाग का वर्णन किया है।

यत्र स्नात्वा श्रमं याति सुखेन मनुजः[3] प्रिये ।
अश्रमेण लभेल्लोकान्देवानामपि सुन्दरि ।।

हे प्रिये ! जहां स्नान कर सुखपूर्वक मनुष्य श्रम को प्राप्त करता है। हे सुन्दरि। श्रमविहीन होकर वह देवताओं के भी लोकों को पाए।

सुखेनात्र प्लुतो लोकांस्तस्मान्नागोऽपि[4]स्वश्रमः ।
स्वाश्रमो[5]ऽपि बुधैः[6] प्रोक्तो नागराजो[7]ऽपि सुन्दरि ।।

यहां नाग ने सुखपूर्वक लोकों को प्लुत किया, उससे नाग भी स्वश्रम हुआ। हे सुन्दरि ! विद्वान् पुरुषों ने उसे स्वाश्रम नागराज भी कहा है।

यस्मात्सुखेन लब्धं[8] वै स्वाश्रम त्रिदिवौकसैः ।[9]
अत्र दर्शन[10]मात्रेण मुच्यते पापराशिकृत् ।।

जिससे देवताओं ने सुखपूर्वक स्वाश्रम को प्राप्त किया। यहां दर्शनमात्र से पापों को करने वाला मुक्त हो जाता है।

दर्शना[11]त्स्पर्शनात्स्नानाद्दानाद्धोमाज्जपात्तथा ।
स्वाध्यायस्तुति[12]…ह्यनन्तं पुण्यमाप्नुयात् ।।

दर्शन से, स्पर्शन से, स्नान से, दान से, होम से तथा जप से एवं स्वाध्याय-स्तुति……अनन्त पुण्य पाए।

कमलापूजनाद्यत्र स्थिरां प्राप्नोति वै गिराम्[13] ।
स्मरणादपि देवेशि मुच्यते पापसंचयैः ।।

कमला के जहां पूजन से स्थिर वाणी को पाता है। हे देवेशि ! स्मरण मात्र से भी पापसमूह से मुक्त हो जाता है।

---

१ नागोभू० २ स श्रसोप्यभिधो ३ मनुजा ४ न्नागोपि ५ स्वा श्रोमोपि ६ बुधं प्रोक्तो ७ नागरा जोपि ८ लब्धा ९ त्रिदिवौकसः १० दर्शमात्रेण ११ दर्शनात सुर्शना १२ स्तुतिपाठाच्च १३ द्धिराम् ।

बहुनात्र किमुक्तेन नागराजस्य सुन्दरि ।
ब्रह्महा मुच्यते सद्यः पानाद्दानाज्जलस्य वै ।।

हे सुन्दरि ! जहां नागराज के विषय में बहुत कहने ने क्या लाभ! जल के पीने से, दान देने से ब्रह्महत्यारा भी झट मुक्त हो जाता है ।

महागोन[1]सनामानमारुहे··· ।
यत्रारोहणमात्रेण न गच्छेद्यममन्दिरम् ।।

······महागोनस नाम वाले पर्वत पर आरोहण करे, जहां चढ़ने मात्र से यममन्दिर को न जाए ।

[2]इति श्रीदक्षिणपार्श्वोपतीर्थसंग्रहे सश्रमनागराजमहा-
गोनसनाममहिमा पटलः ।।

---

१ महागोनमनामानमारुहेत्य २ व तात्तामम् इति स श्रमनागराजमहा-गेनसनाममहिम पाटलः ।।

भैरव्युवाच[1]—भैरवी बोली—

पेषो गिरिर्मया देव श्रुतो भवदनुग्रहात् ।
अधुना श्रोतु[2]मिच्छामि तीर्थं वै वायुवर्जनम् ।।
कथं तत्क्षेत्रमित्याहुः पुण्यं वै वायुवर्जनम् ।
किमर्थं मठिकां[3] तत्र क्रियते प्रस्तरैः शुभैः ।
वद मे कृपया शम्भो तत्र तीर्थे च किं फलम् ।।

हे देव ! आपकी कृपा से मैंने पेष नामक गिरि के विषय में सुन लिया है । अब मैं वायुवर्जन नामक तीर्थ के विषय में सुनना चाहता हूं । उस वायु वर्जन को कैसे पुण्यकर क्षेत्र कहा गया है । किसलिए वहां पर शुभ पत्थरों से मटिका का निर्माण किया जाता है ? हे शम्भो ! कृपा करके मुझे कहिए कि उस तीर्थ का क्या फल है !

भैरव उवाच—भैरव बोले—

देवैश्च पिष्टा[4]न्दैत्यांस्तुषतो नाम दानवः ।
श्रुत्वा समीरणो भूत्वा बबाधे देवतास्तदा ।।

तुष्टष नामक दानव ने देवताओं से पीसे गए दैत्यों के विषय में सुनकर समीरण के रूप में तब देवताओं को बाधित किया ।

वायुना परिभूताश्च देवास्ते शरणं गताः ।
देवदेवं देवदेवं तुष्टुवुः[5] परया गिरा ।।

वायु से परिभूत वे देवता देवाधिदेव महादेव की शरण में गए और परम वाणी से स्तुति करने लगे ।

देवाः ऊचु—देवता बोले—

नमो देवाधिदेवाय[6] शर्वाय शम्भवे भुवे ।
आदिमध्यान्तशून्याय पराय प्रभवे नमः ।।

देवाधिदेव शर्व, शम्भु, स्वयम्भू को नमस्कार है । आदि-मध्य-अन्त में शून्य स्वरूप, पर प्रभु को नमस्कार है ।

नमो भैरवरूपाय भीमाय भयनाशिने ।
भयानकाय देवाय मुञ्जमेखलिने नमः ।।

---

१ भैरवीयुवाच २ श्रोतुत्वमिच्छामि ३ मठिकां तत्र कुर्वते ४ मिष्टान्दै० ५ तुष्टुवु ६ देवादिदेवाय ।

भैरवरूप, भीम, भय का नाश करने वाले, तुझे नमस्कार है। भयानक, देव, मुञ्ज की मेखला धारण करने वाले, तुझे नमस्कार है।

नमोऽमृतसुरूपाय मृत्युमृत्युविनाशिने।
कलानिधिविभूषाय कालरूपाय ते नमः॥

मृतसुरूप मृत्यु-मृत्यु का नाश करने वाले, कलानिधिविभूष, कालरूप, तुझे नमस्कार है।

शान्ताय श्वेतदेहाय शान्ति[1]वाहाय ते नमः।
अमरेशाय देवाय भूयो भूयो नमो नमः॥

शान्त, श्वेतदेह, शान्तिवाह, तुझे नमस्कार है। अमरेश, देव, तुम्हें बार-बार नमस्कार है।

इति श्रुत्वा नुतिं प्रीत्या कृतां परमदैवतै[2]।
जगाद भगवाञ्छम्भु[3]र्देवान्परमया मुदा॥

इस प्रकार परम देवताओं से प्रेमपूर्वक की गई स्तुति को सुनकर भगवान् शम्भु ने परम प्रसन्नता से देवताओं को कहा।

श्री भगवानुवाच — श्री भगवान् बोले—

श्रुतं मया पूर्वमेव बाधनं दानवस्य च।
अत्रैव मठिकां कृत्वा तिष्ठध्वमविशङ्कया॥

मैंने पहले ही दानव द्वारा किए गए बाधन के विषय में सुन लिया है यहीं पर मठिका बनाकर तुम लोग निश्शङ्क होकर रहो।

मठिकासु च देवेशाः[4] कुरुध्वं वायुवर्जनम्।

हे देवेशि। इसके बाद वहां पत्थरों से मठिकाओं का निर्माण कर वे सब सुखपूर्वक वहीं मठिकाओं में रहने लगे।

[6]इत्थं कृत्वा ततो देवा मठिकास्तत्र प्रस्तरैः।
स्थितास्तत्रैव देवेशि मठिकासु सुखान्विताः॥
वायुः शशास सुमहान्दैत्यः परमदारुणः।
दर्शयामास तदुग्रं रूपं दैत्यं पुरन्दरः॥

परम दारुण उस महान् दैत्य ने वायु......और इन्द्र ने दैत्य के उस उग्र रूप को देखा।

---

१ शांति० २ देवतैः ३ ञ्छभुन्देवा० ४ भगवानुवाच ५ देवेशा० ६ इत्थं

दृष्ट्वा दैत्यमुग्ररूपमिन्द्रो वज्रं [1]समादधे ।
अहनद्दानवं देवस्तत्रैव वायुवर्जने ।।

उस दैत्य के उग्र रूप को देखकर इन्द्र ने वज्र लिया और वहीं वायुवर्जन में दानव को मारा ।

[2]वायुवर्जननामाख्यं तीर्थं भूतं सुरार्चिते ।
अनन्तं पुण्यमाप्नोति वायुवर्जनदर्शनात् ।।

हे सुरार्चिते ! वायुवर्जन नामक वह तीर्थ हुआ । वायुवर्जन के दर्शन से अनन्त पुण्य पाता है ।

महापातकयुक्तो वा युक्तो वा चोपपातकैः ।
मुच्यते पातकाद्घोराद्[3]दृष्ट्वा वै वायुवर्जनम् ।।

महापापों से युक्त वा उपपातकों से युक्त वायुवर्जन का दर्शन कर घोर पाप से मुक्त हो जाता है ।

वायुवर्जनदेशे च स्नात्वा पीत्वा च सुन्दरि ।
नरो न लिप्यते पापैर्महापातकजैरपि ।।

हे सुन्दरि ! वायुवर्जन देश में स्नान कर और जल पी कर मनुष्य महापातकों से पैदा हुए पापों से लिप्त नहीं होता है ।

स्नानं कृत्वा च दत्वा च तिला[4]न्नपि सुन्दरि ।
अनन्तं[5] फलमाप्नोति पुण्ये वै वायुवर्जने ।।

हे सुन्दरि ! पुण्यकर वायुवर्जन में स्नान कर और तिलों को भी देकर अनन्त फल पाता है ।

वायुवर्जनदेशे तु कृत्वा श्राद्धमतन्द्रितः ।
पितरस्तृप्ति[6]मायान्ति शतकल्पं न संशयः ।।

वायुवर्जन देश में श्राद्ध कर अतन्द्रित मन से श्राद्ध करे । उसके पितर शतकल्प पर्यन्त तृप्ति को पाते हैं, इसमें संशय नहीं है ।

मठिकां ये न कुर्वन्ति तत्रैव वायुवर्जने ।
दारुणं नरकं यान्ति शतकल्पं न संशयः ।।

उसी वायुवर्जन में जो मठिका का निर्माण नहीं करते हैं, वे शतकल्प पर्यन्त दारुण नरक को पाते हैं, इसमें संशय नहीं है ।

---

१ व समाधदे २ वर्जनना० ३ पामका घोरा दृष्ट्वा ४ तिलानमपि ५ आनंतं ६ पितरस्तितृप्ति० ।

कृत्वा तु मठिकां देवि पूजयेद्विधिपूर्वकम् ।
अर्पयेद्देवप्रीत्यर्थं दक्षिणाभिः समन्विताम् ।।

हे देवि ! मठिका का निर्माण कर विधिपूर्वक उसका पूजन करे । और दक्षिणाओं से युक्त उसे देवताओं की प्रीति के लिए अर्पण कर दे ।

कृत्वैवं पातकी नास्ति जन्मान्तरशतैरपि[1] ।

ऐसा करके सैंकड़ों जन्मों से भी पापी नहीं रहता ।

यो न कुर्यान्महादेवि स्नानं दानं जपं हविः ।
स याति नरकं घोरं तत्तीर्थं निष्फलं भवेत् ।।

हे महादेवि ! जो स्नान, दान, जप, होम नहीं करे, वह घोर नरक को जाता है, उसका तीर्थ निष्फल हो जाता है ।

इति ते कथितं देवि तीर्थं वै वायुवर्जनम् ।
श्रुत्वा पठित्वा मुच्येत[2] महापातकपञ्जरात् ।।

हे देवि ! इस प्रकार यह मैंने तुझे वायुवर्जन तीर्थ कहा है, इसे सुनकर, पढ़कर मनुष्य महापापों के पिञ्जर से मुक्त हो जाता है ।

श्री देव्युवाच—श्रीदेवी बोली—

वद सत्यं महादेव शुष्कं चैव सरोवरम् ।
हेतुना केन देवेश शुष्कीभूतं महत्सरः ।।

हे महादेव ! सूखे सरोवर के विषय में सत्य-सत्य कहिए । हे देवेश ! किस कारण से वह महासरोवर सूख गया ।

भैरव[3] उवाच—भैरव बोले—

शृणु सुश्रोणि वक्ष्येऽहं[4] शुष्कीभूतं सरोवरम् ।
येन विज्ञानमात्रेण नरो मुच्येत पातकात् ।।

हे सुश्रोणि ! सुनिए, मैं तुम्हें सूखे हुए सरोवर के विषय में कहता हूँ । जिसके जानने मात्र से मनुष्य पाप से मुक्त हो जाता है ।

हतशेषांसि रक्षांसि तिरोभूतानि वै ह्रदे ।
सुमायया जलचरान् घोररूपसमन्वितान्[5] ।।

मारने से बचे हुए राक्षस सरोवर में छिप गए और उसने अपनी माया से घोररूपयुक्त जलचरों को……

---

१ शतैश्चपि २ मुच्यते ३ भीरव ४ वक्ष्येहं ५ समन्वितात् ।

चिरकालेन ते तत्र पुनर्देवान्वबाधिरे।
कुर्वन्तो मुनिसंघानां विघ्नांश्चैव समन्ततः॥

चिरकाल से वे वहां फिर देवताओं को और मुनियों को विघ्न चारों ओर से उपस्थित कर बाधित करने लगे।

एकदा तत्रतो देवि स्वेच्छया[1] ह्यागतौ तदा।
वीक्ष्य प्रबाधितान्देवान् राक्षसैः परमेश्वरौ।
मुनीन्परमकारुण्याद्देवी देवमुवाच[2] ह॥

हे देवि! एक बार पार्वती-परमेश्वर दोनों स्वेच्छा से वहां आए और राक्षसों से बाधित देवताओं तथा मुनियों को देखकर परम करुणापूर्वक देवी ने देव से कहा।

दयालो परमेशान पश्यैतान्मुनिसत्तमान्।
विघ्नितान् राक्षसौघैश्च पीडितान्नपि शङ्कर॥

हे दयालो! परमेशान! शङ्कर! राक्षससमूह से विघ्नित और पीड़ित इन मुनिश्रेष्ठों को देखिए।

श्रुत्वा देवि[3]वचः सो[4]ऽपि देवान् तान् ऋषिसत्तमान्।
वीक्ष्य[5] विघ्नीकृतान्दैत्यैर्हुङ्कार[6]मकरोत्तदा॥

देवी के वचन सुनकर उसने भी दैत्यों से विघ्नीकृत देवताओं और उन ऋषिश्रेष्ठों को देखकर हुङ्कार की।

हुङ्कारेण[7] हता दैत्या मग्नास्ते तु सरोवरे।
मग्नान्दृष्ट्वा ततो देवी शशाप सर उत्तमम्॥

हुङ्कार से मरे वे दैत्य सरोवर में डूब गए। इसके बाद डूबे हुए उन्हें देखकर देवी ने उस उत्तम सर को शाप दिया।

मुनिविघ्नकरान्यस्माद्रक्षसे[8] दैत्यदानवान्।
शुष्को भव सरस्तस्माद्धव्यकव्यविवर्जितः॥

हे सर! जिससे तू मुनियों के लिए विघ्न कर दैत्य-दानवों की रक्षा करते हो, इसी से तुम हे सर! हव्य-कव्य से वंचित रह कर सूख जाओ।

इति[9]शप्तं सरो दिव्यं सद्यः शुष्कमभूत्किल।
शुष्कीभूतात्तु[10] सरसो निर्गतं रक्षसां गणम्॥

---

१ स्वच्छेया २ मवाच ३ देवींवचः ४ सोपि ५ विक्ष्य ६ हुंकर ७ हुंकरेण ८ न्रक्षसे ९ शप्ता १० भूतास्तु।

नाशयामास सुगणैः पाशमुद्गरपाणिभिः ।
[1]तदा प्रभृति देवेशि नष्टं शुष्कं सरो[2]ऽभवत् ।।

इस प्रकार शाप दिया गया वह दिव्य सरोवर झट सूख गया। सूखे हुए सरोवर से निकले हुए राक्षसों के समूह को पाश-मुद्गर हाथ में लिए सुन्दर गणों से नष्ट करवा दिया। हे देवेशि! तब से लेकर वह नष्ट हुआ सरोवर सूख गया।

वद सत्यं महादेव पुण्यां पञ्चतरङ्गिणीम् ।
यां दृष्ट्वा मुक्तिमाप्नोति जन्मान्तरभवैरघैः ।।

हे महादेव! पुण्य पञ्चतरङ्गिणी के विषय में सच-सच कहिए, जिसे देखकर मनुष्य जन्मान्तर में पैदा हुए पापों से मुक्ति पाता है।

पुण्यमक्षय्य[3]माप्नोति हयमेधादिकं प्रिये ।
पुरा ताण्डवलग्नस्य नृत्यमानस्य धूर्जटेः ।
कपर्दः [4]शिथिलीभूतः पञ्चधा च सुरेश्वरि ।

हे प्रिये! अश्वमेध-आदिक अक्षय पुण्य को पाता है। हे सुरेश्वरि! पूर्वकाल में ताण्डव-नृत्य करने में लगे हुए महादेव जी का कपर्द ढीला हो गया और पांच भागों में विभक्त हो गया।

ततो वै पञ्चधा देवी प्रादुर्भूता कपर्दतः ।
गङ्गा भगवती देवी महापातकनाशिनी ।।

तदनन्तर कपर्द से महापापों को नष्ट करने वाली वह भगवती गङ्गा पांच प्रकार से प्रादुर्भूत हुई।

या पञ्चधा महेशानि कपर्दा[5]त्पञ्चधाभवत् ।
सैव प्रोक्ता पुराविद्भिर्नदी पञ्चतरङ्गिणी ।।

हे महेशानि! जो पाँच भागों में विभक्त हुई गंगा कपर्द के पद से पांच भागों में विभक्त हुई, वही पुरातत्त्व वेत्ताओं ने 'पञ्चतरङ्गिणी' नाम से नदी कही।

नद्यां पञ्चतरङ्गिण्यां स्नानं कुर्यादतन्द्रितः ।
मुच्यते पातकैर्घोरै[6]र्ब्रह्महत्यादिकोटिभिः ।।

जो अतन्द्रित होकर पञ्चतरङ्गिणी नदी में स्नान करे, वह करोड़ों ब्रह्म-हत्या आदि घोर पापों से मुक्त हो जाता है।

---

१ उदा २ सरोभवत् ३ पाठाभाव ४ कप···तिथि लो ५ कपन्दात्पञ्चधा ६ घोरैब्रह्म० ।

गोघ्नः कृतघ्नो देवेशि भ्रूणहा गुरुतल्पगः ।
स्नात्वा दत्वा[1] च विधिव[2]त्सद्यो मुच्येत सुन्दरि ॥

हे देवेशि ! गोहत्यारा, कृतघ्न, भ्रूणहत्यारा, गुरुशय्या गमन करने वाला हे सुन्दरि ! विधिवत् स्नान कर और दान देकर झट मुक्त हो जाए।

कुरुक्षेत्रे प्रयागे च गङ्गायां नैमिषेऽथवा[3] ।
स्नात्वा दत्वा[4] च विधिवद्यत्फलं लभते नरः ॥

कुरुक्षेत्र में, प्रयाग में, गंगा में अथवा नैमिष में विधिवत् स्नान कर और दान देकर मनुष्य जो फल पाता है।

तत्फलं समवाप्नोति स्नात्वा पञ्चतरङ्गिणीम् ।

वह फल पञ्चतरङ्गिणी में स्नान करके पाता है।

श्राद्धं च विधिना[5] [6]कुर्यात्पिण्डदानमथापि वा ।
पितरस्तस्य तृप्यन्ति शतकल्पं न संशयः ॥

जो विधिपूर्वक श्राद्ध अथवा पिण्डदान करे; उसके पितर सौ कल्प तक तृप्त हो जाते हैं, इसमें संशय नहीं है।

गां हिरण्यं सुवासश्च क्षौमं चन्दनमेव च ।
कुङ्कुमागुरु[7]कर्पूरमृगनाभिमपीश्वरि ।
यो ददाति द्विजेन्द्राय[8] स शैवं लोकमाप्नुयात् ।

जो द्विजेन्द्र को गाय, सुवर्ण, सुन्दर वस्त्र, रेशमी वस्त्र, केसर, अगर कर्पूर, मृगनाभि चन्दन देता है, वह शिवलोक को पाता है।

महापातकयुक्तो वा युक्तो वा ह्युपपातकैः ।
सद्यः प्रमुच्यते जन्तुः स्नात्वा पञ्चतरङ्गिणीम् ॥

महापापों से युक्त वा उपपातकों से युक्त प्राणी पञ्चतरङ्गिणी में स्नान कर झट मुक्त हो जाता है।

आरुहेद्रत्नशिखरं ततो डामरकं श्रयेत् ।

रत्नशिखर पर चढ़े इसके बाद डामरक का सेवन करे।

दृष्ट्वा डामरकं तत्र शिल[9]भूतं महागणम् ।
पुण्यमाप्नोति मनुजो ह्यश्वमेधादियागजम्[10] ॥

वहां शिला बने हुए डामरक महागण के दर्शन कर मनुष्य अश्वमेध आदि यज्ञ से पैदा होने वाले पुण्य को पाता है।

---

१ दत्ता २ विधिवत् सद्यो ३ नैमिषेथवा ४ दत्ता ५ विधिनां ६ कन्यूर पिण्ड० ७ कन्यूर ८ विजेंद्राय ९ शूतं १० यागणं

महापातकयुक्तो वा युक्तो वा भ्रूणहादिभिः ।
पुण्यं डामरकं दृष्ट्वा मुच्यते पाप[1] कोटिभिः ॥

महापापों से युक्त वा भ्रूणहत्या आदि से युक्त पुरुष पुण्य डामरक को देखकर करोड़ों पापों से मुक्त हो जाता है ।

इति श्रीवायु[2] वर्जनादिपञ्चतरङ्गिणीमहिमा नाम पटलः ॥

---

१ पातकोटिभिः २ वजनादि

श्री देव्युवाच—श्रीदेवी बोलीं—

को[1]ऽसौ डामरको देव भवता कथितस्तु यः ।
गणः कथं शिलीभूतो वद सत्यं महेश्वर ।।

हे देव ! आपने जो कहा है वह डामरक कौन है ? वह गण कैसे शिला बन गया ? हे महेश्वर ! सत्य कहिए ।

श्रीभैरव उवाच—श्रीभैरव बोले—

शृणु वक्ष्ये महेशानि चरितं [2]डामरसम्भवम् ।
येन कर्मविपाकेन शिलीभूतो गणेश्वरः ।।

हे महेशानि ! सुनिए, मैं डामर से सम्बद्ध चरित्र को और जिस कर्म विपाक से गणेश्वर शिला बन गया, उसे कहता हूं ।

यच्छ्रुत्वा मुच्यते जन्तुर्विघ्न[3]संघैरनेकशः ।

जिसे सुनकर मनुष्य विघ्नसमूहों से अनेक बार मुक्त हो जाता है ।

पुरा नर्त्तनशीलस्य धूर्जटेः सन्ध्ययोर्द्वयोः ।
षण्मुखं क्रीडमानस्य सन्ध्याकालो[4]ऽभवत्प्रिये ।।

हे प्रिये ! पूर्वयुग में दोनों सन्ध्याओं के भीतर नृत्य करने में लगे हुए महादेव के और खेलते हुए स्कन्दकुमार के सन्ध्याकाल हो गया ।

सन्ध्यातिवाहनात्तस्य चिन्ता मनसि चाभवत् ।
[5]चिन्तमानस्य तस्यैवं[6] देवी पृष्टवती [7]मुहुः ।।

सन्ध्या के अतिवाहन से उसके मन में चिन्ता हुई । इस प्रकार उसके चिन्ता करते हुए देवी ने बार-बार पूछा ।

किमिदं चिन्तसे देव का चिन्ता भगवंस्तव[8] ।
वद सत्यं महादेव मनो मे शर्म नाश्नुते ।।

हे देव ! आप क्या सोच रहे हैं, हे भगवन् ! आपको क्या चिन्ता है ? हे महादेव ! सत्य कहिए । मेरा मन······

इति श्रुत्वा वचो देव्याः प्रियायाः परमेश्वरः ।
प्रावदद्भगवान्देवीं सन्ध्याकालो[9]ऽत्यगान्मम ।।

---

१ कोसौ २ चरीतं डामरु० ३ जन्तुः विघ्नसंगै० ४ सन्ध्याकालोवभ० त्प्रये ५ चिन्तयानस्य ६ तस्यैव ७ महुः ८ भगवांस्तव ९ कालोत्यगा० ।

प्रियतमा देवी के ये वचन सुनकर भगवान् परमेश्वर ने देवी से कहा—मेरा सन्ध्याकाल चला गया।

हे प्रिये ! सन्ध्या के लुप्त हो जाने से मैंने महती चिन्ता पा ली।

इति श्रुत्वा वचस्तस्य देवदेवस्य धूर्जटेः।
प्रत्युवाच पुनर्देवी भगवन्तं सनातनम् ॥

इस प्रकार देवाधिदेव धूर्जटि के वचन सुनकर फिर देवी ने भगवान् सनातन से कहा।

अयं महागणो देव डमरुं गृह्य तिष्ठतु।
सन्ध्याया वेदनार्थं च चिरकालं महेश्वर ॥

हे महेश्वर ! हे देव ! यह महागण सन्ध्या में⋯चिर काल डमरू लेकर खड़ा रहे।

इति श्रुत्वा वचो देव्यास्तथेत्यु[1]क्त्वा महेश्वरः।
हासयंत्षणमुखं[2] तत्र पुनर्देव्या सहालपत् ॥

ये देवी के वचन सुनकर 'तथास्तु' कहकर महादेव स्कन्दकुमार को हंसाते हुए वहां फिर देवी पार्वती के साथ बात करने लगे।

तदा प्रभृति देवेशि महाडमरुको गणः।
तस्थौ सन्ध्यावेदनार्थं भवस्य सुरपूजिते ॥

हे देवेशि ! सुरपूजिते ! तब से लेकर महाडमरुक गण महादेव की सन्ध्या के⋯⋯खड़े हो गये।

एकदा क्रीडमानस्य शिवस्य तनुजो[3] गणः।
प्रमादी भूत्वा निद्रायां लीनो[4]ऽभूत्सुरसुन्दरि ॥

एक बार क्रीड़ा में आसक्त शिव के शरीर से पैदा हुआ यह गण हे सुरसुन्दरि ! प्रमादी होकर निद्रा में लीन हो गया।

सन्ध्याकालः पुनस्तत्र व्यत्यगाच्च कपर्दिनः।
विमृश्य[5] सन्ध्यालोपं स देवदेवो भवः स्वयम्।
क्रुद्धः शशाप गिरिजे महाडमरुकगणम् ॥

फिर वहां महादेव का सन्ध्याकाल बीत गया। सन्ध्या को लुप्त हुए सोच कर देवाधिदेव महादेव ने स्वयं क्रुद्ध होकर हे गिरिजे ! महाडमरुक गण को शाप दिया।

---

१ स्तथेत्यक्त्वा २ हासयं षंडरवं ३ तनुजोऽयं ४ लीनोभू० ५ विमृष्य

यस्मा[1]न्निद्रावशेनापि सन्ध्यालोपः कृतस्त्वया[2] ।
मम तस्माच्चिरं तिष्ठ शिलीभूतो गणाधिप[3] ॥

जिससे निद्रावश होकर भी तुमने मेरी सन्ध्या का लोप किया है, इसी से यह······चिरकाल पर्यन्त शिला बनकर रहे ।

इति शप्त्वा गणं तत्र देवदेवो हरः स्वकम् ।
तस्थौ ध्यानस्थितो देवि चिरं तत्र महेश्वरः ॥

हे देवि ! इस प्रकार देवाधिदेव महादेव वहां अपने गण को शाप देकर चिरकाल पर्यन्त ध्यानस्थ रहे ।

तदा प्रभृति देवेशि महाडामरुको गणः ।
दृषद्रूपो[4]ऽभवत्तत्र रत्नपर्वतमूर्धनि[5] ॥

हे देवेशि ! तब से लेकर महाडमरुक गण वहां रत्न पर्वत के शिखर पर शिलारूप हो गया ।

यः कश्चिन्मानवो लोके गणं डामरुकं श्रयेत् ।
स याति ब्रह्मणो लोक[6]मिति सत्यं वदामि ते ॥

संसार में जो कोई मनुष्य डमरुक गण का आश्रय ले, वह ब्रह्मलोक में जाता है । यह मैं तुम्हें सत्य कहता हूं ।

यः कश्चिदपि चेशानि पुण्यं गर्भगृहं श्रयेत् ।
गर्भात्स मुच्यते जन्तुरिति सत्येन ते शपे ॥

ह ईशानि ! जो कोई भी पुण्यप्रद गर्भगृह का आश्रय ले, वह प्राणी गर्भ से मुक्त हो जाता है, यह मैं तुझे सत्य की सौगन्ध देता हूँ ।

श्रीदेव्युवाच—श्रीदेवी बोलीं—

गर्भागाराच्च को देव किमर्थं तत्र स्थापितः ।
किं फलं निःसृतानां च नराणां च कलौ युगे ॥

हे देव ! गर्भागार से कौन, किस लिए वहां स्थापित है । निकले हुए मनुष्यों का कलियुग में क्या फल है ?

भैरव उवाच—भैरव बोले—

शृणु वक्ष्ये महादेवि गर्भागारमनुत्तमम् ।
यच्छ्रुत्वा मुच्यते जन्तुर्महापातकसञ्चयात् ॥

---

१ यस्मानि० २ कृतस्तु या ३ गणाधनं ४ दृषद्रूपोभव० ५ मूर्वनि ६ लोक्य ।

हे देवि ! अत्युत्तम गर्भागार के विषय में सुनिए, मैं कहता हूँ जिसे सुनकर प्राणी महापापों से मुक्त हो जाता है ।

पुरा नन्दिनमासाद्य देवा विवदिनो भृशम् ।
ते निषिद्धास्तेन पुनर्युयुधुस्ते परस्परम् ।।

पूर्वकाल में नन्दी को पाकर देवता अत्यधिक झगड़ने लगे । उससे रोके जाने पर भी वे आपस में फिर युद्ध करने लगे ।

विनासुरैस्ततो नन्दी प्रणिपत्य पुरो[1] हरम् ।
दण्डं त्यक्त्वा च विज्ञप्तिं चक्रे च [2]सुरपूजिते ।।

हे सुरपूजिते ! इसके बाद असुरों के बिना नन्दी ने अपने आगे खड़े महादेव जी को नमस्कार कर और दण्ड को छोड़ कर प्रार्थना की ।

भगवन्करुणा[3]म्भोधे लोकनाथ जगत्पते ।
उद्विजामि भृशं त्रस्तो देवेभ्य इति चेश्वरम् ।
पुनर्विज्ञापयामास हरं प्रणतवत्सलम् ।।

करुणा के सागर ! हे भगवन् ! लोकनाथ ! जगत्पते ! मैं देवताओं से बहुत त्रस्त हुआ उद्विग्न हो रहा हूँ । इस प्रकार प्रणतवत्सल-ईश्वर-महादेव से फिर प्रार्थना की ।

श्रुत्वा नन्दिवचो देवि हरः प्रोवाच तं मुदा ।
गृहाण दण्डं भो नन्दिन्[4] किं कुर्वन्ति च ते सुराः ।।

हे देवि ! नन्दी के वचन सुनकर महादेव ने प्रसन्नता से उसे कहा कि हे नन्दिन् ! दण्ड ग्रहण कीजिए और वे देवता क्या करते हैं ।

गर्भद्वारमिदं सम्यक्[5]स्थापयाशु समन्ततः ।
यतो निस्सरणे[6] शक्तिं न लभन्ते सुरासुराः ।।

इसे गर्भद्वार को चारों ओर अच्छी तरह स्थापित करो, जिससे सुर और असुर निकलने में शक्ति को न पा सकें ।

इति तस्य वचः श्रुत्वा महेशस्य महागणः ।
महाप्रस्थं समुत्थाप्य[7] गर्भागारमकारयत् ।।

इस प्रकार महेश के वचन सुनकर महागण ने महाप्रस्थ को उठाकर गर्भागार बनाया ।

---

१ परो २ स्वरपूजिते ३ करुणांभोधे ४ नन्दिः ५ समिक्तस्थापयाशु० ६ निस्मरणे ७ समुथाप्य ।

गर्भद्वारान्नि[1]स्सरति य: कश्चिन्मानव: प्रिये ।
स याति शिवमालोकं[2] न पुन:[3]स्तन्यपो भवेत् ।।

हे प्रिये गर्भद्वार से जो कोई मनुष्य निकलता है, वह शिवलोक को पाता है, फिर स्तनों का दूध नहीं पीता ।

य: कश्चिदपि चेशानि[4] भ्रूणहा गुरुतल्पग: ।
मातृहा पितृहा चापि सुरापो भ्रातृहापि च ।
स याति परमं दिव्यं पदं सादाशिवं प्रिये ।।

हे ईशानि ! जो कोई भी भ्रूणहत्यारा, गुरु की शय्या का गमन करने वाला, माता का हत्यारा, पिता का हत्यारा, मद्यपान करने वाला और भाई का हत्यारा हो, हे प्रिये ! वह भी परम दिव्य पद सदाशिव को पाता है ।

महापापवनं छेत्तुं प्रसभमिच्छसि प्रिये ।
तदाऽऽश्रयस्व देवेशं गर्भागारविनिस्सृता ।।

हे प्रिये ! यदि तुम महापापों के वन को बलपूर्वक काटना चाहती हो, तब गर्भागार से निकली हुई तुम देवेश का आश्रय लो ।

स्नात्वामरावतीं नाम्नीं[5] नदीं परमपावनीम् ।
भस्माङ्गसितदेहा च बहुवस्त्रविवर्जिता ।।
प्रलपंच्छिवपन्थानं देहि मे परमेश्वर ।
तदा[6]रोहेद्‌गिरिवरं त्यक्त्वा क्रोधादिविक्रियाम् ।।

परमपवित्र अमरावती नाम की नदी में स्नान कर भस्म युक्त अङ्गों से श्वेत देह वाली और बहुत वस्त्रों से रहित, हे परमेश्वर ! मुझे शिवलोक का मार्ग दो इस प्रकार प्रलाप करता हुआ एवं क्रोध आदि विकार का परित्याग कर गिरि श्रेष्ठ पर चढ़े ।

तदा प्रणम्य देवेशं गुहस्थं ह्यमरेश्वरम् ।
गोलो वा कुण्डजो वापि य: कश्चिदत्र नि:सृत: ।
स भवेत्तु[7] गणो देवि चेति सत्येन ते शपे ।।

तब गुहा में स्थित अमरेश्वर देवेश को प्रणाम कर गोल वा कुण्डज, जो कोई भी निकला, हे देवि ! वह गण हो, यह मैं तुझे सत्य की शपथ देता हूँ ।

इति श्रीडामरकगर्भागारनि:सरणो नाम पटल: ।।

---

१ द्वारान्नि सरति २ मालोक्यं ३ पुन स्तन्यपो ४ शेशानि ५ नाम्ना ६ तदारोहिद्‌गिरि० ७ भवेतु ।

श्रीदेव्युवाच—श्री देवी बोलीं—

स्मारं स्मारं महेशानं पुण्यं माहात्म्यमुत्तमम् ।
तीर्थानां च विशेषेण निवृत्तास्मि भवार्णवात् ।।

हे महेशान ! तीर्थों के उत्तम-पुण्यकर माहात्म्य को स्मरण कर-स्मरण कर विशेषकर मैं संसार रूपी समुद्र से निवृत्त हो गया हूं ।

इदानीं श्रोतुमिच्छामि ह्यमरेशं महेश्वरम् ।
कथं स ह्यमरेशाख्यो गुहास्थो[1]ऽप्यभवत्किल ।।

अब मैं अमरेश महेश्वर के विषय में सुनना चाहता हूँ, वह अमरेश गुहा में कैसे स्थित हुआ ।

नदी च परमा दिव्या कथं सा ह्यमरावती ।
तत्सङ्गमस्य माहात्म्यं वद मे प्रियकाम्यया ।।

वह अमरावती परम दिव्य नदी कैसे हुई, उसके सङ्गम का माहात्म्य प्रिय कामना से मुझे कहिए ।

साधु साधु महाभागे प्रश्नमेत[2]त्सुदुर्लभम् ।
कृतं त्वया पूजितया जनानां[3] हितकाम्यया ।।

हे महाभाग ! ठीक है, ठीक है, यह सुदुर्लभ प्रश्न तूने······मनुष्यों की हित कामना से किया है ।

शृणु वक्ष्ये महातीर्थं ह्यमरेशस्य सुन्दरि[4] ।
यच्छ्रुत्वापि प्रमुच्येत महापातककोटिभिः ।।

हे सुन्दरि ! अमरेश के महातीर्थं के विषय में कहता हूं, सुनिए जिसे सुनकर भी प्राणी करोड़ों महापापों से मुक्त हो जाता है ।

सदा सदासीत्ततो नैव नासीत्किञ्चन सुन्दरि ।
नियतिरभवत्तस्मात्परमाच्च[5] परात्परः ।।

हे सुन्दरि ! सदा सत् था, इसके बाद कुछ नहीं था । इसलिए परम और पर से परे नियति हुई ।

नियतेरहमुत्पन्न इति शुश्रुम सुन्दरि ।

हे सुन्दरि ! नियति से मैं पैदा हुआ, ऐसा सुनते हैं ।

---

१ गुहास्थोप्य० २ मेतत् सुदु० ३ जंथनां ४ स्वन्दरि ५ त्पररमाच्च

अहो मे सर्वभगवत्सर्वे देवा: सवासवा: ।
ऋषय:[1] पितरश्चापि गन्धर्वोरगराक्षसा: ।।
यक्षभूतगणाश्चापि कूष्माण्डा भैरवादय: ।
मनुष्या जम्बुका: क्रूरा दैत्यदानवपुङ्गवा: ।।
एते चान्ये च बहव उत्पन्ना[2] नियते: स्वयम् ।
चतुर्दशविधो भूतसर्ग: प्रादुरभूत्किल ।।

इन्द्र सहित सभी देवता, ऋषि, पितर, गन्धर्व, उरग, राक्षस, यक्ष, भूत, और गण, कूष्माण्ड, भैरव आदि मनुष्य, जम्बुक, क्रूर दैत्य-दानवपुंगव, ये और अन्य बहुत नियति से स्वयं पैदा हुए । चौदह प्रकार की भूतसृष्टि पैदा हुई ।

मृत्युस्तान्न[3]ग्रसेत्सर्वान्देवान्नपि सवासवान् ।
देवास्ते मृत्युना ग्रस्ता व्याकुला ह्यभवन्प्रिये ।।
समेत्य शरणं जग्मु:[4] शरण्यं परमेश्वरम् ।
तुष्टुवु: परमप्रीत्या शङ्करं तमनाशनम् ।।

मृत्यु ने इन्द्र सहित उन सभी देवताओं को भी ग्रस लिया । हे प्रिये ! मृत्यु से ग्रसे हुए वे देवता व्याकुल हुए और इकट्ठे होकर शरणागतवत्सल परमेश्वर की शरण में गए तथा अज्ञानान्धकार का नाश करने वाले शङ्कर की परम प्रीति पूर्वक स्तुति करने लगे ।

श्रीदेवा ऊचु:[5] — श्री देवता बोले—

ॐ नम: शिवाय देवाय विष्णवे प्रभविष्णवे ।
नमश्चिच्चन्द्रिकोद्बोधप्रकाशानन्दरूपिणे ।।
परमार्थदशास्थाय स्थाणवे विश्वभानवे ।
नमश्चित्याय चिन्त्याय चितिज्ञाय चिदर्थिने[6] ।।

शिव देव, विष्णु प्रभविष्णु को नमस्कार हो । चित्-चन्द्रिकोद्बोध-प्रकाशानन्द स्वरूप, तुझे नमस्कार है । परमार्थदशास्थ, स्थाणु, विश्वभानु, चित्य, चिन्त्य, चितिज्ञ, और चिदर्थी तुझे नमस्कार है ।

विश्वद्रव्य[7]शिताशेषस्वान्तमोहाय शम्भवे ।
विमर्शिने विधिज्ञाय मुक्तिरूपाय ते नम: ।।

विश्वद्रव्यशिताशेषस्वान्त मोहस्वरूप शम्भु, विमर्शी, विधिज्ञ, मुक्तिरूप. तुझे नमस्कार है ।

---

१ ऋषयपितरश्चापि २ बहवतत्पन्नार्नियते: ३ स्तानग्रसत्सर्वदिवानपि ४ जरदु: ५ श्रीदेव उवाच ६ चिदर्थिने ७ विश्वंद्रव्य०

विशेषज्ञाय देवाय जयविश्वोपकारिणे ।
विश्वरूपाय[1] देवाय विश्ववासाय ते नमः ।।
निषेधज्ञाय देवाय तत्स्वरूपाय ते[2] नमः ।
नमस्ते सर्वमृग्याय सूक्ष्ममार्गार्थदर्शिने ।

विश्व, विशेषज्ञ, जय विश्व का उपकार करने वाले, विश्वरूप, देव, विश्ववास, तुझे नमस्कार है । निषेधज्ञ, देव, तत्त्वस्वरूप, तुझे नमस्कार है । सर्वमृग्य, सूक्ष्ममार्गार्थदर्शी, तुझे नमस्कार है ।

नमो नियतिरूपाय तत्त्वरूपाय ते नमः ।
महत्तत्वाय देवाय सूक्ष्मतत्त्वाय ते नमः ।।
नमोऽ[3]मृताय देवाय नमोऽ[4]मृतस्वरूपिणे ।
मृत्युञ्जयाय देवाय भूयो भूयो नमो नमः ।।

नियतिरूप, तत्त्वरूप, तुझे नमस्कार है । महत्-तत्त्व, देव, सूक्ष्मतत्त्व, तुझे नमस्कार है । अमृतदेव को नमस्कार है, अमृत स्वरूप को नमस्कार है, मृत्युंजय देव को बार बार नमस्कार है ।

इति श्रुत्वा तु देवानां स्तुतिं परमपावनीम् ।
हरो [5]गम्भीरया वाचा देवांस्तान्प्रत्युवाच ह ।।

इस प्रकार देवताओं की परमपवित्र स्तुति को सुनकर महादेव ने गम्भीर वाणी से उन देवताओं को कहा ।

किमर्थमागता यूय[6]माकुलाः सुरसत्तमाः ।
कथयध्वं यतः सर्वं मदीयं मयि वर्तते ।।

हे देव श्रेष्ठो ! तुम व्याकुल हुए किसलिए आए हो, सब कुछ कहिए, क्योंकि मेरा मुझ में है ।

इति तस्य महेशस्य श्रुत्वा देवाः सवासवाः ।
[7]प्रत्यूचुस्तं हरं मृत्युर्ग्रसतीति बलाद्धि नः ।।

इस प्रकार उस महादेव के वचन सुनकर इन्द्र सहित देवता उसे कहने लगे कि मृत्यु हमें जबरदस्ती ग्रस रही है ।

यतः स मृत्युर्नश्ये[8]न्नो न सेवेच्च बलेन हि ।
तत्कुरुष्व महादेव भक्तानामार्तिनाशन ।।

---

१ रूपाये २ तेज नमः ३ नमोमृताय ४ नमोमृत० ५ गम्भीर वा वाचा ६ यूयंमाकुला ७ प्रत्युचुस्तं ८ नंशेत्तो न सेवेच्च ।

जिससे वह मृत्यु नष्ट हो जाए और बलपूर्वक हमें न सेवे। भक्तों की पीड़ा को नष्ट करने वाले हे महादेव! वैसा कीजिए।

श्रीभैरव उवाच—श्री भैरव बोले—

श्रुत्वा देववचः सौम्यं महेशः प्रत्युवाच तान्।
मृत्यू[1]पायं करिष्यामि सहध्वं क्षणमुत्तमाः॥

देवताओं के सौम्य वचन को सुनकर महादेव ने उन्हें कहा कि मृत्यु का उपाय करूंगा, हे उत्तम देवताओं! क्षण भर सहन करो।

गृहीत्वा शिरसस्तत्र[2] हरश्चन्द्रकलां स्वयम्।
संपीड्य[3] देवान्न[4]वदन्मृत्युभेषजपीडनात्[5]॥
या निस्सृता चैव तथा धारा पारमिका प्रिये।
सैव भूता नदी पुण्या नाम्ना वै ह्यमरावती॥

वहां महादेव ने स्वयं शिर से चन्द्रकला को ग्रहण कर और उसे संपीड़ित कर देवताओं को कहा कि मृत्यु की औषध के पीड़न करने से हे प्रिये! जो पारमिका धारा निकली, वही अमरावती नाम से पुण्य नदी हुई।

ये बिन्दवश्च्युता[6] देवि शरीरेऽमृत[7]बिन्दवः।
ते भस्मरूपतां प्राप्य च्युताश्चेशानतां[8] गताः॥

हे देवि! जो बिन्दु गिरे, वे शरीर में अमृत बिन्दु बन कर भस्मरूप को पाकर गिरे और महादेव के रूप को प्राप्त हो गए।

प्रेम्णा तेषां महादेवि शिवोऽपि[9] द्रवतामगात्।
ते दृष्ट्वा तु शिवं तत्र द्रवीभूतं महेश्वरि॥

हे महादेवि! उनके प्रेम से शिव भी पिघल गए। हे महेश्वरि! वे वहां द्रवीभूत हुए शिव को देखकर—

तुष्टुवुर्वाग्भि[10]····प्रणेमुश्च मुहुर्मुहुः।

······वाणियों से स्तुति करने लगे और बार-बार प्रणाम करने लगे।

[11]स पुनर्दर्शयामास देवानां हितकाम्यया।
रसो[12]ऽपीशानतां प्राप्य लिङ्गरूपोऽ[13]भवत्किल॥

देवताओं के हित की कामना से उसने फिर दर्शन दिए। रस भी महादेव के रूप को पाकर लिङ्गरूप हो गया।

---

१ मृत्युपायं २ शिरसा तत्र ३ संपीत्य ४ देवानवदनन्० ५ पीडनाद्या ६ श्चुता ७ शरीरेमृत० ८ श्चाशानतां ९ शिवोपि १० रक्त्यामिः ११ संपुनर्दर्शयामासुदेवा० १२ रसोप्यास्या० १३ लिङ्गरूपोभव०।

लिङ्गरूपं हरं वीक्ष्य द्रवीभूतं महेश्वरि ।
पुनः पुनः प्रणेमुस्ते भवं कारुणिकं परम् ।।

हे महेश्वरि ! द्रवीभूत लिङ्गरूप महादेव को देखकर वे बार-बार परम दयालु महादेव को नमस्कार करने लगे ।

देवान्नुतिपरान्दृष्ट्वा प्रोवाच सुरसत्तमः ।
हरः परमया वाचा शृणुध्वं देवसत्तमाः ।।

स्तुति करने में लगे देवताओं को देखकर देवश्रेष्ठ महादेव परम वाणी से बोले कि हे देवश्रेष्ठो ! सुनो ।

यस्माद् भवद्भिर्दृष्टं मे प्रेमलिङ्गं दरीगृहे ।
तस्मान्न मृत्युर्युष्मान्वै [1]न्याधत्ते मदनु ग्रहात् ।।

जिससे आप लोगों ने दरीगृह में मेरा प्रेमलिङ्ग देखा, इसी से तुम्हें मेरी कृपा से मृत्यु ग्रहण नहीं करेगी ।

इहैव ह्यमरा भूत्वा गच्छध्वं शिवयुज्यताम् ।

यहीं पर अमर होकर शिव सायुज्य को प्राप्त करो ।

इतः प्रभृति मे लिङ्ग[2]ममरेशाख्यमुत्तमम् ।
पुण्यं परमकं देवास्त्रिलोकख्यातिमेष्यति ।।

हे देवताओ ! जहां से लेकर पुण्यप्रद, परम, उत्तम अमरेश नामक लिङ्ग तीनों लोकों में प्रसिद्धि पाएगा ।

नत्वा च दण्डवत्तत्र लिङ्गं तदमरेश्वरम् ।
[3]देवाः प्रदक्षिणीकृत्य स्वं स्वमालयमाययुः ।।

वहां उस अमरेश्वर लिङ्ग को दण्डवत् नमस्कार कर और प्रदक्षिणा कर अपने अपने घर को चले गए ।

श्री भगवानुवाच[4]— श्री भगवान् बोले–

इति दत्वा वरं देवान्न[5]मरेशो महेश्वरि ।
तदाप्रभृति लीनोऽ[6]भूद्गिरिदर्यन्तरे हरः ।।

हे महेश्वरि ! इस प्रकार अमरेश महादेव देवताओं को वर देकर तब से गिरिदरि के बीच में लीन हो गए ।

अमां सोमकलां गृह्य देवानां हितकाम्यया ।
मृत्युनाशं चकाराशु तस्माद्वै ह्यमरेश्वरः[7] ।।

अमावस्या की चन्द्रकला को लेकर देवताओं के हित की कामना से शीघ्र ही मृत्यु का नाश किया, इसी से इनका नाम अमरेश्वर प्रसिद्ध हुआ ।

---

१ न्वैन्यांधत्ते २ लिङ्गममरेशा० ३ देवा ४ भगवानुवाच ५ देवानमरेशो ६ लीनोभू० ७ ह्यमहेश्वरः ।

मृत्युहीना यतो देवि चेश्वरेण कृताः सुराः ।
ततः प्रोक्तं पुराविद्भिरमरेश्वरसंज्ञकम् ॥

हे देवि ! क्योंकि ईश्वर ने देवताओं को मृत्युहीन कर दिया इसके बाद पुरातत्त्ववेत्ताओं ने इसे अमरेश्वर नाम से कहा ।

भवरोगं च गृह्णाति भक्तानां चेश्वरः स्वयम् ।
यद्दर्शना[1]ततः प्रोक्तं ह्यमरेशाख्यमुत्तमम् ॥

ईश्वर स्वयं भक्तों के भवरोग को ग्रहण करता है, जिसके दर्शन मात्र से रोग नष्ट हो जाते हैं । इसी से यह उत्तम अमरेश नाम से पुकारा गया ।

[2]अमां प्रभृति पूर्णान्तं कलां गृह्णाति चेश्वरः ।
ततः प्रोक्तश्च[3] तत्त्व[4]ज्ञैर्भगवान्नमरेश्वरः ॥

अमावस्या से लेकर पूर्णिमा तक······कला को ईश्वर ग्रहण करता है, इसीलिए तत्त्वज्ञों ने इसे भगवान् अमरेश्वर कहा है ।

[5]······ जरामरणनाशनम् ।
मोक्षैश्वर्यप्रदं यस्मात्प्रोक्तममरसंज्ञकम्[6] ॥

······बुढ़ापे और मृत्यु को नाश करने वाला तथा मोक्ष और ऐश्वर्य को प्रदान करने वाला है, जिससे इसे अमर नाम से कहा गया ।

इदं रसमयं लिङ्गं महाप्रेमसमुद्भवम् ।
सामरस्यप्रदं देवि तव स्नेहात्प्रकाशितम् ॥

हे देवि ! महाप्रेम से पैदा हुआ सामरस्य प्रदान करने वाला यह रसमय लिङ्ग तेरे स्नेह से प्रकाशित हुआ है ।

यात्रां कृत्वा तु देवेशि स्नात्वामृतवतीजले ।
भस्मनालिप्य चाङ्गानि मोक्ष[7] माप्नोति मानवः ॥

हे देवेशि ! यात्रा कर अमृतवती के जल में स्नान कर और भस्म का अङ्गों में लेप कर मनुष्य मोक्ष पाता है ।

कृत्वा तु ताण्डवं देवि गुहायां च महर्षितः ।
मरु ? एव कथितो नरः परमपावनः ॥

हे देवि ! ताण्डव करके······

[8]यस्सवासा गुहास्थं च [9]प्रपश्येल्लिङ्गमुत्तमम् ।
स याति नरकं घोरं यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥

---

१ यद्दर्शनातुत८ः २ अमां प्रभृति ३ प्रोक्तं च ४ तत्रज्ञै ५ यद्धिन्सुरसना-च्चैव ६ सज्ञकम् ७ मोक्ष्य भगवानमरेश्वरः ८ यस्सवासा ९ पपश्ये ।

जो वस्त्र धारण किए गुहा में स्थित उत्तम लिङ्ग को देखे, वह घोर नरक में तब तक रहता है जब तक चौदह इन्द्र हैं।

य: पश्येद्भस्महीनाङ्गो रसलिङ्गं सनातनम्।
स कुष्ठी च भवेद्देवि जन्तुर्जन्मनि जन्मनि ।।

जो भस्म से हीन अङ्गों वाला सनातन रसलिङ्ग को देखे, हे देवि ! वह प्राणी जन्म-जन्म में कुष्ठी होता है।

यात्रामकृत्वा[1] यो देवि पश्येद्वै ह्यमरेश्वरम्।
स याति दारुणान्घोरा[2]न्नरकान्नेकविंशतिम् ।।

हे देवि ! जो यात्रा न कर अमरेश्वर का दर्शन करे वह इक्कीस वष तक दारुण और घोर नरक को जाता है।

योऽ[3]कृत्वा ताण्डवं देवि पश्येद्गिरिगुहान्तरे।
रसलिङ्गं तीर्थद्रोही भवतीव न संशय: ।।

हे देवि ! जो ताण्डव को न कर गिरिगुहा के बीच रसलिङ्ग का दर्शन करे, वह तीर्थद्रोही की तरह होता है, इसमें संशय नहीं है।

यो[4]ऽपूज्य प्रतियात्येव नरो[5]ऽमरगुहान्तरम्।
चतुराशीतिलक्षाणि[6] नरकानि प्रयाति वै ।।

बिना पूजा किए जो मनुष्य अमरगुहा के बीच जाता है वह ८४ लाख नरकों को पाता है।

योऽ[7]दत्वा पुनरायाति ह्यमरेशगुहान्तरात्।
स याति नरकं घोरं दारुणं कालसूत्रकम् ।।

जो बिना दान किए अमरेशगुहा के बीच से फिर आ जाता है, वह कालसूत्र नामक घोर और दारुण नरक को पाता है।

भ्रूणहा गुरुतल्पी च सुरापी [8] स्वर्णहारक:।
एतद्दृष्ट्वा[9] महेशानममरेश्वरसंज्ञकम्[10]।
मुच्यन्ते तत्क्षणात्देवि महापातकिनोऽपि च[11] ।।

भ्रूणहत्यारा, गुरु शय्या गमन करने वाला, सुरापान करने वाला और सोना चुराने वाला प्राणी अमरेश्वर नामक इस महेशान के दर्शन कर महापापी भी तत्क्षण मुक्त हो जाते हैं।

---

१ यात्रा सकृत्वा २ न्घोरानूंनरकानेकविंशतिम् ३ योकृत्वा ४ योपूज्य ५ नरोमृत ६ लक्ष्याणि ७ योदत्वा ८ सुर्णहारक: ९ एतदृष्ट्वा १० सज्ञकं ११ महापातकिनोपि।

गोमांसभक्षो मधुपः सुरेज्यत्यागी प्रिये वत्सहा बालहापि ।
[1]गर्भघाती शवकृत्पातकृच्च सद्यो मुच्येद्वीक्ष्य मां लिङ्गरूपम् ।
महाक्रोधी लोभमोहाभिभूतः स्वर्णस्तेयो परजायाभिगामी ।
छिद्रप्रेक्षी साधुनिन्दारतश्च दम्भाचारो[2] ऽनृतवागल्पबुद्धिः ।।

हे प्रिये ! गोमांसभक्षी, मधुपान करने वाला, सुरेज्यत्यागी, वत्सहा, बालहा, गर्भघाती, शवकृत्, पातकृत्, महाक्रोधी, लोभमोहाभिभूत, स्वर्णस्तेयी, परजायाभिगामी, छिद्रप्रेक्षी, साधुनिन्दारत, दम्भाचारी, मिथ्यावादी, अल्पबुद्धि, लिङ्गरूप मेरा दर्शन कर झट मुक्त हो जाता है ।

दृष्ट्वा देवममरेशाख्यरूपं द्रवीभूतं पर्वत[3] ··
मुच्येत्तस्मात्पापसंघाच्च देवि सत्यं सत्यं नानृतं ते वदामि ।
चान्द्रायण[4]महाकृच्छ्रैः शतैः सान्तपनैश्च[5] यत् ।
फलं प्राप्नोति योद्देवि तत्प्राप्नोत्यस्य दर्शनात् ।।

हे देवि ! द्रवीभूत······अमरेशाख्य रूप देव के दर्शन कर उस पापसंघ से मुक्त हो जाए, यह सत्य है, मैं तुझे झूठ नहीं कहता हूं । सैंकड़ों चान्द्रायण महाकृच्छ्र और सान्तपनों से हे देवि ! जो फल प्राप्त होता है, वह इसके दर्शन से पाया जाता है ।

कुरुक्षेत्रे प्रयागे च नैमिषे कुरुजांगले ।
गवां कोटिसहस्रस्य[6]सम्प्रदत्तस्य यत्फलम् ।
तत्फलं समवाप्नोति ह्यमरेशस्य दर्शनात् ।।

कुरुक्षेत्र में, प्रयाग में, नैमिष में और कुरुजांगल में करोड़ों हजार गायों के देने से जो फल मिलता है, वह फल अमरेश के दर्शन से पाया जाता है ।

सुसूक्ष्मैः श्वेत[7]वासोभिर्मृगकुङ्कुमचन्दनैः ।
कर्पूरैः स्वर्णपुष्पैश्च रौप्यैर्वापि महेश्वरि ।।
पूजयित्वामरेशाख्यं लिङ्गं दिव्यं सुधामयम् ।
स एव रुद्रो भवति न पुनः[8] स्तन्यपो भवेत् ।।

सूक्ष्म और श्वेत वस्त्रों से, मृगकुङ्कुम और चन्दनों से, कर्पूर और स्वर्ण पुष्पों से अथवा चांदी से हे महेश्वरि ! सुधामय दिव्य अमरेश नामक लिङ्ग को पूजकर वह रुद्र हो जाता है, फिर वह स्तनों का दूध पीने वाला नहीं होता ।

---

१ गर्भाघाती २ दम्भाचारोनृत ३ पर्वतरेच ४ चान्द्रायन ५ सान्तपणैश्च ६ तम्परादतस्य ७ शेतः ८ पुन स्तन्यपो ।

नारी वा पुरुषो वापि पूजयेल्लिङ्गमुत्तमम् ।
स याति शिवसायुज्यं यत्र गत्वा न शोचति ।।

नारी वा पुरुष जो इस उत्तम लिङ्ग को पूजता है, वह शिवसायुज्य को पाता है, जहां जाकर शोक नहीं होता है ।

अमरेशं महालिङ्गं दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा कलौ नरः ।
सद्यो ह्यमरतां याति सत्यं सत्यं वरानने ।।

अमरेश महालिङ्ग का दर्शन कर और कला का स्पर्श कर हे बरानने ! झट अमरता को पाता है, यह सत्य है, सत्य है ।

पीत्वा ह्यमरधारां तु पतितां तु गुहान्तरे ।
[1]सोऽपि याति शिवस्थानं यत्र नास्ति कृताकृते ।।

गुहा के बीच गिरी हुई अमरधारा को पीकर वह भी शिवस्थान को जाता है, जहां कृत-अकृत कुछ नहीं है ।

द्रष्टुं ह्यमरनाथस्य पदं यश्च व्रजेद्गृहात् ।
पदे पदेऽ[2]श्वमेधानां यज्ञानां लभते फलम् ।।

जो अमरनाथ के पद का दर्शन करने के लिए घर से जाता है वह कदम-कदम पर अश्वमेध यज्ञों के फल को पाता है ।

कपोतांस्तु गणांस्तत्र दृष्ट्वा[3]न्यान्नण्डजान्नरः ।
स एव रुद्रो भवति जयेति प्रवदन्मुहुः ।।

वहां मनुष्य कबूतरों, गणों और अण्डजों (पक्षियों) को देखकर 'जय' यह बार-बार कहते हुए रुद्र रूप हो जाता है ।

श्रीदेव्युवाच—श्री देवी बोलीं—

कपोताः के गणास्तत्र कथं कुत्र स्थिताः प्रभो ।
वद मे कृपया शम्भो लोकानां हितकाम्यया ।।

हे प्रभो ! कबूतर कौन है और वे गण वहां कहां और कैसे स्थित हैं ? हे शम्भो ! कृपा करके लोगों की हित कामना से मुझे कहिए ।

श्रीभैरव उवाच - श्रीभैरव बोले—

शृणु सुश्रोणि वक्ष्यामि कपोता [4]येऽभवन्किल ।
[5]यच्छ्रुत्वा मुच्यते जन्तुर्जीवहत्यादिपापकात् ।।

हे सुश्रोणि ! सुनिए, जो कपोत हुए हैं, उनके विषय में कहता हूं, जिसे सुनकर प्राणी जीवहत्या आदि पाप से मुक्त हो जाता है ।

---

१ सोपि २ पदेश्वमेधानां ३ दृष्टान्यानण्डजा ४ येभवत्किल ५ यांच्छ्रुत्वा

यदाप्रभृति देवेशि महाडामरुको गणः ।
तदाप्रभृति तत्रैव स्थापितास्ते गणा मया ॥

हे देवेशि ! जब से लेकर महाडामरुक गण है, तब से लेकर वहीं मैंने वे गण स्थापित किये हैं ।

ताण्डवावेदनार्थं च सन्ध्याकालस्य सुन्दरि ।
एकदा नृत्यमानस्य सन्ध्यायां चैव धूर्जटेः ।
स्पर्धया कुरु कुर्वित्यूचुस्तत[1]स्तेऽमरवन्दिते ॥

हे सुन्दरि ! सन्ध्याकाल के ताण्डव का आवेदन करने के लिए एक बार सन्ध्या के समय नृत्य करते हुए महादेव को हे अमरवन्दिते ! स्पर्धा से 'करो-करो' यह उन्होंने कहा ।

परस्परं स्पर्धयात्र शब्दं कुर्विति चक्रिरे ।
ततः [2]क्रुद्धो महेशानो गणान्न[3]शपदोजसा ॥

पारस्परिक स्पर्धा से जहां 'करो' यह शब्द किया, जिससे क्रुद्ध होकर महादेव ने ओजपूर्वक गणों को शाप दिया ।

यस्मात्कुरु कुरु शब्दं कुर्वाणाः[4] स्पर्धया मुहुः ।
तस्मात्कुरु कुरु शब्दं कुर्वाणाः स्थ चिरं गणाः ॥

जिससे स्पर्धा के साथ 'कुरु-कुरु' शब्द बार-बार किया गया, इसी से हे गणो ! तुम चिरकाल तक 'कुरु-कुरु' शब्द करते हुए रहो ।

कपोतरूपास्तीर्थेऽ[5]स्मिन्विघ्नसंघापहारिणः।

इस तीर्थ में विघ्नसमूह का नाश करने वाले कपोत के रूप में रहो ।

[6]इत्थं शप्तास्ततो देवि हरेण परमात्मना ।
कृत्वा कपोतरूपांस्ता[7]न्तीर्थे विघ्नापहारिणः ॥

हे देवि ! इसके बाद परमात्मा महादेव ने तीर्थ में उन्हें विघ्नों को दूर करने वाले कबूतरों के रूप में बदलकर इस प्रकार अभिशप्त कर दिया ।

यो[8]ऽदृष्ट्वा तु गुहान्तस्थान्कपोतान् गगनात्प्रिये ।
अवारुहेद्गिरेस्तस्मात्तीर्थद्रोही स्मृतो बुधैः ।

हे प्रिये ! जो गुहा के बीच स्थित कबूतरों को बिना देखे वहाँ से गिरि से उतरे उसे विद्वान् पुरुषों ने तीर्थद्रोही कहा है ।

---

१ कुर्वत्यूचुः ततस्तेमर २ क्रद्धो ३ गणानशप ४ कुर्वाणा ५ स्तोर्थेस्मि ६ इयं शप्तस्ततो ७ रूपास्ते ८ योदष्ट्वा

तस्मात्तत्र दर्शनीया: कपोता गणसत्तमा: ।
महापापहरा: प्रोक्ता: यात्रिभि: पारमार्थिकै:[1] ॥

इसलिए वहां गणश्रेष्ठ कबूतरों का दर्शन करना चाहिए । पारमार्थिक यात्रियों ने इन्हें महापापों को नष्ट करने वाला बताया है ।

स्नाता[2] दृष्टा श्रुता चापि स्पृष्टा देवि समन्तत: ।
अमरैश्वर्यतां याति तत: प्रोक्तामरावती ॥

हे देवि ! इसमें स्नान करने पर तथा इसका श्रवण करने से एवं दर्शन करने से और स्पर्श करने से भी चारों ओर से अमर ऐश्वर्य को पाता है, इसी से यह अमरावती कही गई ।

अमरावत्यां नर: स्नात्वा सद्यो मुच्येत संकटात् ।

अमरावती में मनुष्य स्नान कर झट संकट से मुक्त हो जाता है ।

कलिकल्मषघोरनाशनं रसलिङ्गं समुदीरितं प्रिये ।
पशुपाशविनाशकारकममरेश्वरनामकं परम् ॥

हे प्रिये ! कलियुग के घोर पापों का नाश करने वाला, पशुपाश को भी विनष्ट करने वाला यह परम अमरेश्वर नामक रसलिङ्ग कहा गया है ।

य: करोति महापूजां[3] स्वधालिङ्गस्य सुन्दरि ।
स याति शिवसायुज्यमिति[4] सत्यं वदामि ते ।

हे सुन्दरि ! जो स्वधालिङ्ग की महापूजा करता है, वह शिवसायुज्य को पाता है, यह मैं तुझे सच कहता हूँ ।

सिद्धिलिङ्गमिदं देवि बुद्धिलिङ्गमिदं प्रिये ।
शुद्धिलिङ्गमिदं प्रोक्तं वृद्धिलिङ्गमिदं परम् ॥

हे देवि ! यह सिद्धिलिङ्ग है, हे प्रिये ! यह बुद्धिलिङ्ग है, यह शुद्धि लिङ्ग और परम वृद्धि लिङ्ग कहा गया है ।

इदं पुंसवनं लिङ्गं महत्तेजो[5]ऽभिवर्धनम् ।
कन्याप्रदं पावनं च परमं योगदं कलौ ॥

यह पुंसवन लिङ्ग महातेज को बढ़ाने वाला, कन्याप्रद, पावन और कलियुग में परम योगद है ।

विना ध्यानं विना दानं विना योगं यदीच्छसि ।
तदाऽऽश्रयस्व देवेशि[6] लिङ्गममरसंज्ञकम् ॥

---

१ पारमाथिके: २ स्नातदष्टा ३ महापूज्यां ४ मित्थं ५ महस्तेजोभि० ६ दवेशि ।

हे देवेशि ! विना ध्यान, बिना दान और बिना योग यदि तुम चाहती हो, तो अमर नामक लिङ्ग का आश्रय लो।

शरीरं यौवनं द्रव्यं दारान्पुत्रान्गृहं तथा।
चञ्चलं सर्वतो ज्ञात्वा ह्यमरेशं समाश्रयेत् ॥

शरीर, यौवन, द्रव्य, स्त्री, पुत्र, घर, इन सबको सब तरह से चंचल जानकर अमरेश का आश्रय ले।

यावन्न ग्रसते मृत्युर्याव[1]न्नेन्द्रियविप्लवः।
यावद्देहे जराव्याधिः शीर्यते जग[2]दम्बिके ॥
तावदेवामरेशाख्यं लिङ्गं रसमयं प्रिये[3] ॥

जब तक मृत्यु नहीं ग्रसती है, जब तक इन्द्रियविप्लव नहीं होता, तब तक ही अमरेश नामक रसमय लिङ्ग है।

त्रैलोक्ये यानि तीर्थानि स्थानानि जगदम्बिके।
अमरेशाख्यलिङ्गस्य [4]समं लिङ्गं न कुत्रचित् ॥

हे जगदम्बिके ! तीनों लोकों में जो तीर्थ और स्थान हैं हे प्रिये ! अमरेश नामक लिङ्ग के समान रसमय लिङ्ग कहीं नहीं है।

अमरेशसमं लिङ्गं दिव्यभूम्यन्तरिक्षगम्।
महापापहरं देवि सद्यः कल्मषनाशनम् ॥

हे देवि ! अमरेश के समान दिव्य लिङ्ग महापाप को हरने वाला और झट पापों को नष्ट करने वाला भूमि या अन्तरिक्ष पर नहीं है।

भूयो भूयः[5] किमुक्तेन नरः पातकवान्कलौ।
अमरेशं[6] समाश्रित्य मुक्त एव न संशयः ॥

बार-बार कहने से क्या लाभ ? कलियुग में पापी मनुष्य अमरेश का ।श्रयअलेकरमुक्त ही है, इसमें संशय नहीं है।

इत्थं[7] माहात्म्यमीशानि पुण्यं ह्यमरनाथगम्[8]।
श्रुत्वा पठित्वा मुच्येत ब्रह्महत्यादिकोटिभिः ॥

हे ईशानि ! इस प्रकार पुण्यकर अमरनाथ जो के माहात्म्य को सुनक और पढ़कर मनुष्य करोड़ों ब्रह्महत्या आदि पापों से मुक्त हो जाता है।

अपेयपानान्मुच्येत तथाभक्ष्यस्य भक्षणात्।
बन्धात्प्रमुच्यते बद्धो रोगाद्रोगी प्रमुच्यते ॥

---

१ मृत्युयाव २ गदम्बिके ३-४ मू० पा० लि० में पाठाभाव ५ भूयो किमु० ६ अमरेश ७ इथं ८ ह्यमरणाथगं

नहीं पीने योग्य रस के पीने से तथा अभक्ष्य वस्तु के खाने से और बन्धन बद्ध प्राणी बन्धन से मुक्त हो जाता है एवं रोगी रोग से मुक्त हो जाता है।

इदं प्रजननं सौम्यं श्रोतृणां पुष्टिवर्धनम्।
पठित्वा पाठयित्वा वा मुच्यते सर्वकिल्विषात् ।।

यह सौम्य प्रजनन सुनने वालों की पुष्टि को बढ़ाने वाला है और पढ़कर वा पढ़ाकर सभी पापों से मुक्त हो जाता है।

आयुष्प्रदं कान्तिदं च कीर्तिदं जगदीश्वरि।
धनदं पुत्रदं चापि कन्याप्रदमनुत्तमम् ।।

हे जगदीश्वरि ! आयु देने वाला, कान्ति देने वाला, कीर्ति देने वाला, धन देने वाला, पुत्र देने वाला और अत्युत्तम कन्या देने वाला है।

इत्येष पटलो गुह्यो गोपनीयः कलौ प्रिये।
श्रुतोऽनुध्यातः पठितो महापातकहा कलौ ।।

हे प्रिये ! इस प्रकार यह पटल कलियुग में गुह्य और गोपनीय है। कलियुग में सुनने, चिन्तन करने और पढ़ने से महापापों को नष्ट करने वाला है।

इति श्रीअमरनाथमाहात्म्यं नाम पटलः ।।

श्रीदेव्युवाच—श्रीदेवी बोली—

श्रुत्वा श्रुत्वा महेशान स्मारं स्मारमनुत्तमम् ।
पुण्यममरनाथस्य रसलिङ्गस्य सम्भवम् ।।
कृतार्थास्मि कृतार्थास्मि कृतार्थास्मि न संशयः ।।

हे महेशान ! पुण्यप्रद, अत्युत्तम अमरनाथ रसलिङ्ग की उत्पत्ति के विषय में सुन-सुनकर, स्मरण कर-कर मैं कृतार्थ हूं, कृतार्थ हूँ; कृतार्थ हूं, इसमें संशय नहीं है ।

क्रीतास्मि जगदीशान तारितास्मि भवार्णवात् ।
जय शम्भो त्रिनेत्र[1] त्वं जय भक्तकृपाम्बुधे ।।

हे जगदीशान ! मैं आपकी क्रीत दासी हूँ, आपने मुझे संसार रूपी समुद्र से तार दिया है । हे त्रिनेत्र ! शम्भो ! आपकी जय हो, हे भक्तकृपाम्बुधे ! आपकी जय हो ।

जय शिव जयेशान त्रिपुरासुरसूदन ।
जय कपर्दिन्भगव[2]ञ्जय शूलधराच्युत ।।

हे शिव तुम्हारी जय हो । हे ईशान ! त्रिपुरासुरसूदन ! तुम्हारी जय हो । हे कपर्दिन्, हे भगवन् ! तुम्हारी जय हो ! हे शूलधर ! अच्युत ! तुम्हारी जय हो ।

पिनाकपाणे वरद जयांधकविमर्दक[3] ।
जय भक्तजनोद्दाम कामनावरदेश्वर ।।

हे पिनाकपाणे ! वरद ! जयान्धकविमर्दक । तुम्हारी जय हो । हे भक्तजनोद्दाम ! कामनावरदेश्वर ! तुम्हारी जय हो ।

जय भक्तिरसास्वादस्वादिताखिलविश्वप[4] ।
जय घोरातिघोरेश जय पापनिकृन्तन ।।

हे भक्तिरसास्वादिताखिलविश्वप ! तुम्हारी जय हो । हे घोराभिघोरेश ! तुम्हारी जय हो । हे पापनिकृन्तन ! तुम्हारी जय हो ।

हे भैरवभीमेश ! तुम्हारी जय हो । हे श्रीभैरव ! तुम्हारी जय हो ।

माहात्म्यं ह्यमरेशस्य श्रुतं त्वन्मुखपङ्कजात् ।
पुनर्वद महादेव पुण्यं ह्यमरनाथगम् ।।

---

१ त्रिनेत्रे २ भगव जय ३ जयांदाकविमर्दन ४ विद्यप

अमरेश का माहात्म्य आपके मुख कमल से मैंने सुना। हे महादेव! पुण्यकर अमरनाथ के विषय में फिर कहिए।

कस्मिन्काले स्मृता यात्रा महाफलप्रदा त्वया।

हे सुन्दरि! किस समय स्मरण की गई यह यात्रा महाफल देने वाली है—

दर्शनस्पर्शनाद्वापि पूजनादपि सुन्दर।
श्राद्धाच्च[1] ह्यमरावत्याः पञ्चनद्याश्च सङ्गमे॥
दानात्किं फलमाप्नोति नरः पापयुतः[2] कलौ।
विशेषतश्च किं प्रोक्तं दानमत्युत्तमं प्रिय॥
यत्कृत्वा मुच्यते जन्तुर्नरः पातककोटिभिः।
फलं ह्यमरनाथस्य[3] विस्तरेण वदस्व मे॥

हे सुन्दर! दर्शन से वा स्पर्श से एवं पूजन से भी और अमरावती तथा पंचनदी के संगम में श्राद्ध एवं दान करने से कलियुग में पापी मनुष्य क्या फल पाता है? हे प्रिय! विशेषकर अत्युत्तम दान क्या कहा गया है, जिसे करके मनुष्य करोड़ों पापों से मुक्त हो जाता है। अमरनाथ का फल विस्तार से मुझे कहिए।

साधु पृष्टं त्वया देवि यतो भक्तिस्तवानघे।
पुण्ये च ह्यमरेशाख्ये तीर्थे परमपावने॥

हे अनघे! हे देवि! तूने ठीक ही पूछा है, क्योंकि तुम्हारी भक्ति पुण्यप्रद अमरेश नामक परम पवित्र तीर्थ में है।

यतः स्वं दर्शयामास श्रावण्यां च हरः स्वयम्।
ततश्च कथिता[4] यात्रा[5] श्रावण्यां पुण्यदायिनी।
श्रावणे शुक्लपक्षे तु यात्रां कृत्वा विधानतः।
यः [6]प्रपश्येत्पूर्णिमायां स्वधालिङ्गं सनातनम्।
याति शैवं पदं सोऽपि[7] पशुपाशविवर्जितः॥

क्योंकि महादेव ने श्रावणी के दिन स्वयं अपने दर्शन दिए, इसीलिए श्रावणी में पुण्यदायिनी यात्रा कही गई है। श्रावण शुक्लपक्ष में विधिपूर्वक यात्रा करके जो पूर्णिमा के दिन सनातन स्वधालिङ्ग के दर्शन करे, वह भी पशुपाश से मुक्त होकर शैव पद को प्राप्त करता है।

---

१. श्राद्धश्च २ पापयुतो कलो ३ ह्यमरणाथस्य ४ किथिता ५ यात्र ६ प्रपश्येत्पर्णिमायां, ७ सोपि

य: श्रावण्यां महादेवि प्रपश्येद्गिरिमध्यगम् ।
लिङ्गं ह्यमरनाथाख्यं संगच्छेच्छिवसन्निधौ ।।

हे महादेवि ! जो श्रावणी के दिन गिरिमध्यग अमरनाथ नामक लिङ्ग के दर्शन करता है, वह शिव के पास जाता है।

स्पर्शनाद्देवदेवस्य लिङ्गस्य जगदीश्वरि ।
पापपञ्चकनिर्मुक्तो याति शैवं परं पदम् ।।

हे जगदीश्वरि ! देवाधिदेव महादेव जी के लिङ्ग के स्पर्श से पंचमहापातकों से मुक्त हुआ भक्त शैव परम पद को पाता है ।

वाराणस्या[1] दशगुणं प्रयागाच्च शतं स्मृतम् ।
सहस्रगुणितं देवि नैमिषात्कुरु··· [2] ।।
[3]···पुण्यफलदं प्रोक्तं मया तव प्रियेच्छया ।।

वाराणसी से दशगुणा और प्रयाग से सौ गुणा फल कहा गया है । हे देवि ! नैमिष ··सहस्रगुणा पुण्य फल देने वाला यह तीर्थ है । हे प्रिये ! मैंने तेरी इच्छा से कहा है ।

दिव्यं वर्षसहस्रं तु लिङ्गार्बुदप्रपूजनात् ।
सुवर्णपुष्पमुक्ताभिः क्षोमैर्वरपरंस्तु यत् ।।
तत्फलं समवाप्नोति रसलिङ्गस्य दर्शनात् ।।

सुवर्णपुष्प और मुक्ताओं से एवं रेशमी सुन्दर वस्त्रों द्वारा लिङ्गार्बुद का दिव्य सहस्रवर्ष पर्यन्त पूजन करने से जो फल होता है, वह फल रसलिङ्ग के दर्शन से मिल जाता है ।

एकाहेन महादेवि मृगकर्पूरचन्दनात् ।
कर्पूरचन्दना[4]च्चापि पूजयेदमरेश्वरम् ।।

हे महादेवि ! एक दिन भी मृगकर्पूर चन्दन से तथा कर्पूर चन्दन से भी जो अमरेश्वर की पूजा करे

आप्नोति च महापुण्यं ह्यमरेशस्य पूजनात् ।
मुक्ताभिः स्वर्णपुष्पैश्च रौप्यैर्वा [5]सुरसुन्दरि ।।
नरो मुक्तिमवाप्नोति सत्यं सत्यं वरानने ।।

वह महापुण्य पाता है । हे सुरसुन्दरि ! मोतियों से, स्वर्णपुष्पों से वा

१. वारणस्या २. त्कुरुजांगलात् ३. स पुण्य ४. चन्दनच्चापि ५. रौप्ये वा स्वर

चान्दी से, अमरेश की पूजा करने से मनुष्य मुक्ति पाता है, हे वरानने ! यह सत्य है, सत्य है।

धूपदीपैश्च नैवेद्यैः पुण्य[1]माप्नोति यागजम्[2] ॥

जो अन्य विविध द्रव्यों से, धूप दीप से और नैवेद्य से अमरेश्वर को पूजता, है वह यज्ञ से पैदा होने वाले पुण्य को पाता है।

आरार्तिकां[3] महेशस्य घृताभ्यक्तां[4] करोति य.।
तिलतैलाभिषिक्तां वा स याति परमं पदम् ॥

घृताभ्यक्त वा तिल तैलाभिषिक्त आरती महादेव की जो करता है, वह परम पद को पाता है।

घृतगुग्गुलसंयुक्तां यो धूपयति [5]सुन्दरि।
सर्वपापविनिर्मुक्तो याति माहेश्वर पदम् ॥

हे सुन्दरि ! जो घृतगुग्गुल संयुक्त आरती करता है, वह सभी पापों से मुक्त होकर माहेश्वर पद पाता है।

प्रदक्षिणार्धं यो देवि यो[6] ऽददध्यान्महेश्वरे।
पदे पदे च मेधानां सहस्रं प्राप्नुयान्नरः ॥

हे देवि ! जो महेश्वर में आधी प्रदक्षिणा भी करता है, वह मनुष्य कदम-कदम पर सहस्र अश्वमेध यज्ञ का फल पाता है।

यो दण्डवच्च प्रणमेद्भूमौ देव्य[7]मरेश्वरम्।
तं ब्रह्मा च हरिश्चापि प्रणमन्त[8] इति स्थितिः।

हे देवि ! जो दण्डवत् भूमि पर अमरेश्वर को प्रणाम करे, उसे ब्रह्मा और हरि भी प्रणाम करते हैं, ऐसी स्थिति है।

यद्यत्करोति तत्रस्थः पुण्य[9]ममरसन्निधौ।
तत्तदक्षय्यतां याति चेति सत्येन ते शपे ॥

वहां रहकर अमरेश्वर के पास जो जो पुण्य करता है, वह वह अक्षय्यता को पाता है, यह मैं तुझे सत्य की शपथ देता हूं।

बहुनात्र किमुक्तेन भूयो भूयो वरानने !
मानुष्यं दुर्लभं ज्ञात्वा देहं[10] ज्ञात्वा जराकुलम्।
सर्वं चञ्चलमाज्ञाय श्रयेद्वै ह्यमरेश्वरम् ॥

---

१. पुण्यं माप्नोति २. या गणं ३. आरात्रिकां ४. घृताभ्यक्तं ५. स्वन्दरि ६. योवदध्यात्महेश्वरे ७ देवि मरेश्वरं ८. प्रणयन्तु इति ९. पुण्यं अमर १०. देह

हे वरानने ! यहां बहुत बार-बार कहने से क्या लाभ ? मनुष्य जन्म को दुर्लभ जान कर और वृद्धावस्था से आकुल देह को जानकर तथा सब कुछ चंचल समझकर अमरेश्वर का आश्रय ले।

ततो [1]ऽवरुहेच्छैलात्तु [2]श्रयेत्संगममुत्तमम् ।
श्राद्धं कृत्वा विधानेन[3] तर्पयेत्पितृदेवताः ।।

इसके बाद पर्वत से उतरे, फिर पर्वत से उतरकर उत्तम संगम का आश्रय ले और वहां विधिपूर्वक श्राद्ध कर पितरों और देवताओं का तर्पण करे ।

मोदन्ति पितरस्तस्य नृत्यन्ति च समन्ततः ।
अथ कुर्वन्ति दायादाः सङ्गमे श्राद्धमुत्तमम् ।।

इसके बाद यदि दायाद संगम पर उत्तम श्राद्ध करते हैं तो उसके पिता प्रसन्न होते हैं और चारों ओर से नृत्य करते हैं ।

गयापिण्डप्रदानैश्च शतकल्पं [4]सुरेश्वरि ।
गच्छन्ति यां तृप्तिमितः पितरः सुरपूजिते ।।

हे सुरेश्वरि ! सुरपूजिते ! गया में पिण्ड देने से पितर सौ कल्प पर्यन्त जिस तृप्ति को पाते हैं ।

क्षीरखण्डादिभोज्यैश्च [5]ब्राह्मणानां च भोजनात् ।
तामाप्नुवन्ति देवेशि सक्तुपिण्डाच्च सङ्गमे ।।

हे देवेशि ! क्षीर खण्डादि भोज्यों से और ब्राह्मणों के भोजन से एवं संगम पर सत्तुओं का पिण्ड देने से उस तृप्ति को पाते हैं ।

कुरुक्षेत्रे प्रयागे च मकरेऽपि[6] दिवाकरे ।
शतकल्पं महेशानि स्नानाद्य[7]त्फलमाप्नुयात् ।
तदाप्नोति नरो[8]ऽत्रैव एकाहस्नानमात्रतः ।।

हे महेशानि ! कुरुक्षेत्र में, प्रयाग में सूर्य के मकर में आने पर स्नान करने से शतकल्प जो फल पाए, मनुष्य यहां वही फल एक दिन स्नान करने मात्र से पा लेता है ।

चूडामणौ महायोगी कुरुक्षेत्रे च तर्पणात् ।
यां तृप्ति पितरो यान्ति तां यान्ति सङ्गमे प्रिये ।

चूड़ामणि में और कुरुक्षेत्र में तर्पण करने से महायोगी जिस तृप्ति को पाता है, उस तृप्ति को हे प्रिये ! संगम में पितर पाते हैं ।

---

१. ततोवरुहे २. श्रयेत्सं ३. विधानेव ४. स्वरेश्वरि ५. ब्रह्मणानां ६. मकरेपि ७. द्यफल, ८. नरोत्रैव

अमरावतीपञ्चनद्याः सङ्गमे सुरपूजिते।
नारी वा पुरुषो वापि यः कुर्याच्छ्राद्धमुत्तमम् ।।
पितरस्तस्य तृप्यन्ति[1] शतकल्पं[2] न संशयः ।।

हे सुरपूजिते ! अमरावती पंचनदी के संगम में जो स्त्री वा पुरुष उत्तम श्राद्ध करे, उसके पितर शतकल्प तृप्त होते हैं, इसमें संशय नहीं है।

गां हिरण्यं [3]सुवासांसि क्षौमं रौप्यमपीश्वरि।
मुक्ताफलं मणिं वापि याति शैवं पदं पुमान् ।।

हे ईश्वरि ! गाय, सोना, सुन्दर वस्त्र, रेशमी वस्त्र, चान्दी, मुक्ताफल वा मणि को भी देकर पुरुष शैव पद को पाता है।

विशेषतः पीठदानममरेशस्य सुन्दरि।[4]
दत्वा मुक्तिमवाप्नोति सत्यं सत्यं वरानने ।।

हे सुन्दरि ! विशेषकर अमरेश को पीठदान देकर मुक्ति पाता है, हे वरानने ! यह सत्य है, सत्य है।

श्रीदेव्युवाच—श्री देवी बोलीं—

किंविधं पीठदानस्य शिवार्थं भगवंस्त्वया।
कथितं तन्महेशान वद मे हितकाम्यया ।।

हे भगवन् ! शिव के लिए पीठदान की कौन सी विधा आपने कही है। हे महेशान ! वह हितकामना से मुझे कहिए।

श्रीभैरव उवाच—श्री भैरव बोले—

पलपञ्चकमादाय यवपिष्टस्य[5] सुन्दरि।
सुचतुर्भद्रकं कृत्वा लेपयित्वा तु कुङ्कुमैः ।।
कर्पूरचन्दनैर्वापि[6] मृगजैश्च महेश्वरि।
चतुष्कोणेषु संस्थाप्य सुवर्णानां चतुष्टयम् ।।
मध्ये समुक्तं स्वर्णं[7] च स्थापयित्वा सुरोत्तमे[8]।
[9]अथ वा रौप्यमुद्राणां पञ्चकं मनुजेश्वरि ।।
[10]निष्कानाञ्चापि देवेशि[11] स्थापयित्वा सुरेश्वरि ।।
अर्चयित्वा गन्धपुष्पैर्ब्राह्मणाय[12] समर्पयेत् ।।

---

१. तृप्तिन्ति २ शतकल्पै ३. सवासांसि ४. स्त्रन्दरि ५. यममिष्टस्य ६. चन्दनेर्वापि ७. सुर्णं ८. सुरोत्तम ९. अथवा १०. निकानां ११. देवेश १२. पुष्पै ब्राह्म

हे सुन्दरि ! पांच पल जौ की पीठी लेकर सुन्दर चतुर्भद्र बना कर केसर कर्पूर-चन्दन और मृगज (कस्तूरी) से लेपकर हे महेश्वरि ! सुवर्ण चतुष्टय को चतुष्कोणों में स्थापित कर हे सुरोत्तमे ! मध्य में मुक्ता सहित सुवर्ण को स्थापित कर हे मनुजेश्वरि ! सुरेश्वरि ! देवेशि ! अथवा पांच चान्दी की मुद्राएं और निष्क स्थापित कर, गन्ध-पुष्पों से पूजा कर ब्राह्मण को देदे ।

आधारशक्त्यादिभिर्मन्त्रैः[1] पूजयित्वा सुवासयेत् ।
वस्त्रैः श्वेतपटै[2]र्दिव्यैस्तथा यज्ञोपवीतकैः[3] ॥
दक्षिणाभिर्भक्तिपूर्वं मन्त्र[4]मेनं समुच्चरेत् ।

आधार शक्ति आदि मन्त्रों से पूजाकर सुगन्धित करे, सफेद वस्त्रों तथा दिव्य यज्ञोपवीतों और भक्तिपूर्वक दक्षिणाओं से इस मन्त्र का उच्चारण करे ।

यात्रासाफल्यहेतोश्च ह्यमरेशस्य चाज्ञया ।
पीठं मयार्चितं दिव्यं सुवासोभिरलङ्कृतम् ।
मृत्युञ्जय महादेव भिया संसारसागरात् ।
अर्पितं त्वत्सुरूपाय ब्राह्मणाय[5] महात्मने ॥

यात्रा में सफलता के हेतु अमरेश की आज्ञा से, सुन्दर वस्त्रों से सुसज्जित इस दिव्य पीठ की मैंने पूजा की है । हे मृत्युंजय ! महादेव ! संसार रूपी सागर से डटकर तेरे ही रूप ब्राह्मण को मैंने यह अर्पित किया है ।

इदं गृहाण [6]विप्रेश स्वरूपिनवशासनात्[7] ।
पीठं ह्यमरनाथस्य महापापापनुत्तये ॥

हे विप्रेश ! अमरेश्वर महादेव की आज्ञा से महापापों को नष्ट करने के लिए अमरनाथ जी का यह पीठ आप ग्रहण कीजिए ।

यन्मया दुष्कृतं किञ्चित्कृतं [8]गुर्वण्वथापि वा ।
भ्रूणहत्यादिकं पापं ब्रह्महत्यादिकं तथा ॥
गुरुहत्यादिकं पापं मातृहत्यादिकं च यत् ।
[9]सुवर्णस्तेयादिकं पापं सुरापानमपीश्वरि ॥
गोहत्यानृतभाषित्वं[10] क्रोधं लोभमथापि वा ।
परदाराभिगामित्वं परीवादं परस्य वा ।

---

१ मंत्रै पूज० २ श्वेतपरैर्दि० ३ यज्ञोपवेतकैः ४ भक्तिपूर्वमंत्र ५ ब्रह्मणाय ६ विप्रेशश्व ७ रूपिनव ८ गुर्वरावथापि ९ स्वर्ण, १० भाषित्व

भर्तुस्त्यागादन्यसुत्यं[1] कृतं चेत्स्या[2]त्सुरेश्वरि ।
लघु सूक्ष्मं बृहद्वापि[3] यत्कृतं पापमुत्तमम् ॥
तत्सर्वं नाशमायातु पीठदानान्महेश्वरि ।
इति मन्त्रेण देवेशि पीठं विप्राय चार्पयेत् ॥

हे सुरेश्वरि ! जो कुछ बड़े वा छोटे भी भ्रूणहत्या आदि, ब्रह्महत्या आदि गुरुहत्या आदि, मातृहत्या आदि, सुवर्णस्तेय आदि, सुरापान, गोहत्या, मिथ्यावादिता, अनृतभाषित्व, क्रोध, लोभ, परदाराभिगमन, परनिन्दा, वा पति के त्याग से अन्य भी जो पाप वा दुष्कृत मैंने किया है इसके अतिरिक्त अन्य भी लघु, सूक्ष्म, बृहद् एवं उत्तम जो पाप किया है, हे महेश्वरि ! पीठदान से वह सब नष्ट हो जाता है, हे देवेशि ! इस मन्त्र से ब्राह्मण को पीठ अर्पित कर दे ।

तथा मया प्रोक्तमिमं तवानघे दानं च पीठस्य परं रहस्यम् ।
ददस्व देवेशि परं किमन्यैर्दानैः कलौ स्वल्पफलप्रदैश्च ॥

हे अनघे ! यह मैंने तुझे इस पीठ के दान और परम रहस्य को कहा है । हे देवेशि ! आप मुझे महाफल दो । कलियुग में अल्प फल प्रदान करने वाले अन्य दानों से क्या लाभ ?

इदं रहस्यं परमं नाख्येयं यस्य कस्यचित् ।
गोपनीयं विशेषेण कलौ सिद्धिप्रदं नृणाम् ॥

यह परम रहस्य जिस किसी को नहीं कहना चाहिए । विशेषकर गोपनीय है । कलियुग में मनुष्यों को सिद्धि देने वाला है ।

लक्ष्म्या कृत[4]मिदं दानं पार्वत्या च महेश्वरि !
सायुज्यमपि तत्स्थाने प्राप्नुतः परमेश्वरि ॥

हे महेश्वरि ! लक्ष्मी से किया गया और पार्वती से किया गया यह दान है । उसके स्थान में हे परमेश्वरि ! वे दोनों सायुज्य को भी पाती हैं ।

ततो यायान्महाग्रामे मामलाख्ये महेश्वरि ।
पशूपहारैः पुष्पैश्च पूजनीयः प्रयत्नतः ॥

इसके बाद हे महेश्वरि ! मामल नामक गाँव में जाए । पशु का उपहार और पुष्पों से यत्नपूर्वक पूजा करनी चाहिए ।

प्रसाद्य गणपं तत्र नानावल्युपहारकः ।
प्रायान्नवदले गङ्गां यष्टिं तत्रार्पयेद्बुधः ॥

---

१ मत्यं २ स्वरेश्वरि ३ बृहत्चापि ४ कृतमिदं

वहां नानाप्रकार की बलियों के उपहारों से गणपति को प्रसन्न कर नवदल में गंगा को जाए और वहां विद्वान् पुरुष यष्टि अर्पण करे।

यष्टे ह्याधारभूतस्य साक्षिभूतासि वै यतः।
मत्कर्मणश्च तीर्थस्य यात्रां मम निवेदय ॥

हे यष्टे ! क्योंकि तुम आधारभूत की साक्षी हो और मेरे कर्म से मेरी तीर्थयात्रा को निवेदित करो।

यष्टे सृष्टिस्वरूपासि स्थितिप्रलयकारिणी।
यष्टे विष्णुप्रियासि त्वं शिवशक्तिस्वरूपिणी ॥

हे यष्टे ! स्थिति और प्रलय करने वाली तुम सृष्टि स्वरूप हो। हे यष्टे ! शिवशक्तिस्वरूप वाली तुम विष्णुप्रिया हो।

तस्मान्मे पापसंघां[1]श्च हित्वा याहि स्वकं पदम्।

इसलिए मेरे पापसमूह को नष्ट कर तुम अपने पद (लोक) को जाओ

गङ्गे प्रिया हि देवस्य शिरसि धूर्जटेः प्रिया[2]।
पुरतो देवदेवस्य यात्रां मम निवेदय ॥

हे गंगे ! तुम महादेव की प्रिया हो, शिर पर विराजमान धूर्जटि की प्रिया हो। देवाधिदेव महादेव के आगे मेरी यात्रा के विषय में निवेदन करना।

इति मन्त्रेण देवेशि यष्टिं गङ्गाम्भसि क्षिपेत्।
स्नात्वा पातालगङ्गायां ततो पापात्स्वकं गृहम् ॥

हे देवेशि ! इस मन्त्र से यष्टि को गंगा के जल में फैंक दे। तदनन्तर पातालगंगा में स्नान कर अपने घर जाए।

एवं कृत्वा तु देवेशि नारी वा पुरुषो[3]ऽपि वा।
वेदपारायणं पुण्यं प्राप्नोत्येव न संशयः ॥

हे देवेशि ! ऐसा करके स्त्री वा पुरुष पुण्य वेदपारायण को पाता हैं, इसमें संशय नहीं है।

यात्रामेवंविधं कृत्वा पुण्याममरनाथजाम्।
मुक्तिमेव समाप्नोति विना [4]चेन्द्रियनिग्रहैः ॥

इस प्रकार पुण्य अमरनाथ की यात्रा करके इन्द्रियनिग्रह के बिना ही मनुष्य मुक्ति को पाता है।

इहलोके सुखी[5] भूत्वा ह्यन्ते सायुज्यमाप्नुयात्।

---

१ पापसंघाश्च २ प्रियाः ३ पुरुषोपि ४ चिंद्रिय ५ सुखं

इस लोक में सुखी होकर अन्त में सायुज्य को पाता है ।

इति गुह्यं मयाख्यातं फलममरनाथजम् ।
यच्छ्रुत्वा मुच्यते जन्तुर्महापातककोटिभिः ॥

यह मैंने गुह्य अमरनाथ का फल कहा है, जिसे सुनकर प्राणी करोड़ों महापापों से मुक्त हो जाता है ।

इत्येष पटलो गुह्यो महापापप्रणाशकः[1] ।
श्रुतश्च पठितश्चापि हयमेधादियागदः ॥

यह गुह्य पटल महापापों को नष्ट करने वाला है, सुनने पर और पढ़ने पर भी अश्वमेध आदि यज्ञ के फल को देने वाला है ।

इति श्रीभृङ्गीशसंहितायां श्रीभैरवभैरवीसंवादे दक्षिणपार्श्वोपतीर्थसंग्रहे श्रीअमरनाथफलवर्णनं नाम पटलः समाप्तः ॥

---

१ प्रनाशकः

ॐ श्रीगणेशाय नमः ।

ॐ ऋषय ऊचुः— ऋषि बोले—

सच्चिदानन्दरूपेण भैरवेण कृतः पुरा ।
गुह्याश्रमः पुण्यतमोऽ[1]रण्यविषये शुभः ।।

पूर्वकाल में सच्चिदानन्दस्वरूप भैरव ने अरण्य विषय में शुभ और पुण्यतम गुह्याश्रम का निर्माण किया ।

अस्माभिस्तु श्रुतं चैतद्ध्यानार्थं शङ्करेण हि ।
ध्यानेश्वरस्वरूपं तु प्रकटीकृतमद्‌भुतम् ।।

हमने यह सुना है कि ध्यान के लिए शङ्कर ने अद्‌भुत ध्यानेश्वरस्वरूप प्रकट किया ।

विस्तरेण तु माहात्म्यं सूत[2]……मर्हसि ।

हे सूत ! विस्तारपूर्वक आप इसके माहात्म्य को……

सूत उवाच— सूत बोले—

उच्चैः शीर्णाश्रमे पुण्ये चायुधस्य विनायकः ।
ब्रह्महत्यां शाङ्करीयामपसारितवान्पुरा ।।

पूर्वकाल में उच्च पुण्यप्रद शीर्णाश्रम में विनायक ने आयुध की शङ्करीय ब्रह्महत्या को दूर किया ।

वाराणस्यां पुरा सस्नौ विश्वेश्वरसमीपतः ।
पश्चाल्लग्ना ब्रह्महत्या नैव नष्टा तथापि च ।।

प्राचीनकाल में वाराणसी में विश्वेश्वर के पास से…… और पश्चात् लगी ब्रह्महत्या नष्ट नहीं हुई ।

कश्मीरमण्डलं प्राप्तो यदा देवो महेश्वरः ।
द्विग्रामे मोचितस्तेन कपालस्तु करे स्थितः ।।

जब महेश्वर देव कश्मीरमण्डल को आए तो उन्होंने अपने हाथ में स्थित कपाल को द्विग्राम में छोड़ा ।

पुनरप्यागता मातु[3]र्ब्रह्महत्या शिवस्य च ।
दूरीकृतास्त्ररूपेण गणेशेन द्रुतं पुरा ।।

---

१ पूण्यतमोरण्यादिविषये २ रुवोक्त ३ मातुब्रह्म

पूर्वयुग में फिर भी आकर माता की और शिव की ब्रह्महत्या अस्त्ररूप गणेश ने शीघ्र दूर कर दी।

शिवो निर्वेदमापन्नस्तदा[1] प्रभृति शौनक।
ग्रहीतुं शान्ततारूपमरण्यं स्मृतवान्नसौ[2] ॥

हे शौनक ! तब से लेकर शिव वैराग्य को प्राप्त हो गए और उन्होंने शान्तरूप को ग्रहण करने के लिए अरण्य का स्मरण किया।

गृहीतं स्वात्मचिन्तार्थं गुह्याश्रमवनं मुने।

हे मुने ! स्वात्मचिन्तन के लिए गुह्याश्रम वन को ग्रहण किया।

पुष्क[3]रारण्यं गताः सर्वे तत्र[4]त्याः साधवः परे॥
निर्वेदं च शिवे दृष्ट्वा निर्विण्णाभूच्च पार्वती।

वहां पर रहने वाले दूसरे सभी साधु पुष्करारण्य को चले गए और शिव में वैराग्य को देखकर पार्वती जी विरक्त (दुःखी) हुईं।

मत्त्यागं कुरुते शम्भुर्यदि किं रचये त्वहम्॥

यदि शम्भु मेरा त्याग करते हैं तो मैं क्या करूं ?

निर्विण्णहृदयां तां [5]दृष्ट्वा ते ते सर्वे[6]ऽब्रुवन्।
विश्वेश्वरि जगन्मातः[7] प्रसीद परमेश्वरि॥

दुःखी हृदय वाली उस पार्वती को देखकर वे सभी कहने लगे कि हे विश्वेश्वरि ! जगन्मातः ! परमेश्वरि ! आप प्रसन्न हो जाइए।

शक्ति विना चेश्वरो[8]ऽपि न ध्यानं कर्तुमर्हति।
दरं मा[9] कुरु देवेशि स्वत्यागे[10]वहिता भव॥

शक्ति के बिना ईश्वर भी ध्यान नहीं लगा सकते। हे देवेशि ! डरिए मत, स्वत्याग में सावधान हो जाइए।

प्राप्त्यर्थं[11] शान्ततायाश्च शमस्थानमिहाचर।
इत्युक्ता मुनिभिर्देवी शान्ता च सुस्थिता[12]भवत्॥

शान्ति को प्राप्त करने के लिए तू यहां शमस्थान का सेवन करो। इस प्रकार मुनियों से कही गई देवी शान्त और सुस्थित हो गई।

---

१ स्ततः प्रभृति २ स्मृतवानसौ ३ पुष्कारण्यां ४ तत्र्यत्याः ५ चोदृष्ट्वा ६ ते सावोब्रुवं ७ जगन्मातुः ८ चेशुरोपि ९ मां १० त्यागेवहिता ११ प्राप्यर्थं १२ सुखिता।

यत्र प्रदेशे तैरुक्तं दरं मा कुरु शाङ्करि !
तत्र ग्रामे सा दराख्या प्रथिता भुवनत्रये ।।

हे शाङ्करि ! जिस प्रदेश में उन्होंने कहा कि तुम भय मत करो, उस ग्राम में वह तीनों लोकों में 'दरा' नाम से प्रसिद्ध हुई।

साधवो मिलिता यत्र महेश्वरपदार्थिनः।
साधुपुष्करिणी ख्याता प्रसिद्धा तत्र जाह्नवी ।।

महेश्वरपदार्थी साधु जहां मिले, वहां प्रसिद्ध जाह्नवी साधु पुष्करिणी नाम से प्रसिद्ध हुई।

यत्र स्थाने भवश्शम्भु[1] ...... सह।
उपविष्टो मुहूर्तं तच्छ्रमस्थानं प्रकीर्तितम् ।।
ततो[2]ऽग्रे गमन कृत्वा ध्यानचिन्तो महेश्वरः।
अरण्यं रमणीयं च दृष्ट्वा ध्यानात्ममद्भुतम्।
गुहा कृता महेशेन शूलहस्तेन पाणिना ।।

तदनन्तर आगे जाकर ध्यान के चिन्तन से युक्त महेश्वर ने ध्यान के लिए अद्भुत और रमणीय जंगल को देखकर अपने हाथ में स्थित त्रिशूल वाले हाथ से गुहा का निर्माण किया।

स्वयं तत्रोपविष्टश्च गणेशेन युतो विभुः।
विष्णुना[3]...च सर्वदेवै[4]श्च संस्तुतः ।।

सर्वव्यापक महादेव स्वयं गणेश से युक्त वहां बैठ गए। और विष्णु... तथा सभी देवताओं से स्तुति की जाने लगी।

ध्यानेश्वरवनं रम्यं गम्भीरं निर्जनं शुभम्।
शैवो वा वैष्णवो वापि शक्ति[5]... कोऽपि यः।
गत्वा ध्यानं प्रकुर्वीत कलिकालभयाद्भुतम् ।।

शैव, वैष्णव वा शाक्त जो कोई भी रम्य, गम्भीर, निर्जन और रम्य ध्यानेश्वर वन को आकर कलिकालभयाद्भुत ध्यान करे।

पुत्रदारादिपाशैस्तु बद्धं [6]मन्दिरपञ्जरम्।
विहाय बन्धुमित्रादीन् स्थिरान्बन्धुजनान्नरः ।।

---

१ प्रेशानुश्चोभया २ ततोग्रे ३ येंमवत्या, ४ वेंदवैश्च ५ भाक्ष्याध-कोपि, ६ पञ्जमंदिर०,

ध्यानेश्वरं ध्यानगम्यं ध्यानास्पदमनुत्तरम् ।
आम्नायातीतमपरं परानन्दं पर[1] विभुम् ।।
स्वात्मस्थं सर्वभूतस्थं विष्णुरूपं गणेश्वरम् ।
शक्तिरूपं जगत्सर्वं ध्यात्वा मुच्ये[2]...... ।।

पुत्र, दारा आदि पाशों से बन्धे हुए अस्थिपिञ्जर को एवं बन्धु, मित्र आदि को तथा स्थिरबान्धवों को छोड़कर मनुष्य ध्यानगम्य, ध्यानास्पद, अनुत्तर, आम्नायातीत, अपर, परानन्द, पर, विभु. स्वात्मस्थ, सर्वभूतस्थ, विष्णुरूप, गणेश्वर, शक्ति, जगत्सर्व ध्यानेश्वर का ध्यान कर ......

ध्यान[3]...ममासक्ता ह्यनन्तस्य बोधनात् ।
सैव प्रोक्ता[4] विष्णुपूज्या ह्यनन्ताख्या चतुर्दशी ।।
हररात्रि[5]त्रयोदश्यामन्वेष्टुं निर्ययौ हरिः ।
ज्वालालिङ्गं चित्प्रकाशमाद्यन्तौ नैव दृष्टवान् ।।

हररात्रि त्रयोदशी के दिन हरि चित्प्रकाश ज्वालालिङ्ग को खोजने के लिए निकले पर आदि-अन्त न देख सके ।

स[6]...महाविष्णुरनन्तस्य भाषणात् ।
सत्यस्य कथनाच्चैवा[7]...हारिहरं वपुः ।।
लज्जा शिववरेणाशु महाविष्णु शिवा...[8] ।
यत्र...[9]मनन्त त्वं चतुर्दश्यां तिथौ स्वयम् ।।
[10]स्वचिद्रूपस्य च ततः सैवानन्तचतुर्दशी ।
पूज्यो हरि[11]...... सक्तमनस्कतः ।।
ध्यानेश्वरो ध्यानहविर्ध्यान[12]सक्तो गणाधिपः ।
सर्वे देवा ध्यानसक्ताः[13]......चतुर्दशीम् ।।
दर्शनात्स्पर्शनात्स्नानाद्ध्याना[14]ज्जपपरायणः ।
कर्पूरकुङ्कुमैश्चैव चन्दनैर्गन्धसंयुतैः ।।
पुष्पाक्षतैश्च नैवेद्यैर्दक्षि[15]णाभिरनेकशः ।
ध्यानेश्वरं पूजयंन्नरः[16] श्रद्धासमन्वितः ।।

जपपरायण, श्रद्धासमन्वित मनुष्य दर्शन से, स्पर्शन से स्नान से, ध्यान

---

१ परे २ मुच्ये शः, ३ पवसमा०, ४ प्रोक्त, ५ त्रियोदश्या०, ६ विरिञ्चो, ७ प्यर्धं, ८ त्यजत्, ९ पाठाभाव १० स्वचिद्रूपस्य, ११पाठाभाव १२ हविध्यान १३ पाठाभाव १४ द्ध्यानाजप १५ नैवेद्यैन्दक्षि १६ पूजयेत न

से, कर्पूर, से केसर से, गन्ध से युक्त चन्दन से, पुष्प और अक्षतों से, नैवेद्य से एवं दक्षिणाओं से अनेक बार ध्यानेश्वर की पूजा करे।

रत्नदीपप्रकाशैश्च पूजयेत्परमेश्वरम्।
विप्रद्वयं भोजयेच्च[1] दक्षिणादानतः शुभम्॥

रत्नदीप और प्रकाश से परमेश्वर की पूजा करे तथा दक्षिणादान से शुभ ब्राह्मणों की पूजा करे।

एकं ध्यानेश्वरस्यार्थे ध्यानेश्वयर्थमैककम्।
वस्त्रादिना पूजये[2]न्मार्गदृष्टिविधायिनः॥
ध्यानार्थं यदि चेच्छा स्यादन्यस्य कस्यचिदपि।
गुह्याश्रमारण्यपार्श्वे तदा कुर्यान्निवासनम्॥

यदि अन्य किसी की भी ध्यान के लिए इच्छा हो, तो गुह्याश्रमारण्य के पास वास करे।

भवपञ्जरपाशाद्धि निर्गमस्तु भविष्यति।

संसाररूपी पञ्जर पाश से निर्गम हो जाएगा।

जपं पूजां पुरश्चर्यां कुर्वन्[3] भक्तिसमन्वितः॥
गुह्याश्रमारण्यवासी तूर्णं सिद्ध्यति···॥

गुह्याश्रमारण्य में रहने वाला भक्तिपूर्वक जप, पूजा और पुरश्चर्या को करता हुआ शीघ्र ही······ सिद्धि को प्राप्त कर लेता है।

तस्मादवश्यं गच्छेत् पापिष्ठोऽप्यथ वाधमः।
·· वा यदि वा···साधुर्वा पुरुषोऽपि[4] वा।
ध्यानेश्वरं पूजयेत् भवपाशाद्विमुच्यते॥

इसलिए अवश्य जाए, पापी हो वा नीच,······ हो वा······ साधु हो वा पुरुष ध्यानेश्वर की पूजा करे, संसारपाश से मुक्त हो जाता है।

[5]य इमां शृणुयान्मर्त्यो ध्यानेश्वरकथां शुभाम्।
पठेद्वा[6] स गच्छे[7]च्छैवं पदमनामयम्॥

जो मनुष्य इस ध्यानेश्वर की कथा को सुने वा पढ़े, वह अनामय शैवपद को पाता है।

इति श्रीस्कन्दपुराणे श्रीसूतशौनकादिसंवादे काश्मीरविषये ध्यानेश्वरमाहात्म्यं सम्पूर्णम्॥

---

१ भोजयेत दक्षि २ पूजयेत मार्ग ३ कुर्वं ४ पुरुषोपि ५ शृणुया मर्त्यो ६ पठयेद्वा ७ गच्छेत शैव

ॐ नमः शिवाय स्वच्छन्दरूपाय केदारनाथाय।

ॐ श्रीभैरव्युवाच — श्री भैरवी बोली—

भगवन्सर्वधर्मज्ञ लोकानुग्रहकारक !
केदारोत्पत्तिमाकर्ण्य कृतार्थास्मि न संशयः ॥

सर्वधर्मज्ञ ! लोकानुग्रहकारक ! हे भगवन् ! केदार की उत्पत्ति के विषय में सुनकर मैं कृतार्थ हूं, इसमें संशय नहीं है।

अधुना श्रोतुमिच्छामि पुण्यं स्वच्छन्दभैरवम्।
प्रादुर्भावं तस्य विभो वद सत्यं महेश्वर ॥

हे महेश्वर ! अब मैं पुण्य स्वच्छन्द भैरव के विषय में सुनना चाहती हूं। हे विभो ! उसके प्रादुर्भाव के विषय में सत्य-सत्य कहिए।

श्री भैरव उवाच — श्री भैरव बोले—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि पुण्यं स्वच्छन्दभैरवम्।
यच्छ्रुत्वा मुच्यते जन्तुर्जन्मकोटिभवैरघैः ॥

हे देवि ! सुनिए, मैं तुम्हें पुण्य स्वच्छन्द भैरव के विषय में कहता हूँ। जिसे सुनकर प्राणी करोड़ों जन्मों में पैदा हुए पापों से मुक्त हो जाता है।

पृथ्वीमुद्धरतस्तत्र वराहस्य महात्मनः।
हिरण्याक्षं मर्दयतः कीचको नाम वै गणः।
राक्षसो जगदीशानि वराहमनुपद्यत ॥

वहां पृथ्वी का उद्धार करते हुए और हिरण्याक्ष का मर्दन करते हुए हे जगदीशानि ! कीचक नामक राक्षस गण वराह के पास आया।

दृष्ट्वा तु कीचकगणं हरिः परमकारणः।
थूत्कारैरीरयामास राक्षसं[1] गणमुत्तमः ॥

परमकारण उत्तम हरि ने कीचकगण को देखकर थूत्कारों से राक्षस गण का मर्दन किया।

कर्णाक्षिनासिकास्योत्थैः थूत्कारैर्वरवर्णिनि।
कीचको व्यगमन्नाशं पर्वतात्पारतः प्रिये ॥

हे वरवर्णिनि ! कान, आँख, नाक और मुंह से उठे थूत्कारों से हे प्रिये ! कीचक पर्वतपार से नाश को प्राप्त हो गया।

---

१ रक्षसां गणमु०

यत्र वै [1]रक्षसां दुष्टः कीचको नाम वै गणः ।
लीनोऽ[2]भूत्पर्वतश्रेष्ठे[3] कीचकाश्रम उच्यते ।।

जहां पर राक्षसों में दुष्ट कीचक नामक गण पर्वतश्रेष्ठ में लीन हुआ, वह 'कीचकाश्रम' नाम से पुकारा जाता है ।

श्रोत्राक्षिनासिकास्येभ्यः थूत्कारा ये तु निस्सृताः[4] ।
सप्ततीर्थ[5]मभवत्तत्र लोकानां हितकाम्यया ।।

कान, आँख, नाक, और मुँह से जो थूत्कार निकले, वह वहां लोगों की हितकामना से 'सप्ततीर्थ' हो गया है ।

वराहस्य शिरो यत्र मेदिनीमुद्धरिष्यतः ।
कीचको निहितो यत्र थूत्कारै रन्ध्रसम्भवैः ।
स वराहशिरो नाम ग्रामः प्रथित उत्तमः ।।

पृथ्वी का उद्धार करते हुए जहाँ वराह का सिर और जहां रन्ध्रों से पैदा हुए थूत्कारों से कीचक मारा गया, वहां वराह शिर नामक उत्तम ग्राम प्रसिद्ध हुआ ।

वराहक्षोभं दृष्ट्वा तु शिवः प्रादुरभूत्किल ।
[6]वराहो दर्शयन्वीर्यं कीचकान्मर्दयन्मुदा ।।
दृष्ट्वा पञ्चमुखं देवं हरिः स्वच्छन्दभैरवम् ।
प्राह गम्भीरया वाचा श्लक्ष्णया मधुराक्षरम् ।।

वराह के क्षोभ को देखकर शिव का प्रादुर्भाव हुआ । वराह-हरि ने पराक्रम का प्रदर्शन करते हुए और प्रसन्नता से कीचकों का मर्दन करते हुए स्वच्छन्द भैरव पञ्चमुख देव को देखकर कोमल एवं गम्भीर वाणी से मधुर वचन कहे ।

श्री वराह उवाच —श्री वराह बोले—

तिष्ठास्मिन्मच्छिरोदेशे स्वच्छन्दं मोचयञ्जनान् ।
तीर्थविघ्नकरांश्चैव ग्रसन्मुहुरतन्द्रितः ।।

तुम अतन्द्रित रह कर तीर्थ में विघ्न डालने वाले और स्वच्छन्द विचरण करने वाले मनुष्यों को बार-बार ग्रसते हुए इस मेरे शिरोदेश में रहो ।

सप्ततीर्थ्यां[7] मच्छिरसि वस नित्यं महेश्वर !
स्ववशः संस्मृतिभयं नित्यमीरयसे यतः ।।

---

१ राक्षसां दुष्टः २ लीनोभू ३ पर्वत्तश्रेष्टे ४ निःसृतो ५ सप्ततीर्थ्यंभव । ६ वराहे, ७ सप्ततीर्थ्यां

हे महेश्वर ! मेरे शिर में स्थित सप्ततीर्थ्य में तुम नित्य रहो, क्योंकि स्ववश संस्मृतिभय को नित्य तुम चलायमान करते हो।

ततः प्रोक्तः पुराविद्भिर्वीरः स्वच्छन्दभैरवः।

इसीलिए पुरातत्त्ववेत्ताओं ने इसे वीर स्वच्छन्द भैरव नाम से पुकारा।

श्रुत्वा तद्वचनं सौम्यं वराहस्य महात्मनः।
एवमस्त्विति देवस्तत्र [1]सान्निध्यमादधे॥

महात्मा वराह के उस सौम्य वचन को सुनकर 'एवमस्तु' ऐसा कह कर देव ने वहां सान्निध्य स्थापित किया।

तदा प्रभृति देवेशि सप्ततीर्थे प्रतिष्ठितः।
स्वच्छन्दभैरवश्चापि लोकानां मुक्तिदः[2] कलौ॥

हे देवेशि ! तब से लेकर कलियुग में लोकों को मुक्ति प्रदान करने वाला स्वच्छन्दभैरव सप्ततीर्थ में प्रतिष्ठित हुआ।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शिरसि स्नानमाचरेत्।
सप्ततीर्थ्यं[3] पूजयित्वा स्वच्छन्दं परभैरवम्॥

इसलिए स्वच्छन्द पर भैरव सप्ततीर्थ्य की पूजा कर सभी यत्न से शिर में स्नान करे।

अदीक्षितो[4]ऽपि स्नातः स्यान्मुच्यते ब्रह्महत्यया।

अदीक्षित भी स्नान करने पर ब्रह्महत्या से मुक्त हो जाता है।

वाराणस्यां कल्पवासात्प्रयागे मरणात्प्रिये!
यां गतिं समवाप्नोति तां स्वच्छन्दस्य दर्शनात्॥

वाराणसी में कल्पवास से हे प्रिये ! प्रयाग में मरने से जो गति मनुष्य पाता है, वह गति स्वच्छन्द का दर्शन करने से प्राप्त होती है।

कुरुक्षेत्रे प्रयागे च गङ्गासागरसङ्गमे।
चन्द्रसूर्योपरागे च गवां कोटिमनुत्तमाम्॥
विधिवद्वेदविदुषे दत्त्वा यत्फलमाप्नुयात्।

कुरुक्षेत्र, प्रयाग और गङ्गासागर के सङ्गम में तथा चन्द्रमा एवं सूर्य के ग्रहण में वेद के विद्वान् को विधिपूर्वक अत्युत्तम करोड़ गाय देकर जो फल पाता है।

---

१ सन्निघ्य २ मुक्तिदं ३ सप्ततीर्थ्यां ४ अदीक्षितोपि

तत्फलं सर्वमाप्नोति केदारस्नानमात्रतः ॥
केदारकुण्डे संस्नाप्य यात्रां कृत्वा विधानतः ।
दानं यथोक्तं दत्वा तु ह्यश्वमेधसहस्रजम् ॥

केदारकुण्ड में स्नान कर, विधिपूर्वक यात्रा कर और यथोक्त दान देकर हजार अश्वमेध से पैदा हुए फल को पाता है ।

मुखेन पीत्वा पानं तु न पुनः स्तन्यपो भवेत् ।

मुख से जल का पान कर फिर स्तनों के दूध को पीने वाला नहीं होता ।

आत्मारामाश्च मुनयो यतयः संशितव्रताः ।
न तां गतिं प्रयान्ति[1] स्म यां वै केदारपायिनः ।

केदार के जल का पान करने वाले जिस गति को पाते हैं, उस गति को आत्माराम मुनि, यति, संशितव्रत यति नहीं पाते हैं ।

स्नात्वा केदारकुण्डे तु कुम्भस्थे च बृहस्पतौ ।
यां गतिं समवाप्नोति नरः पातकवान्कलौ ।
न तामवाप्नुया[2]द्देवि क्रतुयागशतैरपि ॥

बृहस्पति के कुम्भ में स्थित होने पर केदार कुण्ड में स्नान कर पापी मनुष्य कलियुग में जिस गति को पाता है हे देवि ! उस गति को सैंकड़ों यज्ञों से भी नहीं पा सकता ।

केदारं तत्र गच्छामि स्नास्यामि तत्र वारिणि ।
दास्यामि तत्तटे तोयं पास्यामि मलहं कदा ॥

मैं वहां केदार को जाता हूं, वहां जल में स्नान करूंगा । उसके तट में दान दूंगा और कब मल को नष्ट करने वाले जल को पीऊंगा ?

एवमीप्सितमाकुर्वन्याति सादाशिवं पदम् ।
[3]बहुनात्र किमुक्तेन पुनरुक्तेन भामिनि ॥

इस प्रकार इच्छा करता हुआ सदाशिव पद को पाता है । हे भामिनि ! बहुत कहने से क्या लाभ, पुनरुक्ति से क्या लाभ ?

कलौ मूढजनस्यापि स्वर्गः परमदुर्लभः ।
मुक्तिः सुदुर्लभा देवि सा चात्रैव प्रतिष्ठिता ॥

कलियुग में मूर्खपुरुष के लिए भी स्वर्ग परम दुर्लभ है । हे देवि ! मुक्ति दुर्लभ है और वह यहां ही प्रतिष्ठित है ।

---

१ प्रयाति २ मवाप्नुयां ३ बहुनाःत्र

वराहक्षेत्रे देवेशि स्नात्वा केदारवारिणि।
केदारतीर्थमासाद्य कुम्भसंस्थे बृहस्पतौ ॥
ये स्नास्यन्ति पिबन्ति[1] च तीर्थयात्रापुरःसरम् ।
ते यास्यन्ति परं लोकं यत्र गत्वा न शोचते ॥

हे देवेशि ! वराह क्षेत्र में केदार के जल में स्नान कर कुम्भराशि में वृहस्पति के स्थित होने पर केदार तीर्थ को पाकर तीर्थयात्रापुरःसर जो ध्यान करते हैं और जल पीते हैं, वे परम लोक को जाते हैं, जहां जाकर शोक नहीं होता ।

तदेव घोरे च कलौ चतुर्धा भागमेष्यति ।
एकत्रा·····मेकत्र जानू कुक्षि तथैकतः ।
शिर एकत्र नाथस्य केदारस्य भविष्यति ॥

तभी घोर कलियुग में चार प्रकार के भाग को पाएगा। एक ओर केदारनाथ को·····एक स्थान पर जानु, एक ओर कुक्षि और एक ओर शिर होगा ।

मूलादारभ्य क्रमतः शिर[2]स्तोयञ्च पश्यति ।
स याति शिवसायुज्यं यत्र नास्ति कृताकृतम् ॥

मूल से लेकर चलते हुए का जो शिर और जल देखता है, वह शिवसायुज्य को पाता है, जहां कृत-अकृत कुछ नहीं है ।

अर्धं वा पादमेकं वा दृष्ट्वा नाथ कलेवरम् ।
[3]······मवाप्नोति न तीर्थफलमाप्नुयात् ॥

हे नाथ ! आधा वा एक पाद कलेवर को देखकर······पाता है। वह तीर्थ के फल को नहीं पाता ।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मूलादारभ्य शीर्षतः ।
यात्रां कृत्वा व्रजेद्देवं व्रजेच्छिव······[4] ॥

इसलिए सभी यत्नों से मूल से लेकर शीर्ष से यात्रा कर जो देव को जाता है वह पद को पाता है ।

केदारमुदकं पीत्वा कलौ रेतोदके शिवे ।
दानञ्च विधिवद्दत्वा याति सादाशिवं पुरम् ॥

केदार जल पीकर कलियुग में कल्याणकर रेतोदक में विधिपूर्वक दान देकर सदाशिव पुर को जाता है ।

---

१ पिवंते २ शिरं तोयञ्च ३ मू० पा० लि० में पाठाभाव

न केदारसमं तीर्थं दिवि भुव्यन्तरिक्षगम् ।
महामोक्षप्रदं देवि न भूतं न भविष्यति ।।

द्युलोक में, पृथ्वीलोक में और अन्तरिक्ष लोक में केदार के समान महामोक्ष प्रदान करने वाला तीर्थं न हुआ है और न होगा।

पतितानामनाथानां[1] दरिद्राणा[2]...
महद्ग्रहग्रासिनां च केदार[3]मुदकं प्रिये ।।

हे प्रिये ! पतितों, अनाथों, दरिद्रों......और महाग्रहों से ग्रसे हुओं का केदार का जल उद्धार करने वाला है

पथ्यं प्रोक्तं पुराविद्भिर्मन्त्रतन्त्रविशारदैः ।

पुरातत्त्ववेत्ताओं, मन्त्र-तन्त्र विशारदों ने केदार जल को पथ्य कहा है।

यस्य जन्तो[4]र्महादेवि ज्वरो वै गर्दभाभिधः ।
न शान्तो[5]ऽप्यौषधचणैर्महामयभयप्रदैः ।।
[6]सोऽपि शान्ति प्रयात्याशु रेतोदकनिपानतः ।।

हे महादेवि ! जिस जन्तु को गर्दभ नामक ज्वर महामयभयप्रद औषधियों से शान्त न हो, वह भी रेतोदक पान से शीघ्र शान्ति को पाता है।

केदारदर्शनाच्चैव रेतोदकनिपानतः ।
स्नानाद्दानाच्च देवेशि मुच्यते घोरपातकैः ।।

हे देवेशि ! रेतोदक पान से केदारदर्शन से स्नान और दान से घोर पापों से मुक्त हो जाता है।

केदारयात्रां[7] यास्यामि कदा चिन्तयतोऽपि च ।
गृहात्प्रचलितस्यापि यावन्तः पांसुबिन्दवः ।
पादस्य चाल्यमानस्य तावन्तो[8]ऽब्दांञ्छिवे वसेत् ।।

केदारयात्रा को जाऊँगा, इस प्रकार कभी सोचते हुए भी और घर से चल पड़े हुए के भी चले हुए पावों के जितने पांसुबिन्दु हैं, उतने वर्ष पर्यन्त वह शिवलोक में रहता है।

केदारपादे पिबतो.......[9]त्यजतः प्रिये ।
उदरञ्चापि देवेशि शिरश्चैव प्रमादतः ।
न यात्राफलमाप्नोति यथासर्वं भविष्यति ।।

---

१. मनाथाना २ दरिद्राणामहामिनां, ३ मुदकं ४ जन्तोमहा ५ शान्तो प्यौषध ६ सोपि ७ केदारयात्रा ८ तोवन्तोब्दा ९ मू० पा० लि० में पाठाभाव

हे प्रिये ! केदारपाद में······ यात्रा का फल नहीं होता ।

प्रपद्य नारीशिरसं देवमुग्रं कपर्दिनम् ।
मनसा शान्तरूपेण स्वच्छन्दं परभैरवम् ।
पीत्वा रेतोदकं देवि शीघ्रं मुच्येत······

हे देवि ! नारी के शिरों को धारण किए हुए उग्रकपर्दी स्वच्छन्द पर भैरव को शान्तरूप मन से पाकर और रेतोदक को पीकर शीघ्र······

न रेतोदसमं तीर्थं न रेतोदसमा गतिः ।
न रेतोदसमं पानं न रेतोदसमं हविः ।।
न रेतोदसमं ज्ञानं न रेतोदसमो विधिः ।
न रेतोदसमो यागो न रेतोदसमं धनम् ।।
न रेतोदसमं सोमं न देवः स्त्रीशिरःपरः ।
घोरे कलियुगे देवि महाकैवल्यदः परः ।।

रेतोद के समान तीर्थ नहीं है, रेतोद के समान गति नहीं है, रेतोद के समान पान नहीं है, रेतोद के समान हवि नहीं है, रेतोद के समान ज्ञान नहीं है, रेतोद के समान विधि नहीं है, रेतोद के समान यज्ञ नहीं है, रेतोद के समान धन नहीं है और रेतोद के समान सोम नहीं है। हे देवि ! घोर कलियुग में महाकैवल्य प्रदान करने वाला परम स्त्रीशिर के समान देवता नहीं है ।

स्त्रीशिरोदर्शनाच्चैव रेतोदस्नानपानतः ।
[1]मुच्यन्ते संसृतेर्घोरान्महापातकिनोऽपि[2] च ।।

स्त्रीशिर के दर्शन से और रेतोद के स्नान एवं पान से महापापी भी घोर सृष्टि से मुक्त हो जाते हैं ।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कुम्भस्थे च बृहस्पतौ ।
केदारेश्वरमासाद्य स्नायाद्रेतोदवारिणि ।।

इसलिए सभी यत्न से बृहस्पति के कुम्भ में स्थित होने पर केदारेश्वर को पाकर रेतोद जल में स्नान करे ।

पीत्वा रेतोदकं तत्र शक्तिविष्णुहरादितः ।
मुच्यन्ते घोरहत्याभि[3]र्मुक्ति यास्यन्ति ते ध्रुवम् ।।

शक्ति-विष्णु-हर आदि से वहां रेतोदक पीकर घोर हत्याओं से मुक्त हो जाते हैं और वे निश्चित मुक्ति को पाते हैं ।

---

१ मुच्यते २ महापातकिनोपि ३ हत्याभिमुक्ति

मुक्ताश्च न पुनर्जन्म यान्ति स्वच्छन्दभैरवम् ।
नुत्वा स्त्रीशिरसं देवं पीत्वा रेतोदकं[1] परम् ।
त एव रुद्राः कथिता भुवि स्वच्छन्दचारिणः ।।

स्वच्छन्द भैरव स्त्रीशिरस्क देव को नमस्कार कर और परम रेतोदक को पीकर मुक्त हुए वे पुनर्जन्म को नहीं पाते हैं । पृथ्वी पर वही स्वच्छन्दचारं. रुद्र कहे गए हैं ।

घोरैर्घोरतरैः पापैर्ज्ञानाज्ञानकृतैः प्रिये !
प्रदद्य स्त्रीशिरदेवं[2] स्नात्वा रेतोदवारिणि ।
पीत्वा रेतोदकं पुण्यं मुच्यते घोरकिल्बिषैः ।।

हे प्रिये ! ज्ञान वा अज्ञान में किए गए घोर-घोरतर-घोर पापों से स्त्री शिर देव को······और रेतोदकजल में स्नान कर तथा पुण्य रेतोदक को पीकर मुक्त हो जाता है ।

मुक्ताश्च यान्ति परमं भैरवं भैरवार्चिते ।
बहुनात्र किमुक्तेन कलिकाले सुदुःखदे ।।
मुक्त्यर्थं पापिनामेतत्तीर्थं देवि प्रकाशितम् ।
कथितं मूलमाहात्म्यं भूयः किं श्रोतुमिच्छसि ।।

इति श्रीसंहितायां केदारमाहात्म्ये स्वच्छन्दमाहात्म्यं नाम
तृतीयः पटलः ।।

---

१ रीतोदकं २ स्त्रीशिरे देवं

श्री भैरवी उवाच—श्री भैरवी बोलीं—

श्रावं श्रावं महादेव वराहविषये फलम् ।
केदारनाथस्य विभो कृतार्थास्मि न संशयः ॥

हे महादेव ! विभो ! वराह के विषय में केदारनाथ के फल को सुन-सुन कर मैं कृतार्थ हूँ, इसमें संशय नहीं है ।

अधुना श्रोतुमिच्छामि यात्रां दानमपीश्वर !
[1]...रेतोदपाने च यष्टिमोक्षणमेव च ।
यच्छ्रुत्वा मुच्यते जन्तुर्जन्मकोटिभवैरघैः ॥

हे ईश्वर ! अब मैं यात्रा, दान और .....यष्टिमोक्षण को सुनना चाहता हूँ, जिसे सुनकर प्राणी करोड़ों जन्मों में पैदा हुए पापों से मुक्त हो जाता है ।

शृणु वक्ष्ये महादेवि यात्रामस्य महेश्वरि !
दानं...[2]पाने यच्छ्रुत्वा मुच्यते भवात् ॥

हे महादेवि ! महेश्वरि ! सुनिए, मैं इसकी यात्रा के विषय में कहता हूं ...... जिसे सुनकर मनुष्य संसार से मुक्त हो जाता है ।

आदौ श्राद्धपुरे स्नात्वा ततो निगिलमाश्रयेत् ।
ततो गच्छेत चन्द्रोदे सुरे ज्यापुर उत्तमे ॥

पहले श्राद्धपुर में स्नान करे इसके बाद निगिल का आश्रय ले । तदनन्तर चन्द्रोदसुर उत्तम ज्यापुर में जाए ।

तत्र स्नात्वा व्रजेद्देवि प्रहारमुत्तमे ।
तत्र स्नात्वा व्रजेत्पूतमनन्तं नागमुत्तमम् ॥

हे देवि ! वहाँ स्नान कर.......जाए और वहाँ स्नान कर पवित्र उत्तम अनन्त नाग को जाए ।

ततः स्नात्वा प्रव्रजेत वाराहं क्षेत्रमुत्तमम् ।
सोमसूर्याग्निधामानि स्नात्वा गच्छेत सुन्दरि ॥

तदनन्तर स्नान कर उत्तम वराहक्षेत्र को जाए ।

वराहशिरसं नाम ग्रामं सप्तोदके ततः ।
स्नात्वा स्वच्छन्दपूजाञ्च कृत्वा कोटिं समाश्रयेत् ॥

इसके बाद सप्तोदक में वराहशिर नामक गाँव में स्नान कर और स्वच्छन्द पूजा कर कोटि का आश्रय ले ।

१-२ मू० पा० लि० में पाठाभाव

ततः पापहरे स्नायात्पर्वतारोहणं ततः ।
तत्र केदारनाथस्य पूजां कृत्वा विधानतः ।
स्नात्वा चुलकमादद्याच्छक्तिविष्णुहरादितः ।
श्राद्धं तत्र विधानेन पितृणामुपतिष्ठति ॥

तदनन्तर पापहर में स्नान करे, इसके बाद पर्वतारोहण करे और वहाँ विधिपूर्वक केदारनाथ की पूजा करे तथा स्नान कर शक्ति-विष्णु-हर आदि से चुलक ले। वहाँ विधिपूर्वक किया गया श्राद्ध पितरों को पहुंचता है ।

तारयुग्मं क्ष उकार यत्र भूषितमीश्वरि ।
वह्निमकारेण युतं दशार्णमनुमादिशेत् ॥
ॐ ह्रों क्षों ह्रों क्षों ह्रों ह्रों क्षों ह्रों ॐ ।

इति दशार्णमन्त्रोद्धारः ।

आदौ शक्त्या पिबेत्तोयं त्रिः पिबेद् हरिणा शिवे ।
हरेण त्रिः पिबेद्देवि पीत्वा[2] [3]मुच्यते……

पहले शक्ति से जल पिए । हे शिवे ! फिर हरि से तीन बार जल पिए । तदनन्तर हे देवि ! हर से तीन बार जल पिए । पीकर……मुक्त हो जाता है ।

त्रयं पिबेच्च वामेन चुलकं सुरसुन्दरि !
त्रयं मुखेन देवेशि ! त्रयं दक्षिणपाणिना ॥

बायें हाथ से हे सुरसुन्दरि ! तीन आचमन करे, हे देवेशि ! तीन आचमन मुख से और तीन दायें हाथ से ।

इति प्रोक्तः पुराविद्भिर्विधिः पानफलप्रदः ।
दानमत्र प्रवक्ष्यामि यात्रासाफल्यहेतवे ॥

इस प्रकार पुरातत्त्ववेत्ताओं ने पानफल प्रदान करने वाली विधि कही है । अब यहाँ यात्रा की सफलता के लिए दान के विषय में कहूँगा ।

यवपिष्टं समानीय प्रमाण पलपञ्चकम् ।
कृत्वा वृषं वज्रनेत्रं मुक्तानासं महेश्वरि ॥
ताम्रपृष्ठं स्वर्णमुखं पट्टलाङ्गूलभूषितम् ।
कांस्येन्द्रियं रौप्यखुरं घण्टाभरणभूषितम् ॥
ऊर्णापट्टमयैर्वस्त्रैरलङ्कृतसुविग्रहम् ।
पूजयित्वा गन्धधूपैः पुष्पैरर्घैस्तथेश्वरि ॥

कुम्भे धातुमये स्थाप्य तिलपात्रे विशेषतः ।
वासोभिर्विविधैर्युक्तं ब्राह्मणाय समर्पयेत् ।।

पांच पल प्रमाण में जौ के आटे को लेकर हे महेश्वरि ! उससे वज्रनेत्र, मुक्तानासिका, ताम्रपृष्ठ, स्वर्णमुख, पट्टलांगूल, कांस्येन्द्रिय, रौप्यखुर और घण्टाभरण से भूषित तथा ऊर्णापट्टमय वस्त्रों से अलंकृत शरीर वाले वृष (बैल) को बनाकर हे ईश्वरि ! गन्ध-धूप-पुष्प-अर्घ से पूजा कर धातुमय कुम्भ में विशेषकर तिलपात्र में स्थापित कर अनेक प्रकार के वस्त्रों से युक्त वृषभ ब्राह्मण को अर्पित करे ।

केदारनाथसान्निध्ये नन्दिनं सुरपूजितम् ।
अर्चितं परया भक्त्या मया द्विजवरोत्तम ।
यात्रासाफल्यहेत्वर्थं गृहाण मदनुग्रहात् ।।

केदारनाथ के पास हे द्विजवरोत्तम ! परम भक्ति पूर्वक मैंने सुरपूजित नन्दी की पूजा की है । यात्रा में सफलता प्राप्त करने के लिए मेरे पर कृपा कर इसे ग्रहण कीजिए ।

इति मन्त्रेण दत्वा तु [1]गृहीत्वा क इदं वदेत् ।
उभयोः सफलं तीर्थं भविष्यति न संशयः ।।

इस मन्त्र से देकर और लेकर 'कः' यह कहे । दोनों का तीर्थं सफल होगा इसमें संशय नहीं है ।

श्राद्धं कृत्वा प्रयत्नेन ब्राह्मणान्भोजयेच्छुभान् ।
विसृज्य यष्टिमोक्षन्तु कुर्यात्तीर्थं ह्यतन्द्रितः ।।

यत्नपूर्वक श्राद्ध कर शुभ ब्राह्मणों को भोजन कराए और यष्टिमोक्ष का विसर्जन कर अतन्द्रित तीर्थ करे ।

यष्टे ह्याधारभूतासि शिवशक्तिस्वरूपिणि[2] ।
हेतुभूतासि सर्वत्र पुण्यपापस्य साक्षिणि[3] ।।

शिवशक्तिस्वरूपिणि ! हे यष्टे ! तुम आधारभूता हो । हे पुण्य और पाप की साक्षिणि ! तुम सर्वत्र हेतुभूता हो ।

सर्वेश्वरि[4] यतस्त्वञ्च ब्रह्मणा निर्मिता पुरा ।
सर्वाश्रया यतस्त्वञ्च ततस्तुभ्यं नमो नमः ।।

हे सर्वेश्वरि ! क्योंकि तुम पूर्वकाल में ब्रह्मा से निर्मित की गई थी । क्योंकि तू सर्वाश्रया है, इसलिए तुम्हें नमस्कार है ।

---

१ ग्रहीत्वा २ स्वरूपिणी ३ साक्षिणी ४ सर्वेश्वरी

शिवविष्णोः सन्निधाने मम यात्रां निवेदय ।
इति यष्टिं विमुच्याऽथ[1] ततः प्रायाद्यदृच्छया ॥

शिवविष्णु के पास मेरी यात्रा के विषय में निवेदन कीजिए । इसके बाद इस तरह यष्टि को छोड़ कर स्वेच्छानुसार जाए ।

इत्थं कृत्वा महायात्रां कोटियज्ञफलं लभेत् ।
मन्त्रसिद्धिमवाप्नोति शीघ्रं देवि न संशयः ॥

इस प्रकार महायात्रा कर करोड़ों यज्ञों के फल को पाए । हे देवि ! शीघ्र मन्त्रसिद्धि को पाता है, इस में संशय नहीं है ।

मुच्यते कोटिहत्याभिरिति सत्येन ते शपे ।
महापातकयुक्तो वा युक्तो वा ह्युपपातकैः ॥

यह सत्य से तुझे शपथ खाकर कहता हूँ कि महापाप से युक्त वा उपपापों से युक्त प्राणी करोड़ों हत्याओं से मुक्त हो जाता है ।

केदारेश्वरमासाद्य मुच्यते घोरपातकैः ।
इदं रहस्यं परमं नाख्येयं यस्य कस्यचित् ।
अप्रकाश्यमिदं तीर्थं गुह्यं गोप्यतमं कलौ ॥

केदारेश्वर को पाकर घोर पापों से मुक्त हो जाता है । यह परम रहस्य जिस किसे नहीं कहना चाहिए । कलियुग में यह गुह्य-गोप्यतम तीर्थ प्रकाशित करने के योग्य नहीं है ।

इत्थं निशम्य देवेशात्केदारस्य महत्फलम् ।
मूले वराहके पुण्ये पुनः प्रष्टुमना ह्यभूत् ॥

देवेश से इस प्रकार केदार के महाफल को सुनकर पुण्यप्रद मूल वराहक के विषय में फिर पूछने का मन हुआ ।

इत्थं वराहक्षेत्रस्य महिमानमनुत्तमम् ।
शृणुयात्प्रपठेद्वापि पाठयेद्वा विधानतः ।
वाचकं पूजयित्वा तु यात्राफलमवाप्नुयात् ॥

इस प्रकार वराहक्षेत्र की अत्युत्तम महिमा को सुने, पढ़े वा विधिपूर्वक पढ़ाए । वाचक की पूजा कर यात्रा के फल को पाता है ।

इति श्रीसंहितायां वराहमूले केदारमाहात्म्यं नाम चतुर्थः[2] पटलः ॥४॥[3]

---

१ विमुच्याथ २ मू० पा०—'द्वितीयः' ३ मू० पा० '२'

श्रीभैरव्युवाच – श्रीभैरवी बोली—

श्रुतो भवत्प्रसादेन केदारेश्वरसम्भवः।
महिमा गहनो देव महापातकहा परः॥

हे देव! आपके प्रसाद से केदारेश्वर से पैदा हुई, महापापों को नष्ट करने पाली परम गहन महिमा मैंने सुनी।

इदानीं श्रोतुमिच्छामि भैरवे विषये महत्।
पुण्यं केदारनाथस्य कलिकल्मषनाशनम्॥

अब मैं भैरव के विषय में कलियुग के पापों को नष्ट करने वाले केदारनाथ के पुण्य को सुनना चाहता हूँ।

श्रीभैरवःउवाच— श्रीभैरव बोले—

पुराहङ्कारतो देवौ बभ्रामतुररिन्दमौ।
दृष्ट्वा ज्योतिर्मयं लिङ्गं ब्रह्मोपरि हरिस्त्वधः॥

पूर्वयुग में शत्रुओं को नष्ट करने वाले ब्रह्मा और हरि दोनों देव ज्योतिर्मय लिङ्ग को देखकर ब्रह्मा ऊपर और हरि नीचे घूमने लगे।

हरिर्बभ्राम देवेशि दिव्यं वर्षसहस्रकम्।
गहने तु गुहाज्वाले[1]···तस्य विशेषतः॥

हे देवेशि! हरि गहन गुहाज्वाल में······ दिव्य हजार वर्ष तक घूमे।

गुहाया अन्तरं प्राप्य भ्रमंस्तत्र विशेषतः।
[2]···विश्रममीशानि तत्रैव निषसाद ह॥

गुहा के अन्तर को पाकर अर्थात् गुहा के बीच जाकर वहां विशेषकर घूमते हुए हे ईशानि! वहीं विश्राम की इच्छा से बैठ गया।

गुहाद्वारे निषण्णं तमुवाचानाहतापि वाक्।
[3]दृश्यते दर्शनं किञ्चिद्भ्रमन्नत्र हरे पुनः॥

गुहाद्वार में बैठे उसे अनाहत वाणी ने कहा कि हे हरे! यहाँ घूमते हुए तुझे कुछ दिखाई देता है।

अत्र नारायणायां गुहायां किं निषीदसि।
उत्तिष्ठात्र गिरौ रम्ये पश्य स्त्रीशिरः[4] परम्॥

---

१ पाठाभाव २ पाठाभाव ३ दृष्टं ते ४ स्त्रीशिरसं

इस नारायणी गुहा में तुम क्यों बैठे हो ? उठिए, इस रमणीय पर्वत पर परम स्त्रीशिर को देखिए।

यस्य दर्शनमात्रेण नश्येदज्ञानजं तमः।

जिसके दर्शनमात्र से अज्ञान से पैदा हुआ अन्धकार नष्ट हो जाता है।

अशरीरं वचः श्रुत्वा विस्मयो[1]त्फुल्ललोचनः।
गुहातो निःसृतः सोऽथ[2] गिरिस्थं प्रभुमन्ततः।
ददृशे त्रिजटं देवं स्त्रियाः शिरसि शोभितम् ॥

अशरीरी वाणी को सुनकर इसके बाद विस्मय से फूले नेत्रों वाले वह गुहा से निकले और पर्वत के बीच स्थित स्त्री के शिर पर शोभित प्रभु त्रिजट देव को देखा।

देवं श्रीत्रिजटं त्रिलोचनयुतं नेत्राग्निकान्तिप्रभुम्
पञ्चास्यं शरबाहुयुग्ममलमालीविषाभूषणम्।
खट्वाङ्गं त्रिशिखं कुठारडमरूपाशं कपालाङ्कुशौ
पद्मं चाक्षधनुःकमण्डलुधरं केदारनाथं भजे ॥

तीन नेत्रों से युक्त, नेत्राग्निकान्ति प्रभु, पाँच मुख वाले, दोनों भुजाओं में बाण लिए, निर्मल, आलीविषाभूषण, खट्वाङ्ग, त्रिशिख, कुठार-डमरू-पाश-कपाल और अङ्कुश लिए, पद्म, रुद्राक्ष, धनुष और कमण्डलु धारण किये त्रिजट देव केदारनाथ का मैं भजन करता हूँ।

दृष्ट्वा देवं हरिस्तत्र दण्डवत्पतितः क्षितौ।
वेदतन्त्रोद्भवैः सूक्तैस्तुष्टाव जगदम्बिके ॥

वहाँ देव को देख कर हरि दण्डवत् पृथ्वी पर पड़ गए। और हे जगदम्बिके ! वेद-तन्त्र से पैदा हुए सूक्तों से स्तुति करने लगे।

श्रीहरिरुवाच—श्रीहरि बोले—

ॐ अनाद्यनन्तं विरजस्कं विरूपं धामत्रयातीतमत्युल्वणञ्च।
अधश्चोर्ध्वमेकमेवाप्रमेयं तं त्वनन्तं प्रभुमीशानमेमि ॥

अनादि-अनन्त, विरजस्क, विरूप, धामत्रयातीत, अत्युल्वण, नीचे और ऊपर एक ही, अप्रमेय उस अनन्त प्रभु ईशान की स्तुति करता हूँ।

यन्मायया मोहितोयमधस्ताद्दिव्य···तमेव दिदृक्षुः।
भ्रमन्दिव्यं वर्षसहस्रमेकोऽव्य···

---

१ विस्मयत्फुल्ल २ सोथ

१····· गोहरेः श्रीवत्समालिहत् ।
दृष्ट्वा लिहन्तं श्रीवत्सं हरिश्चक्रं समादिशत्[२] ॥

श्रीवत्स का आस्वादन करते देख कर हरि ने चक्र को आज्ञा दी ।

चक्रं दृष्ट्वा तु नागेशो वभ्राम[३] त्रिजगत्तदा ॥
[४]भ्रान्तोऽप्या···हरेः पादं ततो ह्यमृतमुद्वमत् ॥

चक्र को देख कर तब नागेश तीनों लोक घूमा । घूमते हुए भी हरि के चरणों में आया, इसके बाद अमृत उगला ।

पीतं श्रीवत्सतो देवि तत्तीर्थमभवत्तदा ।
यतः श्रीवत्सतः पीतममृतं विषरूपिणा ॥
उद्वामितं च हरिणा चक्रेणसुरपूजिते ।
तत्तीर्थमभवत्तत्र ख्यातं श्रीवत्सनामकम् ॥

हे देवि ! श्रीवत्स से अमृत पीं लिया गया, तब वह तीर्थ हुआ । क्योंकि श्रीवत्स से विषरूपी नागेश ने अमृत पीलिया और हे सुरपूजिते ! हरि ने चक्र से उगलवा लिया, इसलिए वह तीर्थ वहाँ श्रीवत्स नाम से प्रसिद्ध हुआ ।

स्नात्वा श्रीवत्सके तीर्थे गिरिमारुह्य यत्नतः ।
गुहां प्रविश्य गम्भीरां दृष्ट्वा पञ्चमुखं प्रभुम् ।
सहस्रशिरसं देवीं भैरवीमपि पूजयेत् ॥

श्रीवत्स तीर्थ में स्नान कर और यत्न से पर्वत पर चढ़ कर तथा गम्भीर गुफा में प्रवेश कर एवं सहस्र शिर वाले पञ्चमुख के दर्शन कर भैरवी देवी की पूजा करे ।

सम्पूज्य विधिना देवि मुच्यते कोटिपातकैः ।

हे देवि ! विधिपूर्वक पूजा कर करोड़ों पापों से मुक्त हो जाता है ।

महापातकयुक्तो वा युक्तो वा ह्युपपातकैः ।
सम्पूज्य तु गुहालीनं पश्येदघत्रयैः प्रिये ॥

हे प्रिये ! महापाप से युक्त वा उपपापों तथा पापसमूह से युक्त पूजा कर गुहालीन का दर्शन करे ।

गिरिमारोहतः[५] पादपोसवो ह्युद्गताः पुरः ।
यावन्तस्तावद्घोरैश्च पातकैर्मुच्यते जनः ॥

पर्वत पर चढ़ते हुए मनुष्य के आगे जितने पाँवों के रज-कण हैं, तब तक मनुष्य घोर पापों से मुक्त हो जाता है ।

---

१ पाठाभाव २ समादिशेत् ३ बर्भुम ४ भ्रान्तोप्या ५ मारुहतः

[1]श्राद्धानां गोप्रदानानां तावन्तः कोटयः प्रिये ।
अश्वमेधादियज्ञानां कोटयः प्रभवन्ति हि ।।

हे प्रिये ! करोड़ों श्राद्धों, गोदानों तथा अश्वमेध आदि यज्ञों के फल की उत्पत्ति होती है।

चन्द्रसूर्योपरागे च गङ्गासागरसङ्गमे ।
गवां कोटिसहस्राणि दत्वा वेदविदे प्रिये !
यत्फलं समवाप्नोति तत्फलं भैरवार्चनात् ।।

हे प्रिये ! चन्द्र-सूर्य ग्रहण के समय और गङ्गासागर के सङ्गम में वेद को जानने वाले ब्राह्मण को सहस्रकोटि गाय देकर जो फल पाता है, वह फल भैरव के पूजन से मिलता है ।

भैरवे वहुरूपन्तु दृष्ट्वा केदारकेश्वरम् ।
स्नात्वा केदारके कुण्डे पीत्वा रेतोदकं पुनः ।
यां गतिं समवाप्नोति न तां क्रतुशतैरपि ।।

भैरव में बहुरूप केदारकेश्वर के दर्शन कर और केदारक कुण्ड में स्नान कर फिर रेतोदक का पान कर जिस गति को पाता है उसे सैंकड़ों यज्ञों से भी नहीं पाता ।

यतयो बीतरागाश्च[2] मुनयो यान्ति यां गतिम् ।
[2]तामाप्नुवन्ति देवेशि कलौ केदारपायिनः ।।

केदार का जल पीकर और रेतोद के जल में स्नान कर घोर-हत्याओं से मुक्त हो जाता है ।

केदारमुदकं पीत्वा स्नात्वा रेतोदवारिणि ।
मुच्यते घोरहत्याभि[3]···यान्ति भैरवम् ।।

यति, वीतराग और मुनि जिस गति को पाते हैं, हे देवेशि ! कलियुग में केदार का जल पीने वाले उस गति को पाते हैं ।

कलौ केदारके स्नात्वा कृत्वा भैरवपूजनम् ।
पीत्वा रेतोदकं पुण्यं न पुनः स्तन्यपो भवेत् ।।

कलियुग में केदारक में स्नान कर और भैरव का पूजन कर तथा पुण्य रेतोदक पीकर फिर स्तनों के दूध पीने वाला नहीं होता।

उपपातकयुक्तो वा युक्तो वा घोरपातकैः ।
स्नात्वा श्रीवत्सके तीर्थे मुच्येद् भैरवदर्शनात् ।।

---

१ श्रद्धानां २ रागश्च ३ पाठाभाव

उपपातक से युक्त वा घोर पापों से युक्त होकर श्रीवत्सकतीर्थ में स्नान कर भैरव का दर्शन करने से मुक्त हो जाता है।

वाजपेयसहस्राणि ज्योतिष्टोमशतानि च।
अश्वमेधसहस्राणि विविधानि कृतानि च॥

हजारों वाजपेय, सैंकड़ों ज्योतिष्टोम और हजारों अश्वमेध तथा अन्य अनेक प्रकार के यज्ञ किए।

भैरवे विषये स्नात्वा पुण्ये केदारवारिणि।
प्राप्नोति मानवो देवि[1]···बृहस्पतौ।
पीत्वा रेतोदकं तत्र न पुनः स्तन्यपो भवेत्॥

भैरव देश में पवित्र केदारजल में स्नान करके हे देवि ! मनुष्य··· ··· और वहाँ रेतोदक पीकर फिर स्तनों के दूध को पीने वाला नहीं होता।

ज्ञानाज्ञानकृतं पापं मनोवाक्काय[2]सञ्चितम्।
तत्क्षणान्नश्यते देवि भैरवस्य च दर्शनात्॥

हे देवि ! मन-वाणी और शरीर से संचित ज्ञान या अज्ञान से किया हुआ पाप भैरव के दर्शन से तत्क्षण नष्ट हो जाता है।

प्रायश्चित्तविहीनानां जनानां सुरपूजिते।
घोरे कलियुगे प्रोक्तं प्रायश्चित्तमिदं परम्॥

हे सुरपूजिते ! प्रायश्चित्त से विहीन मनुष्यों के लिए घोर कलियुग में यह परम प्रायश्चित्त कहा है।

बहुनात्र किमुक्तेन यात्रां कृत्वा महेश्वरि !
भैरवे विषये पुण्ये स्नायात्केदारवारिणि॥

हे महेश्वरि ! इस विषय में बहुत कहने से क्या लाभ! यात्रा कर भैरव देश में पवित्र केदारजल में स्नान करे।

स्नान कर अश्वमेध आदि यज्ञ से पैदा हुए पुण्य को पाता है।

हित्वा क्रमन्तु यो देवि[3] ·····त्केदारवारिणि।
स याति नरकान्घोरान्वृथा तस्य तु तद्भवेत्॥

हे देवि ! क्रम को छोड़ कर जो केदार जल में······वह घोर नरकों को पाता है. उसका वह स्नान वृथा होजाता है।

एकत्र स्नात्वान्यत्रैव ह्यनादरपरस्तु यः।
स इहैव महारोगी परे निरयमाप्नुयात्॥

१···पाठाभाव २ वाक्क्लैयः ३···पाठाभाव

एक जगह स्नान कर जो दूसरी जगह स्नान नहीं करता वह यहाँ महारोगी होता है और परलोक में नरक को पाता है।

ब्रह्महत्यामवाप्नोति गोवधञ्चापि सुन्दरि !
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन चतुःस्थानं व्रजेन्नरः ।।

हे सुन्दरि ! वह ब्रह्महत्या और गोवध को भी प्राप्त होता है। इसलिए सभी यत्न से मनुष्य चतुःस्थान को जाए।

पूर्णं फलमवाप्नोति सत्यं सत्यं वरानने।
यात्रामस्य प्रवक्ष्यामि शृणु सुन्दरि तत्त्वतः ।।

हे वरानने ! यह सत्य है कि वह पूर्ण फल पाता है। हे सुन्दरि ! मैं इस की यात्रा के विषय में तत्व से कहूँगा, सुनिए।

प्रथमं मूलशूले तु स्वर्णपारे ततो व्रजेत्।
ततो भैरवनद्यां तु ततः श्रीवत्सकं प्रिये !

पहले मूलशूल में, इसके बाद स्वर्णपार में जाए। तदनन्तर भैरव नदी में इसके बाद हे प्रिये ! श्रीवत्स को जाए।

गिरिमारुह्य च ततः समभ्यर्च्य तु भैरवम्।
ततः केदारके कुण्डे स्नात्वा पीत्वा च वारि तत् ।।
दत्वा दानञ्च विधिवत्कालवाहनमूर्तिकम्।
यवपिष्टमयं देवि महिषञ्च समाचरेत् ।।

पर्वतारोहण कर और इसके बाद भैरव की पूजा कर तदनन्तर केदार-कुण्ड में स्नान कर और वहाँ पानी पीकर बाद में सङ्गम को पाकर विधि पूर्वक श्राद्ध कर और दान देकर हे देवि ! फिर विधिपूर्वक यवपिष्टमय कालवाहनमूर्ति महिष को बनाए।

मुखं स्वर्णमयं कृत्वा कर्णौ ताम्रमयौ प्रिय।
पृष्टं कालायसमय[1]मुदरं कांस्यमेव च ।।
नेत्रे गारुत्मते देवि पुच्छं मुक्तामयं तथा।
गलं रुद्रमयञ्चैव कृष्णाकम्बलभूषितम्।
घटे[2]......तिल्लैः पूर्णं स्थाप्यं तत्र वरानने ।।

हे प्रिये ! सोने का मुख बनाकर, ताम्बे के कान बनाकर, काले लोहे की पीठ बनाकर और कांस्य का पेट बनाकर हे देवि ! गारुत्मत नेत्र

---

१ मयंमुदरं २ पाठाभाव

बनाकर तथा मोती की पूँछ बनाकर हे वरानने ! काले कम्बल से विभूषित रुद्रमय गला बनाकर महिष को स्थापित करना चाहिए।

महिषं तत्र संस्थाप्य पूजयित्वा विधानतः।
गन्धैरक्षतमाल्यैश्च पुष्पैर्धूपैश्च दीपकैः॥
वस्त्रैरूर्णमयैर्देवि दक्षिणाभिश्च प्रापणैः।
विधिना वेदविदुषे मुदामन्त्रेण चार्पयेत्॥

महिष को वहाँ रखकर विधिपूर्वक गन्ध, अक्षत, माल्य, पुष्प, धूप, दीप, ऊर्णमय वस्त्र और दक्षिणा······से पूजा कर वेद के विद्वान् को मुदामन्त्र से दे दे।

भैरवो विप्ररूपस्त्वं वेदवेदाङ्गपारगः।
केदारयात्रासाफल्यहेतोस्त्वं द्विजसत्तम॥

हे द्विजसत्तम ! तुम भैरव विप्ररूप वेदवेदाङ्गपारग केदार की यात्रा में सफलता प्रदान करने में हेतु हो।

इमं मे माहिषं पुण्यं गृहाण[1] मदनुग्रहात्।
इति मन्त्रेण देवेशि ब्राह्मणाय समर्पयेत्॥

मुझ पर कृपा कर इस मेरे पुण्यप्रद महिष को ग्रहण कीजिए, हे देवेशि ! इस मन्त्र से महिष को ब्राह्मण के प्रति समर्पित कर दे।

प्रतिगृह्य तु तद्दानं गृहीत्वा[2] क इदं पठेत्।
यात्रायाः फल[3]···मुभयोस्तु भविष्यति॥

उस दान को ग्रहण कर 'कः-कौन' यह पढ़े। यात्रा का······फल दोनों को होता है।

ततः कुर्यान्महादेवि यष्टिमोक्षणमन्ततः।
एवं कृत्वा महायात्रां ततो यायाद्यथेच्छया॥

हे महादेवि ! इसके बाद अन्त में यष्टिमोक्षण करे। इस प्रकार महा-यात्रा कर इच्छानुसार जाए।

इत्थं कृत्वा महायात्रां केदारस्य विशेषतः।
सर्वपापविनिर्मुक्तो याति सादाशिवं पदम्॥

इस प्रकार विशेषकर केदार की महायात्रा कर सभी पापों से मुक्त हो कर सादाशिव पद को पाता है।

इति ते सर्वमाख्यातं यत्पृष्टोऽहमिह त्वया।
भैरवे विषये पुण्ये केदारस्य फलं महत्॥

---

१ ग्रहाण २ ग्रहीत्वा ३ पाठाभाव

इस प्रकार यह सब कुछ पुण्यप्रद भैरव के विषय में केदार का महाफल मैंने तुझे कह दिया है, जो यहाँ तूने मुझे पूछा था।

इदानीं देवदेवेशि किं भूयः श्रोतुमिच्छसि।
इत्येष पटलो गुह्यो महाभैरवभाषितः[1]।
श्रुतश्च पठितो घ्यातो महापातकहा कलौ॥

हे देवेशि! अब फिर तुम क्या सुनना चाहती हो, कलियुग में महापापों का नाश करने वाला यह पटल गुह्य महाभैरव से कहा हुआ तुमने सुना, पढ़ा और चिन्तन किया।

इति श्रीसंहितायां भैरवविषये केदारमाहात्म्यं नाम पटलः॥५॥

---

१ भाषितं

श्री भैरव उवाच—श्रीभैरव बोले—

श्रुतं भवत्प्रसादेन भैरवे विषये महत्।
माहात्म्यममरेशान पुण्यं केदारसम्भवम् ॥

हे अमरेशान ! पुण्यकर केदारमाहात्म्य भैरवदेश में आपकी कृपा से बहुत सुना।

कृतार्थोस्मि कृतार्थोस्मि कृतार्थोस्मि न संशयः।
अधुना श्रोतुमिच्छामि मन्दोदरफलं महत् ॥
महिषस्योदरं यत्र दृष्टं तैश्च महात्मभिः।
यच्छ्रुत्वा मुच्यते जन्तुः कलिकल्मषसञ्चयैः ॥

कृतार्थ हूं, कृतार्थ हूं, कृतार्थ हूं, इसमें संशय नहीं है। अब मैं वह महा मन्दोदरफल सुनना चाहता हूं जहां उन महात्माओं ने महिष का उदर देखा, जिसे सुनकर प्राणी कलियुग के पाप-समूह से मुक्त हो जाता है।

जानू दृष्टौ तु धर्मेण केदारस्य तु भैरवे
नोदरं न शिरो देवि दृष्टं तेन महात्मना ॥

भैरव देश में धर्म ने केदार के घुटने देखे। हे देवि ! उस महात्मा ने न उदर देखा और न सिर देखा।

ततः स तप आस्थाय दुश्चरं मुनिभिः प्रिये।
गच्छ गच्छेति वचनमवदद्वागहानता ॥
श्रुत्वा तु तद्वचः सौम्यं कुत्र गच्छाम्यहं पुनः।
इति संशयितो धर्मो मनसाचिन्तयत्प्रिये ॥

उसके सौम्य वचन सुनकर 'मैं फिर कहां जाऊं' हे प्रिये ! इस प्रकार संन्दिग्ध मन से धर्म ने सोचा।

इति चिन्तयतस्तस्य पुनश्चाहा[1] शरीरिणी।
वागुल्लोलाख्यविषये व्रज सत्वर[2]मादृतः ॥

इस प्रकार उसके सोचते हुए फिर अशरीरिणी वाणी ने कहा कि उल्लोल देश में आदृत हुए तुम जाओ।

तत्रैव दर्शनं पुण्यं मन्दाकिन्या श्रवाप्स्यसि।

वहीं तुम मन्दाकिनी के पुण्य दर्शन पाओगे।

---

१ पुनश्चाहाः २ सत्वरंमादृतः

इति श्रुत्वा[1] शरीरिणी वागुवाच वचनमुत्तमम् ।
जगामोल्लोलविषयं यात्रास्नानपुरस्सरम् ।।

इस प्रकार शरीरिणी वाणी ने उत्तम वचन कहे। उन्हें सुनकर मैं यात्रा-स्नान के लिये उल्लोल देश में गया।

त्रिदिनन्तु निराहारस्तत्रो[2]वास सुरार्चिते।
ततः प्रसन्नो भगवान्मन्दमुदरमावहत् ।।

हे सुरार्चिते ! मैं तीन दिन वहां निराहार ही रहा। इसके बाद प्रसन्न होकर भगवान् ने मन्द उदर को धारण किया।

दृष्ट्वा मन्दोदरं तत्र स्तुत्वा नुत्वा च भक्तितः।
जयेति भुवनेशान दण्डवत्पतितः क्षितौ ।।

वहां मन्दोदर को देखकर भक्तिपूर्वक उसकी स्तुति कर और नमस्कार कर हे भुवनेशान ! जय हो, इस प्रकार दण्डवत् पृथ्वी पर पड़ गया।

तत उत्थाय चैनन्तु सान्त्वयित्वा च सूक्तिभिः।
[3]मन्दोदरकोशात्तु गङ्गां [4]निस्सृतवान्प्रभुः ।।

इसके बाद उठाकर और इसे सूक्तियों से सान्त्वना प्रदान कर प्रभु ने मन्दोदर कोश से गङ्गा को निकाला।

सा नदी सुरपूज्या तु नाम्ना मन्दाकिनी ह्यभूत्।

वह नदी देवताओं से पूज्य और नाम से मन्दाकिनी हुई।

यस्मादुदरकोशात्तु मन्दं निस्सारितं[5] प्रिये।
स देशः प्रथितोऽद्यापि[6] नाम्ना मन्दोदरः शिवे ।।

हे प्रिये ! जिससे उदरकोश से मन्द निकाला हे शिवे ! वह देश आज भी नाम से मन्दोदर नाम से प्रसिद्ध हुआ।

यत्र मन्दाकिनी पुण्या[7] देवानामपि दुर्लभा।
सैव शीता भवत्यत्र तस्माच्छीतेति संज्ञिता ।।

देवताओं के लिए भी दुर्लभ यहां पुण्य मन्दाकिनी है, वही जहां शीता हुई, इसी से 'शीता' यह नाम हुआ।

श्रान्तानां वाहिनी सैव स्वश्रान्ता साभवततः।
त्रिलोचना च मुनिभिर्दृष्टा त्रिलोचनाभिधा ।।

श्रान्तों के लिए वही वाहिनी है, इसके बाद वह स्वश्रान्ता हुई और 'त्रिलोचना' नामक वह मुनियों से त्रिलोचना देखी गई।

---

१ श्रुत्वाशिरीरिण्या वाचो वचनः २ स्तत्रैवास ३ मंदांचोदरकोशात्तु ४ निसृतवान्प्रभुः ५ निःसारितं ६ प्रथितोःद्यापि ७ पुण्यं

तत्रैव तु शिलायास्तु[1] चैशान्यां दिशि [2]निस्सृता ।
त्रिलोचनस्य शिरसा निस्सृता याभवत्प्रिये ।
तद्वै केदारकं नाम कुण्डं प्रथितमुत्तमम् ।।

वहीं शिला के ईशान दिशा में वह निकली । हे प्रिये ! त्रिलोचन के सिर से जो वह निकली, वह केदार नामक कुण्ड उत्तम प्रसिद्ध हुआ ।

तस्मान्मन्दोदरे ग्रामे[3] स्नातव्यमविशङ्कया ।
दातव्यं च विशेषेण फलं प्राप्नोति यागजम् ।।

इसलिए मन्दोदर ग्राम में निश्शङ्क हो कर स्नान करना चाहिए और विशेषकर दान देना चाहिए । यज्ञ से पैदा हुए फल को पाता है ।

महापातकयुक्तो वा युक्तो वा ह्युपपातकैः ।
स्नात्वा मन्दोदरे[4] तीर्थे मुच्यते पापसञ्चयैः ।।

महापापों से युक्त वा उपपापों से युक्त मन्दोदर तीर्थ में स्नान कर पापसमूह से मुक्त हो जाता है ।

पुण्यं वर्धयते देवि ह्यग्निष्टोमादियागजम् ।
कामी कामा[5]न्नवाप्नोति स्नात्वा मन्दोदरे नरः ।।

हे देवि ! अग्निष्टोम आदि यज्ञ से पैदा हुए पुण्य को बढ़ाता है । मन्दोदर में मनुष्य स्नान कर कामी कामनाओं को पाता है ।

पुरन्दरः प्रदृष्टं[6] तु यत्र केदारस्वामिनः ।
स एव प्रथितो ग्रामः[7] पुण्यो मन्दोदराभिधः ।।

पुरन्दर ने जहां केदार स्वामी के दर्शन किए, वही पुण्य मन्दोदर नाम से ग्राम प्रसिद्ध हुआ ।

भ्रूणहा गोवधो वापि स्त्रीघातो[8]ऽपि महेश्वरि ।
पुण्ये मन्दोदरे स्नात्वा मुच्यते घोरपातकैः ।।

हे महेश्वरि ! भ्रूणहत्यारा, गोहत्यारा वा स्त्रीहत्यारा भी पुण्य मन्दोदर में स्नान कर घोर पापों से मुक्त हो जाता है ।

मातृगामी पितृहा वा भ्रातृजायाग एव वा ।
पितृष्वसृमातृष्वसृस्नुषादुहितृगो[9]ऽपि वा ।।
स्नात्वा मन्दोदरं तीर्थं पीत्वा केदारजं पयः ।
मुच्यते जगदीशानि घोरपातकसञ्चयैः ।।

---

१ शिलाया तु २ निःसृता ३ ग्रंमे ४ मन्दोरवे ५ कामानवाप्नोति ६ प्रदृष्टं ७ ग्रामं: ८ स्त्रीघातोपि ९ दुहितृगोपि

मातृगमन करने वाला, पिता का हत्यारा, भ्रातृजाया गमन करने वाला, पितृष्वसृ-मातृष्वसृ-स्नुषा-दुहिता का गमन करने वाला हे जगदीशानि! मन्दोदर तीर्थं में स्नान कर और केदार से जल का पान कर घोर पापसमूह से मुक्त हो जाता है।

घोरे कलियुगे देवि प्रायः पातकवान्भवेत्।
कुम्भस्थे वै[1] चाङ्गिरसे जीवे स्नानान्मुच्येदघैः ॥

हे देवि! घोर कलियुग में प्रायः पापी हो, कुम्भ और आङ्गिरस में बृहस्पति के होने पर स्नान करने से प्राणी पापों से मुक्त हो जाता है।

[2]कुष्ठी क्षयी पापरोगी दीर्घरोगी च यो नरः।
मन्दोदरे[3] जीववारे स्नात्वा पापैः प्रमुच्यते ॥

कोढ़ी, क्षयी, पापरोगी और दीर्घरोगी जो मनुष्य है, वह बृहस्पतिवार के दिन मन्दोदर में स्नान कर पापों से मुक्त हो जाता है।

यथा जीर्णे[4] काञ्चने तु सर्पो मुच्येद…[5]।
तथा मन्दोदरे जन्तुः स्नात्वा [6]मुच्येदघैः प्रिये ॥

जैसे केंचुली के जीर्ण हो जाने पर सांप केंचुली छोड़ देता है, वैसे मन्दोदर में प्राणी स्नान करके हे प्रिये! पापों से मुक्त हो जाता है।

आयुष्कामैः कीर्तिकामैः पुत्रकामैर्धनार्थिभिः।
विद्याकामैर्मुक्तिकामैः स्नातव्यमविशङ्कया।
पुण्ये मन्दोदरे ग्रामे सर्वाभिलषितं लभेत् ॥

आयु, कीर्ति, पुत्र, धन, विद्या, मुक्ति की कामना करने वालों को निःशङ्क होकर पुण्य मन्दोदर ग्राम में स्नान करना चाहिए, सारे अभीष्ट सिद्ध हो जाते हैं।

इदं पुंसवनं क्षेत्रमिदमायुष्यवर्धनम्।
इदं कीर्तिप्रदं क्षेत्रं पुत्रदं धनदं तथा।
ज्ञानदं मुक्तिदञ्चापि क्षेत्रमेतदुदीरितम् ॥

यह पुंसवन क्षेत्र है। यह आयु बढ़ाने वाला है। यह कीर्ति देने वाला और पुत्र तथा धन देने वाला है। यह क्षेत्र ज्ञान देने वाला और मुक्ति देने वाला कहा गया है।

बहुनात्र किमुक्तेन भूयो भूयो वरानने।
स्नात्वा केदारके कुण्डे पीत्वा तद्वारि निर्मलम् ॥

---

१ वे २ कोष्टी ३ मंदोरे ४ जीर्णं ५ पाठाभाव ६ स्नात्वं

मुक्तिमवाप्नुयुर्देवि कुम्भस्थे जीव उत्तमे।
शतजन्मान्वितैः पापैर्मुच्यन्ते घोरकर्मभिः॥
इति ते सर्वमाख्यातं पुण्यं मन्दोदरं प्रिये।
यच्छ्रुत्वा मुच्यते जन्तुः पापैर्घोरतरैः शिवे॥

हे वरानने! बार-बार यहां बहुत कहने से क्या लाभ? केदार कुण्ड में स्नान कर और उसके निर्मल जल को पीकर उत्तम वृहस्पति के कुम्भ में स्थित होने पर मनुष्य मुक्ति पा लेते हैं और सैंकड़ों जन्मों में किए हुए घोर कर्मों के पापों से मुक्त हो जाते हैं। हे प्रिये! इस प्रकार यह सब मन्दोदर से पैदा हुए पुण्य को मैंने कहा है। हे शिवे! जिसे सुन कर जन्तु घोरतर पापों से मुक्त हो जाता है।

श्रीभैरवी उवाच——श्री भैरवी बोली—

यात्रां वद महेशान पुण्ये मन्दोदरे शुभे।
दानं धर्मं च मे देव कृपया जगदीश्वर॥

हे महेशान! शुभ पुण्यप्रद मन्दोदर में हे देव! जगदीश्वर! यात्रा के विषय में और दान तथा धर्म के विषय में कृपा कर कहिए।

श्री भैरव उवाच——श्री भैरव बोले—

यात्रामस्य प्रवक्ष्यामि दानञ्च वरवर्णिनि।
यत्कृत्वा सफलं तीर्थं भविष्यति न संशयः॥

ह वरवर्णिनि! इसकी यात्रा और दान के विषय में कहता हूं, जिसे करने से तीर्थ सफल होगा, इसमें संशय नहीं है।

आदावेवेति विषये सिद्धक्षेत्रे महेश्वरि।
ततो भुवि तीर्थयुगे स्नातव्यमविशङ्कया॥

हे महेश्वरि! 'आदावेव' देश में सिद्धक्षेत्र में इसके बाद पृथ्वी पर तीर्थयुग में निश्शङ्क होकर स्नान करना चाहिए।

ततौ गिरौ महेशानि तीर्थयुग्मे व्रजेन्नरः।
ततो मन्दोदरे ग्रामे यात्रामेवं विधाय च॥
स्नात्वा मन्दाकिनीतीर्थे पीत्वा केदारजं पयः।
पापपुण्यविनिर्मुक्तो याति सदाशिवं पदम्॥

हे महेशानि! इसके बाद पर्वत पर मनुष्य दोनों तीर्थों में जाए। तदनन्तर नवदल में गङ्गा में शुभ गङ्गा के जल में स्नान कर बाद में मन्दोरक ग्राम में इस प्रकार यात्रा कर और मन्दाकिनी तीर्थ में स्नान कर तथा केदार के जल का पान कर पाप-पुण्य से मुक्त हुआ पुरुष सदाशिव पद को पाता है।

दानमन्त्र प्रवक्ष्यामि मन्दाकिन्यां शुभप्रदम् ।
येन दानेन मनुजस्तीर्थसाफल्यमाप्नुयात् ॥

यहां मन्दाकिनी में शुभप्रद दान के विषय में कहता हूं, जिस दान से मनुष्य तीर्थ की सफलता को पाता है ।

सौवर्णी प्रतिमाँ[1] कृत्वा यवपिष्टमयीमपि ।
स्वर्णमीनां रत्ननेत्रां मुक्ताहारविभूषिताम् ॥
धातुकुम्भे तिलपात्रे संस्थाप्य विधिवन्नरः ।
सम्पूज्य पुण्यैर्गन्धैश्चाप्यक्षतैर्माल्यहारकैः ॥
वासोभिर्विविधैश्चैव पुण्यैः स्वर्णमयैः प्रिये ।
शिवविष्णुस्वरूपस्त्वं ब्रह्मब्रह्मस्वरूपकः ॥
मद्यात्रासफलार्थं च सौवर्णी प्रतिमामिमाम् ।
[2]वासोऽलङ्कारयुक्तां त्वं गृहाण मदनुग्रहात् ॥

जौ की पीठी से बनाई गई रत्न निर्मित नेत्र युक्त और मोतियों के हार से विभूषित सुनहरी मछली की सोने की प्रतिमा बनाकर और उसे धातुमय कुम्भ पर तिलयुक्त पात्र में विधिपूर्वक स्थापित कर तथा पुण्यप्रद गन्ध-अक्षत-माला-हार एवं अनेक प्रकार के ऊन के बने हुए पुण्य वस्त्रों से पूजा कर 'तुम शिवविष्णु रूप हो और ब्रह्मस्वरूप हो, मेरी यात्रा की सफलता के लिए वस्त्र-अलंकारों से युक्त इस सुवर्ण निर्मित प्रतिमा को मेरे पर कृपा कर ग्रहण करो ।

इति मन्त्रेण देवेशि गृह्णीयात्प्रतिमां शुभाम् ।
ददानीति वदन्वाक्यं गृहीत्वा क इदं पठेत् ॥

हे देवेशि ! इस मन्त्र से शुभ प्रतिमा का ग्रहण करे । 'ददानि' यह कहते हुए ग्रहण कर 'कः-कौन' यह पढ़े ।

उभयोः सफलं तीर्थं भविष्यति न संशयः ।

दोनों का तीर्थ सफल होगा, इसमें संशय नहीं है ।

यष्टिमोक्षं ततः कुर्याद्यात्रासाफल्यमाप्नुयात् ।
इति ते सर्वमाख्यातं यत्पृष्टो[3]ऽहमिह त्वया ।
इदानीं देवदेवेशि किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥

इसके बाद यष्टिमोक्ष करे, यात्रा में सफलता पाए । इस प्रकार यह तुझे सब कुछ मैंने कह दिया, जो तूने यहां मुझे पूछा था । हे देवदेवेशि ! अब फिर तुम क्या सुनना चाहती हो ?

इति श्रीश्रीसंहितायां मन्दोदरग्रामवर्णनं नाम पटलः षष्ठः ॥६॥

---

१ सौवर्णी प्रतिमा कृत्वा २ वासोलङ्कार ३ यत्पृष्टोह

श्रीभैरवी उवाच— श्री भैरवी बोली

स्मारं स्मारं महादेव शुभं मन्दोरग्रामकम्[1] ।
पुण्यां मन्दाकिनीं चापि पुण्यं [2]केदारतीर्थकम् ।
अद्भुतं परमं मन्ये त्वत्प्रसादान्महेश्वर ।।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि[3] ग्रामे देवालये[4] शुभे ।
केदारतीर्थस्य फलं जगतां हितकाम्यया ।।

हे महादेव ! शुभ मन्दोर ग्राम को स्मरण कर और पुण्यप्रद मन्दाकिनी एवं पुण्य केदार तीर्थ को स्मरण कर हे महेश्वर ! आपकी कृपा को अद्भुत और परम मानता हूं । अब मैं जगत् की हितकामना से शुभ देवालय ग्राम में केदारतीर्थ के फल को सुनना चाहती हूँ ।

श्रीभैरव उवाच—श्री भैरव बोले

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि भृङ्गिणो विषये महत् ।
पुण्ये देवालये ग्रामे पुण्यं केदारतीर्थजम् ।

हे देवि ! सुनिए, मैं तुझे भृङ्गि के विषय में पुण्यप्रद देवालय ग्राम में केदार तीर्थ में पैदा हुए महापुण्य को कहता हूं ।

सप्तर्षयो यत्र पुरा श्रुत्वा केदारकेश्वरम् ।
पाण्डवा दर्शनं प्राप्य घोरे कलियुगे शुभे ।
अतप्यन्त[5] तप उग्रं वै दिव्यं द्वादशवर्षकम् ।।
मनः संयम्य मनसि तद्ध्यानाभिरताः प्रिये ।
ददृशुस्ते परं तत्र केदारेश्वरनामकम् ।।

पूर्व युग में जहाँ सप्तर्षियों से केदारकेश्वर के विषय में सुन कर अशुभ घोर कलियुग में पाण्डवों ने दिव्य १२ वर्ष तक उग्र तप किया । हे प्रिये ! मन का संयमन कर मन में उसी के ध्यान में लगे हुए उन्होंने वहाँ केदारेश्वर के दर्शन किए ।

ॐ देवं त्रिजटं त्रिलोचनयुतं त्रेताग्निकान्ति प्रभुं
पञ्चास्यं शरयुग्मबाहुममल[6]माशीर्विषाभूषणम् ।

---

१ ग्रामके २ कीदार ३ श्रोतुमिग्रामे ४ देवलये ५ अतप्यंतप उग्रं
६ ममलंमाशी

खट्वाङ्गं त्रिशिखं कुठारडमरूपाशं कपालाङ्कुशं
पद्मं चाक्षधनु:कमण्डलुधरं केदारनाथं नुम: ।।

त्रिजट त्रिलोचनयुक्त, त्रेताग्निकान्ति, प्रभु, पञ्चास्य, शरयुग्मयुक्त बाहु वाले अमल, आशीविष से आभूषित, खट्वाङ्ग, त्रिशिख, कुठारडमरु-पाश और कपालाङ्कुश से युक्त (सर्प) पद्म-अक्षधनुष-कमण्डलु को धारण किए देव श्री केदारनाथ को हम नमस्कार करते हैं।

इत्थं दृष्ट्वा तु तं देवं केदारेश्वरनामकम् ।
सप्तर्षय: स्वकेऽरण्ये पतिता दण्डवत्क्षितौ ।।

इस प्रकार केदारेश्वर नामक उस देव के दर्शन करके सप्तर्षि अपने वन में दण्डवत् पृथ्वी पर पड गए।

उत्थाय पुनरेवात्र देवदेव......७

श्री सप्तर्षय ऊचु:—सप्तर्षि बोले—

ॐ नमो नमस्ते परमार्ति हारिणेहराय विश्वम्भररूपधारिणे ।
सर्पाभिभूषाय वरेश्वराय ते वामाङ्गवामा धृतविश्वरूपिणे ।।१।।

परम-दु:ख का हरण करने वाले, विश्वम्भर रूप को धारण करने वाले सर्प से भूषित,वरेश्वर, वामाङ्ग में स्थित वामा से धृत विश्वरूप वाले हर-महादेव तुझे नमस्कार है।

विभूतिभूषाय विभूतिधारिणे कलापिने भूतिसिताय शाम्भवे ।
शमाय शान्ताय श्रमार्तिहारिणे शमीनिवासाय च ते नमोनम: ।। २ ।।

विभूति से विभूषित, विभूति धारण किए हुए, विभूति से श्वेत वर्ण वाले, शमस्वरूप, शान्त, थकावट के दु:ख को दूर करने वाले, शमीनिवास, शम्भु तुझे नमस्कार है।

श्रमार्तिनां श्रमहराय शाम्भवीशक्तिस्वरूपाय च ते नमो नम: ।
शमीभवायामि स्वयम्भवे स्तवे शुभङ्करायापि शुभार्थिनामपि ।। ३ ।।
शिवाय शान्ताय शरीरधारिणे गिरामधीशाय ते नमो नम: ।
यत: सर्वमिदं भाति यत्र चैव विलीयते ।
य इदं सर्वमेतद्यत्तस्मै कस्मै च ते नम: ।।

थकावट से पीड़ितों के श्रम का हरण करने वाले और शाम्भवीशक्ति-स्वरूप तुझे नमस्कार है। शमीभव, स्वयम्भू, स्तव, शुभार्थियों के लिए भी शुभङ्कर, शान्तस्वरूप शरीरधारी, गिरीश, शिव तुझे नमस्कार है।

जिससे यह सब कुछ प्रकाशित होता है और जहाँ विलीन हो जाता है, जो यह सब कुछ है, उस किसी तुझे नमस्कार है।

भैरवी उवाच—भैरवी बोली

इत्थं स्तुत्वा तु मुनयः केदारेश्वरमन्ततः।
प्रणम्य दण्डद्भूमौ पेतुश्चैव पुनः पुनः॥

अन्ततः इस प्रकार मुनि केदारेश्वर की स्तुति कर और बार-बार भूमि पर दण्डवत् प्रणाम कर गिरने लगे।

तत उत्थाप्य भगवान्मुनीन्वै भावितात्मनः।
मेघगम्भीरया वाचा प्रोवाच जगदम्बिके॥

हे जगदम्बिके! इसके बाद भावितात्मा मुनियों को उठाकर भगवान् ने मेघ के समान गम्भीर वाणी से कहा।

वरं वृणुध्वं मुनयो यद्यूयमनुमन्यथ।
तद्वो दास्यापि मुनयो देवानामपि दुर्लभम्॥

हे मुनियो! जो तुम चाहते हो, वह वर मांगो। हे मुनियो! देवताओं के लिए भी दुर्लभ वह वर मैं दूंगा।

इति श्रुत्वा वचो दिव्यमीश्वरस्य मुनीश्वराः।
ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे कोऽन्यस्त्वद्दर्शनाद्वरः॥

ईश्वर के यह दिव्य वचन सुनकर सभी मुनीश्वरों ने दोनों हाथ जोड़ कर कहा कि तुम्हारे दर्शन से श्रेष्ठ अन्य क्या है?

तथापि ब्रूहि देवेश पाण्डूनां विमुखार्थतः।
त्वद्दर्शनतो देव सर्वे विमनसो वयम्॥

हे देवेश! तो भी पाण्डुओं के विषय में...कहिए। हे देव! तुम्हारे दर्शन से हम सब......

इदानीं त्वत्प्रियार्थं तु दर्शय[1] रूपमुत्तमम्।
केदारनाथस्य प्रियं देवानामपि दुर्लभम्॥

अब तुम्हारे प्रिय के लिए देवताओं के लिए भी दुर्लभ प्रिय केदारनाथ का उत्तम रूप दिखाइए।

इत्थंरूपो भवेयं वै त्वद्वने पुण्ये उत्तमे।
स्थास्यामि देवरूपोऽहं[2] त्वदनुग्रहकाम्यया॥

---

१ दर्शये २ देवरूपोयं

तुम्हारे पुण्यप्रद उत्तम वन में इस प्रकार के रूप वाला मैं होऊँ। तुम्हारे अनुग्रह की कामना से में देवरूप······

इति प्रोक्तः पुनर्देवः शम्भुः सप्तमुनीन्प्रिये।
तस्थौ केदारनाथस्तु देवदेवः स्वयं प्रभुः॥

हे प्रिये ! यह फिर देव शम्भु ने सप्तमुनियों से कहा। देवाधिदेव स्वयं प्रभु केदारनाथ के रूप में स्थित हुए।

देवादले महाग्रामे सप्तर्षिवन उत्तमे।[1]
यस्माद्देवो महापुण्ये केदारेश्वरनामकः।
अतिष्ठदत्र वै देवि तस्माद्देवालयः स्मृतः॥

उत्तम सप्तर्षिवन देवादल महाग्राम में देवाधिदेव स्वयं प्रभु केदारनाथ के रूप में स्थित हुए। हे देवि ! जिससे महापुण्य में केदारेश्वर नामक देव जहाँ ठहरे, इसी से 'देवालय' कहा गया।

तस्माद्देवालये पुण्ये भृङ्ग्यां स्नात्वा व्रजेत्पुनः।
धाराममृतरूपस्य गङ्गामाकाशगां नः॥

इस पुण्य देवालय में भृङ्गी में स्नान कर फिर आकाशगामिनी अमृत-रूप की गङ्गाधारा को जाए।

ततः केदारमादद्यात्पीत्वा तत्तोयमुत्तमम्।
अपुनर्भवतामेति न पुनस्स्तन्यपो[2] भवेत्॥

इसके बाद केदार को ग्रहण करे और उसके उत्तम जल को पीकर अपुन-र्भवता को प्राप्त होता है, फिर स्तनों के दूध को नहीं पीए।

देवालये हटं दृष्ट्वा केदारं जगदम्बिके।
न पुनरेति भवनं[3]मार्त्यं मर्त्य[4]सुदुर्लभम्॥

हे जगदम्बिके ! देवालय में केदार-हर के दर्शन कर फिर मर्त्यों के लिए सुदुर्लभ मार्त्यभवन को प्राप्त नहीं होता है।

देवालये च यः स्नाति यो ददाति महेश्वरि।
जपेच्चाधीयते यश्च स याति परमं पदम्॥

हे महेश्वरि ! देवालय में जो स्नान करता है, जो दान देता है और जो जप करे तथा······वह परम पद का पाता है।

---

१. सप्तर्षिवन उत्तमे सप्तर्षवन उत्तमे   २ पुनस्तन्यपो,   ३ भवनमार्त्यं
४ मत्यसुद०

देवालयं गमिष्यामि यास्यामि चिन्तयंश्च यः ।
स याति परमं पुण्यमश्वमेध[1]यागजम् ॥

जो देवालय को जाऊँगा, जाऊँगा, इस प्रकार सोचता है, वह अश्व-मेध यज्ञ से पैदा हुए परम पुण्य को प्राप्त होता है ।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन केदारं क्षेत्रमाश्रयेत् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो मुक्तो भवति मानवः ॥

इससे सभी यत्न से केदारक्षेत्र का आश्रय ले सभी पापों से मुक्त होकर मनुष्य मुक्त हो जाता है ।

इत्युक्त्वा भैरवो देवान्वरं दत्वा यथार्हतः ।
प्रहस्य स्वनवत्तत्र चिरमन्तर्धिमागतः ॥

इस प्रकार वह भैरव देवताओं को यथायोग्य वर देकर और आदर के साथ हंसकर वहाँ चिरकाल के लिए अन्तर्धान हो गए ।

तदा प्रभृति देवेशि केदारं क्षेत्रमुत्तमम् ।
प्रथितं भुवने पुण्ये भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥

हे देवेशि ! तब से लेकर आज तक मुक्ति और भुक्ति दोनों के फल को देने वाला यह उत्तम केदारक्षेत्र पुण्य भुवन में प्रसिद्ध है ।

इति ते सर्वमाख्यातं यत्प्रष्टोऽह[2]मिह त्वया ।
इदानीं[3] देवदेवेशि किं भूयः श्रोतुमिच्चसि ॥

इस प्रकार यह सब कुछ मैंने कह दिया है, जो तूने मुझसे पूछा । हे देवदेवेशि ! अब तू फिर क्या सुनना चाहती हो ?

इति श्रीश्रोसंहितायां केदारमाहात्म्ये वराहक्षेत्रं नाम [4]सप्तमः पटलः ॥

---

१ मेधं २ त्प्रष्टोह ३ इदानी ४ मू० पु० में पाठाभाव

ॐ श्री भैरवी उवाच— श्री भैरवी बोली—

स्मारं स्मारं महादेव वराहक्षेत्र उत्तमे ।
केदारनाथमाहात्म्यं कृतार्थास्मि न संशयः ।।

हे महादेव ! उत्तम वराह क्षेत्र में केदारनाथ के माहात्म्य को स्मरण कर-स्मरण कर मैं कृतार्थ हुई हूं, इसमें संशय नहीं है ।

इदानीं सुमहत्प्रश्नः प्रतना सूचितो मम ।
कलौ चतुर्धा तीर्थे तु भविष्यति कुतस्तु तत् ।।

अब मेरे मन में प्रतनासूचित महान् प्रश्न है कि कलियुग में चतुर्धा तीर्थं में वह कहां से होगा ।

छिन्धि मे संशयं देव ह्यनुग्राह्यास्मि चेत्प्रभो ।
कुत्र कुत्र चतुर्धा[1] तद्भविष्यति महेश्वर ।
तत्र तत्रापि माहात्म्यं वद लोक[2]हितेप्सया ।।

हे देव ! मेरे संशय को काटिए, हे प्रभो ! यदि मैं आपकी अनुग्राह्या हूँ । हे महेश्वर ! कहां-कहां चतुर्धा में वह होगा ? वहां-वहां पर भी लोकहित की इच्छा से माहात्म्य कहिए ।

श्री भैरव उवाच—श्री भैरव बोले

शृणु सुन्दरि वक्ष्यामि प्रश्नमेतत्सुगुह्यकम् ।
यच्छ्रुत्वा मुच्यते जन्तुर्जन्मकोटिभवैरघैः ।।

हे सुन्दरि ! सुनिए, यह गुप्त प्रश्न मैं तुझे कहता हूँ जिसे सुनकर प्राणी करोड़ों जन्म में पैदा हुए पापों से मुक्त हो जाता है ।

भूमिर्भूरिभराक्रान्ता भविष्यति कलौ युगे ।
मदाज्ञया मुनिपूर्वौ नरनारायणा[3]वुभौ ।
भूमिभारावतारार्थमत्रैवावतरिष्यतः ।।

कलियुग में भूमि बहुत भार से आक्रान्त होगी । मेरी आज्ञा से नर और नारायण दोनों मुनि भूमि के भार को उतारने के लिए यहीं अवतरित होंगे ।

नरः पूरुकुले देवि यदा[4]नारायणो भवेत् ।
देवाश्च सर्वे देवेश्य[5]वतरिष्यन्ति चांशकैः ।।

---

१ चतुर्धं २ लंक ३ बुभौ ४ यदो नीरायणो ५ देवेश्यऽवतरि

हे देवि ! पूरुकुल में जब नारायण नर हो, तब सभी देवता हे देवेशि ! अंशरूप में अवतरित होंगे ।

अपनीय भुवो भारं कृत्वा सर्वे कुलक्षयम् ।
तीर्थयात्राप्रसंगेनागामिष्यन्त्यत्र यत्नतः ॥

वे सभी पृथ्वी के भार को दूर कर और कुलक्षय कर तीर्थ यात्रा प्रसंग से यत्नपूर्वक यहां आएंगे ।

दृष्ट्वा तु तान्नहं[1] सर्वा···[2]न्विमुखो[3]ऽभवम् ।
मौखर्यं वायुपुत्रो[4]ऽपि मुहुर्मद्दर्शने[5]ऽकरोत् ॥
कालसूचनया तेषां मया दर्शितमुत्तमम् ।
कालवाहनरूपेणाप्यधोभागेन सुन्दरि ॥

हे सुन्दरि ! कालवाहनरूप से भी अधोभाग से मैंने कालसूचना से उन्हें उत्तम दिखाया ।

तद्रूपेणाचलं भद्रे भीमो भीमपराक्रमी ।
अनुधाविष्यति च मामुग्रं महिषरूपिणम् ॥

हे भद्रे ! उस रूप से भीमपराक्रमी भीम अचल, उग्रमहिषरूप की ओर दोड़ेगा,

अनुधाव्य ततो देवि पुच्छ[6]मुद्ग्राहयिष्यति ।
मौखर्येण तु भीमस्य करिष्ये मुखगोपनम् ॥

हे देवि ! इसके बाद दौड़कर वह पूँछ पकड़ेगा । मौखर्य से भीम का मुखगोपन करेगा ।

निर्भत्स्य भीमं धर्मात्मा ज्येष्टः पाण्डुसुतः प्रिये ।
स्तुत्वा वेदोचितैः सूक्तैः स्वं चतुर्धा ह्यदर्शयम् ॥

हे प्रिये ! धर्मात्मा ज्येष्ट पाण्डुपुत्र ने भीम को डांटकर वेदोचित सूक्तों से स्तुति कर अपने को चतुर्धारूप में दिखाया ।

वरदानेन······[7] युधिष्ठिरमहं शिवे ।
तेनापि हि वृतो मह्यं दर्शनं देह्यनुग्रहात् ॥
मयोक्तः स तदा धर्मो वाहनेनैव सुव्रत ।
घोरं पन्थानमारुह्य मत्सालोक्यमवाप्स्यसि ॥

---

१ तानहं २······ ३ न्विमुखो भवं ४ वायुपुत्रोपि ५ मद्दर्शने करोव
६ पुछ ७ संद्दन्य

हे सुव्रत ! मैं तब वह धर्म कहा। बाहर से ही घोर मार्ग को पारकर मेरे सालोक्य को तू पाएगी।

इदं मे माहिषं रूपं पश्य मे पापहं प्रिये।
मलाक्ताः सततं सर्वे न मां दृष्टुमिहार्हथ ॥

हे प्रिये ! मेरा यह पापों को नष्ट करने वाला माहिष रूप देखो। मल युक्त सभी तुम निरन्तर यहां मुझे देखने योग्य नहीं हो।

एतदेव स्वरूपं मे कलौ द्रक्ष्यन्ति वै जनाः।
एकत्रासनमेकत्र जानू कुक्षि तथैकतः ॥
एकत्र शिरसं मेऽद्य[1] दृष्ट्वा घोरात्प्रमोक्ष्यथ।
श्रुत्वा तु सर्वं मे वाक्यं दृष्ट्वा मां तु विभक्तकम् ॥
कालमुल्लंघ्यते याता मत्सायुज्यमनन्तकम्।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कुम्भसंस्थे बृहस्पतौ।
नरो मत्तीर्थमासाद्य मत्सायुज्यमवाप्नुयात्।

इसी मेरे स्वरूप को कलियुग में मनुष्य देखेंगे। आज मेरे एक जगह आसन को, एक जगह जानुओं को तथा एक जगह कुक्षि को और एक जगह शिर को देखकर तुम घोरपाप से मुक्त हो जाओगे। सभी मेरे वाक्य को सुनकर और विभक्तक कालस्वरूप मुझे देख कर मेरे अनन्त सायुज्य को प्राप्त हुए...इसलिए सभी यत्न से कुम्भ में वृहस्पति के स्थित होने पर मनुष्य मेरे तीर्थ को पाकर मेरे सायुज्य को पाए।

श्रीभैरव उवाच--श्रीभैरव बोले

श्रृणु वक्ष्ये महादेवि कुम्भस्थे च वृहस्पतौ।
फलं केदारके पुण्ये हेतुमच्च विशेषतः ॥
वृहस्पतिर्नरं दृष्ट्वा शक्रस्य सदने प्रिये।
जहास महिषं रूपं दृष्टं केदारके त्वया ॥

हे महादेवि ! सुनिए, कुम्भ में वृहस्पति के स्थित होने पर पुण्य केदारक क्षेत्र में विशेषकर हेतुमत् फल कहूंगा। हे प्रिये ! शक्र के घर में मनुष्य को देखकर वृहस्पति ने केदारकक्षेत्र में तुझसे देखे गए माहिष रूप का उपहास किया।

पापात्मा यत एवासि ततो मद्दर्शनाद् व्रज।
नागन्तव्यं मत्समीपं दूरं तिष्ठ प्रयत्नतः ॥

---

१ मेद्य

क्योंकि तू पापात्मा हो, इसलिए मेरे दर्शन से चला जा। मेरे पास तुझे नहीं आना चाहिए। यत्नपूर्वक मुझ से दूर रह।

इतीन्द्रस्य समक्षं तु श्रुत्वा घोरं वचो गुरुः।
इन्द्रो[1]ऽपि दूषयामास पृथगासनमादिशत्॥

इस प्रकार इन्द्र के समक्ष घोर वचन सुनकर वृहस्पति इन्द्र से भी दूषित हुआ और इन्द्र ने उसे अलग आसन के लिए आज्ञा दी।

एतस्मिन्नन्तरे शक्रो[2]ऽप्यहल्यां समधर्षयत्।

इसी बीच इन्द्र ने भी अहल्या से बलात्कार किया।

अभिमानाहिदष्टेन दुष्टेना[3]प्यन्तरात्मना।
धर्षितं स्वकलत्रं च गौतमर्षिः प्रतापवान्।
शप्त्वा भगशतं शक्रं [4]सोऽप्यासील्लज्ज यानतः।

दुष्ट अन्तरात्मा वाले अभिमानी इन्द्र से अपमानित अपनी पत्नी को देखकर प्रतापी गौतम ऋषि ने इन्द्र को शाप दिया कि तुम सौ भग वाले बन जाओ। इस प्रकार इन्द्र को शाप देकर वह लज्जा से झुक गया था।

दृष्ट्वा वृहस्पतिः[5] शक्रं शप्तं वै गौतमर्षिणा।
प्रोवाच शक्र भावित्वात्केदारार्थमवातर।
भूमौ स्त्री शिरसं दृष्ट्वा मुच्यते घोरपातकैः।

गौतम ऋषि से अभिशप्त इन्द्र को देखकर वृहस्पति ने कहा कि हे इन्द्र! केदार तीर्थ को जाओ। वहाँ भूमि पर स्त्री के शिर को देखकर घोरपापों से मुक्त हो जाओगे।

श्रुत्वा गुरोः सार्थकन्तु वचः सौम्यं महेश्वरि।
शक्रः प्रवदतां श्रेष्ठः प्रत्युवाच वृहस्पतिम्॥

हे महेश्वरि! गुरु के सौम्य और सार्थक वचन सुनकर बोलने वालों में श्रेष्ठ इन्द्र ने वृहस्पति से कहा।

त्वत्सहायो[6]ऽवतरिष्ये[7]ऽहं भूमौ केदारके द्विज।
स्नात्वा दृष्ट्वा च विधिना मुच्येयं घोरसंकटात्॥

हे द्विज! केदार भूमि में तुम्हारी सहायता से मैं जाऊंगा। और विधिपूर्वक वहाँ स्नान तथा दर्शन कर मैं घोरसंकट से मुक्त होऊंगा।

---

१ इन्द्रोपि २ शक्रोप्य ३ दुष्टेनाः प्यंत ४ सोप्या ५ वृहस्पर्ति ६ त्वत्सहायोवतरि ७ ष्येह।

इन्द्रस्य वचनं श्रुत्वा गुरुः प्रोक्त्वा तथास्त्विति ।
समुत्थाय ततस्तौ तु भूमिमवतरिष्यतः ।।

इन्द्र के वचन को सुनकर गुरु ने 'तथास्तु' कहा। इसके बाद वे दोनों उठकर भूमि की ओर चल पड़े।

गुरुमागतमालक्ष्य दोषदुष्टमहं तदा ।
अदर्शनं गतोऽ[1]प्यासंस्तयोः प्रत्यक्षमीश्वरि ।।

हे ईश्वरि ! गुरु को आते देख कर तब दोषदुष्ट मैं उन दोनों के सामने लुप्त हो गया ।

स्तुतोऽ[2]प्यासं ततो देवि शक्रेण सुमहात्मना ।
प्रसादितो[3]ऽप्यवदं तं वज्रिणं दीनचेतसम् ।।

हे देवि ! इसके बाद महात्मा शक्र से मेरी स्तुति भी की गई और इस प्रकार प्रसन्न किए गए मैंने दीन चित्त वाले वज्री इन्द्र को कहा।

अपराधाद्गुरोरेतां शक्र प्राप्तस्त्वमापदम् ।
तस्मादागत्य संछन्ने गुरो पश्यतु मां भवान् ।।

गुरु के अपराध से हे इन्द्र ! तूने इस आपत्ति को पाया है, इसलिए आकर गुप्त गुरु में तुम मुझे देखो ।

श्रुत्वैतत्तु विभोर्वाक्यं गुरुं प्राह स वज्रभृत् ।
गच्छ जीव प्रतिच्छन्नो घटराशिमतन्द्रितः ।।

विभु के इस वाक्य को सुन कर इन्द्र ने गुरु से कहा कि हे जीव ! तुम निरालस हो और प्रतिछन्न हो कुम्भराशि में चले जाओ ।

घटच्छन्ने त्वयि विभो नाथं पश्याम्यसंशयम् ।
दर्शनान्मम नाथस्य प्रतियास्यन्ति चापदः ।।

हे विभो । तेरे कुम्भ में स्थित हो जाने पर निस्सन्देह मैं नाथ को देखूंगा नाथ के दर्शन से मेरी आपदायें चली जायेंगी ।

श्रुत्वा शक्रस्य तद्वाक्यं गुरुर्लीनो घटे तदा ।

इन्द्र के इस वाक्य को सुन कर गुरु तब कुम्भ में लीन हो गए ।

प्रतिच्छन्ने गुरौ वर्षे…[4]स्थास्यं वज्रिणः[5] पुरः ।
मां दृष्ट्वा शक्र ईशानि नाथं केदारकेश्वरम् ।
मुक्त्वा तु पातकाद्घोरादारुरोह स्वकं पदम् ।।

---

१ गतोप्या २ स्तुतोप्यासं ३ प्रसादितोप्य ४ मूलपाण्डुलिपि में पाठ नहीं है ५ वज्रिणः ।

गुरु के कुम्भ में लीन हो जाने पर मैं इन्द्र के आगे खड़ा हो गया। हे ईशानि! केदारकेश्वर नाथ मुझे देख कर इन्द्र घोर पाप से मुक्त होकर अपने पद पर आरूढ़ हुए।

तदा जीवोऽपि[1] मां तत्राप्यस्तुवत्परया मुदा।
[2]प्रसन्नोऽप्य भवं जीवे वरदोऽस्मीति[3] तं शृणु॥

तब वृहस्पति ने भी वहीं परम प्रसन्नता से मेरी स्तुति की। मैं वृहस्पति पर प्रसन्न हुआ और वर देने वाला हुआ, उसे सुनिए।

श्रुत्वैतन्मे वचो देवि जगाद स वृहस्पतिः।
प्रसादसमुखो मेऽसि[4] यदि त्वं पापकारिणः॥
वरं चेद्दातु कामोऽसि[5] मम वारे महेश्वर।
कुम्भच्छन्ने मयि विभो दर्शनं दातुमर्हसि॥

हे देवि! मेरे इस वचन को सुनकर वृहस्पति ने कहा कि यदि तुम मुझ पापी के लिए प्रसन्नमुख हो और हे महेश्वर! यदि तुम मेरे बारे में वर देना चाहते हो तो हे विभो! कुम्भ में स्थित मुझे आप अपना दर्शन दीजिए।

इदमेव वरं देव दातुमर्हति वै भवान्।

हे देव! यही वर आप मुझे दीजिए।

श्रुत्वा गुरोर्वाक्यमिदमुवाच भगवांस्तदा।
इतः प्रभृति लोके[6]ऽस्मित्कुम्भच्छन्ने त्वयि द्विज।
त्वद्वारे दर्शनं पश्येज्जनः [7]सर्वोऽप्यसंशयम्॥

गुरु के वाक्य को सुनकर तब भगवान् ने कहा कि हे द्विज! आज से लेकर इस लोक में तेरे कुम्भ में स्थित होने पर तेरे द्वार पर सभी मनुष्य निस्सन्देह दर्शन करें।

मत्सारूप्यं च सायुज्यमेतत्फलमवाप्नुयात्।

मेरे सारूप्य और सायुज्य इस फल को पाता है।

दृष्ट्वा वृहस्पतिरपि प्रसादसमुखं हरम्[8]।
नुत्वा स्तुत्वा च विधिवत्[9]-हरो[10]ऽन्तर्धानमागतः॥

वृहस्पति ने भी प्रसादसमुख शिव को देख कर विधिपूर्वक उन्हें नमस्कार तथा स्तुति की। तदनन्तर शिव अन्तर्धान हो गए।

---

१ जीवोपि २ प्रसन्नोप्य ३ वरदोस्मी ४ मेसि ५ कामोसि ६ लोकेस्मि ७ सर्वोप्य ८ हरंम् ९ विधित् १० हरोन्तर्धान

तदा प्रभृति देवेशि कुम्भच्छन्ने वृहस्पतौ ।
गुरुवारे तु मां दृष्ट्वा केदारेश्वरकं ततः ॥
मुच्यते कोटिहत्याभिरिति सत्येन ते शपे ॥

हे देवेशि ! तब से लेकर वृहस्पति के कुम्भ में स्थित होने पर गुरुवार के दिन मुझे इसके बाद केदारेश्वर के दर्शन कर मनुष्य करोड़ों हत्याओं से मुक्त हो जाता है, यह मैं तुझे सत्य की शपथ लेकर कहता हूँ ।

इति ते कथितं देवि वृत्तं केदारसम्भवम् ।
यच्छ्रुत्वा मुच्यते जन्तुर्जन्मकोटिभवैरघैः ॥

हे देवि ! इस प्रकार यह तुझे मैंने केदार से पैदा हुआ वृत्त कहा है, जिसे सुनकर प्राणी करोड़ों जन्मों में पैदा हुए पापों से मुक्त हो जाता है ।

इत्येष पटलो गुह्यो महापातकहा कलौ ।
श्रुतः संपठितो[1]ऽध्यातो महापापहरः स्मृतौ ।

इस प्रकार यह गुह्य पटल कलियुग में महापापों को नष्ट करने वाला है । स्मृति में सुना गया, पढ़ा गया, पढ़ाया गया महापापों का हरण करने वाला है ।

इति श्रीसंहितायां श्रीभैरवीभैरवसंवादे केदारमाहात्म्ये चतुर्विधतीर्थकुम्भस्थजीवयात्राहेतुवर्णनं नाम अष्टमः पटलः ॥८॥

समाप्तञ्चेतत्केदारमाहात्म्यं भविष्योत्तरे ॥
सम्वत् १८०९ पौष[2]शुदिपूर्णिमायां समाप्तीकृतम् ॥

---

१ संपठितोध्यातो० २ पौशुवि

ॐ श्री विघ्नौघहर्त्रे नमः ।।

श्री देव्युवाच— श्री देवी बोलीं—

वद मे कृपया देव पुष्करं तीर्थमुत्तमम् ।
यच्छ्रुत्वा मुच्यते जन्तु[1]र्महापातककोटिभिः ।।

हे देव ! कृपा कर मुझे उत्तम पुष्कर तीर्थ के विषय में कहिए, जिसे सुनकर जन्तु करोड़ों महापापों से मुक्त हो जाता है ।

श्री भैरवी उवाच : श्री भैरव बोले—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि पुष्करं तीर्थमुत्तमम् ।
यस्य श्रवणमात्रेण वाजपेयं लभेन्नरः ।।

हे देवि ! सुनिए, मैं उत्तम पुष्कर तीर्थ के विषय में कहूंगा, जिसके सुनने मात्र से मनुष्य वाजपेय यज्ञ के फल को पाता है ।

जगत्सिसृक्षतः स्रष्टुः[1] सूर्य चैव महेश्वरि !
पद्मासनस्य पत्राणि प्रफुल्लानि तदाम्बिके ।।

हे महेश्वरि ! जगत् की रचना करते हुए विधाता के सूर्य और पद्मासन के पत्र तब हे अम्बिके ! प्रफुल्लित हुए ।

सिसृक्षतः पुनस्तस्य श्रमः समभवत्किल ।
श्रमात्स्वेदःसमुत्पन्नो ह्यंगात्स्वेदोऽ[2]क्षरत्प्रभोः ।।

फिर रचना करते हुए उन्हें श्रम हुआ, श्रम से पसीना पैदा हुआ । हे प्रभो ! अङ्ग से पसीना बहने लगा ।

पद्मासनस्य शृङ्गाद्यत्तस्य तोयमभूत्प्रिये ।
विकासात्तज्जलं देवि पतितं तत्र पर्वते ।।

हे प्रिये ! पद्मासन के शृङ्ग से उसका जो जल हुआ । हे देवि ! विकास से वह जल वहां पर्वत पर पड़ा ।

भंगीलायां च विषये तत्तीर्थमभवत्पुरा ।
पुष्करं नाम वै प्रोक्तं[3]प्रथितं च जगत्त्रये ।।

पूर्वयुग में भंगीला देश में वह तीर्थ हुआ और वह तीनों लोकों में 'पुष्कर' नाम से कहा गया तथा प्रसिद्ध हुआ ।

---

१ सृष्टुः २ स्त्वेदोक्षर ३ पद्मदलेपात्

बहुधा प्रसृतं तोयं पुण्यं पद्मदले[१]ऽपतत् ।
तदेव पुष्करं नाम तीर्थम[२]भवत्किल ।।

बहुत प्रकार से पद्मदल पर बिखरा हुआ पुण्यजल गिर पड़ा, वही पुष्कर नाम तीर्थं हुआ ।

[३]पुष्णातिसुखं राति तस्मात्पुष्करमुच्यते ।
[४]स्रष्टुरङ्गाच्च्युतं यस्मात्स्थितं पुष्करपत्रके ।।

यह पुष्ट करता है और सुख देता है, इसी से 'पुष्कर' कहा जाता है । जिससे विधाता के अङ्ग से पुष्कर पत्र पर स्थित हुआ, इसी से पुरातत्ववेत्ताओं ने इसे 'पुष्कर' नाम से कहा है ।

तस्मात्प्रोक्तं पुराविद्भिः पुष्करं नाम नामतः ।।
पुष्णाति च जलं राति मोक्षलक्ष्मीमपीश्वरि ।
तस्मात्पुष्करमित्युक्तं वेदतन्त्रविचिन्तकैः ।।

हे ईश्वरि ! पुष्ट करता है और जल एवं मोक्षलक्ष्मी देता है, इसी से वेदतन्त्रविचारकों ने इसे 'पुष्कर' कहा है ।

पुण्यं पणाति तोयेन राति मोक्षमथाम्बिके ।
तस्मात्प्रोक्तं पुष्करकं [४]तीर्थंशास्त्रविशारदैः ।।

हे अम्बिके ! जल से पुण्य······ और मोक्ष देता है, इसी से तीर्थशास्त्र विशारदों ने इसे 'पुष्कर' तीर्थं कहा है ।

पुष्करे[५] दुष्करं दानं पुष्करे दुष्करं तपः ।
पुष्करे दुष्करं स्नानं जपश्चैव सुदुष्करः ।।

पुष्कर में दान दुष्कर है, पुष्कर में तप दुष्कर है, पुष्कर में स्नान दुष्कर है और जप दुष्कर है ।

महापातकयुक्तो वा युक्तो वा ह्युपपातकैः ।
पुष्करे स्नानमात्रेण मुच्यते सर्वकिल्विषात् ।।

महापाप से युक्त अथवा उपपापों से युक्त पुरुष पुष्कर में स्नान मात्र से सभी पापों से मुक्त हो जाता है ।

श्री भैरवी उवाच—श्री भैरवी बोलीं—

वद पुष्करमाहात्म्यं विस्तरेण महेश्वर !
यात्रामपि महादेव ! पुष्करस्य कदा क्व च ।।

---

१ तीर्थसमभ २ पुस्णाति ३ सृष्टुरङ्गा ४ तीर्थशास्त्र ५ पुष्करं

हे महेश्वर ! विस्तारपूर्वक पुष्कर के माहात्म्य को कहिए और पुष्कर की यात्रा कब और कहां हुई, इस विषय में भी कहिए।

यच्छ्रुत्वा मुच्यते जन्तुः कोटिजन्मभवैरघैः।

जिसे सुनकर जन्तु करोड़ों जन्मों में पैदा हुए पापों से मुक्त हो जाता है।

श्रीभैरव उवाच—श्री भैरव बोले—

श्रृणु देवि प्रवक्ष्यामि महिमानमनुत्तमम्।
विस्तरेण महादेवि फलं क्षेत्रसमुद्भवम्॥

हे देवि ! सुनिए, मैं इसकी अत्युत्तम महिमा और इस क्षेत्र से पैदा हुए फल को विस्तारपूर्वक कहूंगा।

श्रमस्वेदे समुद्भूतं ब्रह्मणोऽ[1]व्यक्तजन्मनः।
पुण्यं श्रीपद्मनाभेन संगतं परमात्मना।
पुण्यदं पापहं कलौ किल्विषनाशनम्॥

अव्यक्तजन्मा ब्रह्मा के श्रमस्वेद में परमात्मा श्री पद्मनाभ से संगत पैदा हुआ पुण्य कलियुग में पुण्य देने वाला, पाप को नष्ट करने वाला और पापों का नाश करने वाला है।

त्रिमलघ्नं[2] महादेवि त्रितापघ्नमपीश्वरि।
त्रिविघ्नघ्नमपि प्रोक्तं त्रिपुष्करमुदाहृतम्॥

हे महादेवि ! यह त्रिपुष्कर तीन प्रकार के मल को नष्ट करने वाला, तीन प्रकार के ताप को नष्ट करने वाला और तीन प्रकार के विघ्नों को भी नष्ट करने वाला कहा गया है।

शुभे भाद्रपदे मासे[3] ह्यमायां पितृभे तथा।
सोमसूर्ययुते चापि स्नात्वा[4] पुष्करतीर्थके॥
पुण्यमाप्नोति[5] मनुजो वाजपेयादियज्ञजम्।
दैनन्दिनकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः॥

शुभ भाद्रपद मास में अमा के दिन तथा पितृनक्षत्र में और सोम एवं रवि से युक्त पुष्कर तीर्थ में स्नान कर मनुष्य वाजपेयादि यज्ञ से पैदा हुए पुण्य को पाता है और दिन-प्रतिदिन किए गए पाप से मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं है।

अन्यत्र तु कृतं पापं पुष्करेषु प्रणश्यति।
पुष्करेषु कृतं पापं वद कुत्र प्रणश्यति॥

---

१ ब्राह्मणोऽव्यक्त २ त्रिमलग्नं ३ मासि ४ स्नात्वात्पुष्कर ५ मंप्नोति

और जगह किया गया पाप पुष्कर में नष्ट हो जाता है। पुष्कर में किया गया पाप कहां नष्ट होता है, कहिए।

कुरुक्षेत्रे प्रयागे च गङ्गासागरसङ्गमे।
गवां कोटिसहस्रस्य सम्यग्दत्तस्य यत्फलम् ॥

कुरुक्षेत्र, प्रयाग और गङ्गासागर के सङ्गम में कोटिसहस्र गौओं के विधिपूर्वक देने का जो फल है।

तत्फलं समवाप्नोति पुष्करे स्नानमात्रतः।
गरुत्मा[1]न्नपि चात्रैव तपःसिद्धिमवाप्नुयात् ॥

वही फल पुष्कर में स्नानमात्र से पाता है। गरुड़ ने भी यहीं तपस्या में सिद्धि को पाया था।

श्रीभैरवी उवाच—श्री भैरवी बोलीं—

कथं च गरुडो देव[2]स्तपःसंसिद्धिमान्[3] प्रभो।
वद मे कृपया शम्भो लोकानुग्रहकाम्यया ॥

हे प्रभो! गरुडदेव ने कैसे तपस्या में सिद्धि को प्राप्त किया, हे शम्भो! कृपा कर लोगों पर कृपा करने की कामना से मुझे बताइए।

श्रीभैरव उवाच—श्री भैरव बोले—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि महिमानमनुत्तमम्।
यच्छ्रुत्वा मुच्यते जन्तुर्जन्मान्तरभवैरघैः ॥

हे देवि! सुनिए, मैं अत्युत्तम महिमा के विषय में कहूँगा जिसे सुनकर प्राणी जन्मान्तर में किए हुए पापों से मुक्त हो जाता है।

विष्णुस्त महादेवि दुश्चरं चाचरत्तपः।
दिव्यं वर्षसहस्रं तु पुण्ये पुष्करसंज्ञके ॥

हे महादेवि! जहाँ विष्णु ने दुश्चर तप दिव्य सहस्र वर्ष पर्यन्त पुण्यप्रद पुष्कर क्षेत्र में किया।

अपतद्दुश्चरं तत्र पुष्करे…पावने।
निराहारो यतात्मा सनियतो विजितेन्द्रियः ॥
अङ्गुष्टाग्रेण तिष्ठन्स जपध्यानपरायणः।
निराहारेण कतिचित्फलाहारेण सुन्दरि!
वाताहारेण कतिचिद्धायनास्तेन लङ्घिताः।

---

१ गरुत्मानपि २ देव तपः ३ सिद्धिमतः

वहाँ पवित्र पुष्कर में उसने निराहार रहकर यतात्मा होकर सनियत और जितेन्द्रिय होकर दुश्चर तप किया। अंगूठे के अग्रभाग पर खड़ा रहकर और जप एवं ध्यान में लगे हुए उसने निराहार रहकर फलाहार से कुछ दिन और हे सुन्दरि ! वाताहार से कुछ वर्ष विताए।

तस्यैतेन[1] तपसा तप्तं त्रैलोक्यमभवत्प्रिये।
दृष्ट्वा सुतप्तं त्रैलोक्यं देवाः शक्रपुरःसराः।
कैलासवासिनं देवं शङ्किताः शरणं ययुः॥

हे प्रिये ! उसके इस तप से तीनों लोक तपे। तीनों लोकों को तपते देख कर इन्द्र सहित सभी देवता शङ्कित हुए और कैलासवासी महादेव की शरण में गए।

प्राप्य कैलाशमीशानि वामदेवं पिनाकिनम्।
तुष्टुवुः परया भक्त्या शङ्करं लोकपावनम्॥

हे ईशानि ! कैलास को पाकर परम भक्ति से पिनाक धनुषधारी, वामदेव, लोगों को पवित्र करने वाले शङ्कर की स्तुति करने लगे।

शशाङ्कशेखरं देवं प्रभुमव्यक्तरूपिणम्।
अनादिनिधनं शम्भुं भजे त्रैलोक्यसुन्दरम्॥

शशाङ्कशेखर, देव, प्रभु, अव्यक्तरूपी, अनादिनिधन, तीनों लोकों में सुन्दर शम्भु का मैं भजन करता हूं।

रुद्रं शिवं पशुपतिं भद्रावासं परार्तिहम्।
देवमुग्रतमं घोरं शर्वं शम्भुं महेश्वरम्॥
प्रपद्येम महेशानं भक्तानामभयप्रदम्।
भूतावासं भूतपतिं भूतात्मानं च भूतिदम्॥
भूतावेशहरं त्र्यक्षं त्र्यम्बकं त्रिपुरार्दकम्।
त्रिवरं त्रिगुणातीतं त्र्यक्षरं त्रिविधात्मकम्॥

रुद्र, शिव, पशुपति, भद्रावास, परार्तिह, देव, उग्रतम, घोर, शर्व, शम्भु महेश्वर, भक्तों को अभय प्रदान करने वाले महेशान की हम शरण आते हैं। भूतावास, भूतपति, भूतात्मा, भूतिद, भूतावेशहर, त्र्यक्ष, त्रिपुरार्दक, त्रिवर, त्रिगुणातीत, त्र्यक्षर, त्रिविधात्मक,

त्रिज्योतिः त्रिपुरावासं त्रिनेत्रं शरणार्थिनः।
रक्षकं लोकनाथञ्च बालकं नीललोहितम्॥

---

१ तस्यैतू

सर्वाध्यक्षं च सर्वेशं सर्वात्मानं परात्मकम् ।
विभुं प्रभुं ह्यनेकेशमनेकेशं महेश्वरम् ।
एकमनेकं बहुधास्थितं शिवमुपास्महे ।।

त्रिज्योति, त्रिपुरावास, त्रिनेत्र, शरणार्थी के रक्षक, लोकनाथ, बालक, नीललोहित, सद्योजात, परम प्रभु की हम शरण जाते हैं । सर्वाध्यक्ष, सर्वेश, सर्वात्मा, परात्मक, विभु, प्रभु, अनेकेश, महेश्वर, एक, अनेक, बहुधास्थित शिव की हम उपासना करते हैं ।

अनेकार्तिहरं देवमुमासेवितविग्रहम् ।
स्थूलं सूक्ष्मं महादेवं सूक्ष्मात्सूक्ष्ममनामयम् ।।
सदसत्पदमव्यक्तं पशुपाशुनिकृन्तनम् ।
प्रपद्येम महेशानं गरुत्मत्तपसो भयात् ।।

अनेकार्तिहर, देव, उमा-पार्वती से जिसके शरीर का सेवन किया जाता है, स्थूल, सूक्ष्म, महादेव, सूक्ष्म से सूक्ष्म, अनामय, सत्-असत्पद, अव्यक्त, पशुपाशुनिकृन्तन, महेशान हम तुम्हारी शरण में गरुड की तपस्या के भय से आते हैं ।

श्रीभैरव उवाच—श्री भैरव बोले—

एवं स्तवाभियुक्तानां देवानां तत्र पार्वति ।
शङ्करः परमेशानस्तत्र दर्शनमीयिवान् ।।

हे पार्वती ! इस प्रकार स्तुति करने में लगे हुए देवताओं के वहां परमेशानशङ्कर दर्शन में आए ।

त्रिशूलखट्वाङ्गधरो नरमा[1]लास्थिभूषणः ।
नीलकण्ठः कपर्दी च विभूतिसितविग्रहः ।।
देवा[2]न्नाह महादेवि श्लक्ष्णया मधुरया[3]गिरा ।।

त्रिशूल और खट्वाङ्ग धारण किए, नरमुण्डमाला और अस्थियों के आभूषणों से आभूषित, नीलकण्ठ, कपर्दी, भस्म से सफेद शरीर वाले, गङ्गाधर, पार्वतीश महादेव ने हे महादेवि ! तब गम्भीर एवं मधुर वाणी से देवताओं को कहा ।

श्री महादेव उवाच—श्री महादेव बोले—

किमर्थमागता देवा ब्रूतागमनकारणम् ।
कृतमेव हि जानीध्वमविलम्बेन पुत्रकाः ।।

---

१ मं २ देवानाह ३ मधुरा वचा

हे देवो ! किसलिए आए हो? आने का कारण कहो । हे पुत्रो ! शीघ्र कृत कृत्य हो जाओ।

श्रुत्वा तस्य वचः सम्यग्देवाः शम्भोर्महात्मनः ।
ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे विनयानतकन्दराः ।।

उस महात्मा शम्भु के वचन अच्छी तरह सुनकर विनय से झुकी कन्दरा वाले सभी देवता हाथ जोड़कर बोले ।

देवा ऊचुः— देवता बोले—

तप्ताञ्जानीहि भगवन्गरुत्मत्तपसा च नः ।
भवत्पादाम्बुजं प्राप्ताञ्शरणं शरणार्थिनः ।।

हे भगवन् ! गरुड की तपस्या से तपे हुए और आपके चरणकमलों में शरण के लिए आए हुए शरणार्थी हमें तुम समझो ।

त्राहि त्राहि महादेव रक्ष रक्ष महेश्वर !

हे महादेव ! हे महेश्वर ! बचाइए-बचाइए, रक्षा कीजिए-रक्षा-कीजिए ।

श्रुत्वैतत्करुणं वाक्यं देवानाममरेश्वरः ।
प्रोवाच तान्महादेवः करुणामृतसागरः ।।

करुणामृतसागर-अमरेश्वर-महादेव ने देवताओं के करुणापूर्ण ये वाक्य सुनकर उन्हें कहा ।

व्रजध्वं त्रिदिवं देवा अभयं वो ददाम्यहम् ।
गरुडं छन्दयिष्यामि वरैः परमदुर्लभैः ।।

हे देवताओ ! स्वर्ग को जाइए, मैं तुम्हें अभय देता हूं । मैं परम दुर्लभ वरों से गरुड़ को प्रसन्न करूंगा ।

इत्युक्त्वा भगवान्देवांस्तत्रैवान्तरधीयत ।
देवाश्च स्वं स्वं भवनं गताश्चैव यथागतम् ।।

देवताओं को यह कहकर भगवान् वहीं अन्तर्धान हो गए और देवता अपनी इच्छानुसार, जहां-जहां उन्हें जाना था, अपने-अपने घर चले गए ।

तत्रैव पुष्करे तीर्थेऽतपद्दुश्चरं तपः ।।
गरुड़स्य पुरः शम्भुस्तदा प्रादुरभूत्किल ।।

वहीं पुष्कर तीर्थ में गरुड़ ने दुश्चर तप तपा । तब गरुड़ के आगे शम्भु का प्रादुर्भाव हुआ ।

दृष्ट्वा तु गरुडो देवं प्रणनाम मुहुर्मुहुः ।
भगवत्स्पर्शमात्रेण वज्रदो[7]ऽभवत्क्षणात् ।।

शत्रूणामपि धृष्टोऽसौ वीरेशश्च बभूव ह।
उवाचचमहात्मानं स्पृशन्हस्तेन पक्षिणम् ॥
वरं वृणुध्वं महावीर प्रसन्नोऽस्मि तवानघ।
यथेष्टं तत्प्रदास्यामि देवानामपि दुर्लभम् ॥

गरुड़ जी ने देव को देखकर बार-बार नमस्कार किया और भगवान् के स्पर्शमात्र से वह क्षण में 'वज्जद' हुआ तथा शत्रुओं को तिरस्कृत करने से वह वीरेश हुआ। देवताओं के लिए भी दुर्लभ वर मैं तुम्हें इच्छानुसार दूंगा।

इयं मदङ्गसम्भूता गङ्गा त्रिभुवनेश्वरी।
त्वदाश्रमपदं रम्यं मार्गयिष्यति चानघ ॥

यह मेरे अङ्ग से पैदा हुई त्रिभुवनेश्वरी गङ्गा, हे अनघ ! सुन्दर तुम्हारे आश्रमपद को ढूंढ लेगी।

मत्प्रसादात्परं ज्ञानं तव पुत्र भविष्यति।
अव्याहतगतिस्त्वं हि सर्वत्र प्रचरिष्यसि ॥

हे पुत्र ! मेरे प्रसाद से तुम्हें परम ज्ञान की प्राप्ति होगी और तुम अव्याहतगति होकर सब जगह घूमोगे।

देवा दैत्यगणाः सिद्धा यक्षरक्षसरीसृपाः।
नागाः कूर्माश्च कूष्माण्डा भूताः प्रेतगणास्तथा ॥

देवता। दैत्यगण, सिद्ध, यक्ष, राक्षस, सरीसृप, नाग, कूर्म, कूष्माण्ड, भूत तथा प्रेतगण,

दनोः पुत्रा मनुष्याश्च योगिन्यश्च[1] महाबलाः।
डाकिन्यः[2] शाकिनीकृत्या[3]······जम्बुकादयः ॥
रोगास्त्वां[4] तपसायुक्तं न दर्शयितुमीश्वराः ॥

दनु के पुत्र दानव, मनुष्य, महाबली योगिनियाँ, डाकिनियाँ, शाकिनी-कृत्या······ और जम्बुक आदि रोग तपोयुक्त तुझे देखने में समर्थ नहीं होंगे।

दिव्यदेहो वज्रदेहः स्वर्णदेहस्तथैव च।
पक्षिराजश्च द्वौ पुत्रौ[5] भविता मदनुग्रहात् ॥

तुम दिव्यदेह, वज्रदेह तथा स्वर्णदेह एवं पक्षिराज होंगे और मेरी कृपा से तुम्हारे दो पुत्र होंगे।

---

१ योगिन्याश्च २ डाकिन्याः ३······ ४ रोगांस्त्व ५ पुत्र

विष्णोश्च वाहनत्वेऽपि[1] त्वां[2] योक्ष्यामि मानद ।
अपरञ्च वरं पुत्र दास्यामि सुरदुर्लभम् ।।

हे मानद ! विष्णु के वाहन के स्थान पर मैं तुझे नियुक्त करता हूँ। हे पुत्र ! देवताओं के लिए भी दुर्लभ वर मैं तुम्हें दूंगा ।

[3]इममाश्रममुख्यं ते यः श्रयिष्यति मानवः ।
नारी वा पुरुषो वापि [4]सोऽचिरात्सिद्धिमाप्नुयात् ।।

तुम्हारे इस मुख्य आश्रम का जो मनुष्य आश्रय लेगा, चाहे वह नारी हो वा पुरुष, शीघ्र सिद्धि को पाएगा ।

पुण्ये भाद्रपदे मासे[5] गरुडाश्रम उत्तमे ।
अमायां स्नानमात्रेण मुच्यते ब्रह्महत्यया ।।

पुण्य भाद्रपद मास गरुड़ के उत्तम आश्रम में अमा के दिन स्नानमात्र से मनुष्य ब्रह्महत्या से मुक्त हो जाता है ।

ये श्रयन्ति हि पुण्यं ते आश्रमे पतगेश्वर ।
सर्वपापविनिर्मुक्ता[6] यान्ति ब्रह्म[7]सनातनम् ।।

हे पतगेश्वर ! जो तुम्हारे पुण्य आश्रम का आश्रय लेते हैं, वे सभी पापों से मुक्त होकर सनातन ब्रह्म को पाते हैं ।

महापातकयुक्तो वा युक्तो वा ह्युपपातकैः ।
संस्नाप्य गारुडे तीर्थे सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।

महापाप से युक्त वा उपपापों से युक्त मनुष्य गारुड़ तीर्थ में स्नान कर सभी पापों से मुक्त हो जाता है ।

हरद्वारे कुशावर्ते बिल्विके नीलपर्वते ।
यत्फलं लभते मर्त्यस्तदत्रापि न संशयः ।।

हरद्वार, कुशावर्त, बिल्विक नील पर्वत में मनुष्य जो फल पाता है, वह यहां भी मिलता है, इसमें संशय नहीं है ।

पुष्करे च हि संस्नाप्य यः स्नाति[8] गरुडाश्रमे ।
फलमाप्नोति मनुजो ह्यश्वमेधादियागजम् ।।

पुष्कर में स्नान कर जो गरुड़ के आश्रम में स्नान करता है, वह मनुष्य अश्वमेध आदि यज्ञ से पैदा हुए फल को पाता है ।

---

१ वाहनलिपि २ त्वं ३ इय ४ सोचिरा ५ मासि ६ विनिमुक्ता ७ ब्रह्म ८ स्मं

इत्थमेवाश्रमे तत्र भविष्यति न संशयः ।
इदानीं खगभोगश्च वामदेवाश्रमं मम ।
तत्र नारायणो देवस्तव दर्शनमिच्छति[१] ।।

इस प्रकार ही वहां आश्रम में होगा, इसमें संशय नहीं है । अब खगभोग और मेरा वामदेवाश्रम है, वहां नारायण देव तेरा दर्शन चाहते हैं ।

एवमुक्त्वा खगश्रेष्ठं शर्वोऽ[२]प्यन्तर्धिमागतः ।
खगोऽपि[३] तदोत्थाय वासुदेवाश्रमं ययौ ।।

इस प्रकार खगश्रेष्ठ को कहकर शर्व भी अन्तर्धान हो गए । तब खग भी उठकर वासुदेव-आश्रम की ओर चले गए ।

तत्र नारायणे तीर्थे स्नात्वा[४]...... तदा ।
नारायणं ददर्शाग्रं प्रणनाम च तं मुदा ।।

वहां नारायण तीर्थ में स्नान कर तब......और आगे नारायण को देखा तथा प्रसन्नता से उसे प्रणाम किया ।

नारायणो[५]ऽपि तं देवि परिष्वज्य मुहुर्मुहुः ।
दत्वाभयं खगश्रेष्ठं [६]वाहनत्वेन योजितम् ।।

हे देवि ! नारायण ने भी बार-बार उस खगश्रेष्ठ को छाती से लगा अभय प्रदान कर वाहन के रूप में नियुक्त किया ।

ददर्श च मुदा तत्र स्नेहविक्लवया दृशा ।
यतः स्वादाश्रमाद्देवि खमुड्डीय यतः खगः ।
ततः स ग्रामः प्रथितस्त्रैलोक्यां च खगाभिधः ।।

और वहां उसने मुझे स्नेह से विक्लव दृष्टि से देखा । हे देवि ! क्योंकि अपने आश्रम से खग आकाश को उड़ा, इसी लिए वह ग्राम त्रिलोकी में 'खग' नाम से प्रसिद्ध हुआ ।

खगग्रामे विष्णुक्षेत्रे स्नात्वा मुच्येदसंशयम् ।
महापातकयुक्तो वा युक्तो वा ह्युपपातकैः ।
खगग्रामे विष्णुक्षेत्रे स्नात्वा मुच्येत संकटात् ।।

विष्णुक्षेत्र खगग्राम में स्नान कर निसन्देह मुक्त हो जाय । महापापों से युक्त विष्णुक्षेत्रखगग्राम में स्नानकर संकट से मुक्त हो जाता है ।

सर्वसिद्धिमवाप्नोति खगे दानं समाचरन् ।

खग में दान देता हुआ सर्वसिद्धि को पाता है ।

---

१ मिष्यति २ शर्वोप्य ३ खगोपि ४......५ नारायणोपि ६ वंहनत्वेन

अर्चनं बन्दनं वापि श्राद्धं होममथापि वा ।
जपं स्वाध्यायमथवा यः कुर्यादथ निश्चितम् ।
अनन्तफलमाप्नोति खगे [1]सुकृतमाचरन् ।
बहुनात्र किमुक्तेन भूयो भूयो वरानने ॥

अर्चन, बन्दन, श्राद्ध, होम, जप, स्वाध्याय जो निश्चित करता है । वह खग में सुकृत करते हुए अनन्त फल पाता है । हे वरानने ! यहां बार-बार बहुत कहने से क्या लाभ ?

यात्रां कृत्वा पुष्करेषु यः स्नाति मनुजो भुवि ।
पुण्ये भाद्रपदेऽमायां स याति परमं पदम् ॥

पुष्कर में यात्रा करके पुण्य-भाद्रपद अमावस्या के दिन जो स्नान करता है, वह परम पद को पाता है ।

किं तस्य दानैः[2] किं तीर्थैः कलिपापपनोदनैः ।
यात्रां कृत्वा तु यो मर्त्यः स्नाति वै पुष्करे जले ।

उसके दानों से क्या लाभ और उसके कलियुग के पापों को नष्ट करने वाले तीर्थों से क्या लाभ ? जो मनुष्य यात्रा करके पुष्कर जल में स्नान करता है ।

स एव भुवि देवेशि विष्णू रुद्रो[3]ऽथवा पुनः ।
ब्रह्मा वा जगदीशानि सत्यं सत्यं वरानने ॥

हे देवेशि ! वही पृथ्वी पर विष्णु, फिर रुद्र, हे जगदीशानि ! ब्रह्मा है, यह सत्य है, सत्य है ।

पुष्करे स्नातु[4]मायातं ये स्पृशन्ति चेश्वरि ।
ते च पापान्यपीशानि विलयं प्राप्नुवन्ति हि ॥

हे ईश्वरि ! जो पुष्कर में स्नान करने के लिए आए हुए का स्पर्श करते हैं, हे ईशानि ! उनके पाप नष्ट हो जाते हैं ।

पुष्करं दुष्करं लोके विशेषात्पापिभिरिह ।
विघ्निता विघ्नसंघातैस्तस्माद्यत्नेन संश्रयेत् ॥

इस लोक में पुष्कर दुष्कर है । विशेष कर पापियों से विघ्नसमूहों द्वारा विघ्न डाले जाते हैं । इसलिए यत्नपूर्वक पुष्कर का आश्रय ले ।

---

१ सकृत २ दानै ३ रुद्रोथवा ४ स्नातमा

न पुष्करसमं तीर्थं दिवि भूम्यन्तरिक्षमम् ।
पुण्यदं पापहरणं सिद्धिवृद्धिप्रदं कलौ ।।

द्युलोक भूलोक और अन्तरिक्ष लोक में, पुष्कर के समान पुण्य प्रदान करने वाला, पाप हरने वाला और कलियुग में सिद्धि और वृद्धि प्रदान करने वाला और कोई नहीं है ।

इदं पुंसवनं क्षेत्रमिदमायुष्यवर्धनम् ।
कामदं कामिनां ह्येतन्मोक्षदं मोक्षिणामपि ।।
धनमायुष्प्रदमेतद्विद्या प्रज्ञाप्रदं[1] कलौ ।
पशुदं पशुकामानां ब्रह्मविद्याप्रदायकम् ।।

यह पुंसवन क्षेत्र आयु बढ़ाने वाला, कामिओं को काम प्रदान करने वाला, मोक्ष चाहने वालों को मोक्ष देने वाला, धन-आयु-विद्या और प्रज्ञा प्रदान करने वाला, कलियुग में पशु चाहने वालों को पशु देने वाला तथा ब्रह्मविद्या प्रदान करने वाला है ।

सर्वसिद्धिकरं क्षेत्रं पुष्करं दुष्करं कलौ ।
क्षेत्राणामुत्तमं क्षेत्रं न भूतं न भविष्यति ।।

कलियुग में सर्वसिद्धि करने वाला यह पुष्कर क्षेत्र दुष्कर है । क्षेत्रों में ऐसा उत्तम क्षेत्र न हुआ है और न होगा ।

इत्येष पटलो गुह्यो महापातकहा कलौ ।
श्रोतव्यः पठितव्यश्च तीर्थयात्राफलप्रदः ।।

इस प्रकार यह गुह्य पटल कलियुग में महापापों को नष्ट करने वाला है । यह सुनना चाहिए और पढ़ना चाहिए, तीर्थयात्रा का फल देने वाला है ।

इति श्रीसंहितायां भैरवसंहितायां भैरवसंवादे भृङ्गीश-
विषयोपजाततीर्थसंग्रहे पुष्करतीर्थवर्णने खगग्राममहिमा
नाम नवमः पटलः ।।

---

१ प्राज्ञाप्रदं २ मू० पा० में पाठाभाव

श्री भैरवी उवाच—श्री भैरवी बोली—

वद सत्यं महादेव तीर्थयात्रान्तु[1] पुष्करे।
यां कृत्वा तीर्थसाफल्यं भविष्यति न संशयः॥

हे महादेव ! पुष्कर में की गई तीर्थयात्रा के विषय में सत्य कहिए, जिसे करनेसे तीर्थ में सफलता होगी। इसमें संशय नहीं है।

यात्रामकृत्वा यस्तीर्थं समाश्रयति मानवः।
स याति नरकान्घोरान्स्नानं तस्य वृथा[2] भवेत्॥

यात्रा किए बिना जो मनुष्य तीर्थ का आश्रय लेता है, वह घोर नरकों को जाता है, उसका स्नान वृथा होता है।

यात्राहीनस्य तीर्थन्तु वन्ध्यासुरतवद्भवेत्।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तीर्थं यात्रान्वितं श्रयेत्॥

यात्राहीन का तीर्थ वन्ध्यास्त्री के साथ किये गए सुरत की तरह होता है। इसलिए सभी यत्न से यात्रा युक्त तीर्थ का आश्रय ले।

स तीर्थफलमश्नाति सत्यं सत्यं महेश्वर।
कृपया परया देवलोकानुग्रहकाम्यया॥

हे महेश्वर ! वह तीर्थ के फल को देवलोक के अनुग्रह की कामना से परम कृपा से पाता है।

श्रीभैरव उवाच—श्री भैरव बोले

शृणुवक्ष्ये महादेवि तीर्थयात्रान्तु पुष्करे।
यां विधाय नरः सम्यक्सर्वं तीर्थफलं लभेत्॥

हे महादेवि ! सुनिए, पुष्कर में तीर्थयात्रा के विषय में कहता हूं, जिसे करके मनुष्य सभी तीर्थों के फल को पाता है।

रोषग्रामं समारभ्य खगं यावन्महेश्वरि।
कृत्वा यात्रान्तु यो मर्त्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते॥

हे महेश्वरि ! रोषग्राम से लेकर खग ग्राम तक जो मनुष्य यात्रा करता है, वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है।

---

१ यात्रा तु २ वृथं

वीरभद्रः श्रयेद्रोषे शूलगङ्गामुपस्पृशेत् ।
ततो गच्छेन्महेशानि पुण्यमर्काश्रमं नरः ।।
ततोऽपस्पृश्य मतिमान्कुरोः क्षेत्रे स्वपुण्यदे ।

रोष में वीरभद्र का आश्रय ले और शूलगङ्गा के जल से आचमन करे, इसके बाद बुद्धिमान् पुरुष पुण्यप्रद कुरुक्षेत्र में आचमन करके हे महेशानि ! पुण्यप्रद अर्काश्रम को जाता है ।

श्रीभैरवी उवाच—श्री भैरवी बोली—

पुण्य[1]मर्काश्रमं ब्रूहि लोकानुग्रहकाम्यया ।
यच्छ्रुत्वा मुच्यते जन्तुर्महापातककोटिभिः ।।

लोकानुग्रह कामना से पुण्यप्रद अर्काश्रम के विषय में कहिए, जिसे सुनकर प्राणी करोड़ों महापापों से मुक्त हो जाता है ।

श्री भैरव उवाच—श्री भैरव बोले—

स्कन्दः पुरा तपस्तेपे दुश्चरं जगदम्बिके ।
सेनापतिः कृतो यत्र शक्रेण सुमहात्मना ।।

हे जगदम्बिके ! पूर्वयुग में स्कन्द ने दुष्कर तप किया । जिससे महात्मा इन्द्र ने उसे सेनापति बनाया ।

चिन्तयामास बहुधा कथमेतद्दुरासदम् ।
असुरानीकमेकोऽ[2]हं तरिष्यामि सुदुर्लभम्[3] ।।

वह बहुत बार इस चिन्ता में पड़ गया कि मैं अकेला इस दुरासद एवं दुर्लभ असुरों की सेना को कैसे पार करूंगा ।

चिन्ताकुलितचित्तस्य देवो दर्शनमाययौ ।
दृष्ट्वा तं चिन्तयाविष्टमुवाच परमेश्वरः ।।

चिन्ता से व्याकुल चित्त वाले उसे देव ने दर्शन दिया और उसे चिन्ताग्रस्त देखकर परमेश्वर ने कहा ।

तारां देवीमुपागच्छ कर्मणा मनसा गिरा ।
तत्प्रसादात्परं पुत्र दैत्यानीकं तरिष्यसि ।।

कर्म से, मन से और वाणी से तारा देवी की शरण में जाओ, उसके प्रसाद से हे पुत्र ! दैत्य सेना का नाश करेगा ।

इत्युक्त्वा तं ततः स्कन्दं शिवो[4]ऽन्तर्धानमीयिवान् ।
इति तस्य कुमारस्य तारार्णवं[5] जपत[6]स्स्फुटम् ।

---

१ पुण्यं मर्काश्रमं २ मेकोहं ३ सुदुर्लभः ४ शिव त० ५ ताराणं ६ जपतस्फुटं

गत...[1] महादेवि दिव्यं वर्षशतं तदा ॥
आश्रमस्य स्कन्दस्य जपमानस्य वै मनुम् ।
तारा दिव्या[2] तत्र देवी दर्शनमागता तदा ॥

स्कन्द को यह कह कर तदनन्तर शिव अन्तर्धान हो गए । हे महादेवि ! इस प्रकार स्पष्टतया तारार्णव का जप करते हुए उस कुमार के तब दिव्य सौ वर्ष बीत गए । इस प्रकार जप करते हुए आश्रमस्थ उस स्कन्द के दृष्टि पथ में वह दिव्या तारा देवी तब आ गई ।

तत्र तस्य महादेवि समाधिस्थस्य सुन्दरि ।
पीनोरा अहिशृङ्गाश्च दानवो मददुर्मदौ ।
विघ्नं चक्रतुरविग्रौ स्कन्दस्य सुरपूजिते ॥

हे महादेवि ! सुन्दरि ! वहां समाधिस्थ उस स्कन्द की तपस्या में पीनोर और, अहि शृङ्ग नामक से दुर्मद......दो दानव विघ्न डालने लगे ।

दृष्ट्वा विघ्नकरौ तत्र राक्षसौ मददर्पितौ ।
शिवः[3] परमकारुण्यो[4] मर्कटके[5] भूत्वा महेश्वरि ।
जघान पुरो[6] यत्नेन दैत्यौ परमदुर्मदौ ॥

वहां विघ्न डालने वाले मद में चूर उन दोनों राक्षसों को देखकर हे महेश्वरि ! परम दयालु शिवजी ने मर्कटक रूप धारण कर परम दुर्मद दैत्यों को यत्न से मार दिया ।

पीनोरा नाम दैत्यश्च यत्र घाटितवान्प्रभुः ।
स एव प्रथितो ग्रामः पीनोरी नाम नामतः ॥

पीनोरा नामक दैत्य को जहां प्रभु ने मारा है, इसीलिए यह ग्राम पीनोरी नाम से प्रसिद्ध है ।

अहिशृङ्गश्च दैत्येशो यत्र व पतितः क्षितौ ।
स ग्रामः प्रथितोऽद्यापि[7] ह्यहिशृङ्गाभिधः परः ॥

अहिश्रृङ्ग नामक दैत्येश जहां पृथ्वी पर पड़ा इसलिए आज भी वह गाँव अहिश्रृङ्ग नाम से प्रसिद्ध हुआ ।

यत्र मर्कटको भूत्वापर[8]दैत्यवधाय स ।
समाख्यातः[9] क्षितौ तत्र ग्रामो मर्कटकाभिधः ॥

१......... २ दिव्यास्तत्र ३ शिवा ४ कारुण्या ५ मर्के भूत्वा ६ पुर ७ प्रथितोद्यापि ८ भूत्वापरा ९ समाख्यातः

जहां दूसरे दैत्य का वध करने के लिए मर्कटक के रूप को धारण किया गया, उसे मर्कटक नामक गांव कहा गया।

प्रादुर्भूता यत्र तारा कुमारस्याग्रतः प्रिये।
स ग्रामः प्रथितोऽद्यापि[1] तारा श्रमसमाख्यया॥

हे प्रिये ! जहाँ तारा स्कन्दकुमार के आगे प्रादुर्भूत हुई, वह ग्राम आज भी ताराश्रम नाम से प्रसिद्ध है।

सनत्कुमारः सनकः सनन्दनस्सनातनः।
ब्रह्मणो मानसा पुत्रा दुर्धरे……[2]
दिव्यंवर्षसहस्रं तु तपश्चेरुः सुदारुणम्[3]॥

सनत्कुमार, सनक, सनन्दन और सनातन ब्रह्मा के मानस पुत्रों ने…दिव्य सहस्र वर्ष तक दारुण तप किया।

तेषां नारायणो देवो दर्शनं समुपेयिवान्।
तत्र दत्वा वरं तेषां तत्रैवान्तर्धिमागतः॥

नारायणदेव उनके दृष्टिपथ में आए और वहाँ उन्हें वर दे कर वहीं अन्तर्धान हो गए।

स्नात्वा चात्र महादेविमुच्यते घोरपातकैः।
यत्र तप्तं चिरं तैस्तु कुमारैर्बहुधा तपः।
ततः स प्रथितो ग्रामः कुमाराश्रमसंज्ञया:[4]॥

हे महादेवि ! जहाँ स्नान कर घोर पापों से मुक्त हो जाता है। जहाँ कुमारों ने बहुत बार चिरकाल तक तप किया, इसके बाद वह ग्राम कुमाराश्रम नाम से प्रसिद्ध हुआ।

खमुड्डीय गतो यत्र विष्णुदर्शनलालसः।
गरुत्मांस्तत्र गदितो ग्रामराजः खगाभिधः॥

विष्णुदर्शन की लालसा से जहाँ आकाश में उड़ कर गरुड़ गया, वहाँ खग नामक वह ग्रामराज कहा गया।

कुरुणा सुचिरं तप्तं दुश्चरं परमं तपः।
ततः प्रवर्तितं क्षेत्रं कुरुनाम्नैव सुन्दरि॥

कुरु ने चिर काल तक दुश्चर परम तप किया, इसके बाद हे सुन्दरि ! कुरु नाम से ही वह क्षेत्र प्रसिद्ध हुआ।

---

१ प्रथितोद्याति, २……, ३ सुदारणं, ४ संज्ञिया,

कुरुक्षेत्रे कृतं स्नानं दानमर्चनमेव च।
श्राद्धं बन्दनं[1] होमं च ह्यक्षयं फलमाप्नुयात् ॥

कुरुक्षेत्र में किया हुआ स्नान, दान, अर्चन, श्राद्ध, बन्दन और होम अक्षय फल प्रदान करता है।

मर्काश्रमे कृतं यच्च तदनन्त्याय कल्पते।
ब्राह्मणः क्षत्रियो वापि शूद्रो वा म्लेच्छ एव च।
[2]मर्काश्रमे पुण्यकृद्यः स याति परमां गतिम् ॥

मर्काश्रम में किया गया, पुण्य कार्य अनन्त फल के लिए कल्पित है, ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र व म्लेच्छ ही मर्काश्रम में जो पुण्य करता है, वह परम गति को पाता है।

स्कन्दाश्रमे च यः कश्चिद्विविधं कुरुते तपः।
तदक्षयं भवेद्देवि सर्वसिद्धिर्भवेद्ध्रुवम् ॥

स्कन्दाश्रम में जो कोई अनेक प्रकार का तप करता है। हे देवि! वह अक्षय होवे और निश्चित सर्वसिद्धि प्राप्त हो।

विशेषतः[3]······तु षष्ट्यामत्र प्रपूजयेत्।
स शीघ्रं सिद्धिमाप्नोति सत्यमेव न संशय ॥

विशेषकर षष्टी के दिन जहाँ जो······को पूजे, वह शीघ्र सिद्धि पाता है, यह सत्य ही है, इसमें संशय नहीं है।

पीनोरसि महेशानि नः स्नानं कुरुते नरः।
स मुक्तः सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं महीयते ॥

हे महेशानि! पीनोरा तीर्थ में जो मनुष्य स्नान करता है, वह सभी पापों से मुक्त हो विष्णुलोक में महिमा को पाता है।

ताराश्रमे च संस्नात्वा गङ्गायामपि चेश्वरि।
स्नात्वा मुक्तिमवाप्नोति नरो निश्चलमानसः ॥

हे ईश्वरि! तारा-आश्रम तथा और गङ्गा में स्नान कर निश्चल मन वाला मनुष्य मुक्ति पाता है।

अहिश्रृङ्गे नरः स्नात्वा श्राद्धं कृत्वा विधानतः।
स्नानमपि महेशानि मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥

---

१ मन्दन, २ मका., ३······

अहिश्शृङ्ग में मनुष्य हे महेशानि ! विधिपूर्वक श्राद्ध एवं स्नान कर ब्रह्महत्या से भी मुक्त पा जाता है।

यद्यदत्र कृतं कर्म मितं वा वहु वा प्रिये।
तत्तदक्षयतां याति सत्यं सत्यं वरानने ॥

हे प्रिये ! जो-जो जहाँ थोड़ा व बहुत कार्य किया गया गया। हे वरानने ! वह-वह अक्षयता को पाता है। यह सत्य है, सत्य है।

सनत्कुमाराश्रमे तु स्नानं दानं तपो[1]ऽथवा।
जपो होमो[2]ऽथवा देवि तदनन्त्याय कल्पते ॥

हे देवि ! सनत्कुमार के आश्रम में जो स्नान, दान, तप, जप अथवा होम किया जाता है, वह अनन्त के लिए कल्पित है।

खगाश्रमे तु यः कश्चिद्विष्णुक्षेत्रे महेश्वरि।
स्नानं चैवार्चनं श्राद्धं तदनन्तफलं लभेत् ॥

हे महेश्वरि ! विष्णुक्षेत्र खगाश्रम में जो कोई स्नान, अर्चन और श्राद्ध करता है, वह अनन्तफल को पाता है।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन यात्रां त्वा महेश्वरि ।
स्नायात्पुष्करतीर्थेषु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

हे महेश्वरि ! इसलिए सभी यत्नों से यात्रा करके पुष्कर तीर्थों में स्नान करे, सभी पापों से मुक्त हो जाता है।

आदौ रोबे वीरभद्रं पूजयित्वा[3]···प्रयत्नतः।
जलं संस्पृश्य गङ्गायास्ततो मर्काश्रमं व्रजेत् ॥

सर्व प्रथम यत्नपूर्वक वीरभद्र की पूजा कर और फिर गङ्गा के जल का स्पर्श कर तदनन्तर मर्काश्रम को जाए।

पीनोरसि नरः स्नात्वा ताराश्रमं ततो व्रजेत्।
[5]······व्रजेन्महेशानि कुमाराश्रमं[6] ततः ॥

पीनोरा तीर्थ में स्नान कर मनुष्य तदनन्तर तारा-आश्रम को जाए। इसके बाद हे महेशानि ! कुमार-आश्रम को जाए।

कुमाराश्रममुल्लंघ्यय त्वहिश्शृङ्गं ततो व्रजेत्।
अहिशृङ्गात्खगे देवि विष्णोः क्षेत्रं समाश्रयेत् ॥

---

१ तपोथवा, २ होमोथवा, ३······, ४ ताराश्रम, ५······, ६ कुमाराश्रमम्,

कुमाराश्रम का उल्लङ्घन कर बाद में अहिशृङ्ग को जाए। हे देवि! अहिशृङ्ग से खग में विष्णुक्षेत्र का आश्रय ले।

खगात्पुष्करमासाद्य स्नात्वा दत्वा च सुन्दरि।
सम्पूर्णं फलमाप्नोति सत्यमेव न संशयः॥

खग से पुष्कर को पाकर हे सुन्दरि! वहाँ स्नान कर और दान देकर मनुष्य सम्पूर्ण फल पाता है। यह सत्य है, इसमें संशय नहीं है।

इति श्री श्रीसंहितायां भृङ्गीशविषयोपजाततीर्थसंग्रहे श्रीपुष्कर-माहात्म्यं नाम पटलः[1] दशमः[2] सम्पूर्णः—ॐ॥

१ मू. पा., तृतीयाः २ संपूर्णमों,

ॐ श्री गणेशाय नमः। ॐ नमो हर्षेश्वराय[1]-ॐ।

शौनकादय ऊचुः—शौनकादि बोले—

ॐ हर्षेश्वरस्य माहात्म्यं[2]......
कथयाद्य[3]...भुक्तिमुक्तिप्रदा[4]...

शौनकादि बोले

हर्षेश्वर के माहात्म्य को जो भुक्ति मुक्ति देने वाला है, कहें।

श्री वेदव्यास उवाच—श्री वेदव्यास जी बोले—

शृण्वन्तु ऋषयः सर्वे पुरा पद्मभवोदितम्।
तीर्थराजं समाख्यातं धाम तच्छशिमौलिनः।।
हर्षेश्वरेति विख्यातं त्रिषु लोकेषु संज्ञया।
यं दृष्ट्वा लभते लोकं शाम्भवं......[5]

सभी ऋषियो सुनो, पूर्वयुग में उस महादेव जी का धाम पद्मभव से कहा गया तीर्थराज कहा गया है, ये तीनों लोकों में 'हर्षेश्वर' नाम से प्रसिद्ध हुआ, जिसका दर्शन कर......

नरकार्णवयोग्यो[6]ऽपि यं दृष्ट्वा स्वर्गमश्नुते।
[7]......राजते शाम्भवं पदम्।।

नरकरूपी समुद्र के योग्य भी जिसका दर्शन कर स्वर्ग पाता है।...

ये लोका[8]...ये लोका यज्ञयाजिनाम्।
तयो[9]...लोकास्ते हर्षेश्वरदर्शिनाम्।।
सर्वलोके[5] उमापतिः।
कर्ता च सर्वभूतानां तथा सर्वान्तकारकः।।

और सभी प्राणियों का कर्ता तथा सभी का अन्त करने वाला है।

तदहं...[11]वक्ष्यामि लोकानां हितकाम्यया।
हर्षेश्वरस्य माहात्म्यं प्रख्यात धरणीतले।।

सो मैं लोकों की हित कामना से...कहता हूँ। हर्षेश्वर का माहात्म्य पृथ्वो पर प्रसिद्ध है।

धनदाशागतः शैलो हिमवा[12]न्निति विश्रुतः।
योजनानां सहस्राणि...न्नाक्रम्य तिष्ठति।।

---

१ हर्षेश्वरायों, २ ......, ३......, ४......, ५......, ६ योग्योपि, ७......, ८......, ९......, १०......, ११......, १२ हिमवानिति,

कुबेर की दिशा में स्थित पर्वत 'हिमवान्' इस नाम से प्रसिद्ध है और सहस्र योजन...घेर कर ठहरा है।

यस्यात्मजा[1] पार्वतीति विख्याता तपसा हरम् ।
आराध्य[2]...तद्देहे स्नेहेनार्धं तपोघना: ।।

जिसकी कन्या 'पार्वती' नाम से प्रसिद्ध है वह तपस्या से महादेव की आराधना कर—...

माहात्म्यं तस्य के वक्तुं क्षमन्ते विश्वधारिणः ।
यत्रात्मानं महादेवो बहुधा करुणानिधिः[3] ।।
अनादिनिधनं धृत्वा लोकान्-रक्षति लीलया ।।

कौन विश्वधारी उसके माहात्म्य को कहने में समर्थ है, जहाँ करुणा के सागर महादेव बहुधा अनादि निधन आत्मा को धारण कर लीलापूर्वक लोकों की रक्षा करता है।

तत्रेदं परमं स्थानं श्रूयते त्रिपुरद्विषः ।
हर्षेश्वरेति विख्यातं नाम्ना पापौघनाशनम् ।

वहाँ त्रिपुरासुर के शत्रु महादेव का परम स्थान सुना जाता है। पाप-समूह को नष्ट करने वाला यह 'हर्षेश्वर' नाम से प्रसिद्ध हुआ।

यस्मिन्स्थाने हरिः साक्षादीश्वरं भक्तवत्सलम् ।
नत्वा तदाज्ञयाऽधाक्षीत्तारकं दैत्यपुङ्गवम् ।।

जिस स्थान पर हरि ने साक्षात् भक्तवत्सल ईश्वर को नमस्कार कर उनकी आज्ञा से दैत्यपुङ्गव तारक को भस्म कर दिया था।

हर्षेश्वरेति तत्स्थानं वाराणस्या यवाधिकम् ।

वाराणसी का यवाधिक वह स्थान 'हर्षेश्वर' है।

ऋषय ऊचुः—ऋषि बोले—

मुने सत्यवतीसूनो परं कौतूहलं हि नः ।
किमर्थं तारको दग्धो हरिणा लोकधारिणा: ।।

सत्यवती सुनु हे मुनि! हमें परम कुतूहल है कि लोकधारी हरि ने किस लिए तारकासुर को भस्म कर दिया।

श्रीवेदव्यासउवाचः— श्री वेदव्यास जी बोले

स तारको नाम पुरासुरोऽभूत्प्रचण्डवीर्यो विजितत्रिलोकः ।
शोकं ससर्जारिविलासिनीनां मनःसु यो वारितसद्विवेकः ।

---

१ हस्याःत्मजा, २......, ३ करुणा० ।

स[1] क्रूरबुद्धि[2]......वनं प्रयातो मृगयाविहारी[3] ।
ददर्श दूरेऽध्वनि[4] नारदाख्यं मुनिं महाकारुणिकं सुरारिः ॥

पूर्वयुग में प्रचण्ड वीर्यवान्, तीनों लोकों को जीतने वाला वह तारक नामक असुर हुआ, जिसने सद्विचार को तिलाञ्जलि दे शत्रुओं की स्त्रियों के मनों में शोक पैदा किया। वह क्रूरबुद्धि......शिकार खेलने की इच्छा से वन गया और उस सुरारि ने दूर मार्ग में महाकारुणिक नारद नामक मुनि को देखा।

पप्रच्छ तं[5] दैत्यपतिः स मार्गे योगीश्वरं दानवसैन्यनाथः ।
प्रणम्य भक्त्या परया महात्मन्देवेषु को वै तपसाशुतोषः ।
स नारदो योगिवरोऽब्रवीत्तं[6] निबोध दैत्येन्द्र वचो ममेदम् ।
साक्षान्महेशो भगवान् शेषविश्वेशरूपः कृतशेषहारः ॥
स पार्वतीशः शशिमौलिरेकः सन्दृश्यतेऽसौ[7] तपसाशुतोषः ।

दानवसेना के अधिपति उस दैत्यपति ने मार्ग में परम भक्तिपूर्वक नमस्कार कर योगीश्वर से पूछा हे महात्मन ! देवताओं में तपस्या से शीघ्र प्रसन्न हो जाने वाला कौन है ? योगीश्वर नारद ने कहा कि हे दैत्येन्द्र ! मेरे इस वचन को जानो कि साक्षात् महेश भगवान्, शेषविश्वेशरूप, कृतशेषहार वह पार्वतीश शशिमौलि एकमात्र 'आशुतोष' ही ऐसे हैं।

इच्छास्ति वै दैत्यविभो विभूतायाराध[8]येशं वृषवाहनं तम् ।
ततोऽभिधायाशु स योगिवर्यस्तिरोहितोऽ[9]भून्निज मायया च ।
दैत्योऽपि[10] सर्वं निजराज्यभारं विहाय केदारमगात्तपोऽर्थम्[11] ।
[12]केदारतीर्थाश्रयमाशुलिङ्गं दृष्ट्वा च तत्रामृतमेष पीत्वा ।
प्रयाति नूनं मनुजोऽर्क[13]विम्बं भित्वा[14] शिवाख्यं परमं स्व धाम।

हे दैत्यविभो ! यदि आपकी विभूति में इच्छा है तो उस वृषवाहन ईश-महादेव की आराधना करो। यह कह कर तदनन्तर वह योगी श्रेष्ठ अपनी माया से तिरोहित हो गया। दैत्य भी अपना सब राज्यभार छोड़ कर तपस्या के लिए केदार को चला गया। केदार तीर्थ में आश्रित आशुलिङ्ग के दर्शन कर इसने वहां अमृतपान किया। जहां दर्शन कर और अमृतपान कर मनुष्य सूर्यमण्डल का भेदन कर शिव के परम धाम को जाता है।

---

१ क्रूरबुद्धिः, २......, ३ विहरी, ४ दूरेध्वनि, ५ त, ६ योगिवरोब्रवी., ७ सन्दृश्यतेसौ, ८ वराध., ९ स्तिरोहितोभू. १० दैत्योपि, ११ त्तपोर्थं, १२ कैदार., १३ मनुजोर्क., १४. भित्वं

तत्रैव सप्ताहमसौ सुरारिर्दुष्टात्मबुद्धिह्यु पवासनिष्ट: ।
यदा न लेभे वरमाशु देवात्तदा शिरश्च्छेत्तुमुपाक्रमत्स्वम् ।।

वहीं पर सप्ताह पर्यन्त उस दुष्टात्मबुद्धि वाला उपवास करते हुए सुरारि ने जब महादेव से शीघ्र वर नहीं पाया तब उसने अपने शिर को काटने का उपाक्रम किया ।

तत्साहसेनाशु दयानिधानो देवो महेश: कृतनागभूष: ।
प्रादुर्बभूवास्य[1] पुरोऽसुरस्य[2] दातुं[3]वरं तुष्टतमो मुनीन्द्रा: ।।

हे मुनीन्द्रो ! उसके साहस से प्रसन्न हो दया के भण्डार नाग-आभूषण से भूषित महेश महादेव वर देने के लिए इस असुर के आगे प्रकट हुए ।

तमाशुदेवं पुरतो विलोक्य प्रणनाम[4]चास्मै निजसत्वयोगात् ।
वव्रे वरं दुष्टमति: स दग्धुं सर्वांश्च लोकांश्च तपसेद्धतेजा: ।।

उस आशुतोष महादेव को आगे देख अपने सत्वयोग से उसने उन्हें प्रणाम किया और तपस्या से दधकते हुए तेज वाले उस दुर्बुद्धि ने सभी लोकों को जलाने के लिए वर मांगा ।

देवाधि[5]देवेश भवत्प्रसन्नश्चेन्नो[6] तदस्त्वद्य [7]वरस्तवायम् ।
यं यं स्पृशम्याशु करेण भस्मीभूतो भवत्वेश तव प्रसादात् ।।

हे देवाधिदेव ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो यह वर मुझे दो कि मैं हाथ से जिस-जिस का स्पर्श करूं वह शीघ्र तुम्हारी कृपा से भस्म हो जाए ।

तथेति देवो भगवान्दयालुर्महेश्वर: शैलसुतासमेत: ।
अङ्गीचकाराशु स कर्मसाक्षी तत्कालकृत्कालपति: कलेश: ।।

'तथास्तु' कह दयालु, महेश्वर, कर्मसाक्षी, तत्कालकृत्, कालपति, कलेश पार्वती से युक्त भगवान् महादेव ने शीघ्र स्वीकार कर लिया ।

स चासुर[8]: शैलसुता[9]समेतं दृष्ट्वा···[10]धृतदुष्टबुद्धि: ।
वरेण शैवेन समिद्धतेजस्तां हन्तु[11]मीशं स समुद्यतोऽ[12]भूत् ।।

वह दुर्बुद्धि असुर पार्वती समेत शिव को देखकर शिव से दिए गए वर से दधकते तेज वाला उस पार्वती और परमेश्वर को ही मारने के लिए प्रस्तुत हो गया ।

---

१ वंभूवा:स्य, २ मुरोसुदस्य, २ दात्तं, ४ प्रणमा, ५ देवादि., ६ श्चेनो, ७ तदस्व:द्य, ८ वा:सुर: ९ सुत:, १०····, ११ हर्तुं, १२ समुद्रेत

तदेश्वर: स्वेन वरेण पूर्णं तं दैत्यराजं नहि हन्तुमीशः ।
सुरक्षितं नैव निहन्ति साधुर्यद्यप्यसौ बाधितुमुद्यतः स्यात् ॥

तब वह ईश्वर महादेव अपने ही दिए गए वर से परिपूर्ण दैत्यराज को मारना नहीं चाहते थे, क्योंकि साधु पुरुष सुरक्षित को नहीं मारता है, यद्यपि उसे वह बाधा डालने के लिए ही उद्यत क्यों न हो ।

ततः स देवः परमेश्वरस्तद्भया[1] ······स शक्तिः ।
पश्चात्स दुद्राव महासुर[2]···ज्वलन्निवाग्नि: सहसा मुनीन्द्राः ॥

इसके बाद वह परमेश्वर महादेव उसके भय से······

सपार्वतीकोऽथ[3] महेश्वरोद्राक्सभाययौ भीतइवासुरेन्द्रात् ।
कश्मीरतीर्थस्थितशैलराज गुहां गुहाद्यैः सममेव सर्वैः ॥
तत्रात्मनो लिङ्गमशेषपूज्यं निधातुकामः शशिमौलिरीशः ।
प्रभावमात्मीयमथ प्रकाशं कर्तुं च हन्तुं निजभक्तपापम् ॥
तत्रैव शैलाग्रमहागुहायां स्वं गोपितुं भूतपतिः स देवः ।
सार्धं स्वकीयैर्गणनाथमुख्यैर्लिङ्गात्ममूर्ति र्निजमाययाभूत् ॥

इसके बाद पार्वती सहित महेश्वर असुरेन्द्र से भयभीत हुए की तरह शीघ्र सभी गुहादि के साथ कश्मीर तीर्थ में स्थित पर्वतराज की गुहा में चले आए । वहां चन्द्रमौलि भगवान् महादेव सभी से पूजे जाने वाले अपने लिङ्ग को रखने की इच्छा से अपने प्रभाव को प्रकट करने के लिए और अपने भक्त के पाप को मारने के लिए वहीं शैलाग्र की महागुहा में अपने को छिपाने के लिए भूतपति वह महादेव अपने मुख्य गणनाथों के साथ अपनी माया द्वारा लिङ्गात्ममूर्ति हो गए ।

याव[4]···दैत्यपतिः स शैले रुद्रं समन्वेष्टुमनश्चचार ।
तावत्समग्रासुरदर्तिसिंहं सस्मार[5] शीघ्रं हरिमीश्वरोऽपि[6] ।

जब क्रोध से वह दैत्यपति रुद्र को खोजने के मन से घूमने लगा, तब सभी असुरों का संहार करने वाले हरि का ईश्वर ने भी शीघ्र स्मरण किया ।

ततो मुरारिर्भगवत्समीपमागत्य शम्भोर्निज शक्तिरूपः ।
स प्राञ्जलिः प्राह गिरं प्रणम्य विनीतवद्वाक्यविदेवमेकः ॥

इसके बाद महादेव के अपने शक्तिस्वरूप विष्णु ने भगवान् के पास

१······, २······, ३ सपार्वतीकोथ, ४ यावद्रुषा, ५ संस्मार, ६ मीश्वरोपि,

आकर प्रणाम कर दोनों हाथ जोड़ नम्र की तरह वाक्यरचना को जानने वाले उसने कहा।

श्रीविष्णुरुवाच— श्रीविष्णु बोले—

ॐ नमः शिवाय वेदान्तसि[1]…दिविवेचिने।
प्राणरूपाय देवाय ज्ञानाधिपतये नमः॥

वेदान्तसि……दि का विवेचन करने वाले शिव को नमस्कार है। प्राणरूप-ज्ञानाधिपति महादेव को नमस्कार हो।

किमर्थमहमद्यैव स्मृतो भगवता त्वया।
विधेयं किं तवेशानशायिनः किं करोम्यहम्॥

भगवान् आपने आज ही मुझे किस लिए याद किया है? आपके लिए मुझे क्या करना है? ईशानशायी आपका मैं क्या करूं?

श्री वेदव्यास उवाच— श्री वेदव्यास बोले—

इत्थं स्तवेन देवेशः स्तुतः शम्भुस्तपोधनः[2]।
हरिणा योगिपूज्येन मायिना ह्यनपायिना॥

मायावी, अनपायी, योगिपूज्य हरि से इस प्रकार स्तुति से स्तुत हुए तपोधन शम्भु ने—

उवाच वचनं शम्भुः……

श्रीशम्भुरुवाच— श्री शम्भु ने कहा—

शृणु योगीश दैत्यारे मच्छक्तिस्त्वं जनार्दन।
मद्भक्तो मन्मतिर्नित्यं मत्परायण एव च॥

हे दैत्यारे! योगीश! सुनिए। हे जनार्दन! तुम मेरी शक्ति हो। तुम मेरे भक्त हो, मेरी मति हो और मत्परायण हो।

त्वया हताश्च ते वीरा दैत्येन्द्रा मधुसूदन।
साम्प्रतं पश्य मायेश सदारो दृप्तमानसः।
मामेव हन्तुकामोऽसौ[3] तारकाख्यो महासुरः॥

हे मधुसूदन! तूने वे दैत्येन्द्र वीर मारे। हे मायेश! अब देखिए, वह सपत्नीक, अभिमत्त मनवाला तारक नामक महासुर मुझे ही मारना चाहता है।

तद्गच्छ मायया विष्णो दैत्यं भस्मीकुरु क्षणात्।
इत्यादिष्टो भगवता हरिः शीघ्रं गुहामुखात्।

---

१ सिद्धादि, २ स्तपोपधनाः, ३ कामोसौ,

निर्गत्य दैत्यराजं तं शैलपादे ददर्श ह ॥

हे विष्णो ! सो जाओ, माया से क्षण में दैत्य को भस्म कर दो। इस प्रकार भगवान् महादेव से आज्ञा पा शीघ्र गुहामुख से निकलकर हरि ने उस दैत्यराज को शैलपाद पर देखा।

तत्रैव भगवान्विष्णुः स्त्रीरूपे निजमायया।
चकारो[१]......सुखं सुखकरं दृशाम् ॥

वहीं भगवान् विष्णु ने स्त्री रूप में अपनी माया के द्वारा नेत्रों के लिए सुखकर.........

एवंविधं स भगवान्परिधाय[२]...वासोचितं[३]...वासगतिः समायः।
[४]...स्वकीयमथ तस्य महासुरस्य शैलाग्रसंस्थित स दर्शयदेकवीरः।
तां वीक्ष्य सुन्दरनिजावयवानवद्यां हृद्यामनंगशरतापितमानसोऽभूत्[५]।
दैत्यः सविस्मय इव क्षण विस्मृतेतिकर्तव्य आस्त[६]...मविमूढचेताः॥

सुन्दर अपने अङ्गों से अनवद्य और हृद्य उसे देखकव दैत्य कामदेव के तीरों से संतप्त मन वाला हुआ।

...[७]नितरां परितप्तगात्रो भ्रान्ति भजंस्तुहिनभूधरराजपुत्र्याः।
उष्णोष्णनिः[८]श्वसितमोचकिताधरोष्टः कष्टं कथंचिदिदमेव
हसञ्जगाद ॥

कामदेव के बाण से सन्तप्त शरीर वाले दैत्य ने हिमालय पर्वत की राजपुत्री पार्वती के भ्रम में गर्म-गर्म सांस...... कष्ट से किसी तरह हंसते हुए यह कहा।

दैत्योश्वरोऽह[८]मवनौ दिवि भूमिरन्ध्रे वीर्यविधूतस्वरवर्यमहानुभावः।
[९]...विलोक्य कतमोऽस्त्यपरोऽभिलाषः[१०] स सुन्दरीगणजनस्य च...
मेतत् ॥

पृथ्वी, द्युलोक और भूमि के रन्ध्र में अपने पराक्रम से तिरस्कृत कर दिया...... ऐसा मैं दैत्येश्वर हूँ।

इत्थं गिरं त्रिदशवैरिसमीरितां तां श्रुत्वा विचिन्त्य[११]...रिपुतापितं तम्
वाणी...[१२]रसमयी[१३]...रम्याक्षरं...[१४]जगदेकनाथः॥

देवताओं के शत्रु उस दैत्य से कही गई इस प्रकार उस वाणी को सुन कर और.........

१...... २...... ३...... ४...... ५ मानसोभूत्, ६...... ७......
८ दैत्येश्वरोह, ९...... १० कतमोस्त्यस्त्यपरोभिलाषः, ११...... १२...
१३...... १४......

त्वां प्राप्य वल्लभमम[1]…कोशं च यौवनधनस्य वपुर्मदीयम् ।
[2]…प्रयाति सौख्यं परं किमपरं…[3]
इच्छामि दैत्यवर[4]…मुपैतुमद्य[5]…भविष्यत् ।
[6]… …त्रस्तास्म्यहं कथमुपैमि भवन्तमेका ।।
इत्यात्मनोऽभिलषितं ललनां वदन्तीं दैत्याधिपस्तदधरामृतपानलुब्धः ।
तां हुङ्कृतेन गिरिरन्ध्रभवां ससिन्धुमौर्वाग्निनेव समशोषयदुग्रदृष्टिः ।।

इस प्रकार अपने ही अभिलषित को कहती हुई गिरिरन्ध्र से पैदा उस ललना को उसके अधरों के अमृतरस पीने के लोभी उग्रदृष्टि उस दैत्यराज ने वाडवानल से सुखाए गए समुद्र की तरह हुङ्कार से चूस लिया।

अथाब्रवीद्वाक्यमुदारतेजा दैत्याधिपस्तां दयिते नदीयम् ।
संशोषिता हुङ्कृतिवह्निना मे तदेहि मत्पार्श्वमपास्तभीतिः ।।

इसके बाद उदारतेजा उस दैत्यराज ने उसने कहा कि हे दयिते ! मेरी हुङ्कृति रूपी वह्नि से सुखाई गई नदी की तरह तुम भय छोड़कर इधर आओ।

ततोऽ[7]ब्रवीत्सस्मितमात्तमायः स्त्रीरूपधारी भगवान्स विष्णुः ।
भीतिः प्रणष्टा खलु मे नदीजाता[8] पराऽहेस्तव मूर्ध्निलग्नात् ।।

इसके बाद मुस्कराते हुए माया से स्त्रीरूप को धारण किए हुए उस भगवान् विष्णु ने कहा कि अहि से पैदा हुई दूसरी नदी की तरह तेरे मस्तक पर लगते से मेरा भय नष्ट हो चुका है।

कुत्रास्त्यहिः सुभ्रु शिरोगतो मे यावत्स्वपाणिं शिरसिन्यधात्सः ।
तावन्महेशस्य वरानलो द्राग्भस्मावशेषं दितिजं चकार ।

हे सुभ्रु ! मेरे शिर पर अहि कहां है ? इस प्रकार जब उसने शिर पर अपने हाथ को रक्खा, त्यों ही महादेव के वर रूपी अग्नि ने शीघ्र दैत्य को भस्मावशेष कर दिया।

अथोद्भू[9]द्व्योम्नि जयध्वनिर्महान्पपात वर्षं च दिवोऽत्र[10] वर्षणम्
तत्रागतः शिवः साक्षात्स देवीसहितः प्रभुः ।
मोहिन्या दर्शनाज्जातो मोहः परमदुःसहः ।।

इसके बाद आकाश पर महा जयध्वनि हुई और जहां द्युलोक से वृष्टि हुई। वहां पार्वती के साथ साक्षात् प्रभु शिव आए और मोहिनी को देखने से उन्हें परमदुःसह मोह पैदा हुआ।

१…… २…… ३…… ४…… ५…… ६…… ७ ततोब्रवीः, ८ नदी ना जाता, ९ अथोदभू., १० दिवोत्र,

नाम्ना स्वलीनमोहेति प्रथितो[1]ऽद्यापि भूतले ।
दृष्ट्वा तन्मोहिनीरूपं खलीनश्च पपात ह ।।

'स्वलीनमोह' नाम से वह आज भी पृथ्वी पर प्रसिद्ध हुआ। उनके मोहिनीरूप को देखकर खलीन गिर पड़ा।

खलीनमोहसंज्ञो[2]ऽपि देशो भुवि च विश्रुतः ।
स्नानं दानं तपो यज्ञं स्वाध्यायं च जपस्तथा ।।
यः करोति नरो धीमान्नक्षय्यं फलमश्नुते ।।

खलीनमोह नाम से भी वह देश पृथ्वी पर प्रसिद्ध हुआ। स्नान, दान, तप, यक्ष, स्वाध्याय और जप जो बुद्धिमान् पुरुष करता है, वह अक्षय फल पाता है।

अथ दृष्ट्वा महेशानः कृतार्थं हरिमागतम् ।
साधुवादेन महता सम्पूज्यो वा [3]सस्मितम् ।।

इसके बाद अपने कार्य्य में सफल होकर आए हुए हरि को देखकर मुस्कराते हुए महादेव ने महासाधुपाद के साथ उनकी पूजा की।

साधु साधु महाबाहो यत्कृतं कर्म दुष्करम् ।
भस्मीकृतस्त्वया देव दानवो[4]ऽयं महाबलः ।।

हे महाबाहो ! साधु, साधु, जो तूने दुष्कर कार्य्य किया। हे देव ! तूने इस महाबली दानव को भस्म कर दिया है।

हृष्टो[5]ऽस्मि भवतानेन कर्मणा गरुडध्वज ।
तस्माच्चं मम सान्निध्यं कुरुष्व मधुसूदन ।।

हे गरुडध्वज ! आप के इस कर्म से मैं प्रसन्न हूँ, इसलिए हे मधुसूदन ! तुम मेरे पास रहो।

श्रीव्यास उवाच—श्री व्यास बोले—

हर्षेश्वरेति विख्यातो वाराणस्या यवाधिकम् ।
यो वै पश्यति सल्लिङ्गं मोहिन्या सहितं प्रभुम् ।
लभते विपुलान्भोगान्प्राप्नोति परमं पदम् ।।

वाराणसी से यवाधिक 'हर्षेश्वर' नाम से वह प्रसिद्ध हुआ। जो मोहिनी के साथ प्रभु सल्लिङ्ग के दर्शन करता है, वह विपुल भोगों को और परम पद को पाता है।

---

१ प्रथितोद्यापि, २ संज्ञोपि, ३ संस्मितं, ४ दानवोयं, ५. हृष्टोस्मि,

अश्वमेधसहस्रेण वाजपेयशतानि च ।
दानं तपोभिर्यत्पुण्यं तद्धर्षेश्वरदर्शनात् ।।

सहस्र अश्वमेध से सैकड़ों वाजपेयों से, दान से और तपों से जो पुण्य प्राप्त है, वह हर्षेश्वर के दर्शन मात्र से होता है।

ब्रह्महा भ्रूणहा वापि स्त्रीहत्यानिरतः सदा ।
गुरुतल्पगतश्चैव प्रमादान्मद्यपस्तथा ।।
लिङ्गं सम्पूज्य मन्त्रेण विष्णुश्चापि तथाम्बिकाम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो याति शैवं परं शुभम् ।।

ब्रह्महत्यारा, भ्रूणहत्यारा व सदा स्त्रीहत्यारा, गुरुशय्यागमन करने वाला और प्रमाद से मद्यपान करने वाला भी मन्त्र से लिङ्ग, विष्णु तथा अम्बिका की पूजा कर सभी पापों से मुक्त होकर मनुष्य परम एवं शुभ शैव पद को पाता है।

ध्यायेद्दशभुजं देव शशाङ्ककृतभूषणम् ।
गङ्गाधरं महेशानं सर्पगोनासमण्डितम् ।।

दश-भुजाओं से युक्त, शशाङ्क को जिसने आभूषण के स्थान पर स्थापित किया हुआ है ऐसे, गङ्गा को धारण करने वाले, सर्प-गोनास से मण्डित महेशान देव का ध्यान करे।

नीलकण्ठं महादेवं भस्मौघपरिपाण्डुरम् ।
वृषभासनमारूढं लोचनत्रयसुन्दरम् ।।

भस्मसमूह से श्वेत वर्ण वाले, वृषभ के आसन पर सवार, तीन नेत्रों से सुन्दर नीलकण्ठ महादेव को—

दक्षे त्रिशूलबाणासि वज्रं चाभयमेव च ।
वामे पाशं तथा शार्ङ्गं मुण्डं वीणां तथैव च ।।

दाहिने हाथ में त्रिशूल-बाण-खड्ग, वज्र और अभय को धारण किए हुए, बायें हाथ में पाश, धनुष, मुण्ड और वीणा को लिए हुए—

वरं वहन्तमीशानं त्रिजगत्स्थिति कारकम् ।
चन्द्रकोटिप्रतीकाशं सूर्यकोटिसमप्रभम् ।
ध्याये[1]द्देवं सदा विष्णोर्लिङ्गं हर्षेश्वरं बुधः ।
रुद्ररूपो मनुष्योऽसौ[2] जायते भुवि निश्चितम् ।

१ ध्याये देवं, २ मनुष्यासौ,

हरिपादविनिर्यातगङ्गायां यो नरोत्तमः ।
स्नानं करोति तत्पुण्यं को वक्तुं क्षमते बुधः ॥

वर धारण किए हुए, तीनों लोकों की स्थिति में कारण, करोड़ों चन्द्र के समान चमकते हुए, करोड़ों सूर्य के समान प्रभा वाले विष्णु के लिङ्ग हर्षेश्वर देव को बुद्धिमान् पुरुष ध्याए। वह मनुष्य रुद्र रूप होकर पृथ्वी पर निश्चित जन्म लेता है। हरि के चरण से निकली गङ्गा में जो नरश्रेष्ठ स्नान करता है, उस पुण्य को कौन विद्वान् कहने में समर्थ है ?

श्रीव्यास उवाच— श्री व्यास बोले—

तस्मादेतन्महत्तीर्थे महत्स्थानं मुनीश्वराः ।
हर्षेश्वरेति विख्यातं त्रैलोक्ये सचराचरम् ॥

हे मुनीश्वरो ! इसलिए इस महातीर्थ में यह महास्थान तीनों लोकों में चर-अचर सहित 'हर्षेश्वर' नाम से प्रसिद्ध है।

यो भक्त्या मनुजोत्तमो भगवतो लिङ्गं परं पावनम् ।
बिल्वाद्यैः सहितं च दैवतगणैः पश्यत्यवश्यं गिरौ ॥
स प्राप्नोति समस्तदुर्गतिहरीं लक्ष्मीमिहामुत्र वा ।
मुक्तिं शाम्भवलोकभोगविभोगविभवान्नित्यं च भावान्वितः ॥

जो मनुष्य श्रेष्ठ भक्तिपूर्वक गिरि पर भगवान् के परम पवित्र लिङ्ग के बिल्व आदि और देवगणों के साथ अवश्य दर्शन करता है, वह भावान्वित पुरुष इस लोक में समस्त कठिनाइयों का हरण करने वाली लक्ष्मी को और दूसरे लोक में शाम्भव लोक भोगविभव से नित्य मुक्ति पाता है।

यो वा पञ्चस्थलीं दृष्ट्वा पञ्चलिङ्गञ्च शाम्भवम् ।
सम्पूजयति पूतात्मा यात्यसौ वैश्वरं पदम् ॥

पञ्चस्थली के दर्शन कर जो पूतात्मा शाम्भव पञ्चलिङ्ग का पूजन करता है, वह ऐश्वर्य पद को पाता है।

किं तस्य दानैः किं तीर्थैः किं तपोभिः किमध्वरैः ।
पञ्चस्थलीकृतस्नानो[1] यः पश्यति हि शङ्करम् ॥

उसके दानों से क्या, तीर्थों से क्या, तपस्याओं से क्या, यज्ञों से क्या ? पञ्चस्थली में किये हुये स्नान वाला जो पुरुष शङ्कर के दर्शन करता है।

ऋषय ऊचुः— ऋषि बोले—

पञ्चस्थली समाख्याता भवतो नामतः किल ।
पञ्चस्थानानि कान्याहुस्तत्तत्वतो वद साम्प्रतम् ॥

---

१ कृतस्नातो,

आप के नाम से पञ्चस्थली कही गई है। पाँच स्थान कौन से हैं ? तत्त्व से अब कहिये।

श्रीवेदव्यास उवाच—श्री व्यास बोले—

ज्यैष्ठायां प्रातः समुत्थाय नागराजञ्च तक्षकम्।
गत्वा सम्पूज्य गन्धाद्यैः स्नात्वा तत्र यथाविधि॥
तक्षके नागराजे यः स्नाति भक्त्या समन्वितः।
सर्वपापविनिर्मुक्तो मण्डलं याति भास्करम्॥

ज्येष्ठा में प्रातः उठकर और नागराज तक्षक के स्थान पर जाकर वहाँ विधिपूर्वक स्नान के बाद गन्ध आदि से पूजा कर नागराज तक्षक में भक्तिपूर्वकजो स्नान करता है, वह सभी पापों से मुक्त होकर सूर्यमण्डल को जाता है।

लक्ष्मीरूपधरां तत्र देवीं सम्पूजयेद्बुधः।
ततो यायाच्च पूर्वेण मार्गेणैव सुसंयतः[1]॥

वहाँ बुद्धिमान् पुरुष लक्ष्मीरूप को धारण करने वाली देवी की पूजा करे। इसके बाद संयत होकर पूर्व मार्ग से ही जाये।

जनकस्याश्रमे रम्ये गङ्गातुङ्गोर्मिलाञ्छितम्।
यत्र जालन्धरं पीठं कथितं पूर्वसूरिभिः॥

जनक के रमणीय आश्रम में पूर्व विद्वानों ने जहाँ गंगा की ऊँची लहरों से लाञ्छित स्थान को जालन्धर पीठ कहा गया है।

देवी वसति तत्रैव गणेशादिसमन्वितः।

गणेश आदि से युक्त देवी वहीं रहती है।

देवीं सम्पूज्य तत्रैव गन्धाद्यैर्भक्तिसंयुता।
जनकस्याश्रमे रम्ये गङ्गाशम्भु[2]न्यतिनिर्मले॥
स्नात्वा सम्पूज्य देवीञ्च शिवं चैवान्यदेवताः।
प्राप्नोति विष्णुलोकञ्च विष्णुना सह मोदते॥

वहीं भक्तिभाव से युक्त हो गन्ध आदि से देवी की पूजा कर रमणीक जनक के आश्रम में अतिनिर्मल गङ्गाजल के भीतर स्नान कर और देवी, शिव तथा अन्य देवताओं की पूजा कर विष्णुलोक को पाता है एवं विष्णु के साथ प्रसन्न होता है।

---

१ सुसंयुतः, २ गंगांभस्यति.,

ततोऽपि[1] पूर्वमार्गेण यायात्सोमस्य कुण्डकम् ।
यत्र सोमोऽमृतं[2] साक्षात्स्रवते दर्शचन्द्रयोः ॥

तदनन्तर पूर्वमार्ग से सोमकुण्ड को जाए, जहाँ साक्षात् सोम अमृत बहता है ।

सङ्गमे तत्परं स्थानं[3] सोमक धाम विश्रुतम् ।
तत्र स्नात्वा यथाभक्ति सोमं[4] सम्पूज्य यत्नतः ॥
आम श्राद्धेन सन्तर्प्य पितृंस्तत्र विधानतः ।
उद्धरेन्मानवस्तेन स्वकुलमेकविंशतिम्[5] ॥

उससे परे संगम में जो स्थान सोमक धाम से प्रसिद्ध है, वहाँ स्नान कर और भक्तिपूर्वक सोम की पूजा कर विधिवत् पितरों का तर्पण कर उससे मनुष्य अपने इक्कीस कुल का उद्धार करे ।

सोमधाम शिवं यान्ति[5] तदीयाः पितरः परम् ।
दिव्यान्यब्धसहस्राणि सुधाहाराः सुतर्पिताः ॥

सुधाहार-सुतर्पित उसके पितर दिव्य सहस्र वर्ष पर्यन्त परम सोमधाम शिवलोक को जाते हैं ।

ततोऽपि[6] पूर्वमागेण भुवनेश्वरसन्निधौ ।
आश्रित्य पादगङ्गायां स्नात्वा माहेश्वरं जपन् ।
पूजयेदीश्वरं तत्र नृत्य वाद्यमहोत्सवैः ।

इसके बाद भी भुवनेश्वर के पास पूर्वमार्ग से पादगङ्गा में जा कर, स्नान कर महेश्वर का जप करता हुआ वहाँ नृत्य-वाद्य महोत्सवों से ईश्वर की पूजा करे ।

यो नरो हरिगङ्गायां ज्ये···स्नाति यथाविधि ।
स याति पापनिर्मुक्तो पारं सादाशिवं शुभम् ॥

जो मनुष्य हरिगङ्गा में यथाविधि···स्नान करता है, वह पाप से मुक्त होकर शुभ पार सदाशिव लोक को जाता है ।

ततः पूर्वेण मार्गेण योजनार्धेन विश्रुतम् ।
आरुह्य शैलराजञ्च जपेन्मन्त्रञ्च शाश्वतम् ॥

तदनन्तर योजनार्ध पूर्व मार्ग से प्रसिद्ध शैलराज पर चढ़ शाश्वत मन्त्र को जपे ।

---

१ ततोपि, २ सोमोमृतं, ३ स्थंनं, ४ कुलानेकविंशतिं, ५ याति, ६ ततोपि

शैलस्योर्ध्वंप्रदेशं वै प्राप्य पश्चाद्विलोकयेत् ।
गिरिपादतले दग्धमसुरं शैलतां गतम् ।।

गिरि के पादतल में जला हुआ असुर जहाँ शैलता को प्राप्त हुआ, शैल के उस ऊर्ध्वंप्रदेश को पाकर पीछे देखे।

यत्रासौ तारको दग्धो हरिणा दैत्यपुङ्गवः ।
तत्स्थानं भस्मसंकाशं जनैरद्यापि दृश्यते ।।

हरि ने जहाँ दैत्यपुङ्गव तारक को जलाया, वह भस्मसंकाश स्थान मनुष्यों से आज भी देखा जाता है ।

दग्धारिरिति तत्स्थानं लोकैरद्यापि कथ्यते ।
तत्स्थानं शैलतो दृष्ट्वा ब्रह्महत्या व्ययोहति ।।

'दग्धारि' इस प्रकार वह स्थान लोगों से आज भी कहा जाता है । शैल से वह स्थान देखने से ब्रह्महत्या दोष भी नष्ट हो जाता है ।

ततो गिरिपथान्तस्थां नदीं दैत्येन शोषिताम् ।
विलोकयेन्नरो धीमान्दृष्ट्वा याति हि सद्गतिम् ।।

इसके बाद बुद्धिमान् पुरुष गिरिपथ के बीच स्थित दैत्य द्वारा शोषित नदी के दर्शन कर सद्गति को पाता है ।

ततः शैलोर्ध्वंभागे वै पाञ्चालभैरवोत्तमम् ।
सम्पूज्य गन्धपुष्पाद्यैर्यायादीशानगोचरः ।।

इसके बाद शैल के ऊर्ध्वंभाग में पाञ्चाल भैरवोत्तम की गन्धपुष्प आदि से पूजा कर ईशानगोचर चला जाए।

अधः पादगतां गङ्गां द्वितीयां हरदेवताम् ।
तत्र स्नात्वापि···यस्तर्पणं कुरुते बुधः ।
नरकात्पितृवृन्दं च समुद्धरति निश्चितम् ।

नीचे पादगत गङ्गा द्वितीय हर देवता में स्नान कर जो विद्वान् पुरुष तर्पण करता है वह नरक से पितृवृन्द का निश्चित उद्धार करता है।

याति चैवेश्वरं स्थानं भूयो जन्म न विद्यते ।
एषा पञ्चस्थली नाम कथिता पापनाशिनी ।।

और ईश्वर के स्थान को पाता है, फिर जन्म नहीं पाता है । यह पापों को नष्ट करने वाली पञ्चस्थली नाम से कही गई है ।

ततः पानीयमादाय स्वर्गङ्गाया मनोहरम् ।
विमलं पावनश्चैव शैलमारोहयेद्बुधः ।।

इसके बाद स्वर्गङ्गा के मनोहर जल को ले कर विद्वान् पुरुष विमल और पवित्र शैल पर चढ़े ।

गिरेरूर्ध्वस्थलं प्राप्य कृत्वा चार्धप्रदक्षिणम् ।[1]
आसाद्य तद्गुहास्थानं साक्षाद्यत्र महेश्वरः ॥
शिवं विष्णुं तथा देवीं कुमारं गणपं तथा ।
सप्ताश्वञ्च तथैवान्यान्पू[2]जयेद्यत्नमानसः ॥

गिरि के ऊर्ध्वस्थल को पा कर और अर्ध प्रदक्षिणा कर उस गुहास्थान को पा, जहाँ साक्षात् महेश्वर विराजमान हैं, शिव, विष्णु, देवी और कुमार तथा गणपति एवं सप्ताश्व तथा अन्यों की यत्नपरिपूर्ण मन से पूजा करे ।

गन्धैः पुष्पैस्तथा धूपैर्दीपै[3]र्वासोभिरेव च ।
नैवेद्यैर्दक्षिणाभिश्च पूजयेत विचक्षणः ॥

बुद्धिमान् पुरुष गन्ध, पुष्प, धूप और वस्त्रों से एवं नैवेद्यों तथा दक्षिणा से—

कृत्वा[4]···विचित्रञ्च हर्षेश्वरसमीपतः ।

हर्षेश्वर के पास विचित्र···की पूजा करे ।

हर्षेश्वरांघ्रितलपूजनकृत्पुमान्यो विष्णवर्चनं विधिवदत्र करोति मर्त्यः ।
प्राप्नोति रुद्रसततं च तथैव विष्णोर्ज्योतिर्मयं भवति तस्य वपुर्मुनीन्द्राः

हे मुनीश्वरो ! जो पुरुष हर्षेश्वर की अंघ्रितल की पूजा कर विधिवत् विष्णु की पूजा करता है । वह रुद्रसतत को पाता है तथा उसका शरीर विष्णु के ज्योतिर्मय शरीर की तरह हो जाता है ।

यो नरो यौवने वापि वार्धक्ये[5] वापि भक्तितः ।
बाल्ये वा जपति व्यक्तं तद्धर्षेश्वर नाम वै ॥
सजीव···द्रतां याति चे···ज्ञा पारमीश्वरी ॥

जो मनुष्य युवावस्था वृद्धावस्था या बचपन में भक्तिपूर्वक स्पष्ट उस हर्षेश्वर के नाम को जपता है, वह······रुद्रता को प्राप्त होता है······

एतत्तीर्थस्य माहात्म्यं कथितं वै मुनीश्वराः ।
श्रवणात्पठनाद्वापि शिवलोकं स गच्छति ॥

हे मुनीश्वरो ! इस तीर्थ के माहात्म्य को कहा गया है, सुनने से या पढ़ने से भी वह शिवलोक को जाता है ।

---

१ प्रदक्षणं; २ वान्यांन्यू., ३ घूपैदीपै., ४······ ५ वार्धके,

श्रोष्यन्ति चैव ये भक्त्या माहात्म्यमीश्वरस्य वै ।
ते प्राप्नुवन्ति सम्पूर्णयात्रायाः फलमुत्तमम् ।।

जो भक्तिपूर्वक ईश्वर के माहात्म्य को सुनेंगे, वे सम्पूर्ण यात्रा के उत्तम फल को पाते हैं ।

इति श्री पद्मपुराणे व्यासमुनीन्द्रसंवादे काश्मीरविषये[1]हर्षेश्वरमाहात्म्यं यात्रापूर्वकं[2] नाम एकादशः पटलः समाप्तः

ॐ तत्सच्छिवकोम् भद्रमोमा ।

---

१ विषय., २ मू. पा. में पाठाभाव, ३ समाप्तम्

ॐ श्री गणेशाय नमः

श्री वसिष्ठ उवाच—श्री वसिष्ठ बोले—

ॐ लम्बोदरस्य माहात्म्यं श्रुत्वा प्रीतोऽ[1]स्मि पद्मज ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि नीलनागस्य वै फलम् ।।

हे पद्मज ! लम्बोदर के माहात्म्य को सुनकर मैं प्रसन्न हूं । अब नीलनाग के फल को सुनना चाहता हूं ।

श्रीब्रह्मा उवाच—श्री ब्रह्मा बोले—

शृणु पुत्र प्रवक्ष्यामि कथां पौराणिकीं शुभाम् ।
यच्छ्रुत्वा प्राप्यते जन्तुरश्वमेधस्य वै फलम् ।।

हे पुत्र ! सुनिए, मैं शुभ पौराणिकी कथा कहूंगा , जिसे सुनकर प्राणी अश्वमेघ के फल को पाता है ।

यः कश्चिन्मानवो ह्यत्र कुर्यात्स्नानं च मे प्रिय ।
दानं तपश्च होमञ्च ह्यक्षयं फलमश्नुते ।।

हे प्रिय ! जो मनुष्य यहाँ स्नान, दान, तप और होम करे, वह अक्षय फल पाता है ।

पातालादुत्थितः पूर्वं प्रह्लादो दानवो भुवि ।
तपश्चचार ह्यत्रैव वर्षाणामयुतं तथा ।।

पूर्वयुग में प्रह्लाद दानव पाताल से पृथ्वी पर आया और उसने यहीं अयुत वर्ष पर्यन्त तपस्या की ।

ततः प्रसन्नो भगवाञ्छंखचक्रगदाधरः ।
प्रह्लादं प्रत्युवाचोच्चैर्गिरा मधुरया तथा ।।

इसके बाद शंख-चक्र गदाधारी भगवान् प्रसन्न हो ऊँचे मधुरवाणी से प्रह्लाद को कहा ।

श्री भगवान् उवाच—श्री भगवान बोले—

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते वरं वरय सुव्रत ।
त्वद्भक्त्या च प्रसन्नो[2]ऽहं ह्यदेयं नास्ति मे त्वयि ।।

हे सुव्रत ! उठिए, उठिए, तुम्हारा कल्याण हो, वर मांगिए, तुम्हारी भक्ति से मैं प्रसन्न हूं मुझे तुम्हारे लिये कोई वस्तु अदेय नहीं है ।

---

१ प्रीतोऽस्मि, २ प्रसन्नोह,

प्रह्लाद उवाच—प्रह्लाद बोले—

यदि प्रसन्नो भगवान्वासुदेवो जनार्दनः ।
त्वत्पादस्मरणे चित्तं ह्यस्तु मे सर्वशस्तदा ॥

यदि भगवान् वासुदेव जनार्दन मुझ पर प्रसन्न हैं, तब आपके पाद-स्मरण में सर्वशः मेरा चित्त हो।

श्री भगवान् उवाच—श्री भगवान् बोले—

एवमे[1]तत्तु दैत्येन्द्र यद्वरं प्रार्थितं त्वया ।
श्रावणस्य सिते पक्षे पञ्चदश्यां प्रयत्नतः ॥
यः कश्चिन्मानवो ह्यत्र स्नायाद्भक्त्या च संयुतः ।
मत्पार्श्वे वसतिस्तस्य मुक्तो भवति संसृतेः ।

हे दैत्येन्द्र ! जो वर तूने मांगा है, ऐसा ही हो। श्रावण के शुक्लपक्ष पञ्चदशी के दिन यत्नपूर्वक जो कोई मनुष्य यहाँ भक्ति युक्त स्नान करे, उसका वास मेरे पास होता है और वह संसार से मुक्त हो जाता है।

इत्युक्त्वान्तर्दधे विष्णुर्वरं दत्वात्र तस्य वै ।
प्रह्लादोऽ[2]पि कृतार्थोऽ[3]भूत्स्वस्थानञ्च गतः पुनः ॥

यह कह और उसे वर देकर विष्णु अन्तर्धान हो गए। प्रह्लाद भी कृतार्थ हुआ और अपने स्थान को फिर चला गया।

श्री ब्रह्मोवाच—श्रीब्रह्मा बोले—

पुरा त्रेतायुगस्यादौ यथावृत्तं तपोधनः ।
एको विपणिवृत्तिस्थः सुधर्माढ्योऽ[4]भवद्वणिक् ॥

पूर्वयुग में त्रेतायुग के आदि में जैसा हुआ कि विपणिवृत्ति में स्थित तपोधन में एक सुधर्माढ्य नामक वणिक हुआ।

धनाढ्यो गुणवान्भोगी नानाशास्त्रविशारदः ।[5]
सत्वे कदा निजात्स्थानात्परराष्ट्रं गतो यतः ॥

धनाढ्य, गुणी, भोगी और नानाशास्त्र में चतुर सब कुछ होने पर भी अपने स्थान से

सार्थेन महता युक्तो नानाविपणपण्यवान् ।
गच्छतः पथि तस्याथ वने ह्यस्मिंस्त[6]पोधन ।
अभवद्द[7]स्युतो रावो[8]ऽवस्कन्दोऽ[9]तिदुःसहः ।

---

१ एवमेतत्तु, २ प्रह्लादोपि, ३ कृतार्थोभू., ४ सुधर्माढ्योभव., ५ शस्त्रविशारदः, ६ ह्यस्मित्तपो, ७ अभवद्दस्यतो, ८ रावीश्रव, ९ स्कन्दोति,

महासार्थ से युक्त अनेक प्रकार के व्यापारिक वस्तु के साथ पर राष्ट्र को गया। हे तपोधन ! इसके बाद रास्ते में जाते हुए उसे इस वन में डाकुओं से अति दुःसह शब्द के साथ अवरोध हुआ।

ततः संहृतसर्वस्वो वणिग्दुःखसमन्वितः।
असहायो वने ह्यस्मि[1]ञ्चचारोन्मत्तवद्वशी ॥

उसके बाद सर्वस्व लुट जाने से दुःखी हुआ वह वशी वणिया असहाय हो इस वन में पागल की तरह घूमने लगा।

चरता तदरण्यं वै दुःखाक्रान्तेन मे प्रिय।
श्रान्तः क्षुत्तृ···[2]रीतात्मा वृक्षमूले ह्युपाविशत् ॥

हे प्रिय ! दुःखाक्रान्त हो उस जंगल में घूमते हुए वह थका हुआ भूख-प्यास से सूनी आत्मा वाला वृक्षमूल पर बैठ गया।

सुप्तश्चापि सुविश्रान्तो मध्याह्ने पुनरुत्थितः।
समपश्यदथायान्तं प्रेतं प्रेतशतैर्वृतम् ॥

सोया हुआ भी अच्छी तरह विश्राममध्याह्नकाल में फिर उठा और उसने सैंकड़ों प्रेतों से घिरे

उह्यमानमथान्यैश्च प्रेतैस्तं प्रेतनायकम्।
अथाजगाम प्रेतो[3]ऽसौ पर्यटित्वा वनानि च ॥

अन्य प्रेतों से उठाए हुए उसने प्रेतों के नायक प्रेत को देखा। इसके बाद वह प्रेत वनों में घूम कर आया।

उपगम्य शमीमूले वणिक्पुत्रं ददर्श सः।
स्वागतेनाभिवाद्यैनं समाभाष्य परस्परम्।
सुखोपविष्टच्छायायां पृष्ट्वा कुशलमाप्तवान्।
ततः प्रेताधिपतिना पृष्टः स तु वणिक्सुतः ॥
कुत आगम्यते ब्रूहि क्व साधो वा गमिष्यसि ॥

शमीमूल के पास पहुंचकर उसने वणिक् पुत्र को देखा। सुख पूर्वक छाया में बैठ स्वागत पूर्वक इसका अभिवादन कर और बातचीत करते परस्पर कुशल पूछ कर पास आया। इसके बाद प्रेताधिपति ने उस वणिक्सुत से पूछा कि आप कहां से आए हैं और हे साधो ! कहां जाओगे, कहिए।

कथञ्चेदं महारण्यं मृगपक्षिविवर्जितम्।
समापन्नो[4]ऽसि भद्रं ते सर्वमाख्यातुमर्हसि ॥

---

१ ह्यस्मिचचा, २······ ३ प्रेतोसौ, ४ समापन्नोसि,

मृग-पक्षिओं से युक्त इस महारण्य को तुमने कैसे पाया, तुम्हारा कल्याण हो, यह सब तुम मुझे बताओ ।

एवं प्रेताधिपतिना वणिक्पृष्टः समासतः ।
सर्वमाख्यातवान्ब्रह्मन्स्वदेशं धनविच्युतिम् ॥

इस प्रकार प्रेताधिपति द्वारा पूछे जाने पर वणिए ने संक्षेप में, अपने देश और धन खो जाने के विषय में सब कुछ कह दिया ।

तञ्च श्रुत्वा स[1]···तं तस्य दुःखेन दुःखितः[2] ।
वणिक्पुत्रं वचः प्राह प्रेतपालः स्वबन्धुवत् ॥

उसे सुनकर······उसके दुःख से दुःखी हुए प्रेतपाल ने अपने बन्धु की तरह उस वणिक्पुत्र से कहा ।

एवं गते[3]ऽपि मा शोकं कर्तुमर्हसि सुव्रत ।
भूयो[4]ऽप्यर्था भविष्यन्ति यदि भाग्यबलं तव ॥

हे सुव्रत ! ऐसा हो जाने पर भी तुम्हें शोक नहीं करना चाहिए । फिर धनसम्पत्ति आ जाएगी, यदि तेरा भाग्यबल होगा ।

भाग्यक्षये[5]ऽर्था क्षीवन्ते भवन्त्यभ्युदये पुनः ।
क्षीणस्यास्य शरीरस्य चिन्तया नोदयं भवेत् ॥

भाग्यक्षय होने पर धन नष्ट हो जाते हैं, फिर अभ्युदय में हो जाते हैं । इस क्षीण शरीर की चिन्ता से उदय नहीं होता है ।

इत्युच्चार्य समाहूय स्वान्प्रेतान्वाक्यमब्रवीत् ।
अद्यातिथि···पूज्यः सह देशजनो मम ॥

यह कह अपने प्रेतों को बुला कर कहा कि आज अतिथि की पूजा करनी चाहिए ।······

अस्मिन्समागते प्रेताः प्रीतिर्जाता ममा[6]तुला ।

हे प्रेतो ! इसके आने पर मुझे अतुलनीय प्रसन्नता हुई है ।

एवं हि वदतस्तस्य मृत्पात्रं सुनवं दृढम् ।
दध्योदनेन सम्पूर्णमाजगाम यथेप्सितम् ॥

इस प्रकार कहे जाने पर उसके सामने मनचाहा दही-चावल से भरा सुन्दर-नया औरदृढ पात्र आ गया ।

वारि धान्य[7]ञ्च सम्प्राप्ता प्रेतानामग्रतः स्थिता ।

१······ २ दुःखितं:, ३ गतेपि, ४ भूयोप्यर्था, ५ भाग्यक्षयेर्था, ६ ममाः-तुला, ७ धानी,

जल एवं धान्य प्रेतों के आगे आ गया।

तमागतं सलिलमन्नं वीक्ष्य महामहामतिः।
प्राहोत्तिष्ठ वणिक्पुत्र त्वमाह्निकमुपाचर॥

उस आए हुए जल और अन्न को देखकर महामहामति उसने कहा कि हे वणिक्पुत्र! उठो और तुम अपने दैनिक कृत्य को करो।

ततस्तु वारिधान्यास्तौ सलिलेन विधानतः।
कृताह्निकावुभौ जातौ वणिक्च प्रेतपस्तथा॥

इसके बाद उन दोनों वणिए और प्रेताधिपति ने विधि पूर्वक जल के साथ जलमिश्रित धान्य को लेकर अपना दैनिक कृत्य किया।

ततो वणिक्सुते चादाद्दध्योदनमथेच्छया।
दत्वा तेभ्यश्च सर्वेभ्यः प्रेतेभ्यो[1]ऽथाददात्ततः॥

इसके बाद इच्छापूर्वक दही और चावल वणिक् पुत्र को दिए, तदनन्तर उन सब प्रेतों को दिया।

भुक्तवत्सु च सर्वेषु कामतोऽ[2]म्भसि सेविते।
अनन्तरञ्च बुभुजे प्रेतपालो वराशनम्॥

सभी के यथेच्छ खा लेने और जल पी लेने बाद प्रेतपाल ने श्रेष्ठ भोजन किया।

प्रकामतृप्ते प्रेते वै वारिधान्योदनैस्ततः।
अन्तर्धानमगाद्ब्रह्मन्वणिक्पुत्रस्य पश्यतः॥

इसके बाद जल-धान्य-भात आदि से प्रेत के अत्यन्त तृप्त हो जाने पर हे ब्रह्मन्! वह वणिक् पुत्र के देखते अन्तर्धान हो गया।

ततस्तदद्भुतं दृष्ट्वा सुधर्माख्यो वणिक्तदा।
पप्रच्छ तं प्रेतपालं कौतूहलमनावशी॥

तदनन्तर अनावशी सुधर्मा नामक वणिए ने उस अद्भुत को देख तब कुतुहल भरे उस प्रेतपाल से पूछा।

अरण्ये निर्जले साधो कृतो[3]ऽन्नस्य समुद्भवः।
कृतञ्च[4] वारिधान्य[5]ञ्च सम्पूर्णमपरमम्भसा[6]॥

हे साधो! इस जलविहीन वन में अन्न की उत्पत्ति की और जल-धान्य जल से सम्पूर्ण किया।

---

१ प्रेतेभ्योथददा, २ कामतोऽम्बसि, ३ कृतोंतस्य, ४ कृतश्च, ५ धानीय, ६ संपूर्णापरमांबसा,

तथा मे तव ये भक्ता:[1] स्वतस्ते वर्णतः कृशाः ।
भवा[2]न्नपि च तेजस्वी किञ्चित्पुष्टवपुः शुभः ।।
शुक्लवस्त्रपरीधानो वहूनां परिपालकः ।
सर्वमेतमन्माचक्ष्व[3] को भवान्का शमीत्वियम् ।।

तथा मेरे तेरे जो भक्त हैं, वे स्वतः वर्ण से कृश और आप भी तेजस्वी कुछ पुष्ट शरीर वाले, शुभ, सफेद वस्त्र धारण किए हुए, बहुत के परिपालक हैं । यह सब कुछ बताइए । आप कौन हैं ? यह सभी कौन हैं ।

इत्थं वणिक्सुतवचः श्रुत्वासौ प्रेतनायकः ।
शशंस सर्वमामाद्यं यथावृत्तं पुरातनम् ।।

इस प्रकार वणिक्-पुत्र के वचन सुनकर उस प्रेत नायक ने मुझे सारा आदि से लेकर पुराना यथावृत्त सुनाया ।

अहमास[4]म्पुरा विप्र काश्मीरे नगरोत्तमे ।
सोमशर्मेति विख्यातो ब...लागर्भसम्भवः ।।

हे विप्र ! मैं पूर्वयुग में नगर श्रेष्ठ काश्मीर में था और ब ... ला के गर्भ से पैदा हुआ—

वणिग्वृत्त्या[5] धनाढ्योऽहं[6] विष्णुभक्तो जितेन्द्रियः ।
सोऽहं[7] कदर्यो मूढात्मा धने[8]ऽपि सति दुर्मतिः ।।
न ददामि द्विजातिभ्यो न चाश्नाम्यन्न...[9]

जितेन्द्रिय, विष्णुभक्त और वणिक् वृत्ति से धनी मैं 'सोम शर्मा' नाम से प्रसिद्ध हुआ । वह मैं कदर्य, मूढात्मा, दुर्मति धन होने पर भी ब्राह्मणों को न देता हूं और नही खाता हूं...

एवं तत्र[10]...मह्यं महत्कालो[11]ऽभ्यगादथ ।
नभस्य पञ्चदश्यां वै चागतो[12]ऽहं प्रसंगतः ।।

इस प्रकार वहां रहते हुए मुझे बहुत समय बीत गया । तदनन्तर पञ्चदशी के दिन मैं प्रसंगवश—

ह्यस्मिंस्तीर्थे विष्णुक्षेत्रे नागे नीले तथैव च ।

विष्णु क्षेत्र के भीतर इस नील नाग तीर्थ में आया ।

---

१ भक्ता, २ भवानपि, ३ न्ममं, ४ मास, ५ वणिग्वृत्त्यो, ६ धनाढ्योहं, ७ सोहं, ८ धनेपि, ९...... १०...... ११ त्कालोभ्य, १२ चांगतोहं,

अत्र तीर्थे कृतं दान वारिपात्रं[1] दृढं नवम् ।
सम्पूर्णं वस्त्रसंवीतं छत्रोपानहसंयुतम् ।।
मृत्पात्रमपि मिष्ठस्य पूर्णं दध्योदनस्य ह ।
प्रदत्तं ब्राह्मणेन्द्राय[2] शुचये ज्ञातकर्मकः ।।

इस तीर्थ में दृढ़ और नूतन जलपात्र, छत्र-उपानह युक्त वस्त्र, तथा मीठे से भरा वा दही-भात से भरा मिट्टी का पात्र भी पवित्र-स्वच्छ ब्राह्मण श्रेष्ठ को मैंने दान में दिया

तदैकं जीवमादत्तं मया दानं वणिक्सुत ।
वर्षाणां सप्ततीनां वै नान्यद्दत्तं कदाचन ।।

हे वणिक्सुत ! तब मैंने एकमात्र जीव दान स्वरूप ग्रहण किया । सत्तर ७० वर्ष पर्यन्त कभी मैंने अन्य कुछ नहीं दिया ।

प्रमादात्तत्र भुञ्जामि दधिक्षीरघृतान्वितम् ।
ततो रात्रौ नृभिर्घोरैस्ताप्यते मम विग्रहः ।।

प्रमाद से वहां मैं दही-क्षीर-घृत युक्त भोजन खा लेता हूं । तदनन्तर रात्रि के समय घोर मनुष्यों से मेरा शरीर संतप्त किया गया ।

प्रातर्भवति मे घोरा मृतितुल्या विषूचिका ।
न च कश्चिन्ममाभ्याशे तत्र तिष्ठति बान्धवः ।।

सुबह मुझे मरणतुल्य घोर विषूचिका (हैजा) हो जाता है और वहां मेरे पास कोई भाई-बन्धु नहीं होता है ।

मृतः प्रेतत्वमापन्नो दत्वा प्रेतान्निमा[3]न्नपि ।
अमी चाऽदत्तदानास्तु मद्दत्तेनोपजीविनः ।।

इन प्रेतों को दान देकर मरने के बाद मैं भी प्रेतभाव को प्राप्त हुआ और दान ग्रहण कर ये मेरे दिए हुए दान से जीवित रहे ।

एतत्ते कारणं प्रोक्तं यत्तदन्नं मया सदा ।
दत्तं तदिदमायाति मध्याह्ने[4]ऽपि दिने दिने ।।

यह कारण तुझे मैंने बताया है, जो वह अन्न सदा मैंने दिया, सो यही अन्न मध्याह्न काल में भी प्रतिदिन मुझे प्राप्त होता है ।

यावन्नाहञ्च भुञ्जामि न तावत्क्षयमेति वः ।
मयि भुक्ते च पीते च सर्वमन्तर्हितं भवेत् ।।

---

१ पात्रं, २ ब्राह्मणेंद्राय, ३ प्रेतानिमानपि, ४ मध्याह्नेपि;

जब तक मैं नहीं खा लेता हूँ, तब तक वह अन्न क्षय को प्राप्त नहीं होता है और मेरे खा लेने एवं पी लेने पर सब कुछ अन्तर्हित हो जाता है।

इत्येवमुक्ते वचने वणिक्पुत्रो[1]ऽब्रवीद्वचः।
यन्मया तात कर्त्तव्यं तदाख्यातुं[2] त्वमर्हसि॥

इस प्रकार उसके कहने पर वणिक्-पुत्र ने कहा कि हे तात! जो मुझे करना है, वह आप मुझे कहिए।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा वणिक्पुत्रस्य सुव्रत।
प्रेतपालो वचः प्राह स्वार्थसिद्धिकरं ततः॥

हे सुव्रत! उस वणिक्-पुत्र के उस वचन को सुनने के बाद प्रेतपाल ने स्वार्थसिद्धिकर बात कही।

कुरु स्नानमत्र तीर्थे नागे नीले तथैव च।
तत्पुण्यञ्च प्रयच्छाशु मयि प्रेतत्वनाशनम्॥

इस नील नाग नामक तीर्थ में स्नान कीजिए और मेरे प्रेतत्व को नष्ट करने वाला वह पुण्य शीघ्र मुझे दे दीजिए।

इत्येवमुक्त्वा च तदा प्रेतराजो[3]ऽनुगैः सह।
प्रेतस्कन्धे समारोप्य त्याजितो मरुमण्डलम्॥

इस प्रकार यह कहकर वह प्रेतराज अनुयायियों के साथ प्रेत के कन्धे पर चढ़ मरुमण्डल की ओर चला गया।

स्वकर्मधर्मयोगेन धनमर्थमनुत्तमम्।
उपार्जयित्वा प्रययौ नागं नीलं तथैव च॥

अपने कर्म-धर्म योग से अत्युत्तम धन-अर्थ को कमा वह वणिक्पुत्र नील नाग की ओर चला गया।

स्नानं दानं तथा यज्ञं कृत्वा तस्मै फलं ददौ।
तत्क्षणादेवमुक्तो[4]ऽसौ ब्रह्मलोकं गतश्च सः॥

वहां स्नान, दान तथा यज्ञ कर उनका फल उस प्रेतराज को दे दिया और तत्क्षण ही इस प्रकार कह दिए जाने पर वह प्रेतराज ब्रह्मलोक को चला गया।

श्रीब्रह्मोवाच---श्री ब्रह्मा बोले—

इत्येतन्नीलनागस्य माहात्म्यं कथितं मया।
एभिर्मन्त्रैः प्रकुर्वीत पूजां विष्णोरतन्द्रितः॥

---

१ वणिक्पुत्रोब्रवी, २ तदज्ञानात्व, ३ प्रेतराजोनुगैः, ४ मुक्तोसौ.

इस प्रकार यह नीलनाग का माहात्म्य मैंने कहा है। अतन्द्रित हो इन मन्त्रों से विष्णु की पूजा करे।

ॐ हरिकृष्णं हृषीकेशं वासुदेवं जनार्दनम्।
प्रणतो[1]ऽस्मि जगन्नाथं स मे पापं व्यपोहतु ॥ १ ॥

श्री हरिकृष्ण, हृषीकेश, वासुदेव, जनार्दन, जगन्नाथ जी की मैं शरण में हूँ, वह मेरे पाप को नष्ट करें।

चराचरगुरुनाथं गोबिन्दं शेषशायिनम्।
प्रणतो[2]ऽस्मि परं कृष्णं स[3] मे पापं व्यपोहतु ॥ २ ॥

चराचर गुरुनाथ, गोबिन्द, शेषशायी, कृष्ण जी की मैं शरण में हूं, वह मेरे पाप को नष्ट करे।

नारायणं नरं शान्तं माधवं पुरुषोत्तमम्।
प्रणतो[4]ऽस्मि धराधारं स[5] मे पापं व्यपोहतु ॥ ३ ॥

नारायण, नर, शान्त, माधव, पुरुषोत्तम, धराधार की मैं शरण में हूं, वह मेरे पाप को नष्ट करें।

शङ्खिनं चक्रिणं देवं शार्ङ्गिणं स्रग्धरं वरम्।
प्रणतो[6]ऽस्मि पतिं लक्ष्म्याः[7] स मे पापं व्यपोहतु ॥ ४ ॥

शङ्ख-चक्र युक्त, देव, धनुषधारी, स्रग्धर, श्रेष्ठ लक्ष्मीपति की मैं शरण में हूं, वह मेरे पाप को नष्ट करें।

यथा सर्वेषु भूतेषु गूढो[8]ऽग्निरिव दारुषु।
विष्णुरेव तथा पापं ममाशेषं प्रणश्यतु ॥ ५ ॥

जिस तरह सभी प्राणियों में लकड़ियों में विद्यमान अग्नि की तरह वह रहस्यमय विष्णु ही विद्यमान हैं, वैसे वह मेरे समस्त पाप को नष्ट करें।

श्री ब्रह्मोवाच—श्रीब्रह्म बोले—

यत्किञ्चित्क्रियते कर्म शुभं वाप्यशुभं तथा।
सर्वं मेरुसमं दानं चेति सत्येन ते शपे ॥

जो कुछ भी शुभ वा अशुभ कर्म किए जाते हैं, सब मेरु समान दान के समान है। यह मैं तुझे सत्य की शपथ से कहता हूं।

---

१ प्रणतोस्मि, २ प्रणतोस्मि, ३ स मे०, ४ प्रणतोस्मि, ५ स मे, ६ प्रणतोस्मि, ७ लक्ष्म्यैः, ८ गूढोग्नि

इत्येष पटलो गुह्यो महापातकनाशनः ।
त्रिविधं नश्यते पापं पुण्यराशिश्च[1] वर्धते ॥

इस प्रकार यह गुह्य पटल महापापों को नष्ट करने वाला है। तीन प्रकार के पाप नष्ट हो जाते हैं और पुण्यराशि बढ़ती है।

इतिहासमिमं श्रुत्वा प्राप्नोति परमं पदम् ॥

इस इतिहास को सुन कर परम पद पाता है ।

इति श्री आदिपुराणे श्री ब्रह्मावसिष्ठसंवादे नीलनाग-माहात्म्यं नाम पटलः सम्पूर्णः[2] । इति भद्रम् ॥ ॐ तत्सच्छिवमोम् ॥
संवत् १९०९ पौषशुदि द्वादश्यां परे त्रयोदश्यां[3] शनौ ॥
॥ ॐ ॥ ॐ ॥ ॐ ॥

---

१ राशिञ्च २ सम्पूर्णमिति ३ त्रयोदश्यं

श्री भैरवी उवाच—श्रीभैरवी बोलीं—

श्रुत्वा भवत्प्रसादेन वसन्तदिनपञ्चमीम्[1] ।।
दीपाष्टमीमपि[2] देवेश[3] श्रुत्वा भवदनुग्रहात् ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि होलिकां परमेश्वर ।
होलिका होलिकाचेति कथञ्च प्रथिता भुवि ।
होलिका सा च का प्रोक्ता विधिं तस्याश्च मे वद ।।

हे देवेशि ! आप के प्रसाद से वसन्त पञ्चमी और दीपाष्टमी के विषय में सुनकर हे परमेश्वर ! अब होलिका के विषय में सुनना चाहती हूं। होलिका 'होलिका' नाम से पृथ्वी पर कैसे प्रसिद्ध हुई और वह कौन है ? उसकी विधि मुझे कहिए।

श्री भैरवः[4] उवाचः— श्री भैरव बोले—

शृणु वक्ष्ये महेशानि होलिकोत्सवमादितः ।
यं श्रुत्वा मुच्यते घोरैर्विघ्नसंघैरनेकशः ।।

हे महेशानि ! सुनिए, आदि से होलिकोत्सव के विषय में मैं कहता हूं, जिसे सुनकर मनुष्य अनेक बार घोर विघ्न समूहों से मुक्त हो जाता है।

पुरा वै तारको नाम दैत्यः परमदारुणः ।
त्रैलोक्यमा[5]त्मसात्कृत्वा बबाधे त्रिदशांस्तदा ।।

पूर्वकाल में परमदारुण तारक नामक दैत्य ने तीनों लोकों को आत्मसात् कर तब देवताओं को बाधित किया।

भीतास्तु त्रिदशा देवि ब्रह्माणं शरणं ययुः ।
स्रष्टा चोवाच त्रिदशान् शृणुध्वं देवसत्तमाः ।।

हे देवि ! डरे हुए देवता ब्रह्मा की शरण में गए और ब्रह्मा ने देवताओं से कहा कि हे देव श्रेष्ठो ! सुनिए।

तन्नाशे न च मे शक्तिर्विष्णोरपि च सत्तमाः ।
ऋते महेश्वरांशाच्च न स नाशमुपेष्यति ।।

हे देवताओ ! उसके नाश के लिए मेरी और विष्णु की भी शक्ति पर्याप्त नहीं है, महेश्वर के अंश के बिना वह नाश नहीं होगा।

इति श्रुत्वा वचः सौम्यं ब्रह्मणो[6]ऽव्यक्तजन्मनः ।
ब्रह्मणा विष्णुना सार्धं देवाः कामेन संयुताः ।।

---

१ पंचमी २ दीपाष्टम्यपि ३ देवेशि ४ भरवः ५ मंत्म ६ ब्रह्मणोव्यक्त

तपस्यन्तं महादेवं हिमाद्रिशिखरे प्रिये ।
गता[1]स्तत्रैव देवेशि समाधिस्थं महेश्वरम् ।।

अव्यक्त जन्मा ब्रह्मा के यह वचन सुन हे प्रिये ! देवेशि ! ब्रह्मा और विष्णु के साथ काम को साथ लिए देवता हिमालय के शिखर पर तपस्या करते हुए समाधि में स्थित महादेव-महेश्वर के पास गए ।

कामेन विद्धः पार्वत्यां भवश्चक्रे महामनः ।
समाध्युपरतो देव्याः पाणिं जग्राह कौतुकात् ।।

कामशर से बिद्ध महात्मा शिव ने पार्वती में मन लगाया और समाधि से विरक्त हो कौतुक से पार्वती देवी के हाथ को पकड़ा ।

जनयामास तस्यां वै देव्यां देवः कुमारकम् ।
पार्वती तं महद्बीजं नाशकद्धारितुं तदा ।
सपत्नीभवमाचिन्त्य गङ्गायाश्च जले[2]ऽक्षिपत् ।।

उस पार्वती देवी से महादेव ने कुमार को पैदा किया । तब पार्वती उस महान् वीज को धारण न कर सकी । सपत्नी भव उसे समझ गङ्गा के जल में फैंक दिया ।

अथ गङ्गा च तं गर्भमसहन्ती च धारणे ।
उत्ससर्ज गिरौ रम्ये हिमवत्यमरार्चिते ।।

इसके बाद गङ्गा ने उसे धारण करने में अपने आपको असमर्थ जान कर गर्भ को उसे देवों से पूजित रमणीय हिमालय पर्वत पर रख दिया ।

स तत्र ववृधे लोकानां[3]कृत्यज्वलनात्मजः ।
ददृशुर्ज्वलनाकारं तं गभमथ कृत्यकाः ।।

लोकों के लिए वह कृत्यज्वलनात्मज वहां बढ़ने लगा । इसके बाद कृत्यकाओं ने ज्वलनाकार उस गर्भ को देखा ।

ममायमिति ताः सर्वाः स्वतार्थिन्यो विचक्रमुः ।
तासां विधित्वा धावन्तं मातृणां भगवान्प्रभुः ।।
प्रस्नाता[4]······ वंदनैरपि[5]······
तं प्रभावं समालोक्य तस्य बालस्य कृत्तिकाः ।
परं विस्मयमापन्ना देव्यो दिव्यवपुर्धराः ।।

---

१ गतांस्त २ जलेक्षिपत् ३ लोकाना ४ ······ ५ ······

दिव्य शरीर को धारण किए वे देवी कृत्तिकाएं बालक के उस प्रभाव को देखकर परम विस्मय को प्राप्त हुईं।

यत्रोत्सृष्टः स भगवा[1]...... गिरिमूर्धनि।
स शैलः काञ्चनः सर्वः[2] प्रवभौ च महेश्वरि॥

पर्वत के मस्तक पर जहां वह छोड़ा गया। हे महेश्वरि! वह सारा पर्वत सुवर्ण की तरह शोभित होने लगा।

वर्धता चैव तं गर्भं पृथिवी तेन रञ्जिता।
ताराश्च सर्वे संवृत्ता गिरयः काञ्चनप्रभाः॥

वढ़ते उस गर्भ से पृथिवी रञ्जित हो गई और सभी तारे, पर्वत सुवर्ण की प्रभा से ढक गए।

कुमारश्च महावीर्यः कार्त्तिकेय इति स्मृतः।
ववर्ध...... देवेशि सोऽ[3]पिवत्प्रियदर्शनः॥

महावीर्यवान् वह कुमार 'कार्त्तिकेय' नाम से जाना गया हे देवेशि प्रति दिन बढ़ने में वह बहुत सुन्दर दीखता था।

स तस्मिन्काञ्चने दिव्ये वने रम्ये समाश्रितः।
स्तूयमानस्तदा शेते गन्धर्वैर्मुनिभिस्तथा॥

वह उस दिव्य रमणीय काञ्चन वन में गन्धर्वों और मुनियों से स्तुति किया जाता हुआ सोता है।

तथैनमन्वदृशन्त देवकन्याः सहस्रशः।
दिव्यवाद्य[4]यन्त्रनृत्यज्ञाः स्तुवन्ति प्रियदर्शनाः॥

और इसे सहस्रों बार देव कन्याएं देखती रहती थीं। दिव्य वाद्ययन्त्र और नृत्य को जानने वाले प्रियदर्शन इसकी स्तुति करते हैं।

ब्रह्मा स्वयम्भूर्भगवान्सपुत्रः सह विष्णुना।
शक्रस्तया[5] ..दृष्टुं कुमारं[6]...मुत्तमम्॥
नारदप्रमुखाश्चापि देवगन्धर्वसत्तमाः।
देवर्षयश्च सिद्धाश्च वृहस्पतिपुरोगमाः।
सर्वे तत्र समाजग्मुरद्भुतं बालमुत्तमम्॥

विष्णु और पुत्र सहित स्वयम्भू भगवान् ब्रह्मा, इन्द्र......नारद, प्रमुख देव-गन्धर्व श्रेष्ठ, देवर्षि, सिद्ध, वृहस्पति सभी वहां उस अद्भुत और उत्तम कुमार को देखने के लिए आए।

१...... २ सर्वं, ३ सोपि ४ वाद्यन्त्र ५...... ६......

स तु बालो[1]ऽपि भगवान्महायोगबलान्वितः ।
अस्याजगाम देवेशं शूलपाणिं पिनाकिनम् ॥

महायोग और बल से युक्त वह बालक भी शूलपाणि पिनाकी देवेश के पास आया ।

तमायान्तं[2] समालोक्य मनोरथसुरूपिणम् ।
जातमात्रं कुमारन्तु मातरः पालने रताः ।
यत्नं चक्रुर्महेशानि रात्रिन्दिनमतन्द्रिताः ॥

हे महेशानि ! मनोरथस्वरूप-जातमात्र उस कुमार को आते हुए देख उसके पालन करने में लगी हुईं माताएं अतन्द्रित हो रात दिन यत्न करने लगीं ।

श्रुत्वा कुमारं जातन्तु तारको दैत्यसत्तमः ।
मत्वात्मनाशं तन्नाशे सर्वदा यत्नमाचरत् ॥

पैदा हुए कुमार के विषय में सुनकर दैत्य श्रेष्ठ तारक अपना नाश समझकर उसके नाश के लिए सर्वदा यत्न करने लगा ।

दृष्ट्वा दैत्यगुरुं तत्र कार्तिकेयस्य नाशने ।
यत्नं कुरु महाब्रह्मन्कृत्यामुत्पादय स्वयम् ॥

दैत्यगुरु शुक्राचार्य को वहां देख तारकासुर ने प्रार्थना की—हे महाब्रह्मन् ! कार्तिकेय का नाश करने में यत्न कीजिए, स्वयं कृत्या को पैदा कीजिए ।

एवमुक्तस्तु दैत्येन काव्यो यत्नमथाकरोत् ।
इष्टिं कृत्वा प्रजननीमाजुहाव महेश्वरि ॥

इस प्रकार दैत्य से कहे जाने पर दैत्य गुरु शुक्राचार्य ने यत्न किया । हे महेश्वरि ! इष्टि (यज्ञ) रचा—

अग्निं कृत्वा[3]तु विधिवत्काव्यो दैत्यस्य सन्निधौ ।

विधिपूर्वक दैत्य के पास अग्नि की स्थापना कर प्रजननी के निमित्त आहुतिएं प्रदान कीं ।

अथ समुत्थिता घोरा कृत्या बालविनाशिनी ।
रक्तकेशा कृष्णवर्णा काचरा श्वेतपक्ष्मिका ॥
बहिर्दन्ता बाह्यजिह्वा स्वरनासोर्ध्वरोमिका ।
दीर्घजङ्घा विरूपाक्षी श्वपुच्छा पृथुकुक्षिका ॥

---

१ बालोपि २ मायांताः ३ कृत्वं

स्थिता शुक्रस्य पुरतः प्राञ्जलिर्जगदम्बिके ।
अनुज्ञां देहि मे ब्रह्मन्करणीयं प्रति प्रभो ।।

इसके बाद लाल केशों वाली, कृष्ण वर्णा काचरी, सफेद पलकों वाली, दांत और जिह्वा बाहर निकले, स्वरयुक्त नासिका के ऊपर पैदा हुए रोम वाली, लम्बी जङ्घाओं से युक्त, विरूपाक्षी, कुत्ते की पूंछ लगी, पृथु कुक्षी वाली, बच्चों का नाश करने वाली घोर कृत्या उठी और हे जगदम्बिके ! दोनों हाथ जोड़ शुक्र के आगे खड़ी हो गई तथा बोली कि हे प्रभो ! ब्रह्मन् ! आज्ञा कीजिए, मुझे क्या करना है ।

श्रुत्वेति कृत्याबचनं दैत्यः प्रोवाच तां प्रिये ।
गत्वा हिमालयं तत्र कुमारं जातमात्रकम् ।
क्षिप्रं नाशय भद्रं ते परमं कृत्यमेव नः ।।

कृत्या का बचन सुनकर दैत्य ने उसे कहा कि हे प्रिये ! हिमालय पर्वत पर जाकर वहां जातमात्र कुमार का शीघ्र नाश कीजिए, तुम्हारा कल्याण हो, यही हमारा परम कृत्य है ।

श्रुत्वेत्थं बचनं तस्य कृत्या प्रायाद्धिमालयम् ।
पुण्ये देवशिरोराष्ट्रे मरीच्याश्रमसन्निधौ ।।
प्राप्य पुण्यं महादेवि मातॄणामंगनं शुभम् ।
दृष्ट्वा कुमारं तत्रैब मातृभिः परिपालितम् ।।
कृत्या[1]स्वरूपिणी भूत्वा स्रवत्पीनपयोधरा ।
समीपमागता तत्र पाययन्ती स्तनौ शिशुम् ।।

इस प्रकार उसके वचन सुनकर कृत्या हिमालय को चली गई । हे महादेवी ! पुण्यप्रद देवशिरोराष्ट्र में मरीचि के आश्रम के पास माताओं के पुण्यकर शुभ अंगना को पाकर और वहीं माताओं से पालित कुमार को देखकर कृत्यास्वरूपिणी वह मोटे स्तनों से दूध बहाती हुई तथा वहां बच्चे को स्तन पान कराती हुई पास आई ।

दृष्ट्वा तां मातरस्तत्र घोररूपानुसारिणीम् ।
घोरक्रियापचरितां धिक् कुर्यु[2]स्तामनिन्दिते ।
होला होलेति शब्देन परिहासैरपीश्वरि ।।

हे अनिन्दिते ! हे ईश्वरि ! वहां माताओं ने घोर रूपानुसारिणी और

---

१ कृत्वा २ कुयुस्तामनंदिते

घोर क्रिया में लगी उसे परिहास पूर्वक 'होला-होला' इस शब्द से धिक्कृत किया।

पङ्कक्षेपैर्भस्मक्षेपैः पांसुक्षेपैस्तथैव च।
गालिदानैस्तथा तालैः सुगन्धैः[1]-रक्तचन्दनैः॥
चन्दनैः कुङ्कुमैर्भूरिद्रव्ययुक्तैरनेकशः।
तृणक्षेपैस्तथा गुल्मैर्होलिकाभिरनेकधा।
मुहुर्मुहुर्होलिनादैराक्रन्दनर्तनैरपि।
परिक्षिप्ता ततः कृत्या मातृभिर्बालघातिनी।
निस्तेजा चाभवत्तत्र कृत्या दैत्यप्रचोदिता॥

कीचड़-भस्म तथा धूल फैंकने से, गालियां दने से तथा तालों से, सुगन्धियों-रक्तचन्दनों-चन्दनों एवं अनेक द्रव्यों से युक्त कुङ्कुमों से, अनेक बार तिनके फैकने से, गुल्मों से और बार-बार 'होलि-होलि' इन आवाजों-चीखों और नर्तनों से वह बच्चों को मारने वाली, माताओं से तिरस्कृत की गई तथा वह दैत्य द्वारा भेजी हुई कृत्या वहां निस्तेज हो गई।

[2]......दीना मातृभिर्धिक्कृता ततः।
दीना प्रोवाच मातृस्ताः प्रश्रयावनता तथा॥
किं करोमि क्व गच्छामि क्व स्थास्यामि क्षुधार्दिता।
स्थानं दातुमिहेच्छामि भवतीभिः सनातनम्॥
अमोघं दर्शनं यस्मान्मातृणामिति निश्चितम्।
इत्युक्त्वा तत्र कृत्या तु विरराम महेश्वरि॥

दीनावस्था में वह कृत्या माताओं से धिक्कृत हुई बड़ी नम्रता के साथ उन माताओं से कहने लगी कि मैं क्या करूं, कहां जाऊं, भूख से पीड़ित कहां रहूंगी। आप से यहां दिया गया सनातन स्थान मैं चाहती हूं, क्योंकि यहां माताओं का अमोघ दर्शन निश्चित है। यह कहकर हे महेश्वरि! कृत्या वहां विश्राम करने लगी।

श्रुत्वा दीनं वचस्तस्या मातृणां तु दयाविशत्।
ऊचुः कृत्यां ततस्तास्तु प्रश्रयावनताः[3] प्रिये॥

उस के दीन वचन सुनकर माताओं के हृदय में दया आ गई। इसके बाद नम्रभाव से प्रिये! उन माताओं ने कृत्या से कहा,

---

१ सुगधैरक्त २...... ३ प्रश्रयावनतो प्रिये

यत्रैव परिहासश्च गालिदानानि चैव हि ।
वाक्पारुष्यं तत्र वस[1] चिरं त्वं बालकान्ग्रस ।
गुरुनिन्दा श्रेष्ठनिन्दा विप्रनिन्दा च यत्र वै ।
अलिप्तं यत्र वै गेहं[2] तथा मार्जनवर्जितम् ।
असंस्कृतं हविर्यत्र चुल्ल्यामुपरि भक्षणम् ।
पुत्राणां सङ्करो यत्र वर्णसङ्कर एव च ।
उदक्य: सूतिका दुष्टमन्नं भोक्ष्यन्ति यत्र वै ।
यत्र कर्मणि क्रोधो वै वस तत्र निरन्तरम् ॥

जहां परिहास, गलिदान, वाक्पारुष्य है, वहां तू चिरकाल रह और बालकों को ग्रस । जहां गुरुनिन्दा, श्रेष्ठनिन्दा, विप्रनिन्दा है, जहां घर लेप-विहीन हो तथा मार्जनविहीन हो, जहां हवि असंस्कृत हो, चुल्ली के ऊपर भक्षण हो, पुत्रों का सङ्कर हो, जहां वर्णसङ्कर ही हों……जहां दुष्ट अन्न खाती हैं, जहां कर्म में क्रोध हो, वहां निरन्तर रहो ।

परस्परं होलिका च धूलिक्षेपस्तथैव च ।
पानीयपांसुतैलानां प्रक्षेपपरिहासनम् ।
वृथा हासो, वृथा वाचो वृथा गानं च नर्तनम् ।

जहां आपस में होलिका हो तथा धूलिक्षेप हो और पानी धूल एवं तैल का प्रक्षेप-परिहासन हो, वृथा हास हो, वृथा बातें हों, वृथा गान और नर्तन हो, वहां तुम रहो ।

इत्येवमुक्त्वा कृत्यां तां विरेमुस्तत्र मातर: ।
होलाहोलेति होलेति नर्तयामासुरंजसा ॥

इस प्रकार उस कृत्या को कह माताएं वहां चुप हो गईं और 'होला, होला, होला' यह कह……नाचने लगीं ।

पुनर्वरं दधुस्तस्यै होलिकायै[3] महेश्वरि ।
अस्मिन्वै भारते खण्डे सर्वत्रैव विशेषत: ॥
महोत्सवं[4] प्रकुर्युर्वै ब्राह्मणक्षत्रिया[5]दय: ।
ते सर्वे मम सान्निध्यं प्राप्नुवन्ति च सर्वश: ॥

हे महेश्वरि ! फिर उस होलिका को उन्होंने वर दिया । विशेषत: इस भारतखण्ड में सब जगह ही ब्राह्मण-क्षत्रिय आदि ने महोत्सव किया और वे सब मेरे सान्निध्य को सर्वश: पाते हैं ।

---

१ वास २ गेहे ३ मंहेश्वरि ४ महोत्सवे ५ क्षत्रियोदय:

भूयो भूयः किमुक्तेन होलिकायाः प्रभावजम् ।
फलं मर्त्येषु चानन्तमिति सत्येन ते शपे ॥

बार-बार कहने से क्या ! होलिका के प्रभाव से पैदा हुआ फल मनुष्यों में अनन्त है । यह मैं तुम्हें सत्य की शपथ दे कहता हूं ।

होलिकायाश्च कृत्यायाः पावनं हि महोत्सवम् ।
यथासुरस्य नाशे च कुमारः[1] कारणो भवेत् ॥

होलिका और कृत्या का पवित्र यह महोत्सव है । जैसे असुर के नाश में कुमार कारण हुआ—

तथाकारोऽ[2]त्युत्सवो[3]ऽयं महापातकनाशनः ।

वैसे ही यह अत्युत्सव महापापों को नाश करने वाला है ।

धनं धान्यं सुखं पुत्रां[4]श्चानन्त[5]सम्पत्[6]प्रदः ।
महोत्सवो हि देवेशि चेत्याज्ञा पार[7]मेश्वरी ॥

हे देवेशि ! यदि परमेश्वर की आज्ञा हो तो यह महोत्सव धन-धान्य-सुख, पुत्र और अनन्त ऐश्वर्य देने वाला है ।

घोरे कलियुगे प्राप्ते जना वै पापकर्मिणः ।
तेऽ[8]पि ज्योतिर्मयान्लोकान्प्राप्नुयुरुत्सवेन वै ॥

घोर कलियुग के होते पर पापकर्मी जो मनुष्य है, वे भी उत्सव से ज्योतिर्मय लोकों को पाएं ।

वेदपाठै राजतन्त्रै[9] कर्मभिर्नर्तनादिभिः ।
वाद्यैश्च गोमुखै ··हस्ताहस्तैश्च ताडनैः ।
राजद्वारे गृहे वापि विपण्यां च चतुष्पथे ।
लोकाचारे स्वदेशे च करणीयं प्रयत्नतः ॥

वेदपाठों से, राजतन्त्र कर्मों से, नर्तनादियों से, गोमुख······वाद्यविशेषों से, हाथ-हाथों के प्रहारों से राजद्वार में घर में भी, दुकान में, चतुष्पथ में, लोकाचार में और स्वदेश में यत्नपूर्वक उत्सव करना चाहिए ।

कर्तुस्तात्कालिकी सिद्धिः पशुभिर्बान्धवैः सह ।
राजावश्यमवाप्नोति जनाश्चैव पदे पदे ।
रोगी रोगात्प्रमुच्येत होलिकोत्सवकारणात् ।[10]

---

१ कुमारौ २ तथाकारींत्यु ३ त्सवोयं ४ पुत्राश्चा० ५ नंत्था ६ संपदप्रदः ७ परमेश्वरी ८ तेपि ९ तन्त्रै कर्म० १० कारागात्

इस उत्सव के कर्ता को पशु-बन्धुओं के साथ तात्कालिकी सिद्धि प्राप्त होती है। राजा भी अवश्य सिद्धि पाता है और लोग कदम-कदम पर सिद्धि पाते हैं। रोगी होलिका-उत्सव के कारण रोग से मुक्त हो जाता है।

पुरश्चैव महेशानि क्रीडिताश्च महर्षिभिः[1]।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन होलिकोत्सवमादरात्।
कर्त्तव्या होलिका नृणां पूर्वैः पूर्वतरैः कृता॥

हे महेशानि! पहले महर्षियों ने इसे खेला, इसलिए सभी यत्न से आदर-पूर्वक होलिकोत्सव करना चाहिए। होली खेलनी चाहिए, मनुष्यों के पूर्वज और उनके भी पूर्वजों ने होली खेली।

मोक्षदा[2] भूतिदा यत्र परत्र होलिका भवेत्।

इस लोक और परलोक में भी होली मोक्ष देने वाली और ऐश्वर्य प्रदान करने वाली है।

ये न कुर्वन्ति वै मोहात्तवोत्सवमशेषतः।
बालग्रहा भविष्यन्ति तद्गृहे······[3] ॥

जो पूरी तरह से तेरा उत्सव मोह से नहीं करते हैं, उनके घर में बाल ग्रह······होंगे।

यद्राष्ट्रे नैव कुर्वन्ति तवोत्सवमनिन्दिते।
तद्गृहे कालकर्णी च भविष्यति न संशयः॥

हे अनिन्दिते! जिस राष्ट्र में तेरा उत्सव नहीं करते हैं, उनके घर में कालकर्णी होगी, इसमें संशय नहीं है।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन माघफाल्गुन[4]मन्ततः।
पूजयेत महाकृत्यां तारकेणो[5]पपादिताम्॥

इसलिए सभी यत्न से माघ-फाल्गुन के बीच तारक से की गई महाकृत्या की पूजा करे।

इत्युक्त्वा मातरस्तां तु विक्षिप्तां परिहासकैः।
धूल्युद्धूलनकैश्चापि निराकु[6]र्युस्ततश्च ताम्॥

इस प्रकार माताएं परिहासपूर्वक विक्षिप्त उस का धूलि फेंकने आदि से भी निराकरण करने लगीं।

निराकृता ततः कृत्या[6] तत्र दर्शनमाययौ।
तदा प्रभृति देवेशि होलिकेति ममाग्रतः॥

---

१ महर्षभिः २ मेक्षिक्ष ३······ ४ फाल्गुण ५ गिराकुयु० ६ कृत्यां

तदनन्तर निराकृत कृत्या तब से लेकर मेरे आगे होलिका इस नाम से वहां देखने में आई।

यस्मान्मातृभिरत्यु[1]च्चैर्होला होलेति क्रन्दिता।
तस्मान्नामाभव[2]त्तस्या होलेति तन्त्रशासने॥

जिससे माताओं ने इसे 'होला-होला' इस नाम से ऊँचे पुकारा, इसी से तन्त्र शासन में इसका नाम 'होला यह पड़ गया।

इति होलिकामाहात्म्यं[3] नाम पटलः॥

१ त्युच्चोंहोला २ क्रंदित ३ भवतुस्या

श्री युधिष्ठिर उवाच—श्री युधिष्ठिर बोले—

ॐ गवां[1] मूत्रं [2]पुरीषं च श्रियाजुष्टमिति श्रुतम् ।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं संशयं मे पितामह ।।

हे पितामह ! गोमूत्र और गोबर लक्ष्मी युक्त है । ऐसा सुना गया है, यह मैं सुनना चाहता हूं, मुझे इसमें संशय है ।

भीष्म उवाच—भीष्म बोले—

अत्राप्युदाहरन्तीमितिहासं पुरातनम् ।
गोभिर्नृपेन्द्र संवादं श्रियो[3]भरतसत्तम ।
श्रीः कृत्वैव वपुः कान्तं गवां मध्ये विवेश ह ।
गावो[4]ऽथ विस्मिता[5] दृष्ट्वाप्यूचुस्तद्रूपसम्पदम् ।।

हे भरतसत्तम ! नृपेन्द्र ! गायों के साथ श्री के संवादस्वरूप इस पुरातन इतिहास को यहां कहती हुई श्री ने सुन्दर शरीर धारण कर गायों के मध्य प्रवेश किया । इसके बाद उसके रूप-ऐश्वर्य को देखकर विस्मित हुई गायों ने कहा ।

गाव[6] ऊचुः—गायें बोलीं—

कासि देवि कुतो[7]ऽसि त्वं रूपेणाप्रतिमा भुवि ।
विस्मिताः स्मो महाभागे तव रूपस्य सम्पदा ।।

हे देवि ! तुम कौन हो, कहां से आई हो ? तुम रूप से पृथ्वी पर अप्रतिम हो । हे महाभागे ! तेरे रूप के ऐश्वर्य से हम विस्मित हैं ।

इच्छामस्त्वां वयं ज्ञातुं[8] का त्वं क्व च गमिष्यसि ।
तत्वेन च सुवर्णाभे सर्वमेतद्ब्रवीहि नः ।।

तुम कौन हो और कहां जाओगी ? हम तुम्हें जानना चाहती हैं । हे सुवर्णाभे ! तत्व से यह सब कुछ हमें कहिए ।

श्रीरुवाच—श्री बोली—

लोककान्तास्मि भद्रं वः श्री नाम्नेह भुवि श्रुता ।
मया दैत्याः परित्यक्ता विनष्टाः शाश्वतीः समाः ।।

---

१ गवा २ परीषं ३ श्रिया ४ गावोथ ५ विस्मिताँ ६ गावा ऊचुः ७ कुतोसि ८ ज्ञातं

मैं लोक कान्ता हूँ, तुम्हारा कल्याण हो। इस पृथ्वी पर मैं श्री नाम से जानी जाती हूं। मुझ से छोड़े गए दैत्य अनेक-अनेक-वर्ष पर्यन्त नष्ट हो गए।

इन्द्रो विवस्वान्सोमश्च विष्णुरापोऽग्निरेव च।
मयाभिपन्ना वर्धन्ते मुनयो देवतास्तथा॥

इन्द्र, विवस्वान्, सोम, विष्णु, जल और अग्नि, मुनि तथा देवता सब मुझ से...... वृद्धि को प्राप्त होते हैं।

यांश्च द्विषाम्यहं गावस्ते विनश्यन्ति सर्वशः।
धर्मकामविहीनाश्च ते भवन्त्यसुखान्विताः॥

हे गौओ! जिन से मैं द्वेष करती हूँ, वे सर्वशः नष्ट हो जाते हैं और धर्म-काम से विहीन होकर वे दुःखी हो जाते हैं।

एवं प्रभावां मां गावो विजानीत सुखप्रदाम्।
इच्छामि चापि युष्मामिर्वस्तुं सर्वासु नित्यदा॥

हे गौओ! सुखप्रद और इस प्रकार प्रभाव वाली मुझ को तुम जानो और मैं तुम सभी में साथ सदा रहना चाहती हूँ।

आगता प्रार्थनया[1] याहं श्रीजुष्टा नद्यः[2] भवत।

मैं जो इस प्रार्थना से आई हूं। हे नदियो! श्री युक्त होओ।

गाव ऊचुः—गौएं बोलीं—

[3]...... वहुभिः सह।
न त्वामिच्छामो[4] भद्रं ते गम्यतां यत्र [5]रम्यसे॥

हम तुम्हें नहीं चाहती हैं, तुम्हारा कल्याण हो, जहां अच्छा लगे। जाइए,

वपुष्मत्यो वयं सर्वाः किमस्माकं त्वयाद्य वै।
यत्रेष्टं गम्यतां तत्र कृतकार्या वयं स्वयम्॥

हम सब शरीरधारी हैं। हमारा तुम्हारा क्या साथ? जहां इष्ट है वहां जाइए, हम स्वयं कृतकार्य हैं।

श्रीरुवाच—श्री बोली—

किमेतदाहुर्मां गावो यन्मां नेहाभिनन्दथ।
न च मां प्रतिगृह्णीत कस्माद्वै दुर्लभां सतीम्॥

हे गौओ! यह तुम मुझे क्या कह रही हो जो मुझे जहां अभिनन्दित नहीं करती हो और क्यों कर दुर्लभ-सती मुझे ग्रहण नहीं करती हो?

---

१ प्रार्थनयाह २ भवत नद्यः ३...... ४ मिच्छाम ५ रंम्यसे

सद्यश्च लोकवादो[1]ऽयं लो[2]को निन्दति सुव्रतम् ।
स्वयं प्राप्ते परि[3]भवो भवतीति विनिश्चितम्[4] ॥

झट यह लोकापवाद हो जाता है, लोक सुव्रत की निन्दा करता है। स्वयं किसी के चले जाने पर तिरस्कार हुआ करता है, यह निश्चित है।

महदुग्रं तपः कृत्वा मां निषेवन्ति मानवाः ।
देवदानवगन्धर्वाः पिशाचोरगराक्षसाः ॥

मनुष्य, देव, दानव, गन्धर्व, पिशाच, उरग और राक्षस महा-उग्र तप कर मेरा सेवन करते हैं।

क्षमे[5]ऽहमेतद्धि गावो वः प्रतिगृह्णीत मामिति ।
नावमान्या ह्यहं सौम्यास्त्रैलोक्ये सचराचरे ॥

हे गौओ ! मैं तुम्हारा यह अपराध क्षमा करती हूँ, तुम मुझे ग्रहण कर लो। हे सौम्यो ! चर-अचर इस त्रिलोकी में मेरा कोई अपमान नहीं करता है।

गाव ऊचुः—गायें बोलीं—

नावमान्यामहे देवि न त्वा परिभवामहे ।
[6]...... चलचित्तासि-अतस्त्वां वर्जयामहे ।
बहुनात्र किमुक्तेन गन्तव्यं यत्र वाञ्छसि ॥

हे देवि ! हम लोग तुम्हारा अपमान नहीं करते हैं और न ही तुम्हारा तिरस्कार करते हैं। ......तू चलचित्त है, इसलिए हम तुझे छोड़ती हैं। इस विषय में बहुत कहने से क्या ? जहां चाहती हो वहां चली जा।

श्रीरुवाच—श्री बोली—

अवज्ञाता भविष्यामि सर्वलोकेषु मानदाः ।
प्रत्याख्यानेन युष्माकं प्रसादः क्रियतामतः ॥

हे मानदा गौओ ! तुम्हारे प्रत्याख्यान से सभी लोकों में मैं तिरस्कृत हो जाऊँगी, इसलिए कृपा कीजिए।

मानानां त्वमभिच्छामि भवत्यः सततं शुभाः ।
अप्येकांगे तु[7]...... मिच्छाम्यहमकुत्सिते ॥
न वो[8]ऽस्ति कुत्सितं किञ्चिदङ्गेष्वालक्ष्यते नघः[9] ।

---

१ लोकवादोयं २ लेंको ३ परिभावो ४ विनिश्चयं: ५ क्षमेतद्धि ६... ७......८ वोस्ति ९ नद्या

पुण्याः पवित्राः सुभगा ममादेशं प्रयच्छत ।
वस्येयं यत्र वोऽ[1]ङ्गे तन्मे व्याख्यातुमर्हथ ।।

हे नदियो ! तुम्हारे अङ्गों में कुछ कुत्सित दिखाई नहीं देता है । पुण्य, पवित्र और सुभग नदियो ! मेरे लिए जो आज्ञा है, वह दीजिए । यहां तुम्हारे अङ्ग में मैं रहूँ, वह तुम मुझे बताओ ।

भीष्म उवाच—भीष्म बोले—

एवमुक्तास्तु ता गावः शुभाः करुणवत्सलाः ।
संमन्त्र्य संहिताः [2]सर्वाः श्रियमूचुर्नराधिप ।।

हे नराधिप ! इस प्रकार कही गईं शुभ और करुणवत्सल उन सभी गायों ने एकत्रित हो मन्त्रणा कर श्री को कहा ।

गाव ऊचुः—गौएं बोलीं—

अवश्यं मानवाः कार्या तवास्माभिर्यशस्विनि ।
श[3]कृन्मूत्रे निवसत्यः पुण्यमेतद्धि नः शुभे ।।

हे यशस्विनि ! हमें तुम्हारा अवश्य…
हे शुभे ! प्यारे गोब एवं मूत्र में वास करो यही पुण्य है ।

श्रीरुवाच—श्री बोली—

दिष्ट्या प्रसादो युष्माभिः कृतो मेऽ[4]नुग्रहात्मकः ।
एवं भवतु भद्रं वः पूजितास्मि सुखप्रदा ।।

प्रसन्नता की बात है कि तुम ने मुझ पर अनुग्रह स्वरूप प्रसाद किया है । ऐसा हो, तुम्हारा कल्याण हो । मैं सुख प्रदान करने वाली पूजिता हूं ।

इति श्री महाभारते शतसाहस्र्य संहितायां युधिष्ठिरभीष्म-संवादे गोशकृन्मूत्रमाहात्म्यं नाम पटलः ।।

१ वोङ्गे २ सर्वाः ३ कृत्मूत्रे ४ मेनुग्रहात्मकः

ॐ नमः शिवाय परम शिवाय[1] ॐ।

श्री भैरव्युवाच—श्री भैरवी बोली—

ॐ श्रुत्वा श्रुत्वा महादेव भद्रकाल्या वनं महत्।
निर्वृत्तास्मि महा[2]म्बोधे कृतार्थास्मि न संशयः ।।

हे महादेव ! भद्रकाली के महावन के विषय में सुन-सुन कर हे महाम्बोधे ! मैं निर्वृत्त हूँ, कृतार्थ हूं, इसमें संशय नहीं है।

अधुना श्रोतुमिच्छामि स्वय[3]म्भ्वग्निमनुत्तमम्।
यच्छ्रुत्वा[4] मुच्यते जन्तुर्महापातककोटिभिः ।।

अब मैं अत्युत्तम स्वयम्भ्वग्नि के विषय में सुनना चाहता हूँ, जिसे सुनकर प्राणी करोड़ों महापापों से मुक्त हो जाता है।

वद सत्यं महादेव ममानुग्रहकाम्यया।

हे महादेव ! मुझ पर अनुग्रह की कामना से सत्य-सत्य कहिए।

श्रीभैरव उवाच—श्री भैरव बोले—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि हरेर्ज्या[5] पुर उत्तमे।
वह्निस्वायम्भवं नाम कोटिहत्यौघ[6]नाशनम्।

हे देवि ! सुनिए, मैं हरि के उत्तम ज्यापुर में स्थित करोड़ों हत्याओं के पाप को नष्ट करने वाले स्वायम्भव अग्नि के विषय में कहूँगा।

सर्वैः समेत्य देवैस्तु हरस्[7]येज्या कृता पुरा।
सुरासुरैर्ऋषिगणैर्गन्धर्वोरगराक्षसैः।
निराहारैः क्षीणदेहैः सहस्रपरिवत्सरान् ।।

पूर्वयुग में सुर-असुर, ऋषिगण, गन्धर्व, उरग, राक्षस और देवता सभी ने मिल कर निराहार रह एव क्षीण देह हो सहस्रों वर्ष पर्यन्त महादेव की इज्या की।

इष्टश्चैव हरस्तेषां पुरो दर्शनमाययौ।
दृष्ट्वा तत्र महादेवं दण्डवत्पतिता क्षितौ।
ततः प्राञ्जलयः सर्वे [8]वाग्भिरर्थ्याभिरस्तुवन् ।।

---

१ शिवायों २ महाम्मोधेः ३ स्वयमखग्नि ४ च्छ्रुत्वे ५ हरेज्या ६ हत्याघ ७ हरस्येजा ८ वंग्भि रर्थ्यभिर०

उनके अभीष्ट महादेव उनके आगे दर्शन देने के लिए आए। वहां महादेव जी को देखकर वे पृथ्वी पर दण्डवत् पड़ गए। इसके बाद दोनों हाथ जोड़ वे सभी अर्थयुक्त वाणिओं से स्तुति करने लगे।

देवा ऊचुः— देवता बोले—

ॐ नमः शिवाय रुद्राय शर्वाय भवरूपिणे।
शान्ताय शान्तरूपाय घोरघोराय चक्षुषे।।
अघोराय सुघोराय घोरघोराय ते नमः।
त्रिपुरघ्नाय देवाय त्रिपुरेशाय ते नमः।।
शमाय शान्तरूपाय दान्ताय दमरूपिणे।
मीडुष्टोमाय देवाय मुञ्जमेखलिने नमः।।
अर्चनीयाय देवाय ह्यर्चाफलविधायिने।
कालकालाय देवाय ह्यन्तकाय ह्यनन्तिने।।

शिव, रुद्र, शर्व, भवरूपी, शान्त, शान्तस्वरूप, घोरघोर चक्षु वाले, तुझे नमस्कार है। अघोर, सुघोर, घोर घोर, तुझे नमस्कार है। त्रिपुरासुर को मारने वाले देव, त्रिपुरेश, तुझे नमस्कार है। शम, शान्तरूप, दान्त, दमरूपी, मीडुष्टोम, देव, मुञ्ज की मेखला को धारण करने वाले, तुझे नमस्कार है। अर्चना योग्य, देव, अर्चाफलविधायी, काल काल, देव, अन्तक और अनन्ती तुझे नमस्कार है।

नमो हिरण्यरूपाय ज्योतिषां पतये नमः।
नमः कालाग्निरुद्राय महासंघर्षणाय ते।।
महेश्वराय देवाय महावरप्रदाय ते।
दण्डिने मुण्डिने तुभ्यं जटिने ब्रह्मचारिणे।।
हिरण्याक्षाय देवाय हिरण्यकवचाय ते।
मायिने मोहिने तुभ्यं महामोहविनाशिने।।
सर्वाय सर्व[1]रूपाय नमः सर्वेश्वराय ते।
त्र्यम्बकाय त्रिनेत्राय भूयो भूयो नमो नमः।।

हिरण्यरूप, ज्योतिओं के पति तुम्हें नमस्कार है। कालाग्निरुद्र, महासंवर्षण, तुझे नमस्कार है। दण्डी, मुण्डी जटी, ब्रह्मचारी, तुझे नमस्कार है। हिरण्याक्ष देव, हिरण्यकवच, तुझे नमस्कार है। मायी, मोहिनी,

---

१ सव०

महामोहविनाशी, तुझे नमस्कार है। सर्व, सर्वरूप, सर्वेश्वर, तुझे नमस्कार है। त्र्यम्बक, त्रिनेत्र, तुम्हें बार-बार नमस्कार है।

इति स्तुत्वा महादेवं प्रणतार्तिहरं परम्।
तस्थुः प्राञ्जलयः सर्वे प्रणेमुश्च पुनः पुनः ॥
स्त वं श्रुत्वा तथा तेषां देवानां वरवर्णिनि।
प्राह गम्भीरया वाचा तत्त[1]द्दुःखं शमयन्निव ॥

इस प्रकार शरणागत की पीड़ा का हरण करने वाले परम महादेव की स्तुति कर वे सभी दोनों हाथ जोड़ खड़े रहे और बार-बार नमस्कार करने लगे। हे वरवर्णिनि! उन देवताओं की स्तुति सुनकर वह उन-उनके दुःख को शान्त करते हुए गम्भीर वाणी से बोले।

श्री महादेवः—

इज्याकृता[2] किमर्थं नो वदध्वं देवसत्तमाः।
तं वृणीध्वं वरं देवा यद्यपि स्यात्सुदुर्लभम् ॥

हे देवश्रेष्ठो! मेरी किसलिए तुम ने इज्या की, कहो। हे देवो! उस वर को मांगो, यद्यपि वह सुदुर्लभ हो।

देवा ऊचुः—देवता बोले—

अस्मिन्सतीसरे देशे पोषिताश्च महात्मभिः।
महर्षिभिः कश्यपाद्यैर्यागान्कृत्वा विधानतः ॥
अधुना बाधितास्ते तु यागविघ्नकरैरिह।
असम्पा[3]दितयागास्ते विशीर्णजगदीश्वरः।
यागहीने[4]ऽत्र देशेऽ[5]स्मिन्प्रक्षीणा[6]......

कश्यप आदि महर्षियों और महात्माओं से पोषित इस सतीसर देश में विधिपूर्वक यज्ञ कर अब वे यज्ञ में विघ्न डालने वालों से यहां बाधित किए गए। यज्ञ न करने से वे ...

इत्थं श्रुत्वा वचस्तेषां प्रणतार्तिहरो हरः।
प्रत्युवाच च तान्सर्वान्नि[7]मोघगम्भीरया गिरा ॥

इस प्रकार इनके वचन सुनकर शरणागत के दुख का हरण करने वाले महादेव ने उन सबको अमोघ-गम्भीर वाणी से कहा—

---

१ तद्द्ुःखं २ कृत ३ असम्पाधित० ४ यागहीनेत्र ५ देशेस्मि०
६ प्रचमेह ७ न्सर्वामोघ०

श्री महादेवः—

विघ्ना[1]न्नहं शमयिष्ये शृणुध्वं देवसत्तमाः ।
पातालसंस्थो भगवान्महाकालाग्निरूपधृक् ।।

हे देव श्रेष्ठो ! पाताल में स्थित भगवान् महाकाल अग्नि रूप को धारण किए हुए मैं विघ्नों को शान्त करूंगा, सुनिए ।

यदा यदा धर्मपथो नश्येत्कश्मीरमण्डले ।
तदा ह्यहं नेत्रज्वालामुत्पाद्य शमयेत्स्वयम् ।।

कश्मीर मण्डल में जब-जब धर्ममार्ग नष्ट होगा, तब मैं नेत्र ज्वाला पैदा करूंगा जिससे वह स्वयं शान्त हो जाए ।

तस्माद्व्रजत भद्रं वः स्वं स्वमालयमागताः ।

इसलिए जाइए, आप का कल्याण हो ।

इति श्रुत्वा वचो देवा हरस्याक्लिष्टकर्मणः ।
यथागतं देवाः स्वं स्वमालयमागताः ।

देवता आक्लिष्ट कर्म वाले महादेव के ये वचन सुनकर अपने अपने घर चले गए ।

तदा प्रभृति देवेशि नष्टे धर्मपथे सदा ।
कालाग्निरुद्रो भगवान् ज्वालामुत्पाद्यतां स्वयम् ।
शमयेद्विघ्नसंघांश्च पापसंघांश्च नित्यशः ।।

काल-अग्नि-रुद्र भगवान् स्वयं ज्वाला पैदा कीजिए, जिस से विघ्नसंघ तथा पाप संघ हमेशा शान्त हो जाएं ।

देवै[2]रिज्या कृता यत्र हरस्य वरवर्णिनि ।
एतद्देवि वनं प्रोक्तं हरेर्ज्या[3]पुरसंज्ञितम् ।।

हे वरवर्णिनि ! देवताओं ने यहां महादेव की पूजा की । हे देवि ! यह वन हरेज्यापुर नाम से कहा गया ।

यस्माच्छमयते विघ्नान्पापसंघां[4]श्च नित्यशः ।
महाकालाग्निरुद्रो वै पातालस्थः सदाशिवः ।।

जिस से नित्य विघ्नों और पापसंघों को शान्त करता है, वह महाकाल-ग्निरुद्र पातालस्थ सदाशिव है ।

उत्पाद्य ज्वालां नेत्रोत्थां स्वयमेव ततः प्रभुः ।
तस्मात्प्रोक्तः पुराविद्भिः स्वयं वह्निभू[5] नामकः ।।

---

१ विघ्नानहं २ दैवैरिज्या ३ हरेर्ज्या ४ न्यापसंघाश्च ५ वह्निभु

इसके बाद प्रभु ने स्वयं नेत्रों से उठी ज्वाला को पैदा किया, इसी से पुरातत्ववेत्ताओं ने स्वयं उसे वह्निभू नाम से पुकारा है।

स्वायंभुवो[1]ऽग्नौ हुत्वा च कृत्वा श्राद्धं वरानने।
अश्वमेधादिकोटीभि: फलमाप्नोति मानव: ॥

हे वरानने ! स्वायम्भुव-अग्नि में होम कर और श्राद्ध कर मनुष्य करोड़ों अश्वमेध आदि फल को पाता है।

ग्रहपीडासु चोग्रासु वह्निस्वायम्भुवं श्रयेत्।
महापातकयुक्तो वा युक्तो वा ह्युपपातकै:।
दृष्ट्वा स्वायं[2]भुवं वह्निं मुच्यते सर्वकिल्विषै: ॥

उग्र ग्रह पीड़ाओं में स्वायम्भुव वह्नि का सेवन करे। महापाप से युक्त वा उपपापों से युक्त स्वायम्भुव वह्नि के दर्शन कर सभी पापों से मुक्त हो जाता है।

दारिद्रच[3]दु:खयुक्तो वा बद्धो वा पापपञ्जरै:।
हुत्वा स्वाय[2]म्भुवे ह्यग्नौ मुच्यते सर्वसंकरै: ॥

दरिद्रता के दु:ख से युक्त वा पापपञ्जरों से बन्धा हुआ मनुष्य स्वायम्भुव अग्नि में होम कर सभी संकटों से मुक्त हो जाता है।

पक्वान्नं तत्र देवेशि श्राद्धे कृत्वा विधानत:।
पितरस्तृप्तिमायान्ति शतकल्पं न संशय: ॥

हे देवेशि ! वहां श्राद्ध में विधिपूर्वक पक्वान्न देकर शतकल्प पर्यन्त पितर तृप्त हो जाते हैं, इसमें संशय नहीं है।

कल्पं सायं वसेद्यस्तु श्राद्धं कुर्वन्महेश्वरि।
यत्फलं समवाप्नोति तद्वह्नौ च स्वायंभुवे[4] ॥

हे महेश्वरि ! सायं श्राद्ध करता हुआ जो कल्प पर्यन्त यहां रहे, वह जो फल पाता है, वह स्वायम्भुव वह्नि में प्राप्त होता है।

एकाहेनैव देवेशि श्राद्धं कोटिगुणं भवेत्।
महामायां भद्रकालीं नत्वा भक्तिसमन्वित:।
नरो वा यदि वा नारी पुण्यमाप्नोति पुष्कलम् ॥

हे देवेशि ! एक दिन से ही श्राद्ध करोड़ों गुणा होवे। भक्तिपूर्वक महामाया भद्रकाली को नमस्कार कर पुरुष हो यदि वा नारी हो, पुष्कल पुण्य पाता है।

---

१ स्वायंभुवोग्नौ २ स्वायंभवं ३ दारिद्र० ४ स्वयंभवे

इदं सौभाग्यदं तीर्थमिदं पापप्रणाशनम् ।
पितृमुक्तिप्रदं ह्येतन्महापातकनाशनम् ॥

यह सौभाग्य देने वाला है, यह तीर्थ पापों को नष्ट करने वाला है और यह पितरों को मुक्ति प्रदान करने वाला तथा महापापों को नष्ट करने वाला है।

आयुरारोग्यदं चेदं[1] कन्यादं शुभदं नृणाम् ।
इदं पुंसवनं देवि ह्यापन्नार्त्तिहरं परम् ॥

यह आयु, आरोग्य, तथा शुभ मनुष्यों को देने वाला है। हे देवि ! यह पुंसवन शरणागत के परम दुःख को नष्ट करने वाला है।

कालाग्निरुद्रसम्भूतं स्वयम्भू[2]वह्निसंज्ञितम् ।
दर्शनाद्धरते पापं श्राद्धादपि महेश्वरि ॥

हे महेश्वरि ! यह कालाग्निरुद्र से पैदा हुआ स्वयम्भूवह्नि नाम वाला तीर्थ दर्शन से और श्राद्ध से भी पाप का हरण करता है।

पुण्डरीकप्रदं तीर्थं ह्यश्वमेधप्रदं हि तत्[3] ।
नारी वा पुरुषो वापि दृष्ट्वा तीर्थसमन्वितम् ।
पुण्यमाप्नोति परमं राजसूयाश्वमेधजम् ॥

यह तीर्थ पुण्डरीक देने वाला और अश्वमेध देने वाला है। स्त्री हो वा पुरुष, इस समन्वित तीर्थं को देखकर राजसूय-अश्वमेध से पैदा हुए परम पुण्य को पाता है।

यावत्तत्र च सक्तूनि श्राद्धार्थं च····· [4]
तावत्कल्पसहस्रेषु पितरस्तुष्टिमाप्नुयुः[5] ॥

जब तक वहां श्राद्ध निमित्त सत्तुओं को तब तक सहस्र कल्प पर्यन्त पितर सन्तुष्टि को पाएं

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन यात्रां[6] कृत्वा विशेषतः ।
हुनेत्स्वायम्भुवे ह्यग्नौ पक्वान्नं विधिवन्नरः ॥

इसलिए सभी यत्न से यात्रा कर विशेष कर स्वायम्भुव अग्नि में विधिपूर्वक होम करे।

मुच्यते पातकैर्घोरैः कोटिजन्मार्जितैरपि ।
हुतशेषं स्वयं तत्र भुंक्ते भक्तिसमन्वितः ॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो याति[7] ब्रह्मसनातनम् ॥

---

१ चेदं २ स्वयंभु० ३ प्रदं त ४ पचोनिव ५ माप्नुयात् ६ यात्रं ७ यांति ८ कथिता

करोड़ों जन्मों में अर्जित किए हुए भी घोर पापों से मुक्त हो जाता है। वहां भक्तियुक्त हवन से बचे पदार्थ को स्वयं खाता है। सभी पापों से मुक्त हो सनातन ब्रह्म को पाता है।

तस्माद्यदा यदा देवि कश्मीरे किल्विषं भवेत्।
कालाग्निरुद्रो भगवान् शमये[1]त्स्वयमग्निना ॥

हे देवि ! इसलिए जब-जब कश्मीर में पाप हो, भगवान् कालाग्निरुद्र स्वयं अग्नि से शान्त करें।

इति ते कथितं[2] देवि तीर्थे स्वायम्भवे परे।
महापापहरं पुण्यं हरेज्यापुरमुत्तमम् ॥

हे देवि ! परम स्वायम्भव तीर्थ में इस प्रकार यह महापापों को नष्ट करने वाले उत्तम-पुण्यप्रद हरेज्यापुर के विषय में कहा है।

इत्येष पटलो गुह्यो महापुण्यफलप्रदः।
यस्मै कस्मै न दातव्यो नाख्येयश्चापि[3] सुन्दरि ॥

इस प्रकार यह महापुण्य के फल को देने वाला पटल है। हे सुन्दरि ! जिस किसी को नहीं देना चाहिए और नहीं कहना चाहिए।

अशिष्याय शठायापि क्रूराय[4] वेदनिन्दके।
दत्वा ख्यात्वा च निरयान्याति नात्र विचारणा[5] ॥

अशिष्य, शठ, क्रूर, वेदनिन्दक को देकर और कहकर नरकों को पाता है, इसमें विचार नहीं है।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गोपनीयमिदं महत्।
तीर्थं[6] स्वायम्भवं नाम महापातकहं कलौ ॥

इसलिए सभी यत्न से कलियुग में महापापों को नष्ट करने वाला यह स्वायम्भव नामक महातीर्थ गुप्त रखना चाहिए।

आदौ च परहो नाम्नि[7] शुभे वैतस्तके जले।
ततो भद्राहके ग्रामे स्नात्वा वैतस्तके जले।
ततो यायाद्भद्रकालीं तद्गङ्गामवगाह्य वै ॥

पहले परहो नामक शुभ वितस्ता के जल में बाद भद्राहक ग्राम में वितस्ता के जल में स्नान कर तदनन्तर गंगा स्नान कर भद्रकाली को जाए।

ततो हरेज्यापुरे वै स्नात्वा स्वायम्भुवं व्रजेत्।

इसके बाद हरेज्यापुर में स्नान कर स्वायम्भुव को जाए।

इति श्री श्रीसंहितायां स्वाय[8]म्भवमाहात्म्यं नाम
पटलः सम्पूर्णः[9] ॥ ॐ भद्रम् ॥

---

१ शमयेत च मग्नि २ कथिता ३ श्चंपि ४ कूराय ५ विचारणं ६ तीर्थं ७ नाम्ने ८ स्वयम० ९ संपूर्णमों

ओं नमस्त्रिपुरसुन्दय-त्रिपुर सुन्दरी को नमस्कार हो।

ओं श्री भैरव्युवाच—श्री भैरवी बोली—

ॐ चन्द्रकोटेश्च माहात्म्यं श्रुत्वा प्रीतास्मि सुन्दर।
अधुना श्रोतुमिच्छामि गिरिं गोदरमादितः॥

हे सुन्दर! चन्द्रकोटि के माहात्म्य को सुनकर मैं प्रसन्न हूँ, अब आदि से गोदर गिरि के विषय में मैं सुनना चाहता हूँ।

गोदावरी महापुण्या गौतमी च परमेश्वर।
यत्र[1] प्रतिष्ठिता देव वद त्वं मदनुग्रहात्॥

हे महेश्वर! महापुण्या गोदावरी और गौतमी यहां प्रतिष्ठित है। हे देव! तुम मेरे पर कृपा कर कहिए।

श्री भैरवः उवाच—श्री भैरव बोले—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि पुण्यं गोदरकं गिरिम्।
यच्छ्रुत्वा मनुजो देवि मुच्येदघसहस्रकैः॥

हे देवि! सुनिए, मैं पुण्य गोदरक गिरि के विषय में कहता हूँ, जिसे सुनकर मनुष्य हे सहस्रों पापों से मुक्त हो जाए।

पुरा देवशिरो राष्ट्रे गौतमो मुनिसत्तमः।
तपश्चचार सुमहद्[2]दारुणं दुश्चरं प्रिये॥

प्रिये! पूर्व युग में देवशिरो राष्ट्र में मुनि श्रेष्ठ गौतम ने हे दारुण और दुश्चर महा तप किया।

निराहारो निरीहश्च जितक्रोधो जितेन्द्रियः[3]।
जितश्रमो जितालस्यो मौनी निश्चल एव सः॥

निराहार, निरीह, जितक्रोध, जितेन्द्रिय, जितश्रम, जितालस्य, मौनी और वह निश्चल ही रह तप करने लगे।

एवं सन्तप्यमानस्य विधिवद्दुश्चरं तपः।
जितेन्द्रियस्य चेशानि जिताहारस्य वा पुनः।
गौत[4]मस्य महादेवि शरदामयुतं गतम्॥

हे ईशानि! इस प्रकार विधिपूर्वक दुश्चर तप से सन्तप्त हुए जिताहार और जितेन्द्रिय उस गौतम के हे महादेवि! अयुत वर्ष बीत गए।

---

१ यत्तु २ द्दारुणं ३ जितेंद्रियः ४ गोत्तमस्य

एकदा तप्यमानस्य दारुणं दुश्चरं तपः ।
ब्रह्मर्षीणां समाजो[1]भूत्तत्राश्रमपदे तदा ।।

एक बार दारुण और दुश्चर तप तपते हुए उसके वहां ब्रह्मर्षियों का इकट्ठ हुआ ।

देवर्षयो[2]ऽपि तत्रासन्सिद्धा राजर्षयस्तथा ।
तस्थुस्तस्याश्रमपदे स्थाणुभूतस्य सम्मुखे ।।

देवर्षि भी, सिद्ध तथा राजर्षि उस आश्रम में स्थाणुभूत गौतम के सामने ठहरे ।

चिरं ते मुनयस्तत्र स्थितास्तस्याश्रमे तदा ।
स्थाणुभूतस्य पुरतो गौतमस्य वरानने ।।

चिर काल तक वे मुनि वहां तब उसके आश्रम में हे वरानने ! स्थाणुभूत उस गौतम के आगे खड़े रहे ।

कोपाविष्टाश्च मुनयो[3]ऽप्यभवन्गौतमं प्रति ।
कृत्यां संजनयामासुर्गोरूपां वरवर्णिनि ।।

और मुनि भी गौतम के प्रति कोपाविष्ट हुए तथा हे वरवर्णिनि ! गोरूपा कृत्या को उन्होंने पैदा किया ।

दुर्दान्तस्थाणुभूतस्य दुरीहस्यापि चाश्रमे ।
वयमभ्यागता यस्माद्दृष्ट्या विमलयापि च ।

जिससे विमल भी दृष्टि से हम दुर्दान्त स्थाणुभूत और दुरीह भी इसके आश्रम में आए ।

सम्भाविता न चानेन दुर्मदेन दुरात्मना ।
अत एवमियं कृत्या गोरूपा प्रहरिष्यति ।।

और इस दुर्मद-दुरात्मा ने हमारा सम्मान नहीं किया, इसलिए ही यह कृत्या गाय के रूप में प्रहार करेगी ।

यस्य गेहे स्वयं चापि कुतश्चिदातपेत्किल ।
अभ्यागतस्तमाहन्ति दृशापि विमनीकृतः ।।

जिस के घर में स्वयं भी कहीं से आया हुआ अतिथि सन्तप्त हो, वह अभ्यागत दृष्टि से भी अपमानित हुआ उसे मार देता है ।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कुतश्चिदागतातिथिम् ।
पूजयेत दृशा चापि तृणैः शीतलवारिभिः ।।

---

१ समाजोभू० २ देवर्षयोपि ३ मुनयोप्य०

इसलिए हर तरह से कहीं से भी आए हुए अतिथि की दृष्टि से भी, घास से और ठण्डे जल से भी पूजा करे।

फलैर्मूलैस्तथा शाकैः शालीक्षुयवसैन्धवैः।
पूजितः पूजयेच्चापि निर्दहेच्चावमानतः।

फल-मूल, शाक, शाली, इक्षु, यव और सैन्धव से पूजित पूजा करे अन्यथा अपमान से जले।

इति कृत्वा मतिं[1] देवि गोकृत्या तमुदारयत्।
दन्तैः शृङ्गैर्महादेवि प्रोन्मील्य नयने तदा।
विष्टरेण तदा गात्रं गोकृत्या......[2]

हे देवि! ऐसा विचार कर गोकृत्या ने उनसे कहा कि हे महादेवि! दांतों-सींगों से तब नेत्र......

गौतमः परमः क्रुद्धो ब्रह्मास्त्रेण महामुनिः।
प्रहृता[3] गौतमेनापि गौर्मृता प्रापतद्भुवि॥

परम क्रुद्ध हुए महामुनि गौतम ने ब्रह्मास्त्र से प्रहरित किया। गौतम से प्रहरित गाय मर गई और पृथ्वी पर गिर पड़ी।

गां दृष्ट्वा तु मृतां तत्र[4] ब्रह्मसिद्धर्षयस्ततः।
[5]धिग्धिक्कुर्वन्त एवाशु समुत्तस्थुर्महेश्वरि॥

हे महेश्वरि! गाय को मरा देख वहां ब्रह्म-सिद्धर्षि 'धिक्कार है, धिक्कार है, ऐसा कहते हुए शीघ्र उठ खड़े हुए।

दृष्ट्वा समुत्थितस्तत्र गौतमर्षिर्महातपाः।
ऋषीन्विज्ञापयामास क्षन्तव्यं मे महर्षयः॥

यह देखकर वहां महा तपस्वी गौतम-ऋषि उठ खड़े हुए। ऋषियों से प्रार्थना की कि हे महर्षियो! मुझे क्षमा कर देना।

श्रुत्वा मुनेर्वचः सम्यङ् मुनयश्चोर्ध्वरेतसः।
ऊचुस्तं गौतमं देवि क्षमया किं भवेत्तव॥

मुनि के वचन को अच्छी तरह सुनकर हे देवि! ऊर्ध्वरेता मुनियों ने उस गौतम को कहा कि तुझे क्षमा से क्या?

येन त्वया गोवधश्च कृतो[6]ऽस्माकं हि पश्यताम्।
उपपातकी वै तस्मात्त्वं भविष्यसि न संशयः॥

---

१ मति २ गां कृत्या प्रददरिह ३ प्रहतं ४ मृता ५ धिग्धिक्कुर्वन्त एव ६ कृतोस्माकं

जिससे तूने हमारे देखते गोवध किया, उससे तू उपपातकी होगा, इसमें संशय नहीं ।

उपपातकिभिः साकं न सम्भाषणमीरितम् ।
न स्पर्शनं नासनं नाप्येकभोजनमेव च ।
वर्जनीयं तु यत्नेन यतस्तत्सदृशो भवेत् ।।

उपपातकियों के साथ भाषण करना उचित नहीं कहा गया है और न स्पर्श, न आसन एवं न ही एक साथ भोजन उचित है । यह सब कुछ यत्न से छोड़ देना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से उसके समान हो जाए ।

इति प्रोक्तो यतो धर्मशास्त्रेषु मुनिभिः पुरा ।
तस्मात्त्वत्सहवासो[1]ऽपि नार्हो दूरे वसामहे ।।

क्योंकि पूर्वयुग में मुनियों ने धर्मशास्त्रों में यह कहा है, इसलिए तुम्हारा सहवास भी उचित नहीं है, दूर ही रहते हैं ।

इत्युक्त्वा प्रययुर्दूरं मुनयः परमेश्वराः ।
गौतमो[2]ऽपि मुनीन्सर्वा[3]न्ननुयातो महेश्वरि ।।

यह कहकर परमेश्वर मुनि दूर चले गए । हे महेश्वरि ! गौतम भी सभी मुनियों के पीछे गए ।

उवाच परमो देवि प्रायश्चित्तार्थमेव च ।
भगवन्तो मम पुनः प्रायश्चित्तविधिं परम् ।
आज्ञापयध्वं कृपया मोचयध्वञ्च पातकात् ।।

हे देवि ! परम गौतम ने प्रायश्चित के लिए ही कहा कि हे भगवन्तो ! मुझे फिर परम प्रायश्चित की विधि की आज्ञा कीजिए और पाप से छुड़ाइए ।

इत्युक्तवन्तं देवेशि गौतमं मुनयस्तदा ।
प्रोचुः परमया तत्र कृपया शोधनं मुनिम्[4] ।।

हे देवेशि ! यह कहते हुए गौतम मुनि को तब मुनिओं ने परम कृपा कर वहां प्रायश्चित स्वरूप शुद्धि के विषय में कहा ।

गोमूत्रपाचितं[5]यावमन्नं त्रिदिवसं तथा ।
एकाहमपि वा भोज्यं गायत्र्यष्टसहस्रकम् ।।
जपनीयं चोपवासो रात्रिमेकं हरेः स्मृतिः ।
जागरश्च तथा कार्यः कू[6]ष्माण्डीहवनं ततः ।।

---

१ त्सहवासोपि २ गौतमोपि ३ न्सर्वाननुयातो ४ मुने ५ यावमत्रं ६ कुश्माण्डी

पीत्वा पुण्यं पञ्चगव्यं शक्त्या ब्राह्मणभोजनम् ।
दत्वा गाञ्च विधानेन गोवधान्मुच्यते नरः ।
एतद्धि वज्रकृच्छ्राख्यं व्रतमुक्तं महर्षिभिः ॥

गोमूत्र में पका हुआ जौ का अन्न तीन दिन वा एक दिन भी खाना चाहिए और आठ हजार गायत्री का जप करना चाहिए तथा एक रात्रि उपवास, हरि का स्मरण एवं जागरण तथा कूष्माण्ड का हवन करना चाहिए। तदनन्तर पवित्र-पुण्यप्रद पञ्चगव्य का पान कर शक्तिपूर्वक ब्राह्मणभोजन करा एवं गाय का विधिपूर्वक दान कर मनुष्य गोवध से मुक्त हो जाता है। महर्षिओं ने यह वज्रकृच्छ्र नामक व्रत कहा है।

प्रायश्चित्तविधिं श्रुत्वा परमर्षिसमीरितम् ।
प्रारेभे गौतमः कर्तुं व्रतं मुनिसमक्षतः ॥

परमर्षिओं से कही प्रायश्चित की विधि को सुनकर गौतम ने मुनिओं के सामने व्रत करना शुरू किया।

कुर्वाणस्य व्रतं तत्र प्रायश्चित्तं समक्षतः ।
तेजः प्रादुरभूत्तेषां मुनीनां भावितात्मनाम् ॥

वहां मुनिओं के सामने प्रायश्चितस्वरूप व्रत करते हुए उसके आगे भावितात्मा उन मुनियों का तेज पैदा हुआ।

निश्चलस्य मुनेस्तत्र गौतमस्य महात्मनः ।
गङ्गा प्रादुरभूच्चापि प्रत्यक्षं तस्य चाश्रमे ॥

वहां निश्चलभाव से महात्मा गौतम मुनि के सामने उसके आश्रम में गङ्गा पैदा हुई।

गङ्गाप्रवाहस्तत्रैव गोकरंकस्य पृष्ठतः ।
प्रससाराश्रमपदे मुनीनां तत्र पश्यताम् ॥

गोकरङ्क के पीछे वहीं आश्रमपद में मुनिओं के देखते गङ्गा का प्रवाह फैल गया।

स्पृष्टमात्रा तु गङ्गाम्भः प्रवाहेन च गौश्च सा ।
उदतिष्ठत्प्राद्रवच्च गौर्गङ्गाम्भः समुक्षिता ॥

गङ्गाजल के प्रवाह के स्पर्शमात्र से ही वह गाय गङ्गाजल से सिञ्चित हुई उठी और दौड़ पड़ी।

गौरागता महेशानि वहुरूपे च भैरवम् ।
गौशरीरस्य मध्यात्तज्जलं तत्रापतद्यतः ।

ततस्तत्तीर्थमभवद्गङ्गेति प्रथितं भुवि ।।

हे महेशानि ! गाय आई और वहुरूप में गाय के शरीर के बीच से वह जल बहां गिरा, इसीलिए वह तीर्थ पृथ्वी पर 'गङ्गा' नाम से प्रसिद्ध हुआ।

ततः सा प्राद्रवद्देवि वाराहं गिरिमुत्तमम् ।
पुच्छमुत्क्षेपयाञ्चक्रे गङ्गाजलसमुक्षितम् ।।

हे देवि ! इसके बाद वह उत्तम वाराह गिरि की ओर भागी और गङ्गाजल से सिञ्चित पूँछ को ऊपर की ओर फैंकने लगी।

ततस्तत्तीर्थजं वारि वाराहे शिखरे परम् ।
गौतमीति च विख्यातं महापातकहं कलौ ।।

तदनन्तर वाराह शिखर पर वह तीर्थ से पैदा हुआ जल कलियुग में महापापों को नष्ट करने वाला 'गौतमी' जल नाम से प्रसिद्ध हुआ।

यस्मिन्गिरौ महादेवि गौतमेन महात्मना ।
कृत्या गौर्दारिता प्रोक्तो गोदरः स गिरिर्महान् ।।

हे महादेवि ! जिस पर्वत पर महात्मा गौतम ने कृत्या गाय का दारण किया, इसीलिए वह महान् पर्वत 'गोदर' कहा गया।

यस्मिन्ग्रामे गोदराख्यः पर्वतः सम्प्रतिष्ठितः ।
[1]स ग्रामः प्रथितोऽद्यापि[2] गोदराख्यो महेश्वरि ।।

जिस गांव में गोदर नामक पर्वत है । हे महेश्वरि ! वह ग्राम आज भी गोवर नाम से प्रसिद्ध है।

गौर्वै विदारिता यत्रोत्थिता गङ्गाजलोक्षिता ।
सैव गोदावरी नाम गङ्गा परमपावनी ।।

यहां गङ्गाजल से सिञ्चित विदारिता गाय उठी, वही परम-पवित्र गङ्गा गोदावरी नाम से प्रसिद्ध हुई।

गोदावरी तथा गङ्गा गोमती त्रिविधा यतः ।
गोदरे वहुरूपे च वाराहे तत्प्रतिष्ठिता ।।

गोदावरी, गङ्गा तथा गोमती तीन प्रकार की हैं और गोदर वहुरूप वाराह में प्रतिष्ठित हैं।

गोदावरीं[3] सिंहगते जीवे गङ्गाञ्च गौतमीम् ।
श्रयन्पापविनिर्मुक्तो याति ब्रह्मसनातनम् ।।

---

१ सग्रामः २ प्रथितोद्यापि ३ गोदावरी

वृहस्पति के सिंह में स्थित होने पर गोदावरी गङ्गा और गौतमी का आश्रय लेता हुआ मनुष्य सनातन ब्रह्म को पाता है।

श्री भैरवी—

वद सत्यं महादेव जीवे सिंहमुपासिते।
निषिद्धा किं तीर्थयात्रा विहिता गौतमी कथम् ॥

हे महादेव ! सत्य कहिए कि वृहस्पति के सिंह में चले जाने पर तीर्थयात्रा क्यों निषिद्ध है और गौतमी यात्रा क्यों विहित है ?

श्री भैरवः—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि प्रश्नस्योत्तरमुत्तमम्।
गुह्यं परं रहस्यञ्च वदामि सुरदुर्लभम् ॥

हे देवि ! सुनिए, मैं कहता हूं। गुह्य, परम रहस्ययुक्त और देवताओं के लिए भी दुर्लभ उत्तम प्रश्न का उत्तर मैं देता हूं।

पुरा वृहस्पतिर्देवि सिंहराशिमुपागतः।
विप्रत्वाद्भयमाजह्ने भीता देवाश्च तद्भयात् ॥

हे देवि ! पूर्वकाल में वृहस्पति जब सिंह राशि में आया तो ब्राह्मण होने से भय पैदा हुआ और उसके भय से देवता भयभीत हुए।

तीर्थानि चैव भीतानि भीते चाङ्गिरसे मुनौ।
सिंहाज्जगदपीशानि भीतमेवञ्च निश्चयम् ॥

तीर्थ डर गए और आङ्गिरस मुनि के भी डर जाने पर हे ईशानि ! सिंह से जगत् डर गया, ऐसा निश्चय है।

देवता मुनयश्चैव सिद्धगन्धर्वकिन्नराः।
सरिता सागरश्चैव भीताश्चाप्सरसां गणाः ॥

देवता, मुनि, सिद्ध-गन्धर्व-किन्नर, नदिएं, सागर और अप्सराओं के समूह डर गए।

एकत्र मिलिताश्चासन्स्यक्षोर[1]गराक्षसाः।
न यात्रां नोत्सवञ्चापि न यज्ञं पूतिभाविताः ॥

यक्ष-उरग-राक्षस सब एक जगह इकट्ठे हो गए और पूतिभावित हो न यात्रा कर रहे थे, न उत्सव और न यज्ञ कर रहे थे।

---

१ न्सयक्षे

मुनावाङ्गिरसे जीवे सिंहाङ्कीते ततः सुराः ।
भीता उत्सवहीनाश्च यज्ञयात्राविवर्जिताः ।।

मुनि आङ्गिरस के वृहस्पति के सिंह में चले जाने से डर जाने पर तदनन्तर देवता उत्सवहीन हो और यज्ञ-यात्रा से रहित हो डर गए ।

देवा बभूवुर्देवेशि मघान्ते[1] फाल्गुनीं[2] श्रिते ।
जीवे पुनर्बभूवुस्ते देवाः परमहर्षिताः ।।

हे देवेशि ! मघा के अन्त में वृहस्पति के फाल्गुनी में चले जाने पर फिर वे देवता परम प्रसन्न हुए ।

चक्रुर्महोत्सवं यात्रां यज्ञं परमया मुदा ।

और उन्होंने परम प्रसन्नता से महोत्सव, यात्रा तथा यज्ञ किए ।

अत एव च दैवज्ञ वेदचक्षुषि वै पुरा ।
यज्ञो निषिद्धो यात्रा च महोत्सवविधिस्तथा ।।

इसी लिए हे दैवज्ञ ! पूर्वकाल वेदचक्षुष् में यज्ञ, यात्रा तथा महोत्सव-विधि निषिद्ध हैं ।

भीतिं प्रसेहयेत्कालं तत्कालन्तु विवर्जयेत् ।
अत एव मघाऽन्ते[3] तु यज्ञयात्राविवर्जनम् ।।

कालानुसार भय को सहन करे और तत्काल छोड़ दे । इसी लिए मघा के अन्त में यज्ञ-यात्रा छोड़ देनी चाहिए ।

मुनावाङ्गिरसे देवि सिंहराशिमुपागते ।
यतस्तु मुनय[4]स्तत्र गौतमस्य निवेशनम् ।
यज्ञयात्राविरहिता आसेदुः परमार्चितम् ।।

हे देवि ! आङ्गिरस मुनि के सिंहराशि में चले जाने पर यज्ञ और यात्रा छोड़ देनी चाहिए, क्योंकि यात्रा से विरहित मुनि वहाँ गौतम के परमार्चित स्थान पर पहुँचे ।

तस्माज्जीवे सिंहसंस्थे श्रयेद्गोदावरीं नदीम् ।

इसलिए वृहस्पति के सिंह में स्थित होने पर गोदावरी नदी का सेवन करे ।

तीर्थयात्रां मघान्ते[5] च हित्वा यज्ञोत्सवांस्तथा ।
गौतमीं चैव गङ्गाञ्च तथा गोदावरीं श्रयेत् ।

---

१ मधातं २ फाल्गुणीं ३ मघांते ४ मुनयः तत्र ५ मघोतं

मघा के अन्त में तीर्थयात्रा तथा यज्ञोत्सवों को छोड़कर गौतमी, गङ्गा और गोदावरी का सेवन करे।

सिंहे जीवे मघान्ते[1] ये यज्ञयात्रां महोत्सवम्।
यदि कुर्यु[2]र्भीतियुक्तास्तद्भवेयुर्न संशयः।।

मघा के अन्त में बृहस्पति के सिंह में होने पर जो यदि यज्ञ-यात्रा-महोत्सव करें, वे भययुक्त हो जायें, इसमें संशय नहीं हैं।

वर्जनीयास्ततो यज्ञास्तीर्थान्तिरगतिस्तथा।
महोत्सवाश्च सिंहस्थे मघान्ते[3] तु बृहस्पतौ।।

मघा के अन्त में बृहस्पति के सिंह में स्थित होने पर यज्ञ, तीर्थान्तिरगति और महोत्सव छोड़ देना चाहिए।

पूर्वफल्गुन्या[4]श्रिते तु मुनावङ्गिरसे यतः।
चक्रुर्महोत्सवं यात्रां[5] यज्ञं देवाः प्रहर्षिताः।।

क्योंकि आङ्गिरस मुनि के पूर्वफल्गुनी में आ जाने पर प्रसन्न हुए देवताओं ने महोत्सव-यज्ञ-यात्रा की।

तीर्थान्तिरेषु यात्रां च तस्माद्यज्ञोत्सवादिकम्।
कुर्वीत फाल्गुनी[6]ऋक्षमाश्रिते तु बृहस्पतौ।।

बृहस्पति के फाल्गुनी नक्षत्र में आने पर तीर्थान्तिरों में यात्रा-यज्ञ-उत्सव आदि करे।

सिंहजीवे मघान्ते तु यायाद्गोदावरीं नदीम्।
इति ते सर्वमाख्यातं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि।।

मघा के अन्त में बृहस्पति के सिंह में चले जाने पर गोदावरी नदी को जाए। यह सब कुछ मैंने तुम्हें कहा है और क्या सुनना चाहते हो।

इति श्री भृङ्गीशसंहितायां देवशिरोविषयोपजाततीर्थसंग्रहे
गोदावरी माहात्म्यं नाम पटलः।।

---

१ मघांतं २ कुर्यूर्भीति० ३ मघांतं ४ फल्गुण्याश्रिते ५ यत्रां ६ फाल्गुणी

श्री भैरवी—

श्रुत्वा गोदरमाहात्म्यं प्रीतास्मि जगदीश्वर।
अधुना श्रोतुमिच्छामि गोमतिकां[1] वद प्रभो।।

हे जगदीश्वर ! गोदर का माहात्म्य सुनकर मैं प्रसन्न हूँ। हे प्रभो ! अब मैं गोमती के विषय में सुनना चाहती हूँ, कहिए।

गौतमी गोमती या च गङ्गा गोदा[2]वरीति च।
त्रिविधा जाह्नवी तत्राप्यानीता गौतमेन या।।

जो गोमती, गौतमी और गोदावरी इस प्रकार गङ्गा तीन प्रकार की कही गई है, वह गौतम ने वहाँ लाई।

आसामान्यतमा पुण्या मिलिता वा महेश्वर।
सिंहसंस्थे गुरौ सम्यक्फलदा तु विशेषतः।।

हे महेश्वर ! बृहस्पति के सिंह में स्थित होने पर असाधारण पुण्यप्रद मिली हुई यह गङ्गा विशेषकर अच्छी तरह फल देने वाली है।

यैः स्नाता त्रिविधा गङ्गा तेषां का मतिरीश्वर।
यात्रां विनापि यैर्देव स्नाता गोदा[2]वरी नदी।
आसामान्यतमावापि तेषां पुण्यफलं वद।।

हे ईश्वर ! जिन्होंने तीन प्रकार की गङ्गा में स्नान किया है, उनकी क्या मति हैं, इन से भी जो भिन्न हैं, उनके पुण्यप्रद फल को कहिए।

श्रीभैरवः—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि गोदावर्याः फलं महत्।
विधिना येन सुस्नाता फलदा स्यान्महेश्वरि।।

हे देवि ! सुनिए, मैं गोदावरी के महाफल को कहता हू। विधिपूर्वक जिसने गोदावरी का स्नान किया, हे महेश्वरि ! उसके लिए गोदाबरी फलदा होती है।

आदौ गत्वा महेशानि सुरेज्यापुर उत्तमे।
स्नात्वा च चन्द्रतीर्थे वै ततः श्रीप्रहरं श्रयेत्।

हे महेशानि ! पहले उत्तम सुरेज्यापुर में जाकर और चन्द्रतीर्थ में स्नान कर तदनन्तर श्रीप्रहर को जाए।

---

१ गोमतीका २ गोधावरी

तत्र स्नात्वा सङ्गमे तु ह्यनन्तं नागमाश्रयेत् ।
तत्र स्नात्वा पुनः प्रायाद्वाराहं क्षेत्रमुत्तमम् ।।

वहाँ सङ्गम में स्नान कर अनन्त नाग का आश्रय ले, वहाँ स्नान कर फिर उत्तम वाराहक्षेत्र को जाए।

कोटतीर्थे तत्र स्थित्वा[1] पुण्ये पापप्रणाशने ।
क्षेत्रे स्नात्वा ततो यायात्पुण्यं नारायणस्थलम् ।।

वहाँ पुण्य कर पापों को नष्ट करने वाले कोटतीर्थ में ठहर और उस क्षेत्र में स्नान कर तदनन्तर पुण्यप्रद नारायणस्थल को जाए।

तत्र स्नात्वा व्रजेद्देवि सोमसूर्याग्निधामसु ।
तत्र स्नात्वा रुहेद्देवि शिखरं गौतमीं प्रति ।।

हे देवि ! वहाँ स्नान कर सोम-सूर्य और अग्निधाम में जाए। हे देवि ! वहाँ स्नान कर गौतमी के प्रति शिखरारोहण करे।

तत्र स्नात्वा तर्पयित्वा श्राद्धं कृत्वा विधानतः ।
ततो वराहस्य शिरोग्रामं गत्वा महेश्वरि ।
भवगङ्गां ब्रह्मगङ्गां रुद्रदेवीं सुरेश्वरीम् ।
अवगाह्य विधानेन हयमेधमवाप्नुयात् ।।

वहाँ स्नान-तर्पण और विधिपूर्वक श्राद्ध कर तदनन्तर हे महेश्वरि ! वराह के शिरोग्राम में जाकर भवगङ्गा, ब्रह्मगङ्गा, रुद्रदेवी, सुरेश्वरि का विधिपूर्वक अवगाहन कर हयमेध को पाए।

स्नात्वा च पूजयेत्तत्र शिवं पञ्चमुखं तथा ।
ज्योतिष्टोमं वाजपेयं पुण्डरीकमवाप्नुयात् ।।

स्नान कर वहां पञ्चमुख शिव का पूजन करे। ज्योतिष्टोम, वाजपेय, पुण्डरीक को पाए।

यद्यत्कृतं महेशानि वृहदण्वपि पातकम् ।
अस्मिन्-जन्मनि वान्यस्मिन्वाङ्मनःकायसञ्चितम् ।
तत्सर्वं नश्यते पाप[2]मिति सत्यं वरानने ।।

हे महेशानि ! जो-जो बड़ा छोटा भी पाप इस जगत् में वा दूसरे जगत् में वाणी-मन-शरीर से सञ्चित है, वह सब नष्ट हो जाता है। हे वरानने ! यह सत्य है।

---

१ स्थात्वा २ पापमिति

ततो यायाच्छूलमूलं शूले स्नात्वा पुनर्व्रजेत् ।
स्वर्णपाशे ततः स्नात्वा श्रीवत्सभैरवं श्रयेत् ।।

इसके बाद शूलमूल को जाए, शूल में स्नान कर फिर जाए। तदनन्तर स्वर्णपाश में स्नान कर श्रीवत्स भैरव को जाए।

श्रीवत्सक्षेत्रे स्नात्वा तु ततो नाजाविकं श्रयेत् ।
ततो वै गोमतीयात्रां कृत्वा सङ्गममाश्रयेत् ।।

श्री वत्सक्षेत्र में स्नान कर बाद में नाजाविक का सेवन करे। तदनन्तर गोमती की यात्रा कर सङ्गम का आश्रय ले।

श्राद्धं कृत्वा विधानेन ततः पर्वतमाश्रयेत् ।
देवं समर्चयित्वा च पुण्यमाप्नोति यागजम् ।।

विधिपूर्वक श्राद्ध कर तदनन्तर पर्वत का आश्रय ले और देव की पूजा कर यज्ञ से पैदा हुए पुण्य को पाता है।

एवं यः कुरुते देवि भैरवक्षेत्रसम्भवाम् ।
गोमतीतीर्थयात्रां वै ब्रह्मलोके महीयते ।।

हे देवि ! इस प्रकार जो भैरवक्षेत्र में पैदा हुई गोमती तीर्थ यात्रा करता है, वह ब्रह्मलोक में महिमा पाता है।

ततो व्रजेन्महेशानि हरनागं महेश्वरि ।
तत्र स्नात्वा व्रजेद्देवि पुण्यमाक्षारणं महत् ।।

हे महेशानि ! महेश्वरि ! बाद में हर नाग को जाए। हे देवि ! वहां स्नान कर पुण्यप्रद महा-आक्षारण को जाए।

ततः शाद्वलकं तीर्थं फुल्लाहं तत्र चाश्रयेत् ।
जलोडे-पुष्करे क्षेत्रे पूर्वगङ्गां समाश्रयेत् ।।

इसके बाद वहाँ शाद्वलक तीर्थ और फुल्लाह का आश्रय ले, तदनन्तर जलोड-पुष्कर क्षेत्र में पूर्वगङ्गा का आश्रय ले।

स्नात्वा गणोरे गङ्गायां शङ्खपालं समाश्रयेत् ।
जलोडे-पूर्वगङ्गायां स्नात्वा प्राणेशमाश्रयेत् ।।

गणोर के भीतर गंगा में स्नान कर शङ्खपाल का आश्रय ले। जलोड-पूर्वगङ्गा में स्नान कर प्राणेश का आश्रय ले।

प्राणेशादाश्रमं तस्य गौतमस्य महात्मनः ।
गोदारं गिरिमारुह्य शुद्धबुद्धौ समाश्रयेत् ।।

प्राणेश से उस महात्मा गौतम के आश्रम गोदार गिरि पर चढ़ शुद्ध बुद्धि में आश्रय ले।

चन्द्रगेहे ततः स्नात्वा गिरिमारुह्य वै पुनः ।
मरीचेराश्रमं पुण्यं ततो यात्रां विधाय च ।
घनोरे शङ्खपाले च स्नात्वा तु व्रजेत्-ततः ।।

तदनन्तर चन्द्रगेह में स्नान कर फिर गिरि पर चढ़ बाद में मरीचि के पुण्य आश्रम की यात्रा कर और घनोर शङ्खपाल में स्नान कर जाए ।

भानुमूले चन्द्रगेहे स्नानं कार्यं विधानतः ।
आव्रजेच्च ततो देवि पुण्यं वै मातृका[1]ङ्गनम् ।।

भानु-मूल चन्द्रगेह में विधिपूर्वक स्नान करना चाहिए और हे देवि ! तदनन्तर पुण्यकर मातृकाङ्गन को जाए ।

तत्र स्नात्वा व्रजेद्देवि गङ्गां गोदावरीं पुनः ।
गायत्रीं चैव सावित्रीं दृष्ट्वा मुच्येत किल्विषैः ।।

हे देवि ! वहां स्नान कर फिर गङ्गा-गोदावरी को जाए और गायत्री तथा सावित्रि के दर्शन कर पापों से मुक्त हो जाए ।

इत्थं कृत्वा तु यो यात्रां गोदावर्या महेश्वरि ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो याति ब्रह्मसनातनम् ।।

हे महेश्वरि ! इस प्रकार गोदावरी की यात्रा कर सभी पापों से मुक्त होकर सनातन ब्रह्म को पाता है ।

गोदावर्यास्तटे श्राद्धं यः करोति नरोत्तमः ।
सक्तौ सक्तौ लभेद्देवि शतगोदानिकं फलम् ।।

गोदावरी के तट पर जो नर श्रेष्ठ श्राद्ध करता है, हे देवि ! वह सक्तु-सक्तु में सैकड़ों गोदान का फल पाए ।

त्रिविधा गौतमी नात्र ह्यानीता परमा नदो[2] ।
गायत्र्यपि च सावित्री तेन तत्राप्युपासिता ।।

जहां तीन प्रकार की परम नदी गौतमी नहीं लाई गई । गायत्री और सावित्री की भी उसने वहां उपासना की ,

प्रायश्चित्तं गोवधस्य कृतमत्र[3] महात्मना ।
गौरुत्थिता महादेवि गङ्गाजलपरिप्लुता ।।

उस महात्मा ने गोवध का प्रायश्चित यहां किया । हे महादेवि ! गङ्गा जल से भीगी हुई गाय उठ खड़ी हुई ।

---

१ मातृकंगन २ नदीं ३ कृतमात्र

वाराहे धेनुपुच्छन्तु भैरवे मध्यमेव च ।
गोदरे च शिरो ज्ञेयं तीर्थस्य वरवर्णिनि ॥

हे वरवर्णिनि ! वाराह में धेनुपुच्छ, भैरव में मध्य और गोदर में तीर्थ का शिर जानना चाहिए ।

पादात्प्रभृति शीर्षान्तं कृत्वा यात्रां[1] महेश्वरि ।
मुच्येदघसहस्रैस्तु कोटिजन्मभवैः प्रिये ॥

हे महेश्वरि ! पाँवों से लेकर शीर्ष पर्यन्त यात्रा कर मनुष्य हे प्रिये ! करोड़ों जन्मों में पैदा हुए हज़ारों पापों से मुक्त हो जाए ।

इत्थं यात्रामकृत्वा यो गच्छेद्गोदावरीं नदीम् ।
वृथा यात्रा[2] भवेत्तस्य वन्ध्यायाः सुरतं यथा ॥

इस प्रकार यात्रा बिना किए जो गोदावरी नदी को जाए, उसकी यात्रा वृथा हो, जैसे वन्ध्या स्त्री का सुरत होता है ।

आसामन्यतमां गत्वा न स्नानफलमाप्नुयात् ।
न तीर्थस्य न यात्राया इति सत्यं वरानने ॥

इन से भिन्न अन्य नदी को जाकर न स्नान का फल पाए, और न उस तीर्थ का तथा न यात्रा का फल पाए। हे वरानने ! यह सत्य है ।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन यात्रां कृत्वा विधानतः ।
स्नायाद्गोदावरीं गङ्गां सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

इसलिए सभी यत्न से विधिपूर्वक यात्रा कर गोदावरीगङ्गा में स्नान करे, सभी पापों से मुक्त हो जाता है ।

अच्छिद्रार्थन्तु तीर्थस्य गां दद्यात्सुपयस्विनीम् ।
अथवा काञ्चनमयीं यवपिष्टमयीमपि ॥

तीर्थ के अच्छिद्र के लिए सुन्दर दूध देने वाली अथवा सोने की बना, या जौ की पीठी से बनी भी गाय दे ।

यवपिष्टपलाभ्यान्तु गां कृत्वा तु वरानने ।
सवत्साञ्च समभ्यर्च्य वस्त्रेण परिधाप्य च ।
प्राणं दत्वा पूजयेच्च गन्धपुष्पानुलेपनैः ॥

हे वरानने ! जौ की पीठी तथा पल से गाय बनाकर और बछड़े सहित पूजा कर तथा वस्त्र से ढक एव प्राण दे गन्ध-पुष्प और लेप से पूजा करे ।

---

१ यंत्रा २ यंत्रा

यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च ।
शीघ्रं मे नाशय [1]...... गोदावरि नमो[2]ऽस्तु ते ।

ब्रह्महत्या आदि जो कोई पाप हैं, हे गोदावरि ! वे मेरे तुम नष्ट कर, तुम्हें नमस्कार हो ।

संसारज्वरतप्तो[3]ऽहं गोदावर्याः सरित्तटे ।
गामिमां पूजयिष्यामि तीर्थसाफल्यहेतवे ॥

संसार रूपी ज्वर से सन्तप्त मैं गोदावरी नदी के किनारे तीर्थ में सफलता प्रदान करने के कारण इस गाय की मैं पूजा करूंगा ।

यत्र कुत्रापि यात्रायां जातं विस्मरणं मम ।
खण्डं चाखण्डमेवास्तु कामधेनो नमो[4]ऽस्तु ते ॥

जहा कहीं भी यात्रा में मुझे विस्मरण हुआ, वह खण्ड और अखण्ड ही हो । हे कामधेनो ! तुझे नमस्कार हो ।

गोदावर्या महानद्यास्तटे पुण्यप्रदे शुभे ।
यात्रासाफल्यहेत्वर्थं गां दास्यामि महेश्वर ॥

पुण्यप्रद-शुभ गोदावरी महानदी के तट में हे महेश्वर ! यात्रा में सफलता प्राप्त करने के लिए मैं तुम्हें गाय दूंगा ।

शिवविष्णुस्वरूपस्त्वमाचार्यवर शोभनाम् ।
गामिमां काञ्चनयुतां शीघ्रमङ्गीकुरुष्व मे ॥

हे आचार्यवर ! तुम शिव और विष्णु स्वरूप हो, मेरी इस सुन्दर स्वर्ण-युक्त गाय को शीघ्र स्वीकार कीजिए ।

गामिमां [5]दातुमिच्छामि तीर्थसाफल्यकारिणीम् ।
तारणायात्मनः श्रेष्ठ इह लोके परत्र च ॥

हे श्रेष्ठ ! इस लोक तथा परलोक में अपने को तारने के लिए तीर्थ में सफलता देने वाली इस गाय को मैं देना चाहता हूं ।

इति मन्त्रेण देवेशि गां दद्याद्ब्राह्मणाय वै ।
पुण्यमाप्नोत्यविकलं भूमिदानस्य सुन्दरि ॥

हे देवेशि ! इस मन्त्र से ब्राह्मण को गाय दे । हे सुन्दरि ! भूमिदान का अविकल पुण्य पाता है ।

नारी वा पुरुषो वापि यात्रां कृत्वा विधानतः ।
यागजं पुण्यमाप्नोति गोदावर्यंवगाहनात् ॥

---

१ चेरे २ नमोस्तु ३ तप्तोहं ४ नमोस्तु ५ दतुः

स्त्री हो वा पुरुष विधिपूर्वक यात्रा कर गोदावरी का स्नान करने से यज्ञ से पैदा हुए पुण्य को पाता है ।

महापातकयुक्तो वा [1]युक्तो वा ह्युपपातकैः ।
स्नातो गोदावरीतीरे मुक्तः स्यात्सर्वकिल्विषैः ।।

महापाप से युक्त वा उपपापों से युक्त गोदावरी में स्नान कर सभी पापों से मुक्त हो जाए ।

कुरुक्षेत्राच्छ[2]तगुणं गङ्गायाश्च सहस्रकम् ।
वाराणस्या दशगुणं गौतमीस्नानमीरितम् ।।

कुरुक्षेत्र से सौ गुणा गङ्गा से हजार गुणा और वाराणसी से दस गुणा गौतमी नदी का स्नान-फल कहा गया है ।

अदीक्षितस्य दीक्षायाः कारणं परमं सुनृतम् ।
मन्त्रसिद्धिप्रदं शीघ्रं कलिकल्मषनाशनम् ।।

अदीक्षित की दीक्षा का कारण परम सुनृत, मन्त्रसिद्धि शीघ्र देने वाला और कलियुग के पापों को नष्ट करने वाला है ।

प्राप्तं कलियुगं दृष्ट्वा घोरञ्चैव मनः स्वकम् ।
चञ्चलं सर्वतो ज्ञात्वा धनं दारांस्तथा सुतान् ।
कुटुम्बं गृहमेवापि शीघ्रं गोदावरीं श्रयेत् ।।

घोर कलियुग को आए हुए देखकर अपने मन, धन, स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब तथा घर को भी सभी तरह से चञ्चल जानकर शीघ्र गोदावरी का आश्रय ले ।

घोरे कलियुगे देवि सर्वे वै पापबुद्धयः ।
परदारपरप्राणाः परनिन्दात्मसंस्तुवः ।
पराप[3]कारिणो देवि परद्रव्यापहारिणः ।
तेषामुद्धरणार्थाय नदी गोदावरी स्मृता ।।

हे देवि ! घोर कलियुग में जो सभी पापबुद्धि, परदारपरप्राण, परनिन्दा और अपनी स्तुति करने वाले, पर अपकार करने वाले, परधन का अपहरण करने वाले हैं, उनके उद्धार के लिए गोदावरी नदी कही गई है ।

यः स्नाति विधिना देवी गोदा[4]वर्यां नरः प्रिये ।
स याति ब्रह्मणो लोकं यत्र गत्वा न शोचते ।।

---

१ ह्यु क्तो २ क्षेत्राछगुणं ३ परापकंरिणो ४ गंदावर्यां

हे देवि ! प्रिये ! जो मनुष्य विधिपूर्वक गोदावरी नदी में स्नान करता है, वह ब्रह्मलोक को जाता है, यहां जाकर शोक नहीं होता है।

गौर्दारिता यत्र देवि गौतमेन महात्मना।
वृता गङ्गा यतस्तेन गोदावर्यमिधा स्मृता ॥

हे देवि ! जहां महात्मा गौतम ने गाय दारण किया, क्योंकि गङ्गा का वरण किया, उससे गोदावरी नाम से स्मरण की गई।

गां दत्वा च वृता देवैर्यस्मात्सा च महेश्वरि।
तस्माद्गोदावरीत्यस्या नाम ख्यातं भुवस्तले ॥

हे महेश्वरि ! गाय देकर जिससे देवताओं ने वह वरी, उस से इस का नाम पृथ्वी पर 'गोदावरी' प्रसिद्ध हुआ।

गौर्यत्र प्राणप्रस्वापाज्जीविता गङ्गया प्रिये।
प्राणशालेति नामा[1]स्य ग्रामस्य तत आगतम् ॥

हे प्रिये ! जहां प्राणों का संचार करने से गङ्गा ने गाय को जीवनदान दिया, इसी से इस गांव का नाम 'प्राणशाल' हुआ।

मरीचिना चिरं यत्र तप्तं च सुमहत्तपः।
ऋषिभिर्वीप्सया प्रोक्तः स ग्रामश्चिरमाभिधः ॥

मरीचि ने यहाँ चिरकाल पर्यन्त महातप तपा, उसी ग्राम को ऋषियों ने बार-बार 'चिरम' नाम से कहा।

सोमश्चाप्यर्यमा चैव मिलितौ यत्र सुन्दरि।
ततः प्रोक्तः पुराविद्भिर्ग्रामः सोमरसंज्ञकः ॥

हे सुन्दरि ! जहां सोम और अर्यमा मिले, तभी पुरातत्त्ववेत्ताओं ने 'सोमर' नामक गांव कहा है।

मरीचेराश्रमे पुण्ये स्नाति यो विधिवन्नरः।
ब्रह्मणः सदनं याति यत्र गत्वा न शोचते ॥

मरीचि के पुण्य आश्रम में जो मनुष्य विधिपूर्वक स्नान करता है, वह ब्रह्मलोक में जाता है, यहां जाकर शोक नहीं होता।

इति ते सर्वमाख्यातं यत्पृष्टो[2]ऽहमिह त्वया।
गोदावर्याः प्रभावो[3]ऽयं सर्वपापहरः कलौ ॥

यहां तूने मुझे जो पूछा, वह सब तुझे मैंने कह दिया। गोदावरी का यह प्रभाव कलियुग में सभी पापों को दूर करने वाला है।

---

१ नामस्य २ यत्पृष्टोह ३ प्रभावोयं

इत्येष पटलो गुह्यो महापातकहा कलौ ।
श्रुतश्च [1]पठितश्चापि कोटिजन्मौ[2]घनाशनः ।।

यह गुह्य पटल कलियुग में महापापों को नष्ट करने वाला है । सुनने से और पढ़ने से भी करोड़ों जन्मों के पापों का नाश करता है ।

इति श्रीसंहितायां देवशिरोपविषयतीर्थजातसंग्रहे गोदावरी-माहात्म्यं नाम पटलः ।। ॐ । श्रीः । ॐ ।

१ पठतश्चापि २ जन्मैं

अथ भृंगीशसंहितायां गोदावरीमाहात्म्यम्

ॐ नमो गोदावर्यै ।

श्री भैरव्युवाच—श्री भैरवी बोली—

पुनः कथय माहात्म्यं गोदावर्याः फलं तथा ।
न तृप्तास्मि महादेव त्वद्वचः श्रवणामृतात् ॥

हे महादेव ! गोदावरी के माहात्म्य तथा फल के विषय में फिर कहिए । मैं आपके वचन रूपी अमृत के सुनने से तृप्त नहीं हुआ हूं ।

मन्ये[1]ऽहं परमेशान यमलोको[2]ऽतिदुस्तरः ।
कथं तरेदमुं लोकं मनुजः पापकर्मकृत् ॥

हे परमेशान ! मैं मानता हूं कि यमलोक अति दुस्तर है, पर फिर भी पापकर्म करने वाला मनुष्य इस लोक को कैसे तरे ?

विशेषाच्चायुगे[3]ऽमुष्मिन्कलौ घोरे सविस्तरे ।

विशेषकर इस सविस्तर घोर कलियुग में

अतो वद महादेव यतो मुच्येन्नरः स्वयम् ।

इसलिए हे महादेव ! कहिए, जिससे मनुष्य स्वयं मुक्त हो जाए ।

श्री भैरवः उवाच—— श्री भैरव बोले

शृणु सुन्दरि वक्ष्ये[4]ऽहमुपायं कलिमोचने ।
येन विज्ञानमात्रेण मत्सान्निध्यमाप्नुयात् ॥

हे सुन्दरि ! सुनिए, मैं कलियुग में मुक्ति का उपाय कहता हूँ, जिसके जानने मात्र से मनुष्य मेरे सान्निध्य को पाए ।

तस्मा[5]द्विचारवान्देवि धर्ममेव समाश्रयेत् ।

हे देवि ! इसलिए विचारवान् पुरुष धर्म का ही आश्रय ले ।

अस्मिन्वै भारते वर्षे प्राप्याप्यमरदुर्लभम् ।
मानुष्यं ब्राह्मणत्वञ्च धर्ममेव समाश्रयेत् ॥

इस भारतवर्ष में देवताओं के लिए भी दुर्लभ ब्राह्मण-मनुष्य जन्म पाकर धर्म का ही आश्रय ले ।

भार्य्याः पुत्राश्च मित्राणि बान्धवाः[6] सुहृदस्तथा ।
धनं गृहं च पशवो दुष्कृतेनार्जितेन च ॥

---

१ मन्येहं २ लोकोति ३ युगेमु० ४ वक्ष्येह ५ तस्सान्वि० ६ बान्धवः

स्वकर्मपाशबन्धस्य जन्तोः पञ्चपदीमपि ।
न पूरयन्ति देवेशि तस्माद्धर्मं समाश्रयेत् ॥

अपने कर्मपाश में बन्धे हुए प्राणी की पञ्चपदी को भी भार्या, पुत्र, मित्र, बन्धु, मित्र, धन, गृह और पशु पूर्ण नहीं करते हैं । हे देवेशि ! इसलिए धर्म का आश्रय ले ।

एक एव हि जातो[1]ऽयमेकः प्रस्थितवान्पथि ।
ततो द्वितीय[2]मीहेत सत्कर्मपुरुषार्थकृत् ॥

यह प्राणी अकेला ही पैदा हुआ और अकेला ही मार्ग पर चल पड़ा, तदनन्तर सत्कर्म और पुरुषार्थ करने वाला पुरुष—

दानं तपश्च योगञ्च स्वाध्यायमभ्यसनं तथा ।
स्मरणं वासुदेवस्य तथा च शिवयोरपि ॥

दान, तप, योग, स्वाध्याय, अभ्यास तथा वासुदेव एवं शिवपार्वती का स्मरण तदन्तर दूसरे को चाहे ।

यद्यशक्तोऽ[3]प्यसौ जन्तुः परलोकेऽतिविस्तरे ।
श्रयेद्गोदावरीं पूर्णां यत्नेन महता-अपि ॥

अति विस्तर परलोक में यदि वह प्राणी अशक्त भी है, तो महायत्न से भी पूर्ण गोदावरो का आश्रय ले ।

अत्र ते कथयिष्यामि चेतिहासं पुरातनम् ।
यच्छ्रुत्वा मुच्यते जन्तुर्घोरैरघसहस्रकैः ॥

यहां मैं तुम्हें पुरातन इतिहास कहूंगा, जिसे सुनकर प्राणी घोर हजारों पापों से मुक्त हो जाता है ।

पिङ्गलो नाम दुष्टात्मा पुरा पञ्चनदे द्विजः ।
अवधाते कुले जातो विश्रुते वेदवादिनाम् ॥

पूर्वयुग में पञ्चनद में दुष्टात्मा पिङ्गल नामक ब्राह्मण वेदपाठियों के विश्रुत और शुद्ध कुल में पैदा हुआ ।

कुलोचितानि शास्त्राणि तथा वेदान्विसृज्य सः ।
तौर्यत्रिके मतिं चक्रे वादयन्मुरजादिकम् ॥

उसने कुलोचित शास्त्रों तथा वेदों को छोड़कर मुरज आदि बजाते हुए तौर्यत्रिक में बुद्धि की ।

---

१ जातोय २ द्वितीरमीहेत ३ शक्तोप्यसौ

कृतश्रमस्तत्र तत्र गीते नृत्ये च वादने ।
परां प्रसिद्धिमासाद्य न स्वसद्म विवेश सः ।

गीत-नृत्य और वादन में परम प्रसिद्धि पाकर उसने अपने घर में प्रवेश नहीं किया ।

परदारा[1]न्नुपाहृत्य बुभुजे तान्न[2]नन्यधीः ।

पराई स्त्रियों को लाकर वह मूर्ख उनसे भोग करने लगा ।

तस्यासीद्दारुणा नाम्नी भार्या हीनकुलोद्भवा ।
भ्रमन्त्यन्वह[3]मिच्छन्ती कामुकान्सा विहारिणी ॥
वाचाला बहुलोमा च निष्पुत्रात्यन्ततस्करी ।
सर्वासां कुलटानां च सम्भूता सा शिरोमणिः ॥

उसकी दारुणा नाम की स्त्री थी, जो हीनकुल में पैदा हुई थी । प्रतिदिन कामुकों को चाहती फिरती हुई वह विहारिणी, वाचाला, बहुलोमा, निष्पुत्रा, अत्यन्त तस्करी और सभी कुलटाओं की शिरोमणि पैदा हुई थी ।

द्वारि स्थिता सदा साथ पुरुषान्वीक्षते शठा ।
वैश्यवृत्ति समासाद्य धनमर्जितव[4]तीबहुः ॥

इसके बाद वह मूर्खा सदा द्वार पर खड़ी पुरुषों को देखती है । वैश्या वृत्ति को अपना कर उसने बहुत धन कमाया ।

पितृन्न तर्पयामास पूजयामास न[5] सुरान् ।
पार्थिवान्पूजयाञ्चक्रे धनार्जनपरायणा ॥

पितरों का तर्पण नहीं किया और न ही देवताओं की पूजा की । धन कमाने में लगी हुई उसने राजाओं की पूजा की ।

कामान्धा दारुणा जाता निशासौधविहारिणी ।
अपश्यन्ती विटान्रात्रौ निर्भिद्य भवनान्तरात् ।
ययौ सङ्केतकवनं निर्गत्य नगराद्बहिः ॥

वह दारुणा काम से अन्धी हुई रात्रि-भवनों में विहरण करने वाली, रात्रि के समय विटों को न देखती हुई घर से चुपके निकल नगर से बाहर सङ्केतक वन को चली गई ।

तत्र प्रियतमं कञ्चित्काममोहितमानसा ।
अन्वे[6]षयन्ती नप्राप्नोत् जारं दारुणा तदा ॥

---

१ दारानुपा० २ तानतन्य ३ न्वहंमि ४ मर्जितवान्वहु ५ नो सुरान ६ चेतोन्यस्स

वहां किसी प्रियतम को ढूंढ़ती हुई काम से मोहित मन वाली तब उस दारुणा ने जार को नहीं पाया।

आशङ्कमाना कान्तस्य मन्दालापान्पदे पदे।
सरोवराणि रम्याणि पर्यटन्ती मुहुर्मुहुः॥
आलिङ्गन्ती वनं वेणु जीवितेश्वरशङ्कया।
तदाननभ्रमाद्भूयः चुम्बन्ती विकदम्बुजम्।
विललाप वने तस्मिन्मूर्च्छन्ती विविधोक्तिभिः॥

कदम-कदम पर प्रियतम के मन्दालापों की आशंका करती हुई, रमणीय सरोवरों पर बार-बार पर्यटन करती हुई, प्राणेश्वर की शंका से वन के वेणु का आलिंगन करती हुई और उसके मुख के भ्रम से फिर विकदम्बुज का चुम्बन करती हुई तथा अनेक प्रकार की उक्तियों से मूर्च्छना करती उस वन में विलाप करने लगी।

हा कान्त हा गुणाक्रान्त हा चेतो[1]ऽन्यस्य नायक।
हा मनोहर सौभाग्य भाग्यलावण्यशेवधे॥
यदि कोपेन कुत्रापि गुप्तवेशो भविष्यसि।
प्रसादयामि कान्त त्वां दत्वा प्राणेश जीवितम्॥

हा कान्त! हा गुणाक्रान्त! हा अन्य के चित्त के नायक! हा मनोहर सौभाग्य! हा भाग्यलावण्यशेवधे! तुम यदि क्रोध से कहीं भी गुप्तवेश में हो। हे कान्त! प्राणेश! मैं तुझे अपना जीवन देकर प्रसन्न करती हूँ।

इत्युच्चैः सर्वतो दिक्षु विलपन्त्या वियोगतः।

इस प्रकार ऊँचे चारों दिशाओं में वियोग से विलाप करती है—

तस्याः श्रुत्वा वचः को[2]ऽपि सुप्तो व्याघ्रः प्रबुद्धवान्।
कुर्वन्घुरुघुरारावं पश्यन्प्रतिदिशं रुषा!
दंष्ट्रानिर्मग्नलाङ्गूलः प्लुतमुत्थाय वगवान्।
गतो व्याघ्रः समुत्प्लुत्य यत्रास्ते साभिसारिका॥

उसके वचन को सुनकर कोई सोया हुआ व्याघ्र घुर-घुर शब्द करता चारों दिशाओं की ओर देखता, दान्त से पूंछ को चबाता हुआ झटपट उठकर शीघ्रगति से उछल कर चल पड़ा, यहां वह अभिसारिका खड़ी है।

अथ शार्दूलमायान्तमालोक्य जारशङ्कया।
निर्जगाम पुरः स्थातुं प्रियशङ्कितमानसा॥

---

१. चेतोनपस्य २ कोपि

इसके बाद शार्दूल को आते देख जार एवं प्रियतम की शङ्का से युक्त मन वाली वह उसके आगे खड़ी होने के लिए निकल पड़ी।

व्याघ्रो[1]ऽपि पातयामास ततो नखशिलिमुखैः।
तस्मिन्क्षणे द्विजः सोऽपि गतो यमपुरीं तदा॥

व्याघ्र ने भी उसे अपने नाखून रूपी बाणों से गिरा दिया। उसी समय तब वह भी ब्राह्मण यमपुरी को चला गया।

[2]विषूचिकाप्रभावेन प्राप्तवान्दारुणां गतिम्।
तौ दम्पती गतौ तत्र धर्मराजस्य सन्निधौ॥

विषूचिका के प्रभाव से वह दारुण गति को प्राप्त हुआ। वह दम्पती वहां धर्मराज के पास गया।

तयोः कर्म विमृ[3]श्याथ किङ्करान्नादिदेश सः।
तौ घोरां यातनाञ्चैव सहतां ह्यधुना ······ ॥

उन दोनों के कर्मों का विचार कर उसने नौकरों को आज्ञा दी कि वे अब दोनों घोर यातना को सहें।

प्रतिपेदे महापीडां वर्षाणामयुतं तथा।
किञ्चित्कालेन चायातौ ब्रह्मराक्षसयोनिताम्॥

उन्होंने अयुत वर्षों तक महापीड़ा को पाया और कुछ समय के बाद ब्रह्मराक्षस योनि को पाया।

तौ दम्पती च संजातौ घोराटव्यां क्षुधान्वितौ।
निःश्वसन्तौ च दुःखार्त्तौ पूर्वं पापमनुस्मरन्॥

वह दम्पति अपने पूर्वपाप का स्मरण करते हुए गहरी सांस भरते हुए दुःख से पीड़ित श्वास घोर जंगल में भूखे सन्तप्त,

चिन्तयतावितस्तत्र क्षुत्तृष्णाकुलपीड़ितौ।

चिन्ताग्रस्त, भूखे-प्यासे इधर-उधर भटक रहे थे

दृष्टा समागतारूढा वृद्धेन तेन रक्षसा[4]।
तेजस्विनी सुहेमाभा सुश्रोणी[5] दीर्घलोचना॥
चन्द्रानना सुकेशी च पीतोन्नतपयोधरा।
दृष्ट्वा तां रूपसम्पन्नामुवाच राक्षसस्तदा॥

उस वृद्ध राक्षस ने समागतारूढ, तेजस्विनी, सुहेमाभा, सुश्रोणी, दीर्घलोचना, चन्द्रानना, सुकेशी, स्थूल और ऊपर उठे हुए स्तनों वाली उसे देखा। तब रूपसम्पन्ना उसे देखकर राक्षस ने कहा।

---

१ व्याघ्रीपि २ विषाचिका ३ विमृष्याथ ४ राक्षसा ५ सुश्रोणि

राक्षस उवाच—राक्षस बोला—

का त्वं कमलपत्राक्षि कुत आगमनं तव ।
आर्द्रं[1] ते वदनं कस्मादार्द्रा[2] ते कबरी कुतः ।।
कुत्र वागम्यते भीरु कुतस्ते चैश्वरी गतिः ।
[3]केन पुण्येन वा भद्रे तव तेजोमयं वपुः ।।

हे कमलपत्राक्षि ! तुम कौन हो ? तुम्हारा कहां से आना हुआ ? तुम्हारा मुख गीला कैसे है ? तुम्हारी कबरी (चोटी) कहां से गीली हुई है ? हे भीरु ! कहां जा रही हो ? कहां से तुम्हारी ईश्वरी गति है ? हे भद्रे ! किस पुण्य से तुम्हारा तेजोमय शरीर है ?

त्वद्वस्त्रबिन्दुपातेन मम मूर्ध्नि सुलोचने ।
क्षणेन ह्यगमच्छान्ति क्रूरं मे मानसं सदा ।।
नीरस्य महिमा को[4]ऽयमेतदाचष्टुमर्हसि ।।

हे सुलोचने ! तेरे वस्त्रों के जल बिन्दु पात से मेरे मस्तक में क्षण में ही शान्ति आ गई । जबकि मेरा मन सदा क्रूर है । जल की यह कौन सी महिमा है, यह तुम कहो ।

अप्सरा-उवाच—अप्सरा बोली—

चन्द्रावती ह भो रक्षः वैकुण्ठस्थानवासिनी ।
गोदावर्याश्च स्नानेन प्राप्तञ्च सुकृतं मया[5] ।।

हे राक्षस ! वैकुण्ठस्थान की रहने वाली मैं चन्द्रानती हूं और गोदावरी में स्नान करने से मैंने पुण्य पाया ।

गन्तव्यन्तु मया रक्षो वैकुण्ठभवनं शुभम् ।
यत्रास्ते कमलाकान्तः शङ्खचक्रगदाधरः ।

हे राक्षस ! मुझे शुभ वैकुण्ठभवन जाना है, यहां शंख-चक्र-गदा धारण किए कमलाकान्त भगवान् विष्णु विराजमान हैं ।

जाताहं येन पुण्येन तत्सर्वं कथयामि ते ।
हिमालये च संजाता कन्यका भृगुवंशजा ।।

जिस पुण्य से मैं पैदा हुई, वह सब मैं तुझे कहती हूं । हिमालय में भृगुवंश में जन्मी मैंने कन्या के रूप में जन्म लिया ।

सप्त[1]दशे च वर्षे वै सम्पन्ना विधवा तदा ।
गोदावर्याश्च द्वात्रिंशत्स्नानस्य सुकृतं मम ।।

---

१ आर्द्रं २ दाद्रा ३ केव ४ कोय ५ मयं

१७ वें वर्ष में मैं विधवा हो गई और गोदावरी में ३२ बार मेरे स्नान करने का यह पुण्य है।

ताह्वसंख्याश्च गौर्दत्ता मया शुद्धेन चेतसा।
भगवत्तुष्टिप्रीत्यर्थमन्यत्तु सुकृतं तथा॥

उतनी ही संख्या में शुद्ध चित्त से मैंने गाएं दान की तथा भगवान् की सन्तुष्टि एवं प्रीति के लिए यह मेरा अन्य पुण्य है।

तेन पुण्यप्रभावेन संजाता ह्यप्सरा शुभा।

उस पुण्यप्रभाव से मैं शुभ अप्सरा पैदा हुई।

साहं नृत्यं च गीतं च कुर्वंती विष्णु[2]सन्निधौ।
बह्व्यो ह्यप्सरसास्तत्र गन्धर्वा बह्वस्तथा।
हा हा हू हू च गन्धर्वा नारदप्रमुखा स्तथा।
तौर्यत्रिकं च कुर्वन्ति भगवद्विष्णु[3]सन्निधौ।

विष्णु के पास बहुत अप्सराएं नृत्य और गीत करती हुई बहुत से नारद सहित गन्धर्व हा-हा-हू-हू करते हुए भगवान् विष्णु केपास तौर्यत्रिक करते हैं।

बह्यो ह्यप्सरसास्तत्र गायन्ति च पृथक्पृथक्।
तासां मध्ये च मां प्रीत्या प्रेक्षते[4] पुरुषोत्तमः॥

वहां बहुत सी अप्सराएं अलग-अलग गाती हैं और उनके बीच में पुरुषोत्तम

गीते नृत्ये[5] च वादे च संमितः कमलापतिः।

कमलापति गीत-नृत्य और बजाने में मुझे ही प्रेम से देखते हैं।

यदा सिंहस्थिते जीवे तदा सोत्कण्ठमानसा।
नो वदामि च संख्यां वै तस्य धर्मस्य राक्षस॥
करिष्ये निष्कृतिं रक्ष इदानीं खलु मा शुचः।
प्रतिज्ञां सुदृढ़ां कृत्वा यतिष्ये तव मुक्तये।
एकस्याश्चैव यात्राया फलं प्राप्नुहि मा शुचः॥

जब बृहस्पति सिंह में स्थित होते हैं, तब उत्कण्ठित मन से मैं हे राक्षस! उस धर्म की संख्या को नहीं कहती हूं। हे राक्षस! मैं अब निकृति करूंगी, शोक मत कीजिए। सुदृढ़ प्रतिज्ञा कर मैं तुम्हारी मुक्ति के लिए यत्न करूंगी और एक यात्रा का फल पाओ, शोक मत करो।

---

१ सप्तादशे २ संन्निधौ ३ सन्निधौ ४ प्रीक्षते ५ नृत्ते

श्रीभैरव उवाच.—श्रीभैरव बोले

एतस्मिन्नन्तरे तत्र विमानं चागतं शुभम् ।
तौ दम्पती च संजातौ दिव्यरूपौ मनोहरौ ।।

इसी बीच वहां शुभ विमान आया और वे दम्पती मनोहर दिव्यरूप हो गये ।

दिव्यवस्त्रपरीताङ्गौ दिव्यगन्धानुलेपनौ ।
उपविष्टौ ह्यासने च शुभे चानन्ददायके ।।

दिव्यवस्त्रों से आच्छादित अंगों वाले और दिव्यगन्ध के लेप से लिप्त वे दोनों आनन्ददायक और शुभ आसन पर बैठ गए ।

ननृतुर्ह्यप्सरास्तत्र[1] गन्धर्वा ललितं जगुः ।
तौ दम्पती गतौ तत्र[2]......वै ।।

वहां अप्सराएं नाचने लगीं और गन्धर्व ललित गायन करने लगे ।

चन्द्रावती गता तत्र यत्स्थानं योगिदुर्लभम् ।
एतत्ते कथितं देवि यत्पृष्टोऽहं[3] त्वयानघे ।।

चन्द्रावती वहां चली गई, जो स्थान योगियों के लिए भी दुर्लभ हैं । हे देवि ! यह तुझे मैंने कहा है हे अनघे ! जो तू ने मुझसे पूछा था ।

गोदावर्याश्च माहात्म्यं तव स्नेहात्प्रकाशितम् ।
यः शृणोति कथां पुण्यां भक्त्या परमया युतः ।।

और गोदावरी का माहात्म्य तेरे स्नेह से प्रकाशित किया है । जो परम भक्ति से युक्त पुण्यप्रद कथा को सुनता है ।

पापसंघान्विमुच्याथ याति विष्णोः परम् पदम् ।

पाप समूहों को छोड़कर विष्णु के परम पद को पाता है ।

एतां पुण्यां रहस्यां च यः शृणोति नरः शुचिः ।
भावयुक्तो नरोधी[4]मान्यात्रायाः फलमश्नुते ।।

इस पुण्यप्रद-रहस्ययुक्त कथा को जो मनुष्य सुनता है, वह भावयुक्त और बुद्धिमान् पुरुष यात्रा के फल को भोगता है ।

इति श्री भृङ्गीशसंहितायां श्री भैरवीभैरवसंवादे देवशिरोपतीर्थजातसंग्रहे गोदावरीमाहात्म्यं[5] नाम अष्टदशः पटलः सम्पूर्णः ।

---

१ ननृतुह्यप्स० यत् स्थानान्तच्यवंति २ यत्पृष्टोहं ३ नरः धी० ४ मू० पा० में पाठाभाव ५ सम्पूर्णम् ६ मू० पा० में अङ्काभाव

ॐ श्री गणेशाय नमः । ॐ नमो नारायणाय ।

श्री सनत्कुमार उवाच—श्री सनत्कुमार जो बोले—

शृणु मुख्यं हिमवतो नौबन्धं पुण्यमुत्तमम् ।
दक्षिणस्यां दिशि तद्विच्छिन्नं चन्द्रभागया ।।
राष्ट्रेश्वरेण विच्छिन्नं पश्चिमायां तथा दिशि ।
उत्तरस्यां[1] ··नद्या विच्छिन्नमेव च ।।
परया पापनाशिन्या पूर्वस्यां दिशि रोधितम् ।
तस्य शृङ्गाणि पुण्यानि त्रीणि सन्त्याक्षयान्यपि ।।
पूर्वामुखानि रम्याणि[2]···ष्टानि नित्यशः ।

हिमालय पर्वत के पुण्यप्रद-उत्तम मुख्य नौबन्ध के विषय में सुनिए । वह दक्षिण दिशा में चन्द्रभागा से विच्छिन्न है और उत्तर दिशा में······नदी से विच्छिन्न है, पूर्व दिशा में पापनाशिनी परा से रोधित है । उसके पुण्यप्रद अक्षय तीन सींग हैं ।······

मध्ये रुद्रः स्थितस्तत्र दक्षिणे संस्थितो हरिः ।
वामे तु भगवान्ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ।।
मध्यमस्यापि शृङ्गस्य मूले[3] सम्मुखमास्थितम् ।
ना[4]·· क्षीरः परः पुण्यं क्षीरवर्णं च वारि तत् ।।

वहां मध्य में रुद्र स्थित है, दक्षिण में हरि स्थित है और वाम में तो सर्वलोक पितामह भगवान् ब्रह्मा हैं । मध्यम सींग के मूल में······पुण्यप्रद—

पूर्णेन्दुमण्डलाकारं क्षीरोदावर्ण[5]सन्निभम् ।
उपमन्याश्रमस्तत्र सिद्धैश्चारण्यसेवितः ।।

पूर्णिमा के चन्द्रमण्डल के समान आकार वाला, क्षीर सागर के वर्ण के समान क्षीर वर्ण वाला वह जल है । वहां सिद्धों से और अरण्य (जंगल) से सेवित उपमन्यु का आश्रम है ।

तस्मात्क्षीरनदी पुण्या[6] श्वेतगङ्गा विनिर्मिता ।
तत्र स्नात्वा नरः सम्यक् शिवलोकं व्रजेदपि ।।

उस से क्षीर नदी पुण्यप्रद श्वेतगंगा निकली है, वहां अच्छी तरह स्नान कर मनुष्य शिवलोक को जाता है ।

१······ २······ ३ संमुख ४······ ५ संनिभं ६ पुण्य ।

तत्र ब्रह्मसरः पुण्यं त्रिषुलोकेषू विश्रुतम् ।
श्वेतपाषाणसंयुक्तं वैडूर्यसदृशोदकम् ।।

वहां तोनों लोकों में प्रसिद्ध पुण्यप्रद ब्रह्मसर है । सफेद पत्थरों से युक्त इसका जल वैडूर्य के समान है ।

तत्र स्नात्वा शुद्धदेहो ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ।

वहां स्नान कर शुद्ध देह वाला हो ब्रह्मलोक जाता है ।

अस्ति कृष्ट वचा यत्र सिद्धा दिव्यौषधी परा ।
हालाहलैः कृष्णसर्पैं रक्षमाणा विषोद्भटैः ।।

वहां विषोद्भट-हालाहल काले सांपो से रक्षित सिद्ध परा दिव्यौषधा कृष्टवचा है ।

व्यंकारं शृङ्गपृष्टे तु तीर्थमस्ति च वाधिकम् ।
तीर्थकोट्या परिव्यक्तं स्नानान्मोक्षप्रदं स्मृतम् ।।

शृंङ्ग के पृष्टभाग में एक और तीर्थ व्यंकार है, जो करोड़ों तीर्थों से युक्त स्नानमात्र से मोक्ष देने वाला कहा गया है ।

शृङ्गाणां पृष्टदेशे तु तीर्थं हरिपथं महत् ।
यत्र रुद्रः स्थितो नित्यं देवैः सिद्धैश्च सेवितः[1] ।।

शृगों के षष्टदेश में महाहरिपथ नामक तीर्थ है, जहां देवताओं और सिद्धों से सेवित नित्य रुद्र स्थित हैं ।

तस्माधस्तात्पदं विष्णोर्दक्षिणन्तु महर्द्धिमत् ।
क्रमता विष्णुना लोकान्पादेन[2] गुरुणा गिरिः ।।
ताडितस्तत्र संजातं पातालविवरं महत् ।
कौलिन्यः पन्नगस्तच्च पूरयामास वारिणा ।
विष्णोः क्रमणसार्धं तत्क्रमसारं प्रचक्षते ।।

उसके नीचे महाऐश्वर्य प्रदान करने वाला विष्णु का दाहिना पैर है । अपने उस भारी पद से लोकों का क्रमण करते हुए वहां विष्णु ने गिरि का प्रताड़न किया, जिसमे महा पाताल विवर हो गया । कौलिन्य और पन्नग ने उसे जल से भरा । विष्णु के क्रमण के साथ वह 'क्रमसार' कहा गया ।

तत्र भाद्रपदे मासे शुक्लैकादशकेऽहनि[3] ।
आयाति मध्यमाच्छृङ्गाज्जाह्नवी च निशामुखे ।।

---

१ सेवितं २ लोकंन्पादे ३ दशकेहनि

वहां भादों महीने के शुक्ला-एकादशी के दिन निशामुख में मध्यम शृंग से जाह्नवी आती है।

पापप्रशमने[१] कुन्देन्दुतुहिनप्रभा।
प्रविश्य तत्पदं विष्णोस्तर्पयेत्सामरं जगत्॥

पापों को शान्त करने में कुन्देन्दुतुहिन के समान प्रभा वाली विष्णु के उस पद में प्रवेश कर अमर जगत् का तर्पण करे।

कृतोपवासो द्वादश्यां गङ्गाकोलिन्यसङ्गमे।
स्नात्वा देवान्पितॄन्भक्त्या तर्पयित्वा यथाक्रमम्॥
दानं दत्वा यथाशक्ति विष्णुलोकं व्रजेन्नरः।

उपवास रख गंगाकोलिन्य के संगम में द्वादशी के दिन स्नान कर भक्ति पूर्वक क्रमानुसार देवताओं-पितरों का तर्पण कर और यथाशक्ति दान दे मनुष्य विष्णुलोक को जाए।

ततः प्रदक्षिणां[२] तेषां शृङ्गाणां मनसा नरः।
कृत्वा सलोकतां तेषां ब्रह्मादीनां प्रयाति सः॥

इसके बाद मनुष्य उन शृंगों की प्रदक्षिणा मन से कर उन ब्रह्मादियों की सलोकता को जाता है।

ब्रह्मणो यागभूमिं तां क्रमसारस्य सानुषु।
नरः स संगतो दृष्ट्वा स्वर्गलोकमवाप्नुयात्॥

क्रमसार की चोटियों पर ब्रह्मा की उस यागभूमि को देखकर संगत मनुष्य स्वर्गलोक को पाए।

स्नानं दानं तपः श्राद्धं कृतं तत्राक्षयं भवेत्।
तस्मिन्पुरारिर्भगवान्गिरिरूपी स्वयं स्थितः॥

वहां किया गया स्नान, दान, तप, श्राद्ध अक्षय होवे। उसमें भगवान् पुरारि गिरि रूप में स्वयं विद्यमान हैं।

सर्वकर्मैकसाक्षी तु तच्च संरक्षेसरः।
तस्याधस्तान्महापुण्यं कुमाराश्रममुत्तमम्॥

वह संरक्षेसर सभी कर्मों का एकमात्र साक्षी हैं। उसके नीचे महापुण्यप्रद उत्तम कुमार आश्रम है।

कुमाराधारा संज्ञन्तु समारुह्य समाहितः।
अविश्रमेणैव पुण्यं गोसहस्रात्सदक्षिणात्।

---

१ प्रशमनी २ प्रदक्षिणं

समाहित हो कुमार धारा नामक का आरोहण कर बिना श्रम से ही मनुष्य सदक्षिण गोसहस्र दान से अधिक पुण्य को पाता है।

कुमारधारामूलाच्च कौलिन्यसरसस्ततः।
महानदी विनिष्क्रान्ता कौलिन्यापापनाशिनी॥

कुमारधारा मूल और कौलिन्य सरोवर से इसके बाद पापों को नष्ट करने वाली कौलिन्या नाम की महानदी निकली।

पुण्डरीकमहायज्ञात्स्नानादेव फलप्रदा।

वह पुण्डरीकयज्ञ करने से या स्नान मात्र से ही फल देने वाली है।

तृणबिन्दोश्च राजर्षेर्यत्रा श्रमपदं महत्।
कुमारतीर्थं तत्रास्ति कार्तिकेयह्लदस्त्विति॥

तृणबिन्दु राजर्षि का जहां महा आश्रमपद है, वहां कुमार तीर्थ है, जिसे 'कार्तिकेयह्लद' नाम से कहा जाता है।

वैडूर्यमणिसंकाशं वज्रस्फटिकसन्निभम्।
यच्च स्कन्दग्रहैर्नित्यं शिशिरे तु निस्वन्द्यते॥

वैडूर्यमणि के समान और वस्फटिक के समान जो शिशिर में स्कन्दग्रहों से नित्य······

तत्र स्नानन्तु यः कुर्यात्संगच्छेच्छवाशतं पदम्।
ब्रह्मणः कुण्डिका यत्र ब्रह्मयूपाच्च सन्त्यपि।
वीजानि सर्वसस्यानां यत्र युप्तानि ब्रह्मणा॥

वहां जो स्नान करे, वह शाश्वत पद को पाए। ब्रह्मा की कुण्डिकाएं जहां ब्रह्मयूप से है। जहां सभी अनाजों के बीच ब्रह्मा ने·····

स्थापितानि[1] पुरा यत्र कोष्टागाराणि तेन च।

और पूर्वयुग में जहां उसने कोष्टागार स्थापित किए।

अपगा च नदी पुण्या तत्रस्था पापनाशिनी।
तस्यां स्नात्वा नरो भक्त्या ब्रह्मलोकमवाप्नुयात्॥

वहां पापों को नष्ट करने वाली पुण्यप्रद आपगा नदी स्थित है, उसमें भक्तिपूर्वक स्नान कर मनुष्य ब्रह्मलोक को पाए।

कोष्टागारेषु तत्रैव कर्त्तव्यन्तु प्रदक्षिणम्।
तस्याधः कापिलं तीर्थं यत्रोपोष्यैकरात्रिकम्।
स्नानार्चनविधानेन भवेदिन्द्रसमा गतिः॥

---

१ स्थापितंनि

कोष्टागारों में वहीं प्रदक्षिणा करनी चाहिए उसके नीचे कापिल तीर्थ है, जहां एक रात्रि उपवास कर स्नान-पूजा करने से इन्द्र के समान गति होती है ।

तत्राश्रमं ते रामस्य भार्गवस्य महात्मनः ।
पुण्यारामहृदा नाम यत्र स्नात्वा समाहितः ।
श्राद्धं कृत्वाश्वमेधन्तु लभते सुगतिं व्रजेत् ।।

वहां तुम्हारे महात्मा भार्गव परशुराम का आश्रम है, जहां पुण्यप्रद 'रामहृदा' नाब नदी है, जिसमें समाहित हो स्नान कर और श्राद्ध कर अश्वमेध के फल को पाता है और सुगति को जाए ।

तत्राप्यन्यन्महापुण्यं वृद्धितीर्थं सुनिर्मलम् ।
वृद्धिं नीतं पुरा विप्रैर्मन्त्र पूतेन वारिणा ।।

वहां भी एक दूसरा महापुण्यप्रद-सुनिर्मल वृद्धितीर्थ है। पूर्वयुग में ब्राह्मणों ने मन्त्रों से पवित्र जल से वह वृद्धि को लाया ।

तत्र स्नात्वा लभेताग्र्यं गाणपत्यं च मानवः ।
तत्रान्यदृणमोचं तु तीर्थं स्यादृणमोचनम् ।।

वहां स्नान कह मनुष्य आग्र्य गाणपत्य को पाए। वहां ऋणमोचन तीर्थ हैं ।

ययोः स्नात्वा तु लक्ष्मीवान्भवेत्स्वर्गं तथाप्नुयात् ।
तयोरधस्ताच्छ्वेता[1] च गङ्गाक्षीरनदोद्भवा ।।
निर्मिता शङ्करेणैव जगतां तृप्तये पुरा ।।

जिन में स्नान कर मनुष्य लक्ष्मी वाला होवे तथा स्वर्ग को पाए। उनके नीचे क्षीरनद से पैदा हुई श्वेतगङ्गा पूर्वयुग में जगत् की तृप्ति के लिए शङ्कर ने ही बनाई थी ।

तत्र स्नात्वा नरः पुण्यो ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ।
कौलिन्याक्षीरनद्योश्च सङ्गमे लोकविश्रुते ।।

वहां कौलिन्या और क्षीरनदी के लोकविश्रुत सङ्गम में पुण्यात्मा मनुष्य स्नान कर ब्रह्मलोक को पाए।

दधीचस्या श्रमे पुण्ये स्नानं दानमथाक्षयम् ।
रुद्रलोके गतिः पुण्या दधीचस्य मुनेर्यथा ।।

---

१ स्तात् श्वेता

दधीच के पुण्यकर आश्रम में किया गया स्नान और दान अक्षय है रुद्रलोक में पुण्य गति प्राप्त होती है, जैसे दधीच मुनि के

स्नात्वा च सङ्गमे तस्मिन्गोसहस्रफलं लभेत् ।
कोलिन्या सरसो मूलादारभ्य च महानदी ।।
कोलिन्या नाम तां विद्याद्यावत्क्षीरनदीं गता ।।

उस सङ्गम में स्नान कर हजार गाय दान करने के फल को पाए। कोलिन्या सरोवर के मूल से लेकर कोलिन्या नामक महानदी उसे जाने, जब तक वह क्षीर नदी से मिलती है ।

विशेषेण गता क्षुब्धा[1] तदा विक्षुवती ततः ।
स्थितञ्च सङ्गमस्याधः सामोगोरगसन्निभम् ।।
शतधारं महातीर्थं नदीमध्ये भयानकम् ।
गम्भीराख्यस्य नागस्य भवनं लोकविश्रुतम् ।।
दुर्लभं मानुषाणां नद्याः[3] प्रसादाल्लभेत तत् ।।

विशेषकर जब वह क्षुब्ध हुई, तब विक्षुवती हुई। तदनन्तर सङ्गम के नीचे...... के समान, नदी के मध्य में भयानक गम्भीर नामक नाग का लोकविश्रुत भवन स्थित है, जो मनुष्यों के लिए दुर्लभ है, नदी के प्रसाद से वह पाया जाए ।

स तत्र स्नातमात्रस्तु शाश्वतं पदमाप्नुयात् ।

वह वहां स्नान मात्र से ही शाश्वत पद पाये ।

सुरापो ब्रह्मघाती च तथा च गुरुतल्पगः ।
महापातकसंयुक्तस्तत्र पापात्प्रमुच्यते ।।

सुरापी, ब्रह्मघाती, गुरुशय्या गमन करने वाला तथा महा पाप से युक्त वहां पाप से मुक्त हो जाता है ।

नरसिंह......रूपो लेलिहानो भयानकः ।
जलमध्ये स्थितो यत्र भूतानामनुकम्पया[2] ।।

नरसिंह...... रूप को धारण किए, चाटता हुआ, भयानक जहां प्राणियों पर कृपा की दृष्टि से वह जल के मध्य स्थित है ।

अमावस्यायां दिव्या च वृक्षच्छाया प्रदृश्यते ।

और अमावस्या के दिन दिव्य वृक्षच्छाया दिखाई देती है ।

---

१ क्षुब्धा २ मतकम्पया

यत्र तत्राज[1]तुङ्गं स्यात्तीर्थं पापप्रणाशनम् ।
स्नानसंस्मरणाभ्यान्तु[2] यत्र मोक्षो भवेन्नृणाम् ।।

जहा-वहां पापों को नष्ट करने वाला अजतुङ्ग नामक तीर्थ है । जहां स्नान और स्मरण करने से मनुष्यों को मोक्ष प्राप्त हो ।

यत्र देवाश्च पितरो हस्ताद्गृह्णन्ति तज्जलम् ।
अजतुङ्गस्य पूर्वार्द्धे[3] नदी बाह्ये तु दक्षिणे[4] ।
शरभङ्गाश्रमः[5] पुण्यो गूढैस्तीर्थशतैः श्रितः ।।

जहां देवता और पितर हाथ से उस जल को ग्रहण करते हैं । अजतुङ्ग के पूर्वार्द्ध में नदी से बाहर दक्षिण में गूढ़ सैकड़ों तीर्थों से सेवित पुण्य कर शरभङ्गाश्रम है ।

अप्रकाशन्तु तत्तीर्थं देवगन्धर्वसेवितम् ।
दशाश्वमेधफलदं ब्रह्मलोकप्रदं शुभम् ।।

देवता और गन्धर्वों से सेवित, दशाश्वमेध के फल को देने वाला, ब्रह्मलोक प्रदान करने वाला, शुभ यह तीर्थ प्रकाश में नहीं आया है ।

तस्माज्जाता नदी पुण्या शरभङ्गाश्रमादपि ।
शशिप्रभैषा[6] नदी याता विक्षुवतीं प्रति ।।

उस शरभङ्गाश्रम से भी पुण्यप्रद नदी पैदा हुई, यह शशिप्रभा नदी विक्षुवती की ओर गई ।

शशिप्रभाविक्षुवत्योः संगमे स्नाति यो नरः ।
स मुक्तः पातकैर्घोरैरिन्द्रलोकमवाप्नुयात् ।।

शशिप्रभा और विक्षुवती के सङ्गम में जो मनुष्य स्नान करता है, वह घोर पापों से मुक्त हो इन्द्रलोक को जाए ।

शरभङ्गाश्रमे चान्यदाश्चर्यं विद्यते महत् ।
तीर्थं तारासरदस्तत्र दृश्यन्ते तारकाः सदा ।।

शरभङ्गाश्रम में एक और महा आश्चर्य है, वहां तारासर नामक तीर्थ है, जहां सदा तारे देखे जाते हैं ।

वर्षे प्रजापतिस्तत्र निर्ममे तीर्थमादरात् ।
स्थलपातस्थमाकीर्णं गूढं देवासुरैरपि ।।

---

१ तत्रंज० २ संस्मरणाभ्यं तु ३ पूर्वार्धे ४ दक्षे ५ श्रम पुण्यो ६ शशि-प्रभैषा।

वर्ष में वहां प्रजापति ने आदर के साथ देवता और असुरों से भी गूढ़-आकीर्ण स्थलपातस्थ तीर्थ का निर्माण किया।

तस्माज्जाता नदी पुण्या नाम्ना तारावती शुभा।
उत्तरां दिशमाश्रित्य गता विक्षुवतीं प्रति ॥

उससे पुण्यप्रद-शुभ तारावती नाम से नदी पैदा हुई, जो उत्तर दिशा का आश्रय लेकर विक्षुवती की तरफ चली गई।

कपिलस्य गुहाद्वारमाच्छाद्य सकलं स्थिता।
विक्षुवत्यास्तटे पूर्वं कपिलो भगवान्मुनिः।
सर्वं जलमयं दृष्ट्वा कल्पान्ते.........[1] ॥

कपिल के सकल गुहाद्वार को ढककर ठहरी। पूर्वयुग में विक्षुवती के तट में भगवान कपिल मुनि ने प्रलयकाल में सब जलमय देखकर......

खिन्नश्च संसाराच्छुश्राव मधुकं गिरिम्।
[2]...... तमोमध्यान्नष्टेष्वर्केन्दुवह्निषु ॥
उत्तिष्टोत्तिष्ट भद्रं ते यदिच्छसि लभस्व तत्।
सन्निधानं कृतं तेऽद्य[3] विष्णुवा शङ्करेण वा ॥

और संसार से दुःखी हुए उसने मधुकगिरि को सुना।...... उठिए-उठिए, तुम्हारा कल्याण हो, जो तुम चाहते हो, वह पाओ। आज विष्णु वा शङ्कर तेरे पास स्थित हैं।

गृहमध्ये शिलारूपं पश्य नारायणं विभुम्।
स्नाप्यमानं महानद्या तारावत्या दिवानिशम् ॥

घर के मध्य शिलारूप में स्थित और दिन-रात महानदी तारावती से स्नान कराए जाते हुए विभु नारायण को देखिए।

स्थितं विक्षुवतीमध्ये मुखलिङ्गं जटाधरम्।
सर्वलक्षणसंयुक्तं भैरवं च जलेश्वरम् ॥

विक्षुवती के बीच जटाधर मुखलिङ्ग और सभी लक्षणों से युक्त जलेश्वर भैरव स्थित है।

नाम्ना शक्रपथे स्नानं यत्र तत्र स्थितो हरिः।
यस्य दृग्विषये पुण्यं तीर्थमप्सरसां भवेत् ॥

नाम से शक्रपथ में स्नान, वहां-जहां हरि स्थित है, जिसकी दृष्टि में अप्सराओं का पुण्य तीर्थ होवे।

१ पाण्डुलिपि में २ .... में ३ तेद्य

दृश्यते विष्णुना यत्र पातालगमनं प्रति ।
दुर्गन्धा स्रवते हेम तत्र पुण्या च मृत्तिका ॥

पाताल जाती जो विष्णु से देखी जाती है, वह दुर्गन्धा उसमें सुवर्ण बहता है और वहां की पुण्यप्रद मिट्टी होती है ।

ब्रह्महा च सुरापश्च तथा च गुरुतल्पग:[1] ।
गोघ्नो गुरुघ्न: पतितो नास्तिको वेदनिन्दक: ॥
चित्री कुष्टी महारोगी देवब्राह्मणनिन्दक: ।
अपस्मृतिग्रहग्रस्तोऽभू[2]...... ॥

ब्रह्महत्यारा, सुरापान करने वाला, गुरुशय्या गमन करने वाला, गाय का हत्यारा, गुरुहत्यारा, पतित, नास्तिक, वेदनिन्दक, चित्री, कुष्ठी, महारोगी, देवता और ब्राह्मण की निन्दा करने वाला और अपस्मृतिग्रहग्रस्त......

गुहामध्ये हरिं दृष्ट्वा विष्णुतुल्यो भवेन्नर: ।

गुहा के बीच हरि के दर्शन कर मनुष्य विष्णु के समान हो जाए ।

तस्मिन्नप्सरसां तीर्थे गुहास्थं पुरुषोत्तमम् ।
योगीश्वरं योगगम्यं सर्वभूतादिमव्ययम् ।
सर्वद्वन्दविनिर्मुक्तं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।
अलक्ष्यं लक्षणोपेतं भावगम्यं परापरम् ।
हरिं गुहास्थं पार्श्वस्थं सर्वज्ञं परमेश्वरम् ॥

उस अप्सराओं के तीर्थ में गुहा में स्थित पुरुषोत्तम, योगीश्वर, योगगम्य, सर्वभूतादि, अव्यय, सर्वद्वन्दविनिर्मुक्त, सर्वेन्द्रियविवर्जित, अलक्ष्य, लक्षणोपेत, भावगम्य, परापर, पार्श्वस्थ, सर्वज्ञ, परमेश्वर, गुहा में स्थित परमेश्वर हरि के दर्शन कर मनुष्य विष्णु के समान हो जाए ।

एतच्छ्रुत्वा स कपिल: प्रविवेश गुहां गतम् ।
तं दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्षं दिव्यदेहो बभूव स: ॥

यह सुनकर उस कपिल ने गुहा में प्रवेश किया । गुहा में गए उस पुण्डरीकाक्ष के दर्शन कर वह दिव्यदेह हो गया ।

वासुदेवाज्ञया सृष्टिं कदाचित्कृतवान्पुरा ।

वासुदेव की आज्ञा से पूर्वयुग में कभी उसने सृष्टि की रचना की ।

---

१ तल्पगं २ ग्रस्तोभूसडाकिन्पाठाभाव पाण्डुलिपि में

स्थानाच्छक्रपथात्पुण्यात्पुरन्दर[1]निषेवितात्
पूर्वार्धं द्विशरक्षेपे तीर्थं त्रैलोक्य[2]विश्रुतम् ।

इन्द्र से सेवित-पुण्यप्रद शक्रपथ स्थान से पूर्वार्ध द्विशरक्षेप में त्रैलोक्य में प्रसिद्ध तीर्थ है ।

नाम्ना[3] प्रभासंवि[4]···नदी मध्ये व्यवस्थिता[5] ।
उत्तराभिमुखा[6] यत्र व्यंका विक्षुवती गता ॥

नाम से प्रभासंवि······ नदी मध्य में स्थित है । यहां उत्तराभिमुख हो व्यंका विक्षुवती हो गई ।

अशीतिश्च सहस्राणि किङ्कराणां च देहिनाम् ।
पुरन्दराज्ञया तीर्थं रक्षन्ति विक्षतान्यपि ॥

८० हजार विक्षत-शरीरधारी किङ्कर इन्द्र की आज्ञा से तीर्थ की रक्षा करते हैं ।

स्नानञ्च दुर्लभं तस्मिन्कृत्वा यान्ति परां गतिम् ।
पितरश्चापि तृप्यन्ति श्राद्धे नाथ तिलोदकैः ॥

उसमें दुर्लभ स्नान कर मनुष्य परा गति को प्राप्त होते हैं और हे नाथ ! पितर भी श्राद्ध में तिल-जल से तृप्त होते हैं ।

तस्याधस्तान्महापुण्यं तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
योजनानां सहस्राणि दश तत्कूपवत्स्थितम् ॥

उसके नीचे तीनों लोकों में प्रसिद्ध महापुण्यप्रद तीर्थ है, जो दस हजार योजन कूप की तरह स्थित है ।

अमृते मथ्यमाने तु पूर्वं देवासुरैरपि ।
समाहूतस्तु नेत्रार्थं वासुकिस्तं पपात ह ॥

पूर्वकाल में देवता और असुरों से भी अमृत के मथे जाने पर······ बुलाया गया वासुकि उसमें गिर पड़ा ।

तस्मिन्काले हरिः पादौ क्षिप्त्वा नौबन्धमस्तके ।
ततो वृद्धाश्रमं गत्वा शङ्खगदाधरः ।
शिलापृष्ठे सितौ पादौ न्यस्य नागं समाह्वयत् ॥

उस समय हरि ने अपने चरणों को फैला नौबन्धमस्तक में वृद्धाश्रम में

---

१ त्पुण्यात् पुरंदर २ त्रैलोक्य ३ नाम्ना ४······ ५ विवस्थितं
६ उत्तराभिमुखी

जाकर तदनन्तर शङ्ख-चक्र और गदा धारण किए उन्होंने शिला के पृष्ठभाग पर अपने श्वेत चरण रख नाग को बुलाया।

आकृष्य वासुकिं रोषान्मन्थने तं न्ययोजयत्।
अद्यापि दृश्यते तच्च विष्णुपादयुगं शुभम्॥

वासुकि को क्रोध से खींच कर उसे मन्थन में लगाया और वह शुभ विष्णुपादयुग आज भी दिखाई देता है।

तच्च तीर्थवरं पुण्यं वृद्धवासुकिगोपितम्।
रक्ष्यते मणिभद्रस्तु यक्षः किङ्करकोटिभिः।
विना जन्मान्तराभ्यासात्त[1]त्स्थानं न शक्यते॥

वह पुण्यप्रद तीर्थश्रेष्ठ वृद्ध वासुकि से गोपित (सुरक्षित) है। मणिभद्र यक्ष करोड़ों किङ्करों के साथ वहां सुरक्षित है। जन्मान्तर-अभ्यास के बिना वह स्थान प्राप्त नहीं किया जा सकता है।

त्रिलोकसाक्षी भगवान्सूर्योऽ[2]पि नभसि स्थितः।
विज्ञाप्यते पिङ्गलेन रोधयित्वा च तद्रथम्॥

त्रिलोकसाक्षी भगवान् सूर्य भी आकाश पर स्थित पिङ्गल से उसके रथ को रोक कर प्रार्थना की जाती है।

भगवन्वृद्धितीर्थेऽ[3]स्मिन्स्नातकं पश्य मानुषम्।
अत्यन्तं श्रद्धयायुक्तं दुष्प्रवेशे पथि स्थितम्॥

हे भगवन्! इस वृद्धि तीर्थ में अत्यन्त श्रद्धा से युक्त दुष्प्रवेश मार्ग में स्थित स्नातक मानुष को देखिए।

त्वत्प्रसादवाप्नोति यथेदं सूर्यमण्डलम्।
तथा कुरु जगन्नाथ यदीच्छसि जगद्धितम्॥

आप की कृपा से जैसे यह सूर्यमण्डल प्राप्त किया जा सकता है, हे जगन्नाथ! वैसा कीजिए, यदि आप जगत् का हित चाहते हैं।

श्वेतद्वीपमवाप्नोति पितृपिण्डप्रदस्त्वयि।
शिलापृष्ठे स्थितौ पादौ विष्णोः सम्पूज्य भक्तिमान्॥
वृद्धः शौचस्मृतेर्लुप्ते दुश्चिकित्सस्त्वतीन्द्रियः।
वृद्धितीर्थे महापुण्ये वृद्धस्त्यागं करोत्ययम्।
स्वर्गद्वारपथाभ्यासमशुद्धः शुद्धवस्त्रवत्।

---

१ तत्र २ न्सूर्योपि ३ तीर्थेस्मि

मृगचिह्नां शिलां गत्वा स्वर्गद्वारेण तेन च ।।
पूर्वमग्निमृगस्तत्र रुद्राद्भीतो विवेश ह ।।
शिलायोगेन दिव्येन तस्मात्म मृग[1]श्चिह्नितः ।।

तुझ पर पितरों को पिण्ड प्रदान करने वाला श्वेतद्वीप को पाता है। शिला के पृष्ठभाग पर स्थित विष्णु के चरणों की पूजा कर भक्तिमान्, अतीन्द्रिय और शौचस्मृति के लुप्त हो जाने पर दुश्चिकित्स यह वृद्ध महापुण्यप्रद वृद्धितीर्थ पर त्याग करता है।...... उस स्वर्गद्वार से मृगचिह्न से चिह्नित शिला पर जाकर......

ततः स्वर्गशिलां प्राप्य देहत्यागसमुत्सकः ।
प्रणम्य देवं तीर्थं च पठेत्स्तोत्रं समाहितः ।।

इसके बाद देह का त्याग करने के लिए उत्कण्ठित वह तीर्थदेव को प्रणाम कर समाहित हो स्तोत्र पाठ करे।

ॐ नमस्ते विश्वरूपाय विशोकारूपधारिणे ।
नमस्ते मोक्षमार्गाय विष्णवे परमात्मने ।।
नमो हिरण्यनाभाय हय[2]...य ते नमः ।
अजतुङ्गनिवासाय शरण्याय नमो नमः ।।

विश्वरूप, विशोकारूपधारी, तुझे नमस्कार है। मोक्षमार्ग, विष्णु, परमात्मा, तुझे नमस्कार है। हिरण्यनाम,..... तुझे नमस्कार है। अजतुङ्गनिवास, शरण्य, तुझे नमस्कार है।

यथा विष्णुर्विशोकाख्यो यथा तीर्थमनामयम् ।
याचेयं तेन सत्येन वरं देहं समुत्सृजेत् ।।

जैसे विशोकाख्य विष्णु है, जैसे अनामय तीर्थ है। उस सत्य से वर मांगता हूँ, इस प्रकार देह छोड़े।

भीतो[3]ऽस्मि नरकाद्घोरात्पाशेभ्यश्चाध्वन[4]स्तथा ।
किङ्करेभ्यो यमाद्दण्डाद्वैतरण्याश्च कालतः ।।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखशोकेभ्य एव च ।
यदि सत्यानि तीर्थानि यदि नौबन्धनो[5]ऽक्षयः ।।
तेन सत्येन मा भूयो जन्मास्तु मम कुत्रचित् ।।
लभेयं शाश्वतं मोक्षं तद्विष्णोः परमं पदम् ।।

---

१ मृगचिह्निता, २ हयशीय ३ गीतोस्मि ४ पूचाध्वना तथा ५ बन्धनी क्षयः

मैं घोर नरक से, पाशों से, मार्ग से, किङ्करों से, यमदण्ड से, कालानुसार वैतरिणी से, जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधि-दुःख-शोकों से ही डर गया हूं। यदि तीर्थ सत्य हैं, यदि नौबन्धन अक्षय है, उस सत्य से मेरा जन्म फिर कहीं न हो। मैं शाश्वत मोक्ष और विष्णु के उस परम पद को पाऊं।

तत्र प्रदक्षिणं कृत्वा शश्वत्प्रविशेज्जलम्।
अथवा भगवन्मन्त्रं संस्मरन्स्याद्दशाक्षरम्।
नमो धर्माय इत्युक्त्वा शिरसा प्रपतेज्जवा[1]....॥

वहाँ प्रदक्षिणा कर शश्वत् जल में प्रवेश करे अथवा हे भगवन् दस-अक्षर वाले मन्त्र का स्मरण करे। 'नमो धर्माय-धर्म को नमस्कार है' यह कह कर शिर से......

न कार्यो व्यवसायेन धर्मः सूक्ष्मो[2]ऽपि कुत्रचित्।
कदाचिद्विघ्नदोषेण विकल्पोत्पादितो भवेत्॥

व्यवसाय के रूप में कहीं सूक्ष्म भी धर्म नहीं करना चाहिए, कभी विघ्न-दोष से विकल्प पैदा हो जाए।

तेनासौ कुणपं त्यक्त्वा प्रविशेत्सूर्यमण्डलम्।
नौबन्धं नरकघ्नं तु वृद्धितीर्थं तु मोक्षदम्।
लघ्वाहारश्चरन्भिक्षां प्रयत्नेन समाश्रयेत्।
निस्पृहो निरहङ्कारो निर्द्वन्दो निष्परिग्रहः॥

इससे वह कुणप को छोड़कर सूर्यमण्डल में प्रवेश करे। नरक को नष्ट करने वाला नौबन्ध है और मोक्ष प्रदान करने वाला वृद्धितीर्थ। निस्पृह, निरहङ्कार, निर्द्वन्द और निष्परिग्रह को लघु आहार करता हुआ यत्नपूर्वक भिक्षा का आश्रय ले।

एवं सा वृद्धितीर्थान्ता नदी विक्षुवती भवेत्।
आरभ्य क्षीरनद्याश्च सङ्गमात्कथिता त्वया।

इस प्रकार वह वृद्धितीर्थान्त विक्षुवती नदी होवे। क्षीर-नदी के सङ्गम से लेकर तूने कही है।

वृद्धितीर्थाद्विनिष्क्रम्य यत्प्रपाताज्जलं पतेत्।
निर्मथ्य स्वात्मनात्मान[3]मग्नितीर्थं तदुच्यते॥

वृद्धितीर्थ से निकल कर प्रपात से जो जल गिरे, वह स्वात्मा से अपने

---

१ ज्जवान् २ सूक्ष्मोपि ३ नात्मानंमग्नि

आप का मन्थन कर अग्नितीर्थ कहा जाता है।

अपां मध्ये वसेदग्नि दीप्यमानः स्वतेजसा।
यत्र ज्वालासहस्रैस्तु नानावर्णैरलङ्कृतः।

अपने तेज से प्रदीप्त जल के बीच में अग्नि का वास करे, जहां अनेक वर्णों वाली हजारों ज्वालाओं से वह अलङ्कृत है।

स्नानं दानं तपः श्राद्धं संस्पर्शं पितृतर्पणम्।
दुर्लभन्तु नरः कृत्वा स[1]शरीरो दिवं व्रजेत्॥

दुर्लभ स्नान, दान, तप, श्राद्ध, स्पर्श और पितृतर्पण कर मनुष्य शरीर सहित स्वर्ग को जाए।

अग्नितीर्थस्य पूर्वार्धे नदीपार्श्वाच्च दक्षिणात्।
अपः प्रस्रवते गङ्गा यमुना च महानदी॥

अग्नितीर्थं के पूर्वार्ध में नदी के पास दक्षिण से गङ्गा और यमुना महानदी का जल बहता है।

विशोकायान्तु तत्रास्ति महापुण्यस्त्रिसंगमः।
तस्मिन्प्रयागतुल्ये तु स्नात्वा स्वर्गमवाप्नुयात्॥

विशोका में वहां महापुण्यप्रद त्रिसङ्गम है, प्रयागतुल्य उसमें स्नान कर स्वर्ग को पाए।

तीर्थं पञ्चाश्वमेधन्तु तदधो देवनिर्मितम्।
पञ्चानामश्वमेधानां तत्र स्नात्वा लभेत्फलम्॥

उसके नीचे देवनिर्मित पञ्चाश्वमेध तीर्थ है, वहां स्नान कर पांच अश्वमेधों का फल पाए।

दशाश्वमेधं तस्याधो नदीमध्ये सुनिर्मितम्।
अपारागाधसलिलं तरङ्गौभिसमाकुलम्॥
[2]······राकुलितं घोरं प्रायो मार्गविवर्जितम्।
दशानामश्वमेधानां यत्र स्नात्वा लभेत्फलम्॥

उसके नीचे नदी के बीच सुनिर्मित, अपार और अगाध जल से युक्त, लहरों से भरपूर,······ युक्त, घोर प्रायः मार्ग से रहित दशाश्वमेध है, यहां स्नान कर दश अश्वमेधों के फल को पाए।

---

१ सशिरीरो २······

पापसूदनतीर्थन्तु तस्याधस्ताच्च विद्यते ।
यत्र स्नात्वा सर्वपापैर्मुक्तो भवति मानवः ॥

उसके नीचे पापसूदन तीर्थ है, यहाँ स्नान कर मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है ।

हयो[1]मयो······ नवसत्तमाः ।
वरं लब्ध्वा ततो देवा[2]······विष्णुं समाह्वयन् ॥
युद्धस्यान्ते ततो विष्णुर्हयस्य च शिरो महत् ।
सुदर्शनेन चक्रेण चिच्छेद[3]······ च ॥

तदनन्तर युद्ध के अन्त में विष्णु ने हय के महा शिर को सुदर्शन चक्र से काट डाला ।

मयस्य मन्त्रमंस्त्रं च जघान स पराक्रमात् ।

और मय के मन्त्र एवं अंस्त्र को उसने पराक्रम से मार दिया ।

मायापुरी मृतो यः स्यात्पिशाचो जायते नरः ।
मर्कटो वा विरूपः स्यात्तस्माद्गङ्गां समाश्रयेत् ॥

मायापुरी में जो मरा हो, वह मनुष्य पिशाच, मर्कट वा विरूप होवे । इसलिए गङ्गा का आश्रय ले ।

मयस्य[4] तच्छिरो देवैः पितृतीर्थे प्रकल्पितम् ।
[5]मयाशिरो महापुण्यं कल्पान्ते नश्यते च तत् ॥

मय का वह शिर देवताओं ने पितृतीर्थ पर रखा । वह महापुण्य मय का शिर कल्पान्त में नष्ट हो जाता है ।

मयस्य तच्छिरो विष्णुः स्वयं विष्णुमकल्पयत् ।
अविनाशञ्च कल्पान्ते यथा विष्णुपदं सरः ॥

विष्णु ने मय के उस शिर को स्वयं विष्णु बनाया । कल्पान्त में वह अनश्वर है, जैसे विष्णुपद सर है ।

नौबन्धं स्वर्गमूले तु यत्र सृष्टिः प्रवर्तते ।
तीर्थं हयशिरस्तच्च देवानामपि दुर्लभम् ॥

स्वर्गमूल में नौबन्ध, यहां सृष्टि की रचना होती है, देवताओं के लिए भी दुर्लभ वह हयशिर तीर्थ है ।

नदी सा दुर्गमा यत्र विशोका पापनाशिनी ।
जातवेदशिला यत्र विद्यते तोयमध्यगा ॥

१······२······३······ ४ गयस्य ५ गया शिरो

यहां वह विशोका, पापनाशिनी एवं दुर्गमा नदी है, यहां जल के बीच होने वाली जातवेदशिला है।

अग्निः शान्तः पुनर्जातो यस्या[1]···द्विनिर्गतः।
योजनानां सहस्राणि त्रिंशद्रूढा रसातले॥

शान्त हुई अग्नि फिर पैदा हुई······ ·······

सुदुर्लभा पातकिनां देवैः पितृभिरादृता[2]।
कृत्वा श्राद्धसहस्रन्तु महाबोध्या तु तत्फलम्।
गयाकूपे श्राद्धशतं कृत्वा चार्याफलन्तु तत्॥

पापिग्रों के लिए दुर्लभ, देवता और पितरों से ग्राहत है। हजार श्राद्ध कर महा······। गयाकूप में सौ श्राद्ध कर······

आश्रित्य कुञ्जरच्छायां श्राद्धानामयुतंश्च यत्।
जातवेदशिलापृष्ठे सकृच्छ्राद्धेन तत्फलम्॥

कुञ्जर-छाया का सेवन कर अयुत श्राद्धों का जो फल है, जातवेद-शिलापृष्ट में सकृत् श्राद्ध करने से वह फल होता है।

नभस्य शुक्लसप्तम्यां सुस्नातो विजितेन्द्रियः।
ततो[3]ऽष्टम्यां प्रभाते तु तीर्थं हयशिरो व्रजेत्॥

नभ की शुक्ला सप्तमी के दिन अच्छी तरह स्नान कर जितेन्द्रिय तदनन्तर अष्टमी के दिन प्रभात के समय हयशिर तीर्थ को जाए।

यत्र यज्ञवराहस्तु नित्यं सन्निहितो हरिः।
तत्र स्नानं प्रकुर्वीत विधिदृष्टेन कर्मणा॥

जहां यज्ञवराह हरि नित्य पास रहते हैं, वहां विधिदृष्ट कर्मानुसार स्नान करे।

एकाग्रबुद्धिः सुमन[4]स्तर्पयेदमरान्पितॄन्।
श्राद्धं तत्र प्रकर्त्तव्यं यथाशक्त्या प्रयत्नतः॥

एकाग्रबुद्धि हो अच्छे मन से देवताओं और पितरों का तर्पण करे, वहां यथाशक्ति यत्नपूर्वक श्राद्ध करना चाहिए।

मधुना दधिसर्पिभ्यां गु···नाथ विसैरपि।
शृङ्गाटकैस्तथा मांसैः पवित्रैर्विविधैः फलैः॥
मुन्यन्नैर्गितिपत्रैश्च शिलोच्छैः स्वयमर्जितैः।

---

१ यस्यामुगा २ रहतां ३ ततोष्टम्यां ४ सुमनास्त

मुद्गैस्तिलैः कृष्णतिलैरथवा येन केनचित् ।।
देवान्पितृन्मुनींच्छश्वद्भिक्षून्नतिथिभिः सह ।
तत्र सन्तर्पयित्वा तु मुच्यते···ऋणत्रयात् ।।

मधु, दही, घी,···, शृङ्गाटक, मांस, पवित्र अनेक प्रकार के फलों, मुन्यन्न, गितिपत्र, शिलोच्छ, स्वयं अर्जित मुद्ग, तिल, कृष्णतिल अथवा जिस किसी से अतिथिओं के साथ देवता, पितर, मुनि, और भिक्षुओं का निरन्तर वहां तर्पण कर मनुष्य देवऋण, पितृऋण, ऋषिऋण इन तीनों ऋणों से मुक्त हो जाता है ।

सप्तविंशति याः प्रोक्ता घोरा नरककोटयः ।
तासु सन्ताप्यमाना[1]स्तु पितरो यमकिङ्करैः ।
क्रन्दन्ति सुभृशं दीनाः प्रलपन्तोविविधा[2] गिरः ।।

जो २७ घोर नरकों की कोटिएं कही गई हैं, उनमें यमकिङ्करों से सन्तप्त किए गए पितर दीनभाव से अनेक प्रकार की वाणियों के साथ, प्रलाप करते हुए अत्यधिक चीखते-चिल्लाते हैं ।

अपि नास्मत्कुले कश्चित्पुत्रः पौत्रो[3]ऽथवा भवेत् ।

क्या हमारे कुल में कोई पुत्र अथवा पौत्र नहीं है ?

क्षुधार्त्तानां तु यः श्राद्धं दद्याद्धयशिरस्यपि ।
कोऽ[4]स्मत्कुले वंशधर्ता[5]भवेद्यस्त्वमृतं जलम्[6] ।

हयशिर में भी जो भूख से पीड़ितों का श्राद्ध करता है । हमारे कुल में कौन वंशधर हो,

सतिलं सरस स्तस्मादस्मभ्यं दातुमर्हति ।

जो तिलसहित अमृतजल को उस सरोवर से हमें देता है ।

लुप्तश्राद्धक्रियाणान्तु चरणनापि लीलया ।
इदमस्तु जलं तेभ्यः प्रेतेभ्य इति कीर्तयेत् ।।

लुप्त श्राद्धक्रिया वालों के······ उन प्रेतों के लिए यह जल हो, ऐसा कहे ।

सुवर्णवालिकां यस्मा[7]द्गृहीत्वा सरसः पुमान् ।
अक्षय[8]मस्तु सर्वेभ्यः पितृभ्य इति निर्वयत्[9] ।।

---

१ संताप्यमानस्तु २ प्रलपन्विविघा ३ पौत्रोथवा ४ कोस्मत्कु० ५ वंशधत्रा भवेत्यास्त्व ६ जले ७ यस्मात् गृहीत्वा ८ अक्षण्य ९ निर्विपेत्

मनुष्य जिस सरोवर से सोने की रेत लेकर 'सभी पितरों का अक्षय हो' यह कह कर छोड़ दे ।

तृणं काष्टं[1] रसः पत्रं पाषाणाः सिकतास्तथा ।
तत्र सर्वं पवित्रं स्याद्ग्राह्यं देयं च याचते ॥

तृण, काष्ट, रस, पत्र, पाषाण तथा सिकता वहां सब कुछ पवित्र होता है, ग्रहण करने योग्य है और देने योग्य है······

स्नानं दानं तपः श्राद्धं जपो[2] होमश्च नित्यशः ।
कर्त्तव्य[3]स्तत्र यत्नेन सन्तु कोटिगुणाश्च ते ॥

स्नान, दान, तप, श्राद्ध, जप और होम नित्यशः वहां यत्न से करना चाहिए । वे कोटिगुणा होवें ।

अथ तस्मादधोभागे[4] तीर्थं कुम्भावसु स्मृतम् ।
तत्र स्नात्वा नरः स्वर्गं प्रयाति स्वगृहं यथा ॥

इसके बाद उससे नीचे के भाग में कुम्भावसु तीर्थ कहा गया है । वहां स्नान कर मनुष्य स्वर्ग को जाता है, जैसे अपने घर को ।

तदधश्चक्रतीर्थन्तु श्वेतद्वीपप्रदं महत् ।
विशोकायां ततो नद्यां स्नात्वा शोकैः प्रमुच्यते ॥

उसके नीचे महाश्वेतद्वीपप्रद चक्रतीर्थ है । तदनन्तर विशोका नदी में स्नान कर शोकों से मुक्त हो जाता है ।

अजगन्धमहातीर्थं नदीबाह्ये तु दक्षिणे ।
नागसर्षपया युक्तं स्थलपद्मै रलङ्कृतम् ॥

नदी से बाहर दक्षिण में नागसर्षपा से युक्त स्थल पद्मों से अलङ्कृत अजगन्ध महातीर्थ है ।

तत्र स्नात्वा गोसहस्रफलं प्राप्य दिवं व्रजेत् ।

वहां स्नान कर हज़ार गाय के दान का फल पा स्वर्ग को जाए ।

स्वल्पोदकं बिन्दुसरः स्थितं देव्याश्च [5]सम्मुखे ।
यत्र स्नात्वा पदं विष्णो[6]र्याति यज्ञफलप्रदम् ॥

देवी के सामने थोड़े जल वाला बिन्दुसर स्थित है, यहां स्नान कर यज्ञ के फल को देने वाले विष्णुपद को पाता है ।

---

१ कष्टं रसं २ जपं ३ कर्त्तव्यास्तत्र ४ भागये ५ संमुखे ६ विष्णें

ब्रह्मतीर्थं विशोकायाः [1]सम्मुखं विद्यते तथा ।
ब्रह्मचर्येण घोरेण यत्र सिद्धाः सुराङ्गनाः[2] ।।
सुधिया सुरभी सौम्या शची रुद्राह्यरुन्धती ।
सौरी सरस्वती स्वाहा लक्ष्मीर्नारायणप्रिया ।।
सुरपत्न्याश्रमस्तेन ब्रह्मतीर्थञ्च कथ्यते ।
कपिलानां गवां लक्षं[3] दत्वा[4] तत्र लभेत्फलम् ।।

विशोका के सामने ब्रह्मतीर्थ है। यहां सिद्ध, सुराङ्गनाएं, सधिया, सुरभी, सौम्या, शची, रुद्रा, अरुन्धती, सौरी, सरस्वती, स्वाहा, नारायणप्रिया लक्ष्मी का वास है। वह सुरपत्न्याश्रम उस घोर ब्रह्मचर्य से ब्रह्मतीर्थ कहा जाता है; वहां दान देकर लाख कपिला गायों के दान देने का फल पाए।

दक्षिणे तु विशोकायाः पार्श्वे पुण्यं महत्सरः ।
पुण्डरीकं पुण्डरीकाद्य[5]ज्ञात्स्नानफलप्रदम् ।।

दक्षिण में विशोका के पास पुण्यप्रद पुण्डरीक महासर है, जो पुण्डरीक यज्ञ से स्नान के फल को देने वाला है।

तत्रान्यत्पूर्वतस्तोयमुत्तराभिमुखं शुभम् ।
मुख्यश्शृङ्गस्य नागस्य निर्याति भवनादपि ।।

पूर्व की तरफ वहां और शुभ-उत्तराभिमुख जल है, जो मुख्यश्रृङ्ग नाग के भवन से भी निकलता है।

यत्र स्नाताश्च देवाश्च सन्ति तुष्टाश्च सम्मुखाः[6] ।।
सुरपत्न्याश्रमं गत्वा क्रोशार्धं चन्द्रदिङ् मुखाः ।।
तत्र प्रविश्य निर्यातो मुखमूलवनं ततः ।
मुखमूलस्य नागस्य भवनं यत्र विद्यते ।।

यहां स्नान कर देवता क्रोशार्ध सुरपति के आश्रम को जाकर चन्द्रदिङ्मुख सम्मुख प्रसन्न होते हैं, वहां प्रवेश कर मुखमूलवन दिखाई देता है, यहां मुखमूल नाग का भवन है।

तीर्थं तत्र जरामोचं स्नानान्मृत्युविनाशनम् ।
तस्मान्नदी विनिष्क्रान्ता मुखमूला च नामतः ।

स्नान करने से मृत्यु को नष्ट करने वाला वहां जरामोच नाम का तीर्थ है, उससे मुखमूला नामक नदी निकली है।

---

१ संमुखं २ सुरांगनाः ३ लक्ष्यं ४ दत्वं ५ पुण्यरीकात्यः ६ संमुखाः

विशोकायां महानद्यां गता पूर्वोत्तरा दिशम् ।
मूखमूला स्थिता पूर्वे पश्चिमे क्षीरवाहिनी ॥
उत्तरे तु विशोकाख्या तयोः पुण्यं यदन्तरम् ।
तत्त्रिकोणं महापुण्यं समन्तादर्धयोजनम् ।
वाराणस्यां शतगुणं प्रविशन्ति मनीषिणः[१] ॥

पूर्व और उत्तर दिशा की ओर विशोका महानदी में गई है। पूर्व में मूखमूला स्थित है, पश्चिम में क्षीरवाहिनी और उत्तर में विशोका स्थित है। उन दोनों में जो पुण्य अन्तर है, वह चारों तरफ से अर्धयोजन महापुण्य त्रिकोण है। वाराणसी में शतगुणा मनीषी लोग प्रवेश करते हैं।

व्रतं दानं तथा श्राद्धं जपहोमतपांसि च ।
कृतानि श्रद्धया तत्र वर्धन्ते मेरुवन्नृणाम् ॥

श्रद्धापूर्वक किए गए व्रत, दान, श्राद्ध, जप, होम और तप वहां मेरु की तरह मनुष्यों के बढ़ते हैं।

बालो[२]यो वा तथा वृद्धो यो यः स्याद्वृद्धिपीड़ितः ।
अश्मनानलतप्तेन भृग्वग्नि[३]नशनाम्बुभिः ॥
तत्र यो निधनं गच्छेत्स मोक्षं लभते ध्रुवम् ।
दिव्यस्रग्धामसंयुक्तो देवगन्धर्वपूजितः ॥

जो बालक वृद्ध, या वृद्धिपीड़ित······ वहां जो मृत्यु को प्राप्त हो, वह दिव्यस्रग्धाम से युक्त हो तथा देव-गन्धर्वों से पूजित निश्चित मोक्ष पाता है।

रथेन सूर्य[४]वर्णेन नानाहंसै[५]र्हतेन च ।
नोयमान[६]स्तुतिपदैर्गन्धर्वाप्सरसां गणैः ।
आदित्यमण्डलं भित्वा परब्रह्मणि लीयते ॥

अनेक प्रकार के हंसों से युक्त सूर्य के समान चमकते वर्ण वाले रथ से लिया जाता हुआ, गन्धर्व और अप्सरा गणों के स्तुतिपदों से सूर्यमण्डल का भेदन कर परब्रह्म में लीन हो जाता है।

तत्र धर्मः सदा कार्यः पापञ्च परिवर्जयेत् ।
नास्मन्नारायणस्थानान्निर्विघ्नमपरं भवेत् ॥

वहाँ धर्म हमेशा करना चाहिए और पाप को छोड़ दे। हमारे इस नारायण स्थान से परे निर्विघ्न अन्य कोई स्थान न होवे।

---

१ मणीषिणः २ बालोय वा ३······४ वर्णे ५ र्हतेन, ६ नीयमानस्तुति

स्नात्वा तु मुखमूलायां गोप्रदानफलं लभेत् ।
१······ ण्यां स्नात्वा तु विमला[२]म्भसि
जामदग्न्याश्रमे पुण्ये विख्याते मातृपर्वते ।
सर्वतीर्थानि दिव्यानि दुर्लभानि सुरैरपि ।।

मूखमूला में स्नान कर गोदान के फल को पाए ।······ जामदग्नि के आश्रम पुण्यप्रद सुप्रसिद्ध मातृपर्वत पर देवताओं के लिए भी दुर्लभ दिव्य सभी तीर्थ हैं ।

ऐरावतं चक्रमुदं तथा श्रेयस्करं महत् ।
अग्न्यागारं गार्ग्यतीर्थमुष्णोदगन्धमादनम् ।।
रेणुकातीर्थमाश्रित्य त्रीण्यन्यानि स्थितानि च ।
यमघ्नं च ज्वरघ्नं च पाशघ्नं च सुशोभनम् :
कुमारिले साम्बतीर्थे पञ्चान्याान स्थितान्यपि ।।
पूर्वे यवाधिकं तीर्थं दक्षिणे ऋणमोचनम् ।
पश्चिमे कपिलातीर्थमुत्तरे तु पृथूदकम् ।
मध्ये तु सूदनं तीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।।

ऐरावत, चक्रमुद, अग्न्यागार, गार्ग्यतीर्थ, उष्णोदगन्धमादन महाश्रेयस्कर हैं । रेणुकातीर्थ का आश्रय लेकर अन्य तीन स्थित हैं—यमघ्न, ज्वरघ्न और सुशोभण पाशघ्न । कुमारिल साम्बतीर्थ में पांच अन्य स्थित हैं । पूर्व में यवाधिक तीर्थ, दक्षिण में ऋणमोचन, पश्चिम में कपिलातीर्थ, उत्तर में पृथूदक और मध्य में सूदन तीर्थ तीनों लोकों में प्रसिद्ध है ।

अरिष्टतीर्थे पुण्यानि त्रीण्यन्यानि वसन्ति च ।
अर्बुधं हंसतीर्थञ्च व्याधिमोचनमेव ।।
कुमुद्वन्यास्तथा बाह्ये षडन्यानि भवन्ति च ।।
फलं स्नानादथैतेषां राजसूयाश्वमेधयोः ।।

अरिष्टतीर्थ में तीन अन्य पुण्य रहते हैं—अर्बुध, हसतीर्थ और व्याधिमोचन । कुमुद्वनी के बाहर छः अन्य होते हैं । स्नान करने से इनका फल राजसूय और अश्वमेध का होता है ।

अत्र यत्पूर्ववृत्तान्तं पुण्याख्यानं शृणुष्व तत् ।

यहां जो पूर्व वृत्तान्त है, वह पुण्यप्रद आख्यान सुनिए ।

---

१ ······ २ विमलाम्भासि ।

ज्येष्ठः पुत्रो ययातेस्तु देवयान्यां च यो भवेत् ।
यदुर्नाम दुराचारः क्रूरकर्मा सुमन्दधीः ।।

ययाति का जो ज्येष्ठ पुत्र देवयानी में हुआ, वह यदु नामक दुराचारी, क्रूरकर्मा और मन्दधी था।

जरानिमित्तं दुष्टात्मा पित्रा शप्तस्तु तस्करः ।
म्लेच्छाधिपो महापापो मथुरायां बभूव यः ।।

बुढापे के निमित्त पिता से शाप दिया गया, दुष्टात्मा, तस्कर, म्लेच्छाधिप, महापापी जो मथुरा में हुआ।

कुले तस्याथ भगवाञ्शंखचक्रगदाब्जभृत् ।
जातो वृष्णिषु देव[1]क्यां वसुदेवा[2]ज्जनार्दनात् ।।

इसके बाद उसके कुल में शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म धारण किए भगवान् ने वसुदेव जनार्दन से देवकी में वृष्णियों के वंश में जन्म लिया।

द्वापरे तु युगे क्षीणे सन्धौ कलियुगस्य तु ।।
अरमित्रसुतो निघ्नो निघ्नस्य द्वौ बभूवतुः ।।

द्वापर युग के क्षीण होने पर कलियुग की सन्धि में अरमित्र का पुत्र मर गया, मरे हुए उसके दो पुत्र हुए।

प्रसे[3]नजिच्छत्रुजिच्च[4]···वन्तौ यशस्विनौ ।
तस्य शत्रुजितः सूर्यः सखा प्राणसमो[5]ऽभवत् ।।

प्रसेनजिन् और शत्रुजित् दोनों······ यशस्वी हुए। उस शत्रुजित् का सूर्य प्राण समान मित्र हुआ।

स कदा[6]चिन्निशापाये रथेन रथिनां वरः ।
यमुनायामुपस्पृश्य साञ्जलिः[7] सूर्यमस्तुवत् ।।

रथिओं में श्रेष्ठ उसने कभी प्रातः रथ से यमुना में आचमन कर दोनों हाथ जोड़ सूर्य की स्तुति की।

तस्योपविष्ठतस्तत्र विवस्वा[7]न्नग्रतः स्थितः ।
असृष्टमूर्ति[8]······ न्विभुः ।।

वहां बैठे हुए उसके आगे······

अथ राजा विवस्वन्त[9]······विग्रहः ।

---

१ देवाक्यां २ वसुदेवाजनार्दनात् ३ प्रसिनजि ४······ ५ प्राणसमाभय ६ कदी ७ विवस्वानग्रतः ८······ ९······

यथैव व्योम्नि पश्यामि[1]......
तेजो मण्डलिनं देवं तथैवा[2]...स्थितम् ।
को विशेषो मम[3]...
एतच्छ्रुत्वा तु भगवान्मणिरत्नं स्यमन्तकम् ।
स्वकण्ठादवमुच्याथ भूमौ सन्न्यस्तवान्विभुः ॥

यह सुनकर सर्वव्यापक भगवान् ने मणिरत्न स्यमन्तक को अपने कण्ठ से उतारकर भूमि पर रख दिया ।

ततो विग्रहवन्तं तं ददर्श [4]नृपतिस्तदा ।

इसके बाद तब राजा ने साकार रूप में उसके दर्शन किए ।

प्रीतिमान्न[5]थ तं दृष्ट्वा मुहूर्त[6]स्तथा ।
तमाह[7] प्रस्थितं भूयो विवस्वन्तं तु शक्रजित् ॥

प्रीतिपूर्वक उसे देखकर... ...शक्रजित् ने फिर चल पड़े उस विवस्वान् से कहा ।

सूर्येहाग्निसुवर्णं त्वां यो न लोकः प्रपश्यति ।
तदेतन्मणिरत्नं मे भगवन्दातुमर्हसि ॥

हे सूर्य ! यहाँ अग्नि के वर्ण के समान तुझे जो लोक नहीं देखता है । हे भगवन् ! सो यह मणिरत्न मुझे दीजिए ।

स तथेति प्रतिज्ञाय तं तस्मै दत्तवान्मणिम् ।
स तमाबध्य नगरं गतः सूर्यो नभस्ततः ॥

उसने 'तथास्तु' यह कह उसे उस मणि को दे दिया । इसके बाद वह उसे बान्ध कर नगर को और सूर्य आकाश को चला गया ।

तं प्रसेनजिते भ्रात्रे ददौ प्रेम्ना च शत्रुजित् ।

और शत्रुजित् ने उस मणि को प्रेम से भाई प्रसेनजित् को दे दिया ।

स मणि[8]र्विद्यते यत्र वृष्ण्य[9]न्धकनिवेशने ।
काले वर्षा[10] भवेत्तत्र महेन्द्रः सस्यवर्धनः ॥

वह मणि जो वृष्ण्यन्धक के घर में है, वहाँ समय पर वर्षा होती है और इन्द्र खेती को बढ़ाने वाला होता है ।

व्याधिरोगजरामृत्युभयै[11]र्मुक्तो भवेज्जनः ।

१...... २...... ३...... ४ नृपति ५ मानघ ६...... ७ तामाह ८ मणि विद्यते ९ वृष्ण्येंधक १० वर्षं ११ भयैमुक्तो

मनुष्य जरा-व्याधि-रोग और मृत्यु के भयों से मुक्त होवे।

प्रसेनान्मणिरत्नं तद्बद्ध[1]मैच्छत्सदा हरिः।
सान्त्व[2]पूर्वं ततो लेभे शक्तो[3]ऽपि न जहार सः।

बान्धे हुए मणिरत्न को प्रसेन से हरि ने सदा चाहा। इसके बाद शान्तिपूर्वक उसे पा लिया। समर्थ होते हुए भी उसने मणि का हरण नहीं किया।

कदाचिन्मृगयां प्राप्तः प्रसेनस्तेन भूषितः।
तं प्रदीप्तमथ[4] रत्नं स्य[5]मन्तकमरीचिभिः।
मांसशोणितलोभेन सिंहस्तु निजघान[6] ह॥

उस मणि से भूषित प्रसेन कभी शिकार खेलने गए। इसके बाद स्यमन्तक की किरणों से वह रत्न प्रदीप्त हो रहा था। मांस-शोणित के लालच से सिंह ने उसे मार दिया।

अथ सिंहन्तु रत्नेन ज्वलन्तं वीक्ष्य जाम्ब[7]वान्।
काकालिकजलश्यामो[8] निज[9]घान महाहवे॥

इसके बाद काकालिकजल की तरह श्याम जाम्बवान् ने रत्न से प्रदीप्यमान सिंह को देखकर महायुद्ध में उसे मार दिया।

तं गृहीत्वा मणिं तस्मात्सुवलिं च विवेश सः।

उससे उस मणि को लेकर सुवलि में प्रवेश किया।

ततो नष्टे प्रसेने तु वृष्ण्य[10]न्धकमहत्तरः।
मेनिरे कर्म कृष्णस्य घोरं तद्ररन......[11]॥

इसके बाद प्रसेन के नष्ट हो जाने पर......

मिथ्याशप्ताभिभूतोऽसौ[12] ततो विष्णुवनं ययौ।
यत्र प्रसर[13]............ मृगयामकरोत्पुरा॥

मिथ्या शाप से अभिभूत हो वह बिष्णुवन को चला गया। यहाँ......

ऋक्षवेनं गिरिवरं विन्ध्ये[14] च विचरन्वने।
प्रसेनस्य पदं ज्ञात्वा पुरुषैरानुकारिभिः॥

---

१ तद्ब......२ सांत्वंपूर्वं ३ शक्तोपि ४ मघो, ५ सीमंतक ६ निजगान ७ जांवभावान् ८ श्यामें ९ निजगान १० कृष्ण्यंघक ११...... १२ भूतोसौ १३ ..... १४ विंध्यं च

अन्विष्य ददृशे चाथ कुत्रचिद्गहनान्तरे ।
साश्वं [1]हन्तं प्रसेनं च तद्वरत्नं नैव लब्धवान् ॥

विन्ध्याचल के वन में गिरिश्रेष्ठ ऋक्षवेन की सैर करते हुए प्रसेन के पदचिह्न को पहचान कर अनुयायी पुरुषों ने तलाश कर कहीं गहन वन के बीच घोड़े सहित मारे गए प्रसेन को देखा, पर उस रत्न को नहीं पाया ।

तस्यापि नालभद्ररत्नं पश्यन्नृ[2]क्षपदानि च ।
विवेश शनकैरेको गुहामृक्षस्य मानवः ॥

रीछ के पैरों के निशान को देखते हुए भी उसके रत्न को जब नहीं पाया, तब धीरे-धीरे एक मनुष्य ने रीछ की गुहा में प्रवेश किया ।

शुश्राव मधुरां वाणीं स तत्र···[3]··· देरिताम् ।
धात्र्या कुमारमादाय पुत्रं जाम्बवतस्तदा ।
क्रीडापयन्त्या मणिना मारोदोरित्युदीरिताम् ॥

तब दाया से कुमार को लेकर जाम्बवान् के पुत्र को मणि से खेलाता हुई 'मत रो' यह कहती उसकी मधुर वाणी को उसने सुना ।

वेने प्रसेनमवधीत्सिंहो दंष्ट्रा[4]··· स्वायुधः ।
जाम्बवान्तञ्जनश्यामो हतवांस्तञ्च वानरः ॥

वेन में······सिंह ने प्रसेन को मारा और काजल की तरह काले जाम्बवान् ने उसे मार दिया ।

पूर्वार्जितानां पुण्यानां प्रभावात्स्वयमागतम् ।
सुकुमारक मारोदीस्तव ह्येतत्स्यमन्तकम् ॥

हे कुमार ! मत रोओ । पूर्वजन्म में अर्जित पुण्यों के प्रभाव से स्वयं आई यह स्यमन्तक मणि तेरी है ।

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा प्रविश्य विलमंजसा ।
ऋक्षाधिपं ददर्शाथ जाम्बवन्तं महाबलम् ॥

उसके उस वचन को सुन तेजी से बिल में प्रवेश कर तदनन्तर वहां मैंने ऋक्षराज महाबली जाम्बवन्त को देखा ।

ऋक्षस्य भगिनी ऋक्षी वानरस्य परा सती ।
जाम्बवन्तस्त्वजनयद्ब्राह्मणश्च प्रजापतिः ॥

---

१ हतं २ पश्यनृक्ष ३··· ···४ नस्वा

ईदृशं तस्य जन्मोक्तं युयुधे तं जनार्दन. ।
वाहुभिः परिघाकारैर्दिवसान्नेक[1] विंशतिम् ॥

इस प्रकार उसका जन्म कहा गया है। जनार्दन ने उसके साथ परिघाकार भुजाओं से २१ दिन युद्ध किया।

स्यमन्तकप्रभासूर्यप्रकाशीकृतदिङ्मुखे ।
प्रविष्टे तु विले कृष्णे परास्ता:[2] सैनिकास्ततः ॥

स्यमन्तकमणि की प्रभा के सूर्य को सभी दिशाओं को प्रकाशित कर देने पर और अन्धियारी बिल में प्रवेश करने पर तदनन्तर वे सब सैनिक परास्त कर दिए।

सैनिकास्ततः प्रसेनकुणपं गृह्य गता द्वारवतीं प्रति ।
प्रसेनसिंह[3]…… निहतां[4]…… न्शंशसिरे ॥

इसके बाद सैनिक प्रसेनकुणप को लेकर द्वारवती की ओर चले गए।…

वासुदेवो[5]ऽपि निर्जित्य जाम्बवन्तं महाबलम् ।
लेभे जाम्बवतीं कन्यां दिव्यामुत्तमयोषितम् ।
व्याघ्रप्रसूतां तन्वङ्गीं सर्वलक्षणसंयुताम् ।

वासुदेव ने भी महाबली जाम्बवन्त को जीतकर व्याघ्रप्रसूता, तन्वङ्गी, सर्वलक्षणयुक्त, दिव्य और उत्तमस्त्री जाम्बवती कन्या को पा लिया।

भगवत्तेजसा ग्रस्तो जाम्बवान्नथ[6] तं मणिम् ।
सुतां जाम्बवतीं चाथ विश्वक्सेनाय दत्तवान् ॥

इसके बाद भगवान् के तेज से ग्रस्त जाम्बवान् ने उस मणि और जाम्बवान् पुत्री विश्वक्सेन को दे दी।

मणि स्यमन्तक चाथ गृहीत्वात्मविशुद्धये ।
अ[7]… नीयक्षराजानं सभावो निर्ययौ बिलात् ॥

तदनन्तर आत्मशुद्धि के लिए स्यमन्तक मणि को लेकर……

एवं स मणिमाहृत्य विशुद्ध्या[8]त्मानमच्युतः ।
ददौ शत्रुजिते तत्र सर्व……[9] सन्निधौ ॥

इस प्रकार मणि को ले आत्मा शुद्ध कर उस भगवान् अच्युत ने वहां…… वह मणि शत्रुजित् को दे दी।

---

१ दिवसानेक २ परस्ताः ३ कृष्णोस्तु ४ स्त्री ५ वासुदेवेपि ६ जाम्बवानथ ७ मूलपाण्डुलिपि में पाठाभाव ८ विशुद्धयं ९ सात्वतः

इमां मिथ्याभिशस्ति यो वेद कृष्णस्य धीमतः ।
स तु मिथ्याभिशापेन केनचिन्नाभिशस्यते ॥

श्रीमान् कृष्ण की इस मिथ्या-अभिशस्ति को जो जाने, वह किसी मिथ्याभिशाप से अभिशस्त हो जाता है ।

वासुदेवाभिशापस्तु[1] निशाकरमरीचिषु ।
स्थितश्चतुर्थ्यामद्यापि मनुष्याणां पतेश्च सः ॥

मनुष्यों के पति वासुदेव का वह अभिशाप चन्द्रमा की किरणों में चतुर्थी के दिन आज भी स्थित है ।

यतश्चतुर्थ्यां चन्द्रस्य प्रदद्याद्वीक्ष्य संयुतः[2] ।
प[3]ठेदात्रेयिकावाक्यं प्राङ्मुखोदङ्मुखश्च वा ॥

क्योंकि चतुर्थी के दिन संयत हो चन्द्रमा के दर्शन कर और पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख हो आत्रेयिका वाक्य का पाठ करे

सिंहः प्रसे[4]नमवधीत्सिंहो जाम्बवता हतः ।
सुकुमारक मारोदीस्तव ह्येतत्स्यमन्तकम् ॥

सिंह ने प्रसेन को मारा और सिंह को जाम्बवान् ने मार दिया । हे सुकुमारक ! मत रो, यह स्यमन्तक मणि तेरी है ।

शप्तः कृतयुगे सूर्यः कस्मिंश्चित्कारणान्तरे ।
दुर्वासाद्यैस्तु मुनिभिर्भवितासि नस्त्विति ॥

कृतयुग में किसी कारणान्तर से दुर्वासा आदि मुनियों द्वारा सूर्य को शाप दिया गया कि तू हमारा होगा ।

ततः प्रसादितास्तेन शापभीतेन तापसाः[5] ।
गुणिनः कस्यचित्पुत्रो भविष्यामीति चेत्पुनः ।

इसके बाद शाप से डरे हुए उसने तपस्वियों को प्रसन्न किया कि मैं फिर किसी गुणी का पुत्र हूंगा ।

ततस्तमूचुर्मुनयः कृष्णस्य भविता विभोः ।
पुत्रो जाम्बवतश्चाथ दौहित्रस्तापसाग्र…[6] ॥

इसके बाद मुनियों ने उसे कहा कि तू सर्वव्यापक कृष्ण जाम्बवान् का पुत्र और…… का दौहित्र होगा ।

---

१ भिशापस्व २ संयुत्तः ३ पाठेद ४ प्रसीन ५ तापसा ६ अग्रणीः

सौम्भो नाम महावीर्यः साहसी रणकर्कशः ।
महेश्वराद्वरं लब्ध्वा कलौ कृष्णस्त्वया सह ॥

महाप्रतापी, साहसी, युद्ध में कर्कश सौम्भ नामक कलियुग में तुम्हारे साथ महेश्वर से वर पाकर कृष्ण—

संवभूव महागर्भो जाम्बवत्यां ततश्च सः ।

महागर्भ वह जाम्बवती में हुआ ।

परिपूर्णे ततः काले जातः परवलार्दनः ।
चतुर्भुजः सौम्यमुखः सुवर्णसदृशद्युतिः ॥
हलाब्जशङ्खमु[1]सलैरायुधैर्वैष्णवैर्धृतः ।
द्विभुजो ह्यन्यनयनः स्त्रीणां हृदयनन्दनः ॥
बालभास्करतुल्याभो बालभास्करदर्शनः ।
बालभास्करवत्सौम्यो बालभास्करवत्प्रियः ॥

गर्भसमय के पूर्ण होने पर दूसरों के वल को नष्ट करने वाला, चतुर्भुज, सौम्यमुख, सुवर्ण के समान द्युति वाला, वैष्णव, हल-कमल-शङ्ख-मुसल आयुधों को धारण किए हुए, द्विभुज, अन्यनयन, स्त्रियों के हृदय को आनन्दित करने वाला, बालभास्कर के समान आभा वाला, बालभास्कर दिखाई देता हुआ, बालभास्कर की तरह सौम्य, बालभास्कर की तरह प्यारा—

मध्याह्नरविवत्तीक्ष्णो दीप्तो मध्याह्नसूर्यवत् ।
वृद्धार्कवत्सुशान्तश्च रागी वृद्धार्कवर्चसः ॥
वृद्धो वृद्धार्कवन्नेत्री दुष्टो वृद्धार्कवत्तथा ।
कृष्णस्य यः[2] पिता शप्तः कुष्ठी तल्लुप्तपा ततः ।
तस्यां [3]तस्यामवस्थायां वैराग्यं समजायत ॥

मध्याह्नकाल के सूर्य के समान तेज, मध्याह्नकाल के सूर्य की तरह प्रदीप्त, वृद्ध सूर्य की तरह शान्त, रागी, वृद्ध सूर्य के तेज से युक्त, वृद्ध सूर्य की तरह नेत्री, वृद्ध सूर्य की तरह वह दुष्ट पैदा हुआ । कृष्ण का जो पिता था, अभिशप्त था, कुष्ठी था…… उसी अवस्था में वैराग्य पैदा हो गया ।

ततः सा पुत्रवात्सल्यात्कृष्णेन विदितात्मना ।
जामदग्न्याश्रमं पुण्यं तपस्तप्तुं विसर्जिता ॥

तदनन्तर वह पुत्रवात्सल्य से तप तपने के लिए विदितात्माकृष्ण से—

---

१ मुसलै २ यो ३ तस्यंम

नौबन्धनोत्सङ्गगतं सुप्रभं काननोत्तमम्।
आरोग्यं भास्करादिच्छेद्धनमिच्छेद्धुताशनात् ॥

नौ बन्धन के पास सुप्रभ, काननोत्तम जमदग्नि के पुण्य आश्रम पर छोड़ी गई। भास्कर से आरोग्य चाहे और हुताशन से धन चाहे।

शङ्कराज्ज्ञानमिच्छे[1]न्मोक्षमिच्छेज्जनार्दनात्।

शङ्कर से ज्ञान चाहे और जनार्दन से मोक्ष चाहे।

इति संचित्य दयया कृष्णेन विदितात्मना।
तपसा लभ्यते सर्वमितिबुद्ध्या विचार्य च ॥
आहूतो वैनतेयश्च प्रोक्तश्च हरिणा स्वयम्।
इमं रोगा[2]भिभूतं त्वं जाम[3]दग्न्याश्रमं नय ॥

विदितात्मा कृष्ण ने दया से यह सोचकर 'तपस्या से सब कुछ पाया जाता है' यह बुद्धि से विचार कर वैनतेय को बुलाया और हरि ने स्वयं कहा कि तुम रोग से अभिभूत इसे जामदग्नि के आश्रम को ले जाओ।

स तथेति प्रतिज्ञाय गृहीत्वा तं महावलम्।
तत्रासौ तं विनिक्षिप्य गतो[4]ऽन्तर्धि खगेश्वरः ॥

वह वैनतेय 'तथास्तु' यह कहकर उस महावली को ले और उसे वहां रख अन्तर्धान हो गया।

तस्मिन्स निर्गतो रोगी पतितो गतचेतनः।

उस पर वह निर्गत रोगी मूर्च्छित हो—

स्वर्गलोकाद्यथा कश्चिन्नक्षत्राणां परिक्षयात्।
सन्ध्याकाले ततो दृष्टस्तेनापि मुनिना च सः।
गृहीतश्चाथ शिष्यत्वे नियुक्तो दासकर्मणि ॥

स्वर्गलोक से गिर पड़ा, जैसे कोई नक्षत्र मण्डल के परिक्षय से। तदनन्तर सन्ध्या के समय उस मुनि ने भी उसे देखा और शिष्य के रूप में ग्रहण कर लिया तथा दासकर्म में नियुक्त कर दिया।

स तमाराधयामास जमदग्निमथाग्निवत्।
रेणुकां च महाभागं रामं च जयताम्बरम् ॥

उस ने अग्नि की तरह उस जमदग्नि, रेणुका और महाभाग परशुराम की आराधना की।

भक्त्या शुश्रूषया क्षान्त्या तपसा च दमेन च।
ततो वहुविधे काले गते पापक्षयादसौ।

---

१ मिच्छेत् २ भिभूतां ३ जमदग्न्या ४ गतोन्तर्धि

रेणुकायाः प्रसादाच्च लेभे स्वास्थ्यमनुत्तमम् ॥

भक्ति, शुश्रूषा, क्षान्ति, तपस्या और दम से बहुत समय बीत जाने पर पाप नष्ट हो जाने से उसने रेणुका के प्रसाद से अत्युत्तम स्वास्थ्य को पाया।

नष्टं हृतं महारत्नं पुनः प्राप्येव मानवः ।
लब्ध्वा दुर्लभमारोग्यं जमदग्निमथाह सः ॥

नष्ट हुए और हृत हुए महारत्न को फिर पाकर एवं दुर्लभ आरोग्य को पाकर उसने जमदग्नि से कहा।

कया दक्षिणया ब्रह्मंस्तुष्टिः संजायते तव ।
तामेव ते प्रयच्छामि यद्यपि स्यात्सुदुर्लभः ॥

हे ब्रह्मन् ! किस दक्षिणा से तेरी सन्तुष्टि होती है। उसी दक्षिणा को मैं तुम्हें देता हूँ, यद्यपि वह सुदुर्लभ क्यों न हो ?

तच्छ्रुत्वा परितुष्टस्तु मुनिः प्रोवाच सादरम् ।
यस्मिन्ममाश्रमे नित्यं वस[1]...

यह सुनकर प्रसन्न हुए मुनि ने आदर पूर्वक कहा कि मेरे आश्रम में तुम नित्य......रहो।

रेणुकायाश्च शुश्रूषां कुरु नित्यमतन्द्रितः ।

और नित्य अतन्द्रित हो रेणुका की सेवा करो।

कालत्रयं तथा गच्छेद्द्रष्टुं महिषवाहनम् ।
अमृतां वैष्णवीं मायां निद्रां दुर्गां विभावरीम् ।
द्वादशानान्तु मातॄणां मध्यस्थां केशवाकृतिम् ॥

महिषवाहन कालत्रय, अमृता, वैष्णवी, माया, निद्रा, दुर्गा, विभावरा तथा १२ माताओं के मध्य स्थित केशवाकृति का दर्शन करने के लिए जाए।

तां दृष्ट्वा[2]...... ग्रामम् ।
ग्रामशतं यत्तत्कश्यपेन महात्मना ।
दत्तं मह्यं महायज्ञे तत्र मे जलदो भवान् ।

उसका दर्शन कर ...जो ग्रामशत महात्मा कश्यप ने महायज्ञ में मुझे दिए थे, वहां आप मेरे लिए जलद हो।

वाढमित्येव तस्योक्त्वा तत्सर्वं कृतवांश्च सः ।
दिव्यं तद्वैष्णवं योगमाश्रित्य परमाद्भुतम् ॥

---

१ मद्दामनेरतः २ मूलपाण्डुलिपि में पाठाभाव

भौजङ्गमकरोद्रूपं चतुर्बाहु सुशोभनम् ॥

'बहुत अच्छा' यह उसे कह कर उसने वह सब कुछ किया। योग का आश्रय ले परम अद्भुत, चार भुजाओं वाले, सुन्दर तथा दिव्य उस वैष्णव भौजङ्ग रूप को धारण किया।

वैष्णवैरायुधैर्युक्तो मुखाद्विष्णुरिवापरः।
हलं सुमुसुलं दध्रे संकर्षण इवापरः॥
दधार शङ्खं पद्मं च वासुदेवो[1]ऽथ शक्तिमान्।
चोरैः फणिफणारोपैर्भूषितश्च विषोल्वणैः॥
वारुणीं धारणां बद्ध्वा[2] कृत्वा जलमयं[3] वपुः।
सुस्रात्र निर्मयन्तो[4]ऽयं रक्षोघ्नं सर्वरोगजित्॥

मुख से अन्य विष्णु की तरह वैष्णव-आयुधों से युक्त दूसरे संकर्षण की तरह सुमुसुल-हल को धारण किया। इसके बाद शक्तिशाली वासुदेव ने शङ्ख-पद्म को धारण किया। चोरों से और फणिफणाटोपों से युक्त विषोल्वणों से भूषित वारुणी धारणा को बान्धकर तथा जलमय शरीर कर सभी रोगों को जीतने वाले……

औद्भिदं वातपित्तघ्नं पुण्यं कल्पावसानिकम्।
मूर्तिं समर्प्य तत्रस्थो लब्धाज्ञस्तद्गुरो[5]र्मुखात्।
मुनिं प्रणम्य शिरसा द्वारिकां गन्तुमुद्यतः॥

औद्भिद-वातपित्तघ्न-पुण्यकर-कल्पावसानिक मूर्ति को समर्पित कर उस गुरुमुख से आज्ञा पा शिर से मुनि को प्रणाम कर द्वारिका जाने के लिए वह उद्यत हो गए।

गच्छतस्तस्य मुनिना वरो दत्तो महात्मना।
यत्र त्वामर्चयिष्यन्ति मनोवाक्कायसंयताः।
तेषां संभाव[6]··· सिद्ध्यन्तु च मनोरथाः॥

जाते हुए उसे महात्मा मुनि ने वर दिया कि मन-वाणी और शरीर से संयत हो जो यहां तेरी पूजा करेंगे, उन……के मनोरथ सिद्ध हों।

एवमस्त्विति तस्योक्त्वा गत्वा च पितृवेश्मनि।
आराध्य मातापितरौ परां निर्वृत्तिमाप्नुवान्॥

---

१ वासुदेवोथ २ बद्धा ३ जलमये ४ निर्मयन्तोयं ५ लब्धाज्ञोतद्गुरो-मुखात् ६……

'एवमस्तु' यह उसे कह और पिता के घर में जाकर तथा वहां माता-पिता की पूजा कर परा-निवृत्ति को प्राप्त हुआ।

कदाचित्पाण्डवान्द्रष्टुं वासुदेवे गते सति।
द्वारिकां समनुप्राप्तं घोरं दुर्वाससं मुनिम्।
पाद्यार्घ्यमधुप[1]र्कैस्तु यादवास्तमपूजयन्॥

कभी पाण्डवों को देखने के लिए वासुदेव के चले जाने पर द्वारिका में आए घोर दुर्वासा मुनि की यादवों ने पाद्य-अर्घ्य और मधुपर्क से पूजा की।

सुखासनोपविष्टन्तु कृताहारं ततस्तु ते।
अपृच्छन्मीलिताक्षं तं ते सर्वेऽमूढवत्स्थितम्॥
क्रीडार्थमवहासात्तु दैवोपहतबुद्धयः।
...[2]मासाद्य विविधैः स्त्रीणामाभरणैः शुभैः।
इयं स्त्री कामपुत्रस्य रत्रेरमिततेजसः।
महामुने सगर्भा किं जानीषे जन[3]यिष्यति॥

इसके बाद दैवोपहत बुद्धि हुए सभी उन्होंने क्रीड़ा के लिए उपहास से सुखासन पर बैठे हुए कृताहार और मीलिताक्ष एवं अमूढ़ की तरह स्थित उससे पूछा कि अनेक प्रकार के शुभ आभरणों से......यह अमित तेज वाले कामपुत्र रत्रि की स्त्री हे महामुने! सगर्भा है, क्या तुम जानते हो कि यह क्या पैदा करेगी?

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा दृष्ट्वा दिव्येन चक्षुषा।
स्वभावरोषणः प्राह विप्रलब्धश्च तैस्तु ताम्॥

उनके उस वचन को सुनकर, दिव्यचक्षु से देखकर स्वभाव से क्रोधी उन से ठगे हुए उसने उन्हें कहा।

वृष्ण[4]यन्धक विनाशाय घोरं मुस[5]लमायसम्।
वासुदेवसुतश्चायं सांभो जनयिता महत्॥

इस वासुदेव पुत्र साम्भ ने वृष्ण्यन्धक के नाश के लिए लोहनिर्मित घोर महा मुसल को पैदा किया।

तेन यूयं सुदुर्वृत्ताः सर्वैः सार्धं विनंक्ष्यथ।
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा कालदण्डोपमं च ते।
निःसंज्ञा शङ्किातास्त्रस्ताः प्रपातात्पतिता इव।
मैवमस्त्वति जल्पन्तः प्रार्थयन्तः पुनः पुनः॥

---

१ पर्कैस्तु २...... ३ जनयिष्यति ४ वृष्णंधक ५ मुसुल

जिससे दुराचारी तुम सब सभी के साथ नष्ट हो जाओ। उसके उस कालदण्ड के समान वचन को सुनकर चेतनाविहीन हुए, शङ्कित हुए और भयभीत हुए एवं जलप्रपात से गिरे हुए की तरह उन्होंने 'ऐसा मत हो' यों कहते हुए बार-बार प्रार्थना की।

तत्तद्विलपतां तेषामवमत्या[1]वमानितः।
न किञ्चि[2]दुक्त्वा दुर्वासास्तत्रैवान्तरधीयत।

विलाप करते हुए उनके वचन को न मान कर अपमानित हुए दुर्वासा बिना कुछ कहे वहीं अन्तर्धान हो गए।

कृष्णो[3]ऽपि द्वारिकामेत्य श्रुत्वा दुःसहमप्रियम्।
विषण[4]णवदन ··· [5]··· त्वचिन्तयत्॥

कृष्ण भी द्वारिका में आकर और दुःसह तथा अप्रिय वचन को सुनकर दुःखी शरीर से······सोचने लगे।

मूर्तिमन्तमिव क्रोधं कदाचिदथ तं मुनेः।
साम्भस्तु नवभिर्मासैरायसं मुस[6]लं महत्।
[7]······ मश्मरीमिव॥

इसके बाद कभी साकार रूप को धारण किए हुए क्रोध की तरह उस महान् लोहनिर्मित मुसल को ९ महीनों से साम्भ ने······

सञ्जातमात्रं मुस[8]लं चूर्णीकृत्य तु यादवाः।
सरस्वत्यां प्रभासेव समुद्रे च विचिक्षिपुः॥

पैदा होते ही मुसल को चूर-चूर कर यादवों ने सरस्वती में प्रभासा की तरह उसे समुद्र में फेंक दिया।

तस्माद्विधिवशाज्जाताः सुघोराः पूर्णयष्टयः।

उससे विधिवश घोर पूर्णयष्टिएं पैदा हुईं।

प्रभासे तु ततः स्नात्वा दत्वा दानं वृष्णयः।
पानमत्ता कृताहाराः कालस्य वशमाययुः॥
परस्परन्तु मर्माणि कर्तयन्तः पुनः पुनः॥

तदनन्तर प्रभास में स्नान और दान दे वृष्णि सुरापान से मदमत्त हुए और भोजनादि किए बार-बार एक दूसरे के मर्मभागों को काटते हुए काल के वश हुए।

---

१ मवमन्यं २ न किदुक्त्वा ३ कृष्णोपि ४ विषणवद ५ नश्चित्यदिष्टमेवा ६ मुसुलं ७ पाठाभाव ८ मुसुलं

प्रद्युम्नः कृतवर्माणमुवाच जनसंसदि ।
सौप्तिके भारते युद्धे यत्कृतं भवता पुरा ।

जनसंसद में प्रद्युम्न ने कृतवर्मा से कहा कि सौप्तिक भारत युद्ध के पूर्वयुग में आपने जो किया, वह राक्षस वा म्लेच्छ कभी करते हैं ।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा हार्दिक्यस्तमुवाच ह ।
यत्कृतं भवता गेहे शम्बरस्य महात्मनः ।
अधर्ममयस्य[1] चैतत्कुर्वन्ति चतुष्पदाः ।।

उसके उस वचन को सुनकर हार्दिक्य ने उसे कहा, जो आप ने महात्मा शाम्बर के घर में किया, अधर्ममय के घर में चतुष्पद ऐसा करते हैं ।

एवमन्यानि दुष्टानि कीर्तयित्वा परस्परम् ।
चक्रतुस्तौ[2] महायुद्धं पानमत्तावमर्षणौ ।।

इस प्रकार अन्य दुष्ट वचन एक दूसरे को कह सुरापान से मदमत्त हुए असहनशील उन दोनों ने महायुद्ध किया ।

ततो युयुधिरे चान्ये [3]द्वन्दशः सववृण्णयः ।
न्यस्तशस्त्रः समादाय समुद्रान्मुसलानि च ।।

इसके बाद अन्य सारे वृष्णि शस्त्र उठाए और समुद्र से मुसल लेकर आपस में युद्ध करने लगे ।

वासुदेवोऽपि[5] तान्वृष्णीन्ददाहाग्निर्वनं यथा ।
कृतवर्मादयस्तस्य पुत्राञ्जघ्नुः सबान्धवान् ।

वासुदेव ने भी उन वृष्णियों को नष्ट किया, जैसे अग्नि वन को जला देती है । कृतवर्मा आदि ने बन्धुसहित उसके पुत्रों को मार दिया ।

जरसा लुब्धकेनाथ कृष्णः सागररोधसि ।
निहतः पूर्णयष्ट्या[6] च जहौ प्राणान्विमूर्छितः ।

सागर के किनारे वृद्ध शिकारी द्वारा पूर्णयष्टि से प्रताड़ित कृष्ण ने मूर्च्छित हो प्राणों को छोड़ दिया ।

क्षात्रं धर्मं समासाद्य तत्र साम्भो[7]ऽपि दारुणम् ।
कृत्वा युद्धं रणाग्नौ च दीप्ते[8] हुत्वा कलेवरम् ।
योगेन परमादित्यं विवेश सुमहामतिः ।।

---

१ मयस्येचतत्कु० २ तुस्थौ ३ द्वंद्वशः ४ न्मुसुलानि ५ वासुदेवोपि ६ पूर्णयष्टयांच ७ साम्भोपि

क्षात्र धर्म को पाकर वहां महामति साम्भ ने भी दारुण युद्ध करके और प्रदीप्त युद्ध रूपी अग्नि में शरीर की आहुति दे योग द्वारा परम आदित्य में प्रवेश किया।

एवं संवर्तकादित्यः साम्भो भूत्वा दिवं गतः।

इस प्रकार साम्भ संवर्तकादित्य होकर स्वर्ग को गया।

शापस्यान्तं महायोगी कृतवर्मा सनातनः।
रहस्यं प्रोक्तवांस्तुष्टस्तत्सर्वं जमदग्नये॥
समन्त्रं सर्ववृत्तान्तं तत्पूजां च यथोचिताम्।

महायोगी सनातन कृतवर्मा ने जमदग्नि को समन्त्र सभी वृत्तान्त और उसकी यथोचित पूजा एवं उसका सभी रहस्य प्रसन्न हो कह डाला।

बलिपुष्पोपहारै[1]श्च सुगन्धैर्धूपदीपकैः।
सुगुप्ते कलशे पूज्यो घोरः संवर्तभास्करः॥
[2]वर्तुले मण्डले चाथ रथचक्रा[3]कृतौ सदा।
सिन्दूराद्यैर्महाद्रव्यैर्विचित्ररविकर्मणा॥
[4]नृत्यगीतादिभिर्भक्त्या होमजपसमाधिभिः।
दक्षिणाभि[5]र्यथाशक्त्या[6]......विवर्जितैः॥
प्रणवन्तु शिखोल्काय स्वाहेत्युच्चारय गिरा।
एष चिन्तामणिः प्रोक्तः कल्पवृक्षोऽ[7]थ कामधुक्॥
मोक्षन्तु सात्विकीं सिद्धि[8] मणिमाद्यान्तु[9] राजसीम्।
पातालयक्षवेतालसाधनीं तामसीं तथा॥
ददाति भगवान्सूर्यः प्रसन्नः सर्वकामदः।
इत्येतत्पूर्ववृत्तान्तमुक्तमत्र मया तव॥

बलि, पुष्प के उपहारों से, सुगन्धों से, धूपदीपों से, सिन्दूर आदि महा द्रव्यों से, विचित्र रविकर्म से, नृत्य-गीत आदि से, भक्ति से, होम-जप-समाधियों से, दक्षिणाओं से, यथा शक्ति रथचक्राकृति वर्तुलाकार मण्डल पर स्थित सुगुप्त कलश पर घोर संवर्तभास्कर की पूजा करनी चाहिए। शिखा के लिए 'प्रणव और उल्का के लिए 'स्वाहा' का वाणी से उच्चारण करे। यह चिन्तामणि कही है, जो कल्पवृक्ष की तरह कामनाओं को पूर्ण करने वाली है। सभी कामनाओं के देने वाले भगवान् सूर्य प्रसन्न हो सात्विकी सिद्धि

---

१ पुष्पेंपहारैश्च २ वर्तले ३ चक्रकृती ४ नृत्त ५ दक्षिणाभियर्था ६... पाठाभाव ७ वृक्षोथ ८ सिद्धि ९ माद्यातु

मोक्ष, राजसी सिद्धि मणि आदि और तामसी सिद्धि पातालयक्षवेतालसाधनी को देता है। इस प्रकार यह पूर्ववृत्तान्त मैंने तुम्हें यहां कहा है।

सुनन्दायास्तथा तीरे पुण्डरीकं महत्सरः।
अजगन्धं राजसूयं क्षीरोदञ्च सुनिर्मलम्।

सुनन्दा के तीर पर अजगन्ध राजसूय और क्षीरोद सुनिर्मल पुण्डरीक महा सरोवर है।

पूर्वामुखी विशोकार्ता[1] तैस्तैस्तीर्थवरैः सह।
गता वेगेन महता गुल्मस्थानं महर्द्धिमत्॥

पूर्व की ओर शोक से पीड़ित वह उन-उन तीर्थश्रेष्ठों के साथ महावेग से महा ऐश्वर्यशाली गुलमस्थान को गई।

तामागतां पुरा दृष्ट्वा विशोकां शोकनाशिनीम्।
चतस्रस्तु महानद्यः प्रणम्य विविशुश्च ताम्॥

शोकनाशिनी उस विशोका को आई हुई आगे देखकर उसे प्रणाम कर चारों महानदिएं उसमें प्रविष्ट हो गईं।

तुंबुरा च सुनन्दा च क्रौंचा मन्दाकिनी तथा।
तच्च पञ्चनदं तीर्थं मणिभद्राभिरक्षितम्

तुम्बुरा, सुनन्दा, क्रौञ्चा, मन्दाकिनी, मणिभद्राओं से अभिरक्षित वह पञ्चनद तीर्थ है।

पापवि[2]···वणौ तीर्थौ नागौ नन्दनशर्मणौ।
स्थितौ नागसहस्रैश्च सहितौ नित्यमेव हि॥
भूतनाथः स्थितस्तत्र तीर्थे चान्द्रार्कयोरपि।
भूतेश्वरं मह[3]त्तुंगं ख्यातं मा[4]···लये शुभे॥

वहां तीर्थ पर चान्द्रार्क में भी भूतनाथ स्थित है। शुभ··· में भूतेश्वर महत्तुंग प्रसिद्ध है।

दक्षिणस्यां विरूपाख्यो महादेवो वृषध्वजः।

दक्षिण दिशा में विरूपाख्य वृषध्वज महादेव हैं।

शतकोटिमयं पुण्यं तीर्थं गौतमकल्पितम्।
यत्र स्नात्वा जलं पीत्वा मुच्यते ब्रह्महत्यया॥

गौतमकल्पित शतकोटिमय यह पुण्य तीर्थ है, यहां स्नान कर जल पा ब्रह्महत्या से मुक्त हो जाता है।

---

१ विशोकार्त्ते २ ˆ पाठाभाव ३ त्चुंगं ४ पाठाभाब

ज्येष्ठेश्वराश्रमः पुण्यः पश्चिमायां दिशि स्थितः।
उत्तरस्यां गौतमस्य मुनेराश्रममुच्यते ॥

पश्चिम दिशा में पुण्य ज्येष्ठेश्वर-आश्रम है और उत्तर दिशा में गौतम मुनि का आश्रम कहा जाता है।

देवसेनापतिर्यत्र गाङ्गेयो नित्यसंस्थितः।

यहाँ देवताओं का सेनापति गाङ्गेय नित्य स्थित हैं।

अनादिसिद्धे तस्मिंस्तु चतुष्कोणेषु सङ्गमे।
कुरुक्षेत्रं प्रयागं च प्रभासं सागरस्तथा।
सारस्वत्यानि तीर्थानि[1] गङ्गाद्याः सरितस्तथा।
पाताले चान्तरिक्षे च यानि स्वर्गे भवन्ति च।
अद्यापि यत्र दृश्यन्ते देवाः पाषाणरूपिणः ॥

अनादि सिद्ध उस सङ्गम में चतुष्कोणों में कुरुक्षेत्र प्रयाग, प्रभास, सागर तथा सारस्वत्य तीर्थ एवं गंगा आदि नदिएं, पाताल, अन्तरिक्ष और स्वर्ग में जो हैं, वे आज भी यहाँ पाषाण रूप में देवता दिखाई देते हैं।

तीर्थमध्ये स्थितः स्थूलो गिरिरूपी च शङ्करः।
तत्रोपोष्य[2] यजेद्देवान्पितॄन्विप्रां[3]श्च मानवः

तीर्थ के मध्य स्थूल गिरिरूपी शङ्कर स्थित हैं, वहाँ उपवास कर मनुष्य देवता, पितर और ब्राह्मणों की पूजा करे।

प्रयत्ने[4]......दिन[5]......षडशीतिमुखेषु च।
यः[6]......विनिर्मुक्तो ब्रह्मलोकं व्रजेद्ध्रुवम् ॥
तस्मिंस्तीर्थे तनुं त्यक्त्वा रोगी याति शुभां गतिम्।
तस्मात्तीर्थाज्जलं पीत्वा मृतस्तत्र व्रजेद्दिवम् ॥

उस तीर्थ में शरीर छोड़ रोगी शुभ गति को पाता है। उस तीर्थ से वहाँ जल पीकर मृत व्यक्ति स्वर्ग को जाए।

तत्र संवत्सरं स्नानं कृत्वा ब्राह्मीं तनुं त्यजेत्।

वहाँ वर्ष भर स्नान कर ब्राह्मी शरीर को छोड़े।

ककोलाकुण्डतीर्थेषु मालाकुण्डोद्भवेषु च।
नद्यां च पापनाशिन्यां[7] तीर्थे वै पापनाशने[8]।

---

१ तीर्थाणि २ तत्रोपोध्य ३ न्विप्राश्च ४ मूलपांडुलिपि में पाठाभाव ५पाठाभाव ६ समापैवि ७ पापनाशिनी ८ पापनाशिनो

तेषामेकैकशः स्नानाद्राजसूयफलं लभेत् ।।

ककोला कुण्ड तीर्थों में और माला कुण्डोद्भवों में तथा पापनाशिना नदी में एवं पापनाशक तीर्थ में, इनका एक-एक बार स्नान करने से राजसूय यज्ञ का फल पाए।

देवैः कृतयुगे पूर्वं तीर्थं देवरः कृतम् ।
यज्ञोपवीतमात्राणि तयोस्तीर्थानि[1] संत्यपि ।
अश्वमेधफलं तत्र स्नानमात्राद्भवेन्नृणाम् ।
विष्णुलोकगतिश्चैव देवानामपि दुर्लभा ।।

पहले कृतयुग में देवताओं ने ······वहां स्नानमात्र से मनुष्यों को अश्वमेघ यज्ञ का फल प्राप्त होवे और विष्णुलोकगति को प्राप्त होवे, जो देवताओं के लिए भी दुर्लभ हैं।

मायाकूपः कलियुगे प्राप्ते[2] परमदारुणे ।
आकृष्टो वासुदेवेन स्थितो देवसुरोऽन्तिके ।।

परमदारुण कलियुग के आने पर वासुदेव ने मायाकूप आकृष्ट किया, जो देवसर के पास स्थित है।

घोरमृत्युमुखाकारः पातालान्ते महावटः ।
यत्र श्राद्धं पितृभ्यश्च[3] कृतं भवति चाक्षयम् ।।

पाताल के अन्त में घोर मृत्युमुखाकार महावट है, यहां पितरों के लिए किया गया श्राद्ध अक्षय होता है।

नदी सरस्वती चैव यस्यां स्नातो दिवं व्रजेत् ।
पूर्वदक्षिणदिग्भागे स्थिता देवसरोऽ[4]न्तिके ।।

देवसर के पास पूर्व-दक्षिणभाग में सरस्वती नदी स्थित है, जिस में स्नान करने से स्वर्ग को जाए।

विनता स्वामिपुरतः कद्रूस्वामिसमीपतः ।
तीर्थयोस्तु नरः स्नात्वा गोशतस्य फलं लभेत् ।।

विनता स्वामिपुर से कद्रूस्वामिसमीप से तीर्थों में मनुष्य स्नान कर सौ गाय के दान का फल पाए।

सन्ध्यादेवी नदी यत्र तस्यां स्नातो दिवं व्रजेत् ।
सन्ध्यापुष्करिणी त्वन्या सन्ध्यातुल्यफलप्रदा ।।

---

१ स्तीर्थाणि २ प्रंप्ते ३ पितृभ्यिश्च ४ देवसरोन्तिके

यहाँ सन्ध्या देवी नदी है, उसमें स्नान कर स्वर्गलोक को जाए। सन्ध्या पुष्करिणी अन्या है, जिसका सन्ध्या के समान फल है।

अयस्कान्तास्तु मणयः सन्ति तत्र समन्ततः।
तीर्थयोस्तु नरः स्नात्वा गोशतस्य फलं लभेत् ॥

वहाँ चारों तरफ अयस्कान्त मणिएं हैं। इन तीर्थों में मनुष्य स्नान कर सौ गाए के दान का फल पाए।

तत्रापि सुन्दरी नद्यां स्नात्वा स्वर्गमाप्नुयात्।

वहाँ भी सुन्दरी नदी में स्नान कर मनुष्य स्वर्ग को पाए।

इन्द्रकूपे नरः स्नात्वा सर्वा[1]पस्मारनाशने।
चतुर्षष्ठिमहाघोरांस्तत्क्षणान्निर्दहेद्ग्रहान् ॥

सभी प्रकार के अपस्मार रोग को नष्ट करने वाले इन्द्रकूप में मनुष्य स्नान कर ६४ महाघोर ग्रहों को तत्क्षण जला दे।

कौमोदी तु सभा यत्र देवानां विद्यते भुवि।
स्वयम्भूर्भगवांस्तत्र संस्थितश्चापि……[2] ॥

यहाँ पृथ्वी पर देवताओं की सभा है, वहाँ भगवान् स्वयम्भू……

वासुदेवश्च भगवान्नित्यं सन्निहितः स्थितः।
तत्र[3]……पूजयित्वा तु गोसहस्रफलं लभेत् ॥

और वासुदेव भगवान् नित्य समीप स्थित हैं, वहाँ उनकी पूजा कर हजार गाय के दान का फल पाए।

इति श्री आद्यपुराणे श्रीसनत्कुमारसंवादे देवशिरोपजाततीर्थ-संग्रहे काश्मीरमण्डले नौबन्धनादियात्रा महिमा नाम पटलः [4]सम्पूर्णः

॥ भद्रं [5]पश्येमोम् ॥

---

१ सर्वापप्स्मार २ पावकिः ३ पाठाभाव ४ सम्पूर्णम् ५ पश्येभोम्

श्री भैरव्युवाच—श्री भैरवी बोली—

श्रुत्वा[1]चौरेशकायस्य महिमानमनुत्तमम् ।
कृतार्थास्मि न सन्देहः क्रीतास्मि जगदीश्वर ॥

चौरेश काय की अत्युत्तम महिमा को सुनकर मैं कृतार्थ हूं, इसमें सन्देह नहीं है । हे जगदीश्वर ! मैं खरीदा जा चुका हूं ।

इदानीं श्रोतुमिच्छामि हरिद्राख्यं गणेश्वरम् ।
हरिद्रपारके ग्रामे विख्यातं परमेश्वर ॥

अब मैं हरिद्राख्य गणेश्वर के विषय में सुनना चाहता हूं, जो हे परमेश्वर ! हरिद्रपारक ग्राम में प्रसिद्ध है ।

पूजनाद्यत्फलं प्रोक्तं[2]दर्शनाद्यत्फलं लभेत् ।
स्नानाद्दानाज्जपाद्धोमात्तन्मे वद सुविस्तरम् ॥

पूजन से जो फल कहा गया है, दर्शन से जो फल पाए, स्नान, दान, जप और होम से जो फल मिले, वह मुझे विस्तार से कहिए ।

ॐ भैरवः—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि हरिद्राख्यं गणे[3]श्वरम् ।
हरिद्रापारके ग्रामे दर्शनाद्यत्फलं लभेत् ॥

हे देवि ! सुनिए, मैं हरिद्राख्य गणेश्वर के विषय में कहता हूँ । हरिद्रापारक ग्राम में दर्शन से जो फल पाए ।

स्थलवाटे पुरा शम्भुर्देवानां हितकाम्यया ।
विहारमकरोत्तत्र पार्वत्या सह सुन्दरि ॥

पूर्वयुग में स्थलवाट में महादेव ने देवताओं की हित की कामना से हे सुन्दरि ! वहाँ पार्वती के साथ विहार किया ।

विजयेशे मृता ये च ते मुक्ता नात्र संशयः ।
विजयापारके ये च मृता रुद्रपिशाचकाः ॥
त एव भगवन्तन्तु स्तुतिभिर्नुतिभिश्चिरम् ।

---

१ घौरेश २ प्रोक्तो ३ गणेश्वरं

प्रसाद्य परया भक्त्या स तान्नमृतपानकैः।
अमृतत्वं ददौ तेषाममरेशस्ततः स्मृतः॥

विजयेश में जो मर चुके हैं और वे मुक्त हो गए, इसमें संशय नहीं है। विजयापारक में जो रुद्रपिशाचक मरे, उन्होंने ही भगवान् को स्तुतियों सेनुतियों से चिर काल तक परम भक्तिपूर्वक प्रसन्न किया। उसने अमृतपानकों से उन्हें अमृतत्व दिया, इसके बाद वह 'अमरेश' नाम से जाना जाने लगा।

श्रुत्वाप्यमृतपा[1]नन्तु मृतानां विजयापरे।
शक्राद्याः परमाक्रुद्धा वटं चक्रुः शिवादधः।
स्थल एव महेशानि स्थलवाटस्ततः स्मृतः॥

विजयापर में मरे हुओं का अमृतपान सुनकर इन्द्र आदि ने परम क्रुद्ध हो शिव के नीचे वट को किया। हे महेशानि! तदनन्तर वह स्थल 'स्थलवाट' नाम से जाना जाने लगा।

श्रुत्वा तेषामावरणं देवानां भगवान् भवः।
परिवृत्य महाकोपात्तदान्तर्धानमीयिवान्॥

भगवान् महादेव उन देवताओं के······को सुनकर महाक्रोध से घूमकर तब अन्तर्धान हो गए।

अमृतभाण्डमुत्सृज्य तत्रैव वरवर्णिनि।
ऐडा भूत्वा देवगणाः कान्दिशीका हतौजसः॥
अन्वेषणपराभूवन्सर्वतः सुरपूजिते।
यदा न ज्ञायते तस्य गतिर्देवैर्महे······[2]
समेत्य सर्वे तत्रैव ब्रह्माणं शरणं ययुः॥

हे वरवर्णिनि! वहीं पर अमृतभाण्ड छोड़ निस्तेज हो······देवगण ऐडा होकर हे सुरपूजिते! चारों तरफ ढूंढने लगे। जब देवताओं से उस महादेव गति का पता न लगाया जा सका, तब वे सब वहीं आकर ब्रह्मा की शरण में आए।

दृष्ट्वा देवगणान्ब्रह्मा प्रहस्येदमुवाच ह।
वदध्वं भो देवगणा इहागमनकारणम्॥

देवताओं को देखकर ब्रह्मा ने हंसते हुए यह कहा कि हे देवताओ! यहाँ

---

१ मृतपंनतु २ मंहेशितु

आने का कारण कहिए ।

अविलम्बात्करोम्येष सर्वेषामपि दुर्लभम् ।

सभी के लिए भी दुर्लभ कार्य को बिना विलम्ब के यह मैं करता हूँ ।

श्रुत्वैतद्ब्रह्मणो वाक्यं देवा धृतिसमन्विताः ।।

ब्रह्मा के इस वाक्य को सुनकर देवता धैर्य युक्त हुए ।

अपराधः कृतो[1]ऽस्माभिर्मत्यागमनकारणात् ।
क्रुद्धैर्वाटः कृतः सर्वैः स्थल एव न संशयः ।

हमने······अपराध किया है । हम सब ने क्रुद्ध हुए वाट स्थल ही बना दिया । इसमें संशय नहीं है ।

अस्मदागस्तदा ज्ञात्वा भगवान्भक्तकामदः ।
अन्तर्धानमगा[2]त्सद्यः पश्यतामेव मानद ।

भक्तों की कामकाएं पूर्ण करने वाले भगवान् हमारे अपराध को जानकर हे मानद ! हमारे देखते ही वह झट अन्तर्धान हो गए ।

न जानीमो[3]ऽधुना तस्य गतिं शम्भोर्महात्मनः ।
तदर्थमेव भगवन्भवन्तं शरणं श्रिताः ।।

अब हम उस महात्मा शम्भु की गति को नहीं जानते हैं. हे भगवन् ! उसके लिए ही हम आप की शरण में आए हैं ।

श्रुत्वैतद्वचनं तेषां देवानां वै प्रजा[4]पतिः ।
उवाच देवदेवस्याप्यनन्तस्यापि वारणम् ।

उन देवताओं के यह वचन सुनकर प्रजापति ने अनन्त भी देवाधिदेव महादेव के······विषय में कहा ,

वाटेन चैकदेशस्य पूर्णस्य सर्वव्यापिनः ।
गच्छध्वमधुना देवा पार्श्वे दक्षिणसंज्ञके ।।

हे देवताओ ! अब तुम एकदेश-पूर्ण-सर्वव्यापी के वाट के साथ दक्षिण नामक पार्श्व में जाइए ।

श्री शैले ह्यमरावत्यास्तटे गुहास्थमीश्वरम् ।
रसलिङ्गस्वरूपेण स्थितं पश्यध्वमादरात् ।।

अमरावती के तट पर श्रीशैल में रसलिङ्ग स्वरूप से गुहा में स्थित ईश्वर के आदर के साथ दर्शन कीजिए ।

---

१ कृतोस्माभि २ मगान्सद्यः ३ जानीमोधुना ४ प्रजंपतिः

श्री भैरवः—

श्रुत्वा देवाः प्रभोर्वाक्यमुत्थाय ब्रह्मलोकतः ।
समेत्यात्र ययुस्तत्र पार्श्वे दक्षिणराष्ट्रके ॥

प्रभु के वचन को सुनकर देवता उठ ब्रह्मलोक से यहां आकर वहां पार्श्व में दक्षिणराष्ट्र को गए ।

शम्भुना गणपं तत्र कृत्वा त्रिविधविग्रहम् ।
सर्वविघ्ननिषिद्धारं त्रिकक्ष्यासु [1]न्यवेशयत् ॥

महादेव ने वहां सभी विघ्नों को दूर करने वाले गणेश को त्रिविध-विग्रह बनाकर त्रिकक्ष्याओं में स्थापित किया ।

देवास्तु प्रथमां कक्ष्यां प्राप्य तत्र गणेश्वरम् ।
निषेधकारणं तत्र नागणन्नवहेलया ॥

देवताओं ने प्रथम कक्ष्या को पाकर वहां निषेधकारण गणेश की अवहेलना पूर्वक परवाह न की ।

कोपादुदचलद्देवो गणेशः शस्त्रमाददत् ।

गणेशदेव क्रोध से चल पड़े और शस्त्र को ले लिया ।

दृष्ट्वोद्यतं गणपतिं शस्त्रपाणिं सुरारिहा ।
वज्रमुद्यम्य तं देवो भर्त्सयामास पार्वति ॥

शस्त्र हाथ में लिए उद्यत गणपति को देखकर इन्द्र ने हे पार्वति ! वज्र उठा उसकी भर्त्सना की ।

वज्रोद्यमान्महादेवि महागणपतिः प्रभुः ।
क्रुद्धः परशुनोड्डारं पर्वतं समुदीर्णवान् ॥

हे महादेवि ! वज्र उठाए उसे देखकर क्रुद्ध हुए महागणपति प्रभु ने अपने परशु से उड्डार नामक पर्वत को चीर दिया ।

तदा परशुज्वालाभिर्दग्ध इत्युच्यते बुधैः ।
दग्धोड्डारं परित्यज्य देवाः पारे[3]ऽत्र तस्थिरे ॥

तब परशु की ज्वालाओं से वह पर्वत जल गया, यह विद्वानों से कहा जाता है । जले हुए उड्डार पर्वत को छोड़कर देवता यहां पार खड़े हो गए ।

ततः कोपाद्धरिद्रांगो वभूव गणपः प्रिये ।

हे प्रिये ! इसके बाद गणपति क्रोध से हरिद्राङ्ग हो गए ।

---

१ ज्यिवेशयत् २ दृष्ट्वोद्यंतं ३ पारेत्र

शक्रो वज्रप्रहारेण पर्वतं समुदीर्णवान् ।
तत्रोपला गिरेस्तस्मात्समुत्तस्थुर्यदृच्छया ।।

इन्द्र ने वज्र के प्रहार से पर्वत को फाड़ दिया, तब उस पर्वत से स्वेच्छापूर्वक उपले पैदा हुए ।

[1]सर्वमभवत्पूर्णं वन तदुपलैः प्रिये ।
ततः प्रभृति देवेशि प्रथितो भुवनत्रये ।
ग्राम उपलवनाख्यो[2]ऽत्र सर्वविघ्नापहारकः ।।
यतः कोपेन गणपो हरिद्रत्वमुपागतः ।
ततः प्रोक्तः पुराविद्भिर्हरिद्राख्यो गणेश्वरः ।।

हे प्रिये ! वह सारा वन उपलों से भर गया । हे देवेशि ! तब से लेकर तीनों लोकों में वह सभी विघ्नों को दूर करने वाला गांव 'उपलवन' नाम से प्रसिद्ध हुआ ।

क्योंकि क्रोध से गणपति हरिद्रत्व को प्राप्त हुए, इसके बाद पुरातत्ववेत्ताओं ने इसे हरिद्राख्य गणेश्वर नाम से कहा ।

हरिं वैद्रावयंस्तत्र महापरशुज्वालया ।
ततः स प्रथितो लोके हरिद्राख्यो गणेश्वरः ।।

वहां उसने महापरशु की ज्वाला से हरि को भगाया, इसलिए वह संसार में 'हरिद्राख्य गणेश्वर' प्रसिद्ध हुआ ।

उल्लोलविषये पुण्ये नाग उल्लोलनामनि ।
देवाः पूजापरा आसन्दैत्याश्च वरवर्णिनि ।।

उल्लोल देश के भीतर पवित्र उल्लोल नामक नाग में हे वरवर्णिनि ! देवता और दैत्य पूजा कर रहे थे ।

ज्येष्ठाषाढभवैः पुण्यैः शम्भोर्भगवतः प्रिये ।
उल्लोलादुद्भूवा या वै नदी परमपावनी ।

हे प्रिये ! भगवान् शम्भु के ज्येष्ठाषाढ़ा से पैदा हुए पुण्यों से जो परमपवित्र नदी उल्लोल से पैदा हुई ।

ज्येष्ठाषाढेति नामास्याः कथितन्तु पुरातनैः ।
ज्येष्ठाषाढातटे पुण्ये स्थितं हरिद्गणेश्वरम् ।
दृष्टवा तु मुच्यते जन्तुर्महापातककोटिभिः ।।

पुरातन पुरुषों ने 'ज्येष्ठाषाढ़ा' यह इसका नाम कहा है । पुण्यप्रद

---

१ सर्वंमभव २ वनाख्योत्र

ज्येष्ठाषाढ़ा के तट पर स्थित हरिद्गणेश्वर के दर्शन कर मनुष्य करोड़ों महापापों से मुक्त हो जाता है।

हरिद्रं गणपं दृष्ट्वा विघ्नसंघैर्न वाध्यते[1]।

हरिद्र गणपति के दर्शन कर मनुष्य विघ्नसमूहों से वाधित नहीं किया जाता।

संकटं प्राप्य मनुजो महागणपतिं यजेत्।
मुच्येच्च संकटाद्घोरादिति सत्येन ते शपे।

संकट को पाकर मनुष्य महागणपति की पूजा करे और घोर संकट से मुक्त हो जाए, यह सत्य की शपथ मैं तुझ से करता हूँ।

दर्शनात्पापशमनो जपात्संकटनाशनः।
सर्वकामप्रदो होमान्महापातकनाशनः॥

दर्शन से पापों को शान्त करता है, जप से संकटों का नाश करता है और होम से सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला एवं महापापों को नष्ट करने वाला है।

ज्येष्ठाषाढां नदीं स्नात्वा पूजयित्वा विनायकम्।
होमं कृत्वा विधानेन चानन्त्यं फलमाप्नुयात्॥

ज्येष्ठाषाढ़ा नदी में स्नान कर, विनायक की पूजा कर और विधिपूर्वक हवन कर अनन्त फल पाए।

अजं वलिं मेषमपि वलिदाने प्रकल्पयेत्।
न स्त्रियं न च हीनाङ्गं न षण्डं वलिमर्पयेत्॥

बकरी एवं भेड़ को भी वलिदान में प्रयुक्त करे। स्त्री, हीनाङ्ग और नपुंसक की वलि न दे।

तत्रैव वलिदानेन मुच्येदापन्न आपदः।
संकटाद्विघ्नसंघाच्च मुच्येदेव न संशयः॥

वहीं वलिदान से अपद्ग्रस्त आपत्ति से मुक्त हो जाए। संकट से और विघ्नसमूह से मुक्त हो जाए, इसमें संशय नहीं है।

स्तुत्वा हुत्वा च नुत्वा च जप्त्वा ध्यात्वा विनायकम्।
मुच्येच्च वारुणात्पाशादिति सत्यं वदामि ते॥

स्तुति कर, हवन कर, नमस्कार कर, जप कर, और विनायक का

---

१ बंध्यते

ध्यान कर वारुण पाश से मुक्त हो जाए, यह मैं तुझे सत्य कहता हूं।

पुत्रार्थी लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनम्।
कन्यार्थी लभते कन्यां रूपशीलगुणान्विताम्[1] ॥

पुत्र को चाहने वाला पुत्र पाता है, धन चाहने वाला धन पाता है और कन्या चाहने वाला रूप शील-गुणों से युक्त कन्या को प्राप्त करता है।

दारार्थी लभते दारां मनोवृत्तानुसारिणीम्।
विद्याकामस्तु श्री विद्यां प्राप्नुयान्नात्र संशयः ॥

पत्नी चाहने वाला मनोऽनुकूल पत्नी पाता है । विद्या चाहने वाला श्रीविद्या को पाए, इसमें संशय नहीं है।

इदं पुंसवनं[2] नाम इदमायुष्प्रवर्धनम्।
इदं पुण्यं महाक्षेत्रं कलिकल्मषनाशनम्।

यह पुंसवन नामक है, यह आयु बढ़ाने वाला है, यह पुण्यप्रद महाक्षेत्र कलियुग के पापों को नष्ट करने वाला है।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सदेदं क्षेत्रमाश्रयेत्।
इति ते [3]कथितं देवि महाफलप्रदं कलौ।
हरिद्राख्यो[4]गणपतिः किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥

इसलिए सभी यत्न से सदा इस क्षेत्र का सेवन करे । हे देवि ! इस प्रकार कलियुग में महाफल देने वाला यह हरिद्राख्य गणपति मैंने तुझे कहा है और क्या तुम सुनना चाहती हो ?

इति श्री श्री संहिताया[5]मुल्लोलविषयोपजाततीर्थसंग्रहे श्री हरिद्रगणेश[6]माहात्म्मं नाम पटलः ॥

---

१ गुणान्नितं २ पुंसनं ३ कथितो ४ हरिद्राक्षो ५ संहितायांमुल्लूर ६ मंहास्म्यं

ॐ श्री भैरव्युवाच— श्री भैरवी बोलीं—

स्मारं स्मारं महादेव राज्ञः [1]प्रादुर्भवं महत्।
आश्चर्यभूतं सर्वस्य जगतः परमेश्वर॥
कृतार्थास्मि कृतार्थास्मि चोद्धृतास्मि भवाम्बुधेः।
अधुना श्रोतुमिच्छामि लक्ष्मीप्रादुर्भवं महत्।
यच्छ्रुत्वा मुच्यते जन्तुर्ब्रह्महत्यादिपातकैः॥

हे महादेव ! हे परमेश्वर ! सभी संसार के लिए आश्चर्यकर महाराज्ञी प्रादुर्भाव के विषय को स्मरण कर मैं कृतार्थ हो गया हूं और संसार के सागर से उद्धृत हो चुका हूँ। अब महालक्ष्मी प्रादुर्भाव के विषय में सुनना चाहता हूँ, जिसे सुनकर प्राणी ब्रह्महत्या आदि पापों से मुक्त हो जाता है।

श्री भैरव उवाच — श्री भैरव बोले—

शृणु सुश्रोणि वक्ष्ये[2]ऽहं श्रीप्रादुर्भवमुत्तमम्।
यस्य श्रवणमात्रेण वाजपेयफलं लभेत्॥

हे सुश्रोणि ! सुनिए, मैं उत्तम श्रीप्रादुर्भाव के विषय में कहता हूं, जिस के सुनने मात्र से वाजपेय यज्ञ के फल को पाए।

सुरासुरैः पुरा देवि मथितः क्षीरसागरः।
मन्दारं मन्थनं कृत्वा कूर्मस्योपरि मुन्दरि।
रज्वं तु वासुकिं कृत्वा पुच्छे ह्यासन्सुरा प्रिये॥

हे देवि ! पूर्व युग में सुर और असुरों ने क्षीरसागर का मन्थन किया। हे सुन्दरि ! कूर्म के ऊपर मन्दार पर्वत को मन्थन के स्थान पर प्रयुक्त कर और रज्जु के स्थान पर वासुकि को लगा हे प्रिये ! देवता उसकी पूँछ पर स्थित हो गए।

वासुकेस्तु मुखे तस्थुरसुराः सुरपूजिते।
ममन्थुरुदधिं देवि ह्यमृतार्थे सुरासुराः॥

---

१ राज्ञः प्राज्ञा प्रादुर्भवं २ वक्ष्येहं

हे सुरपूजिते ! वासुकि के मुख पर असुर स्थित हुए और हे देवि ! सुर और असुर अमृत पाने के लिए समुद्र का मन्थन करने लगे ।

वलेन मथ्यमानाच्च समुद्राज्जज्ञिरे दश
चत्वारि चापि रत्नानि कौस्तुभादीनि सुन्दरि ।।

वलपूर्वक मथे जाते हुए समुद्र से कौस्तुभ आदि १४ रत्न हे सुन्दरि ! पैदा हुए ।

त्रयोदशापि देवैश्च प्रगृहीतानि सुन्दरि ।
चतुर्दशं कालकूटं प्रगृहीतं न केनचित् ।।

हे सुन्दरि ! १३ रत्न तो देवताओं ने ले लिए, पर १४ वां कालकूट विष किसी ने नहीं लिया ।

शक्रेन ह्यमृतं चाथ-ऐरावतनू[1]न्नपि
गृहीतं विष्णुना चापि कौस्तुभं श्रीरपीश्वरि ।।

हे ईश्वरि ! इन्द्र ने अमृत और ऐरावत हाथी ले लिया और विष्णु ने भी कौस्तुभ मणि एवं लक्ष्मी को ले लिया ।

भक्षितं कालकूटं च रुद्रेण सुमहात्मना ।
विषं भुक्त्वा महादेवो[2]ऽप्यगाद्वै हिमपर्वतम् ।।

महात्मा रुद्र ने कालकूट-विष पी लिया और विषपान कर महादेव हिमपर्वत को चले गए ।

रत्नानि तु गृहीतानि दृष्ट्वा ते दैत्यपुंगवाः ।
कालकूटस्य गन्धेन प्रमत्ता वभ्रमुः प्रिये ।।

हे प्रिये ! रत्नों को लिए हुए देखकर वे दैत्यपुङ्गव कालकूट विष का गन्ध से मत्त हुए घूमने लगे ।

दृष्ट्वा श्रियं कामय[3]माना गृ[4]हीतुमुपचक्रमुः ।
गृहीत्वा तु श्रियं दैत्या ययुराकाशवर्त्[5]मना ।।

लक्ष्मी को देख चाहते हुए उसे ग्रहण करने का वे यत्न करने लगे । लक्ष्मी को ग्रहण कर दैत्य आकाशमार्ग से चले गए ।

तेऽ[6]पि प्राप्ता महादेवि हिमाचलमनुत्तमम् ।
ताननुदुद्रवुर्देवा विष्णुना सह सुन्दरि ।।

हे महादेवि ! वे भी अत्युत्तम हिमाचल में पहुंचे । हे सुन्दरि ! विष्णु के

---

१ तनूनपि २ महादेवोप्य ३ कामयाना ४ ग्रहीतुमुप ५ वत्मना ६ तेपि

साथ देवता उनके पीछे दौड़े।

दृष्ट्वानुयातांस्तान्देवान्दैत्या परमदर्पिताः।
लक्ष्मीसंगोपने चक्रुर्मतिं[1] सुरवरार्चिते॥

पीछे आते उन देवताओं को देखकर परम अभिमत्त वे दैत्य लक्ष्मी को छिपाने के लिए सोचने लगे।

पर्वतस्य गुहायां तां श्रियं गुप्ताकृतिं व्यधुः।

पर्वत की गुफा के भीतर उस लक्ष्मी को गुप्त आकृति के रूप में उन्होंने रक्खा।

गुप्ताकृतिर्यत्र दैत्यैः कृता जलधिनन्दिनी।
सदेशः प्रथितो[2]ऽद्यापि गोप्या[3]कार इतीश्वरि॥

लक्ष्मी को यहां दैत्यों ने गुप्त आकृति के रूप में रक्खा, हे ईश्वरि! वह देश आज भी 'गोप्याकार' नाम से प्रसिद्ध हुआ।

गोप्याकारे हुतं दत्तमर्चनं विधिना कृतम्।
जपं स्वाध्यायमथवा यात्यक्षय्यं महेश्वरि॥

हे महेश्वरि! गोप्याकार में हवन किया गया, दान दिया गया, विधि से पूजा की गई, जप अथवा स्वाध्याय किया गया अक्षयता को प्राप्त होता है।

दग्धास्ते विषगन्धेन दैत्याः संगोप्य च श्रियम्।[4]

लक्ष्मी को छिपा कर वे दैत्य विषगन्ध से जल गए।

दृष्ट्वा दलसरः पुण्यमीयुषुः[5] स्नातुमुद्यताः।
सस्नुस्तत्र महादेवि पुले दलसरोवरे॥

पुण्यप्रद दलसर को देखकर स्नान करने के लिए गए। हे महादेवि! वहां दलसरोवर......में उन्होंने स्नान किया।

शेवलान्पंकितान्दैत्यां[6]श्चक्रुषुर्जलमध्यतः।
मूर्तिं शिवस्य तत्राशु दैत्या जलघटैर्वलिम्॥
दद्युर्भक्त्या महेशानि पुपूजुर्भजने रताः।
ननृतुश्चैव ते दैत्याः पपुर्जलमनुत्तमम्॥

जल के मध्य से वहां दैत्यों ने शीघ्र शिव की मूर्ति को जलघटों से वलि दी और हे महेशानि! भजन में लगे हुए उन्होंने भक्तिपूर्वक पूजा

---

१ मंति २ प्रथितोद्यापि ३ गोप्यंकार ४ श्रियंम् ५ मिपुषुः ६ दैंत्याश्च

की ओर नाचने लगे तथा उन दैत्यों ने अत्युत्तम जल का पान किया।

पुनर्ददुर्वलिं दैत्या घर्घरीभिः परं शिवम्।

फिर दैत्यों ने घर्घरिओं से परमशिव को वलि दी।

यत्र तैर्दैत्यसंघैस्तु घर्घरीभिर्वलिः कृतः।
ततः प्रोक्तः पुराविद्भिर्घर्घरीवलिसंज्ञितः॥

यहां उन दैत्यों ने घर्घरिओं से वलि दी। इसके बाद पुरातत्ववेत्ताओं ने उसे घर्घरिवलि नाम से कहा।

स्नात्वा च घर्घरीतीर्थे पुण्यं कृत्वा विधानतः।
अक्षय्यं फलमाप्नोति वाजपेयादियज्ञजम्॥

घर्घरीतीर्थ में स्नान कर और विधिपूर्वक पुण्यकर वाजपेय आदि यज्ञ से पैदा हुए अक्षय्य फल को पाता है।

स्नाय्यमानान्दैत्यगणान्दृष्ट्वा विष्णुः सहा[1]मरैः।
शिवं परमया वाचा तुष्टाव जगदीश्वरम्॥

देवताओं के साथ विष्णु ने स्नान करते हुए दैत्यों को देखकर परमवाणी से जगदीश्वर शिव की स्तुति की।

विष्णवादयः ऊचुः—विष्णु आदि बोले—

ॐ शिवं प्रभुं शर्वमनन्तवीर्यं त्र्[2]यम्बकं विश्वरूपं महेशम्।
विश्वोद्भवं विश्वमाद्यं त्रिरूपं त्रिलोकेशं देवदेवं प्रपद्ये॥ १॥

शिव, प्रभु, शर्व अनन्तवीर्य, त्र्यम्बक, विश्वरूप, महेश, विश्वोद्भव, विश्व, आद्य, त्रिरूप, त्रिलोकेश, देवाधिदेव महादेव की शरण में मैं हूँ।

त्रिधामेशं त्र्यक्षरं वै त्रिनेत्रं त्र्यावासं तं त्र्यवरं त्र्यक्षमीशम्।
त्रिप्रावारं त्रिदिवेशं विरूपं भूतावासं तं प्रपद्ये महेशम्॥ २॥

त्रिधामेश, त्र्यक्षर, त्रिनेत्र, त्र्यावास, त्र्यवर, त्र्यक्ष, ईश, त्रिप्रावार, त्रिदिवेश, विरूप, भूतावास उस महेश की मैं शरण में हूं।

मीढुष्टमं शिपिविष्टं कपर्दिनं शान्तं शिवममरेशं महेशम्।
भवं रुद्रमादिदेवं सनातनं भद्रावासं शरणं तं प्रपद्ये॥ ३॥

मीढुष्टम, शिपिविष्ट, कपर्दी, शान्त, शिव, अमरेश, महेश, भव, रुद्र, आदिदेव, सनातन भद्रावास उस की मैं शरण जाता हूँ।

सर्वावासं सर्वपं पार्वतीशं विश्वेश्वरं विश्वनाथं पराग्र्यम्।

---

१ सहामरः २ त्रियंबकं

वृषध्वजं वृषभाक्षं वृषाढ्यं वृषाग्र्यं वै शरणमहं प्रपद्ये ।। ४ ।।

सर्वावास, सर्वप, पार्वतीश, विश्वेश्वर, विश्वनाथ, पराग्र्य, वृषध्वज, वृषभाक्ष, वृषाढ्य, वृषाग्र्य की मैं शरण जाता हूँ।

अनुत्तरं ज्योतिषां ज्योतिरेकं ब्रह्मातीतं निर्गुणं निर्विकारम् ।
निरन्तरं निर्भरं निर्विषादं शिवाद्वयं रूपमेतत्प्रपद्ये ।। ५ ।।

अनुत्तर, नक्षत्रों की ज्योति, एक, ब्रह्मातीत, निर्गुण, निर्विकार, निरन्तर, निर्भर, निर्विषाद, शिवाद्वय रूप की शरण मैं जाता हूँ।

गुहावासं परमं ज्योतिरन्तर्योगाध्यक्षं योगिभिर्ध्यानिगम्यम् ।
योगावासं योगदं योगरूपमात्मारामं तं प्रपद्ये महेशम् ।। ६ ।।
विश्वातीतं कारणातीतमीशं लोकातीतं ज्ञानगम्यं महद्यत् ।
तद्वैतत्वं सर्वमीशस्वरूपं बुद्ध्यातीतं विश्वरूपं नतो[1]ऽस्मि ।। ७ ।।

गुहावास, परम अन्तः ज्योति, योगाध्यक्ष, योगिओं से ध्यानगम्य, योगावास, योगद, योगरूप, आत्माराम, महेश की शरण में मैं जाता हूं।

विश्वातीत कारणातीत, ईश, लोकातीत और जो महाज्ञानगम्य है, उस तत्व, सर्व, ईशस्वरूप, बुद्ध्यातीत, विश्वरूप को मैं नमस्कार करता हूँ ।

इति स्तुत्वा महादेवि भैरवं विष्णुरव्ययः ।
प्रहस्य दर्शने तस्थौ विष्णोरमिततेजसः ।।

हे महादेवि ! इस प्रकार अव्ययविष्णु ने भैरव महादेव की स्तुति की और महादेव अमिततेजस्वी विष्णु के आगे हसते हुए दर्शन देने को खड़े हो गए ।

दृष्ट्वा तं देवदेवेशं भैरवं विष्णुरव्ययः ।
प्रणम्य दण्डवद्भूमौ भूयो भूयो वरानने ।।

उस देवाधिदेव महादेव के दर्शन कर अव्यय विष्णु ने हे वरानने ! भूमि पर बार-बार दण्डवत् प्रणाम किया ।

दृष्ट्वा तु पतितं देवि पादयोः पतितं विभुम् ।
प्रोवाच विष्णुमीशानश्चोत्थाप्य श्लक्ष्णया गिरा ।।

हे देवि ! पैरों में पड़े हुए सर्वव्यापक विष्णु को देखकर महादेव ने उठाकर कोमल वाणी से कहा।

---

1 ततोस्मि

श्रीभगवान्—
१......

दुष्टैर्दैत्यैर्महालक्ष्मी: स्थापिता गुप्तरूपिणी ।

दुष्ट दैत्यों ने महालक्ष्मी को गुप्त रूप से स्थापित कर दिया हुआ है ।

सन्तप्ता विषगन्धेन मोहिताश्चेशमायया ।
सस्नुश्च घर्घरीभिश्च वलिं ददुर्महामुदा ।।

विषगन्ध से सन्तप्त हुए और ईश की माया से मोहित हुए दैत्यों ने घर्घरियों से स्नान किया तथा महाप्रसन्नता से वलि दी ।

मोहितान्स्वयमेवैतान्मीहयामि न संशयः ।
उत्पाद्य ज्येष्ठां भगिनीं श्रियो दैत्यविनाशिनीम् ।
यया संमोहिता दैत्या[२] मोहमेष्यन्ति सत्वरम् ।।

स्वयं ही मोहित हुए इन्हें मैं दैत्यों का नाश करने वाली लक्ष्मी की भगिनी ज्येष्ठा को पैदा कर मोहित करता हूं, जिससे मोहित हुए दैत्य शीघ्र मोह को प्राप्त हो जाएंगे ।

इत्युक्त्वा[३]न्तर्दधे देवस्तत्र विष्णोः प्रपश्यतः ।
ज्येष्ठामुत्पादयाञ्चक्रे विरूपां दैत्यमोहिनीम् ।।

यह कह देव वहां विष्णु के देखते अन्तर्धान हो गए और दैत्यों को मोहित करने वाली विरूप ज्येष्ठा को पैदा किया ।

पीताम्बरधरां गौरीं पद्महस्तां कपालिनीम् ।
दंष्ट्राकरालवदनां पिंगाक्षीं घोररूपिणीम् ।
उपत्यकास्थितां देवीं महादैत्यगणार्दिनीम् ।
दृष्ट्वा ज्येष्ठां[४] महादैत्या समुत्तस्थुरुदायुधाः ।।

पीले वस्त्र धारण किए गौरी, पद्महस्ता, कपालिनी, दष्ट्राओं से भयावने वदन वाली, पिंगाक्षी, घोररूपिणी, उपत्यका पर स्थित, महादैत्पगण का नाश करने वाली ज्येष्ठा देवी को देखकर शस्त्र उठाए महादैत्य उठ खड़े हुए

ममैवैषा ममैवैषा ममैवैषैति वादिनः ।
घर्घरीः स्फोटयाञ्चक्रुर्मोहिता देवमायया ।।

यह मेरी है, यह मेरी है, यह मेरी है, इस प्रकार बोलते हुए देवमाया से मोहित हुए दैत्यों ने घर्घरिग्रों को फोड़ डाला ।

---

१ पुरैवज्ञातो देवाद्यदैत्यापान य उत्तमः २ मत्या ३ इत्युक्त्वातदधे ४ ज्येष्टा

यत्रैव पूजितः शम्भुः घर्घरीभिः सुरार्चिते ।
घर्घरीवलिरित्युक्तो देशः परमपावनः ॥

हे सुरार्चिते ! घर्घरिओं से यहां शम्भु की पूजा की गई, वह परमपवित्र देश 'घर्घरीवलि' नाम से कहा गया।

घर्घरीवलौ कृतं स्नानं दानं होममथापि वा ।
अर्चनं वा महेशानि ह्यनन्तं फलमाप्नुयात् ॥

हे महेशानि ! घर्घरीवलि में किये गए स्नान, दान, होम अथवा पूजन से मनुष्य अनन्त फल पाए ।

ज्येष्ठायाः सम्मुखं[1] देवि दुद्रुवुर्दैत्यसत्तमाः ।
केचिच्च जगृहुः पादौ बाहू केचिच्च सुन्दरि ॥

हे देवि ! दैत्य ज्येष्ठा के सामने भागे और हे सुन्दरि ! किसी ने पाओं पकड़ लिए और किसी ने भुजाएं ।

केचित्कपोलौ देव्यास्तु ज्येष्ठाया दैत्यदानवाः ।
आलिलिङ्गुश्च पुरतः केचित्तां पृष्ठतः शिवे ॥

कई देवी के कपोलों को पकड़े कई दैत्य-दानवों ने ज्येष्ठा देवी का आगे से आलिङ्गन किया और हेशिवे ! कइयों ने पीछे से ।

अधित्यकायां लक्ष्मीश्च दृष्टा दैत्यगणैः प्रिये ।
समीपे देवदेवस्य महाविष्णोः स्थिता सती ॥

हे प्रिये ! दैत्यगणों ने देवाधिदेव महाविष्णु के पास अधित्यका पर खड़ी लक्ष्मी को देखा ।

जहासातिक्रमं दृष्ट्वा दैत्यानां ज्येष्ठया सह ।

ज्येष्ठा के साथ दैत्यों का अतिक्रम देखकर वह हंसी ।

ज्ञात्वा व्यतिक्रमं तत्र ज्येष्ठादेवी भृशार्दिता ।
तिरोहिता स्वयं देवी दैत्यानामपि पश्यताम् ॥

वहां व्यतिक्रम को जानकर ज्येष्ठा देवी बहुत दुःखी हुई और दैत्यों के भी देखते २ वह देवी स्वयं तिरोहित हो गई ।

प्रादुर्बभूव तत्रैव भैरवो[2]ऽपि पुरः प्रभो ।
ननाम भैरवं दृष्ट्वा महालक्ष्मीः शुचिस्मिता ॥

वहीं पर प्रभु के आगे भैरव (महादेव) का भी प्रादुर्भाव हुआ । भैरव

---

१ समुखं २ भैरवोपि

को देखकर मुसकराती हुई महालक्ष्मी ने झुक कर नमस्कार किया।

दैत्याः प्रदुद्रु[2]वुर्देवि त्रासिता देवमायया।
इतस्ततो दैत्यगणा वात्या इव परस्परम्।
घ्नन्तो रटन्तो विकृतं जगृहुर्दृषदं परम्[3] ॥

हे देवि! देवमाया से डरे हुए दैत्य भागने लगे। इधर-उधर आन्धी की तरह दैत्यों ने आपस में मारते हुए, बोलते हुए परम विकृत पत्थर को उठाया।

वदन्तोऽन्योन्यमीशानि हस्तितुल्यां शिलामिमाम्।
उत्थापयामः सततं पेषयामः सुरान्परान् ॥

हे ईशानि! एक दूसरे को कहते हुए कि हम इस हाथी के समान चट्टान को उठाते हैं और निरन्तर इससे देवताओं को पीसते हैं।

इत्युक्त्वा दैत्यसंघास्ते शिलां जगृहुरोजसा।
दुद्रुवुश्च शिलाहस्ता ज्येष्ठान्वेषणतत्पराः ॥

यह कहकर उन दैत्यों ने बलपूर्वक शिला को उठाया। और ज्येष्ठा को ढूंढने में लगे हुए शिला हाथ में लिए वे भागने लगे।

गृहीत्वा तु शिलां दैत्याः पर्वतोपरि न्यक्षिपन्।

शिला को लेकर दैत्यों ने पर्वत के ऊपर फैंकना शुरू किया।

यस्माद्गृहीता दैत्येशैर्हस्तितुल्या शिला परा।
ततो हस्तिशिले[3]त्याख्यो देशो वै प्रथितो भुवि ॥

जिससे दैत्येशों ने हाथी के समान शिला को लिया। इससे वह देश पृथ्वी पर 'हस्तिशिला' नाम से जाना जाने लगा।

दैत्यैरूरीकृता यत्र ज्येष्ठा दैत्यर्दिनी परा।
स देशः प्रथितो देवि ज्येष्ठारो ग्राम उत्तमः ॥

दैत्यों ने जहां दैत्यों को नष्ट करने वाली ज्येष्ठा को स्वीकार किया। इसलिए हे देवि! वह देश उत्तम 'ज्येष्ठार ग्राम' से प्रसिद्ध हुआ।

ज्येष्ठारे च कृतं दानं स्नानमर्चनमीश्वरि।
जपहोमावपीशानि ह्यनन्तं फलमाप्नुयात् ॥

हे ईश्वरि! ज्येष्टार में किए गए दान, स्नान, पूजन, जप तथा होम से हे ईशानि! अनन्तफल पाए।

---

२ प्रदुद्रुबुदेवि ३ पराम् ४ वदन्तोन्योन्य ५ शिलेन्याख्यौ

क्रृतं हस्तिलायान्तु सुकृतं जगदम्बिके ।
अनन्तं तद्भवेद्देवि फलमाभूतसंस्तुवम् ॥

हे जगदम्बिके ! हस्तिला में जो पुण्य किया जाता है । हे देवि ! उस का अनन्त फल होता है ।

दृष्ट्वा तु दैत्या देवेशं शिवं विष्णुं श्रिया सह ।
गृहीत्वा हस्तिदृषदं दुद्रुवुर्मुखतः प्रिये ॥

देवेश शिव एवं लक्ष्मी के साथ विष्णु को देखकर दैत्य हे प्रिये ! हस्ति दृषद (हस्तिशिला) को लेकर सामने से भागे ।

दृष्ट्वा गृहीत्वा दृषदं प्रयातान्दैत्यपुंगवान् ।
[1]भैरवः परमं क्रोधमाजूहे सुरपूजिते ॥

दृषद (शिलां) को लेकर चले गए दैत्यों को देखकर हे सुरपूजिते ! भैरव (महादेव) परम क्रुद्ध हुए ।

जज्वाल च महादेवि भैरवः परवीरहा ।
जटामुत्पाट्य हस्तेन ततो जातो महागणः ॥

हे महादेवि ! परवीरहा भैरव (महादेव) क्रोध से जलने लगे और हाथ से जटा को उखाड़ा, जिससे महागण पैदा हुआ ।

ज्वलत्केशस्त्रिनेत्रस्तु भुजगाभरणो विभुः ।
मुण्डमालां वटधरः कर्त्रीं च डमरुं दधत् ॥
शूलं वीणां महादेवि वादयंश्च[2] महाभुजैः ।
भीषणश्च करालश्च ज्वलत्त्रिनयनो विभुः ॥
ननाम दण्डवद्देवि शिवं विष्णुं श्रियं तथा ॥

जलते केशों वाले, तीन नेत्रों से युक्त, सांपों के आभूषणों को धारण किए हुए, व्यापक, मुण्डमाला को धारण किए हुए, कर्त्री और डमरु को धारण किए हुए, एवं त्रिशूल को धारण किए तथा महाभुजाओं से वीणा को बजाते हुए, भीषण, कराल, जलते हुए त्रिनेत्र वाले, सर्वव्यापक उसने हे देवि ! शिव, विष्णु तथा लक्ष्मी को दण्डवत् प्रणाम किया ।

दृष्ट्वा वीरं शिवो देवि प्रसन्नश्चावददगणम् ।
वीर वीर महावीर दैत्यान्परमदारुणान् ॥
गृहीत्वा हस्तिदृषद[3]मायातान्दैत्यपुङ्गवान् ।
भञ्ज भञ्ज[4] निनादेन मर्द मर्द च तत्क्षणात् ॥

भैरवः १ २ नादयांश्च ३ मायातादैत्य ४ भज

हे देवि ! वीर को देखकर प्रसन्न हुए शिव ने गण से कहा कि हे वीर ! वीर ! महावीर ! परमदारुण हस्तिदृषद लेकर आए हुए दैत्यों का निनाद द्वारा तत्क्षण भञ्जन करो-भञ्जन करो, मर्दन करो-मर्दन करो।

दैत्याञ्जित्वा मत्समीप इहैवा…च[1] भैरव।

हे भैरव ! दैत्यों को जीत कर यहां ही मेरे पास……

लक्ष्मीं दास्यामि वीरेश विष्णवे प्रभविष्णवे।
ज्येष्टां स्वयं ग्रहीष्यामि श्रियो वै भगिनीं पराम्।
ज्येष्ठेशनाम्ना यास्यामि प्रख्यातिं भुवनत्रये।
इत्युक्त्वा भगवान्देवि वीरभैरवमुत्तमम्।
तूष्णीमासीत्तं प्रणम्य दैत्यान्प्रति ययौ गणः ॥

हे वीरेश ! प्रभविष्णु-विष्णु को मैं लक्ष्मी दूंगा और लक्ष्मी की बहिन ज्येष्ठा को मैं स्वयं ग्रहण करूगा। तीनों लोकों में 'ज्येष्ठेश' नाम से प्रसिद्धि पाऊंगा। हे देवि ! भगवान् शिव उत्तम वीर भैरव को यह कहकर चुप हो गए और गण उन्हें प्रणाम कर दैत्यों की ओर चल पड़ा।

दृष्ट्वा यातन्तु वेतालं दैत्याः परमदर्पिताः।
सिंहनादं विनाद्योच्चैर्ययुरभ्युद्यतायुधाः।
दैत्या हस्तिशिलां गृह्य वीरं प्रति समुद्यताः ॥

वेताल को गया हुआ देखकर परमअभिमत्त दैत्य ऊँचे स्वर से सिंहनाद कर शस्त्र उठाए चल पड़े। दैत्य हस्तिशिला को लेकर वीर वेताल के प्रति उद्यत हुए।

दृष्ट्वा समुद्यतान्दैत्यान्दहन्वेताल उद्ययौ।
डमरोश्च निनादेन मोहयन्-राक्षसान्प्रिये।
कर्त्र्या च चेदयामास विषमत्तांश्च राक्षसान् ॥

शस्त्र उठाए दैत्यों को देखकर जलता हुआ वेताल चल पड़ा और हे प्रिये ! डमरू की ध्वनि से राक्षसों को मोहित करता हुआ कर्त्री से विष से उन्मत्त हुए राक्षसों को काटने लगा।

तेऽपि[2] सर्वैः प्रहरणैः[3] छादयामासुरोजसा।
केचित्कुन्तैः प्रहरणैः केचिदसिभिराहवे।
जघ्नुस्तं मुद्गरैः केचिद्भुशंडीभिश्च केचन ॥

वे भी सभी प्रहरणों से ओजपूर्वक आच्छादित करने लगे। कई युद्ध में

१पाठाभाव २ तेपि ३ प्रहरणै छा

भालों से प्रहरणों से, कई तलवारों से, कई मुद्गरों से और कई भुशण्डिओं से मारने लगे।

केचिच्च चिक्षिपुः शक्तीः पाशान्केचित्तथापरे।
असीञ्छरांश्च[1] कतिचिद्भिण्डिपालांश्च केचन॥

कइयों ने शक्तिएं, कइयों ने पाश, कइयों ने तलवारें एवं तीर और कइयों ने भिण्डिपाल फैंके।

शतघ्नीभिर्महादेवि युयुधुश्चापरे रणे।
दृषद्भिः शैलशिखरैः पर्वतैरपि सुन्दरि॥

हे महादेवि! युद्ध में कुछ शतघ्नियों से, पत्थरों से, शैलशिखरों से और पर्वतों से भी हे सुन्दरि! युद्ध करने लगे।

मुष्टिभिः पार्ष्णिघातैश्च युयुधुर्वीरमंजसा।
दन्तैः केचिन्नखैः केचित्केचिच्च लगुडैः शिवे।
लोष्ठैः क्षेपणकैः केचित्केचित्परशुभिस्तथा।
युयुधुर्वीरवेतालं पट्टिसैः करवे[2]त्रकैः।
दैत्यरूपहतो वीरो मुमोह सुरपूजिते॥

मुष्टिओं से और पार्ष्णिघातों से तेजपूर्वक वीर के साथ युद्ध करने लगे! हे शिवे! कई दान्तों से, कई, नखों से, कई दण्डों से, कई ढेलों से, क्षेपणकों से, कई कुल्हाड़ों से तथा पट्टिसों-करवेत्रकों से युद्ध करने लगे। हे सुरपूजिते! दैत्यों से प्रहरित वीर मूर्च्छित हो गया।

दृष्ट्वा मुह्यन्तमीशानो वेतालं विष्णुना सह।
विनद्य सहसा तालैर्वीर[3]श्चैतन्यमावहत्॥

विष्णु के साथ ईशान-महादेव ने मूर्च्छित हुए वेताल को देखा तो झटपट तालियां बजाकर उसे होश में लाया।

चेतनां प्राप्य वीरेशः करतालैः शिवस्य ह।
विष्णोश्च सर्वदेवानां दैत्यान्प्रति समुद्यतः॥

शिव, विष्णु और सभी देवताओं के करतलों से होश पाकर वीर दैत्यों की ओर गया।

ग्रसन्नायुधसंघांस्तान्दैत्यानां परमाहवे।
उवाच च पुनः शम्भुर्वीरवेतालमादरात्॥

---

१ असीन्श २ वेत्रकैः ३ वीरिचैत

युद्ध में दैत्यों के उस शस्त्र समूह को ग्रसते हुए वीर वेताल से शम्भु ने फिर आदरपूर्वक कहा ।

चेतनं[1] प्राप्यते यस्मात्करतालैश्च भैरव ।
ख्यातिमेष्यसि तस्मात्त्वं वीरवेतालसंज्ञितः ।।

हे भैरव ! जिससे करतालों के द्वारा तूने होश पाई, इस से तू 'वीर वेताल' नाम से प्रसिद्धि पाएगा ।

वेतसीतरवो यस्मात्तालाश्चापि विशेषतः ।
स्थानं दत्तं मया वीर तस्माद्वेतालसंज्ञितः ।।

जिससे वेतसी वृक्ष और विशेषकर ताल भी हे वीर ! मैंने तुझे स्थान दिया है, इससे 'वेताल' नाम तुम्हारा हुआ ।

जयस्व दैत्यसंघांस्त्वं पुनरेहि ममान्तिके ।

तुम दैत्यसमूह पर विजय प्राप्त करो और फिर मेरे पास आ जाओ ।

श्री भैरव उवाच—श्री भैरव बोले—

इत्युक्त्वा वीरवेतालं तूष्णीमास महेश्वरि ।
आदृतो[2]ऽपीह वीरेशो युयुधे दैत्यदान[3]वान् ।।

हे महेश्वरि ! वीर वेताल को यह कह महादेव चुप हो गए । जल्मो भी वीरेश यहाँ दैत्य-दानवों से युद्ध करने लगे ।

चकर्त कांश्चित्कर्त्र्या वै मोहितान्निनदेन च ।
पाशेन बद्धान्कांश्चिद्वै खड्गेन निरकृन्तत ।।

निनद (ध्वनि) से मोहित हुए कइयों को कर्त्री से काट दिया, और पाश से बन्धे कइयों को तलवार से काट दिया ।

कांश्चिदारोपितान् शूले वीरेशः संचकर्त ह ।

त्रिशूल पर आरोपित कइयों को वीरेश ने काट दिया ।

क्षणेन क्षपिता दैत्या वेतालेन महात्मना ।
शेषाः पलायन[4]परा राक्षसा जगदम्बिके ।।

महात्मा वेताल ने क्षण में दैत्यों को नष्ट कर दिया । हे जगदम्बिके ! बाकी राक्षस भाग गए ।

पलायनपरान्दृष्ट्वा राक्षसान्मदगर्वितान् ।
चकर्त दैत्यान्वीरेशः खड्गैः परशुपट्टिसैः ।।

---

१ वेतनं २ आहतोपीह ३ दैनवान् ४ पलायनपला ।

मदमत्त राक्षसों को भागते देख वीरेश ने खड्ग-परशु और पट्टिस से दैत्यों को काट दिया।

चक्रैश्च भिण्डिपालैश्च तोमरैर्मुसु[1]लैस्तथा।
खादन्मांसं पिवन्-रक्तं दैत्यानां परवीरहा।
ननाद सुमहन्नादांस्त्रासयन्भुवन[2]त्रयम् ॥

चक्रों से, भिण्डिपालों से, तोमरों से तथा मुसलों से वीरेश ने दैत्यों को काटा। परवीरहा उस वेताल ने दैत्यों के मांस को खाते हुए और रक्त पीते हुए तथा तीनों लोकों को डराते हुए महाध्वनि की।

दृष्ट्वा वीरेशमुद्यन्तं ज्वलन्तं रणमूर्धनि।
निनदन्तं महानादान्कालान्तकयमोपमम् ॥

युद्ध में शस्त्र उठाए, जलते हुए और महाकालान्तकयम के समान महानादों को करते हुए वीरेश को देखकर—

त्रस्ता हता विशिष्टास्तं वीरं शरणमन्वयुः।

डरे हुए, मरे हुए विशिष्ट दैत्य उस वीर की शरण में आए।

दूरेस्थितांस्तदा दैत्याञ्ज्ञात्वा ताञ्छरणार्थिनः।
कृपया वचनं वीरमुवाच परमेश्वरः ॥

तब दूर खड़े और शरण में आए उन दैत्यों को जानकर कृपा करते हुए परमेश्वर ने वीर से कहा।

श्री भगवान्नु[3]वाच—श्री भगवान् बोले—

वीर वीर महावीर मावधीः शरणार्थिनः।
जिताश्च प्रणता यै वै ते हताश्च न संशयः ॥

वीर-वीर हे महावीर! शरण में आए हुओं को मत मारो। जो जीत लिए और झुक गए हैं, वे मरे हुए ही हैं। इसमें संशय नहीं है।

इति श्रुत्वापि वीरेशो जघ्ने दैत्यगणाञ्छिवे।
ते लग्नाः पादमूलेषु वेतालस्य महात्मनः ॥

यह सुनकर भी हे शिवे! वीरेश ने दैत्य गणों को मारा। वे महात्मा वेताल के पादमूलों में चिपक गए।

तथापि पार्ष्णिभिश्चैव प्रजह्रे वीरसत्तमः।

तब भी वीर श्रेष्ठ ने पार्ष्णियों के साथ प्रहार किया।

---

१ मुंसुलैस्तथा २ न्भुवत्रयं ३ भगवानुवाच

निघ्नन्तं वीरमीशानो दृष्ट्वापि शरणागतान् ।
उवाच खरवद्यस्मान्न शृणोषि वचो मम ।
तस्मात्त्वं खरकर्णो वै भविष्यसि न संशयः ।।

शरण में आए हुओं को मारते हुए वीर को देखकर भी ईशान-महादेव ने कहा कि जिससे तू गदहे की तरह मेरे वचन को नहीं सुन रहे हो, इससे तुम खरकर्ण होगे, इसमें संशय नहीं है ।

प्रहारं[1] कुरुषे यस्मात्पार्ष्णिभिः पशुवद्गण ।
तस्मान्महिषपादस्त्वं भविष्यसि न संशयः ।।

हे गण ! जिससे तू पशु की तरह पार्ष्णियों से प्रहार कर रहा है, इससे तुम महिषपाद होगे, इसमें संशय नहीं है ।

ग्रीवां चालयसे यत्त्वं वाक्यश्रवणसूचकाम् ।
ग्रीवीवत्तस्मादद्यैव-उष्ट्रग्रीवः स्फुटं भव ।।

वाक्य को सुनना सूचित करने वाली ग्रीवा को जो तू हिलाता है, इस से आज ही ग्रीवी की तरह तू स्पष्ट उष्ट्रग्रीव हो ।

मत्सम्मुखं त्वं कुरुषे मेषवन्मुखचालनम् ।
यस्मात्ते हुडवत्तद्वै भविष्यसि मुखं स्फुटम् ।।

मेरे सामने तुम मेष (भेड़) की तरह मुख हिलाते हो, जिससे तेरा मुख स्पष्ट हुड की तरह हो जाएगा ।

उलूकवद्दिवसे[2]ऽपि दृष्टिं न क्षिपसे यतः ।
ममाभिमुखमन्ध[3]स्त्वमुलूकाक्षो भविष्यसि ।।

क्योंकि उल्लू की तरह तुम दिन में भी देखता नहीं है । मेरे सामने अन्धा हुआ तू उल्लूकाक्ष होगा ।

क्रुद्धस्य शम्भोर्वचनं श्रुत्वा वेताल आदरात् ।
हसन्दैत्यगणैः सार्धमाययौ शिवसन्निधौ ।।

क्रुद्ध शिव के वचन सुनकर वेताल आदर से हसता हुआ दैत्यगणों के साथ शिव के पास आया ।

[4]...... त्कृष्णच्छविः प्रांशुरुष्ट्रग्रीवो हुडाननः ।
महिषा[5]ङ्घ्रिरुलूकाक्षो वेतालः खरकर्णकः ।
नमस्कृत्य शिवं विष्णुं श्रियं देवांश्च सुन्दरि ।

---

१ प्राहरं २ दिवसेपि ३ मंधस्त्वद्रुलूकाक्षो ४ अन्या ५ पाठाभाव

प्रीत्या परमयाविष्टः पतितो दण्डवत्क्षितौ ।।

......कृष्ण छवि वाला,...... ऊँट की तरह गर्दन वाला, हुड की तरह मुख वाला, महिष की तरह उंगलियों वाला, उल्लू की तरह आंखों वाला, खर (गदहे) की तरह कानों वाला वेताल हे सुन्दरि ! शिव, विष्णु, लक्ष्मी और देवताओं को नमस्कार कर परम प्रीति से युक्त पृथ्वी पर दण्डवत् पड़ गया ।

उत्थाप्य तं महादेवो वेतालं निजगाद ह ।
शृणु वीर प्रवक्ष्यामि गणेशादवरो ह्यसि ।
मम पुत्रत्वमापन्नो गणानामीश्वरो भवान् ।।

उस वेताल को ऊपर उठाकर महादेव ने वेताल से कहा कि हे वीर ! सुनिए, कहता हूँ, तू गणेश से श्रेष्ठ हो । आप गणों के ईश्वर है और मेरे पुत्रभाव को प्राप्त हुए ।

प्रहरन्विघ्नसंघांस्त्वं[1] सिद्धिं दास्यन्सतामपि ।
धनं धान्यं तथा विद्यां पशूंश्चापि वरान्ददत् ।
शापानुग्रहकृद्देवो मत्प्रसादाद्भविष्यसि ।।

विघ्नसमूह को नष्ट करता हुआ, सज्जन पुरुषों को भी तू सिद्धि देता हुआ, धन-धान्य-विद्या को देता हुआ तथा पशुओं को भी वर देता हुआ मेरे प्रसाद से शापानुग्रहकृद्देव होगे ।

एते हतावशिष्टा ये दैत्या घोरमदान्विताः ।
ते चापि तव सेवार्थमत्र तिष्ठन्तु सर्वदा ।।

ये मरने से बचे जो घोर मदमत्त दैत्य हैं, वे भी तेरी सेवा के लिए यहां सर्वदा रहें ।

एतेषां पूजनाच्चापि विघ्ना नश्यन्त्यनेकधा ।
ज्येष्ठायाश्च श्रियो देव्या दैत्यानामपि भैरव ।
पूजनाद्विधिवद्वीर निर्विघ्नाः सिद्धिमाप्नुयुः ।।

इनके पूजन से भी अनेक प्रकार के विघ्न नष्ट हो जाते हैं । हे भैरव ! ज्येष्ठा का, लक्ष्मी देवी का और दैत्यों का भी विधिवत् पूजन करने से हे वीर ! निर्विघ्न हो सिद्धि पाएं ।

[2]भोजनं प्रदास्यन्ति ज्येष्ठादैत्येभ्य एव च ।
तुभ्यं चापि महावीर सिद्धिं प्राप्स्यन्त्यनुत्तमम् ।।

---

१ स्त्वां २ भोजये

जो ज्येष्ठा और दैत्यों को हे महावीर ! तुम्हें भी भोजन देंगे, वे अत्युत्तम सिद्धि पाएंगे।

विशेषतो मत्स्यपूरैर्भर्जितैस्तैल-उत्तमैः[1] ।
नागराक्तैः सलवणैरपूपैरपि सुन्दरि ।।
प्रापणं ये प्रदास्यन्ति तुभ्यं दैत्येभ्य एव च ।
ज्येष्ठायै चापि ते यान्ति सिद्धिं प्रत्यूहवर्जिताः ।।

हे सुन्दरि ! विशेष कर जो पुरुष मत्स्यपूर उत्तम तैलों में पके हुए नागराक्त-लवण युक्त अपूपों से भी तुझे और दैत्यों को भी एवं ज्येष्ठा को भी प्रापण प्रदान करेंगे, वे निर्विघ्न हो सिद्धि को प्राप्त करते हैं।

इत्युक्त्वा वरदस्तूष्णीमासीद्वै सुरसुन्दरि ।

हे सुरसुन्दरि, यह कहकर वह वर प्रदान करने वाले शिव चुप हो गए।

वीरं दृष्ट्वा महालक्ष्मीरुवाच प्रहसन्गिरा ।
वीर वीर महावीर वेतालखरकर्णक ।
हरिद्राक्तं मे तैलाक्तं तुभ्यं दैत्येभ्य एव च ।।
ज्येष्ठायै चापि दास्यन्तं भोजनं वैष्णवप्रियम् ।
इत्युक्त्वा श्रीरपीशानि[2] विररामाम्बिके तदा ।।

वीर को देखकर महालक्ष्मी ने हंसते हुए वाणी से कहा — हे वेतालखरकर्णक ! वीर ! वीर ! महावीर ! हरिद्राक्त, तैलाक्त और वैष्णवप्रिय तुझ और दैत्यों को एवं ज्येष्ठा को यह अन्न भोजन दिया गया है। यह कह कर हे ईशानि ! अम्बिके ! तब लक्ष्मी भी चुप हो गई।

शम्भुना विष्णवे दत्ता महालक्ष्मीर्महीयसी ।
स्वयं गृहीता ज्येष्ठा वै स्थापितासन्नभूमिषु ।
पुण्ये ज्येष्ठोरके ग्रामे ज्येष्ठेशः प्रथितस्तदा ।।

महादेव ने विष्णु को महीयसी महालक्ष्मी प्रदान की और स्वयं ज्येष्ठा को ग्रहण किया और उसे निकटस्थ भूमियों में स्थापित किया। तब पुण्य ज्येष्ठोरक ग्राम में वह ज्येष्ठेश नाम से प्रसिद्ध हुआ।

इति ते सर्वं आख्यातो लक्ष्मीप्रादुर्भवो महान् ।
यस्य श्रवणमात्रेण वाजपेयफलं लभेत् ।।

इस प्रकार यह सब महान् लक्ष्मी का प्रादुर्भाव तुम्हें कहा गया है, जिस

---

१ उत्तमै २ श्रीरपीशानि

के सुनने मात्र से वाजपेय यज्ञ का फल पाए।

इत्येष पटलो गुह्यो महापातकहा कलौ।
श्रुत्वा पठित्वा प्राप्नोति निर्विघ्नां सिद्धिमुत्तमाम् ॥

कलियुग में महापातक को नष्ट करने वाला यह गुह्य पटल है, जिसे सुनकर, पढ़कर मनुष्य निर्विघ्न उत्तम सिद्धि को पाता है।

इति श्री श्री संहितायां फालकविषयोपजाततीर्थसंग्रहे ज्येष्ठा-महालक्ष्मीप्रादुर्भावो नाम पटलः ॥

श्री भैरवी—

श्रुत्वा प्रादुर्भवं लक्ष्म्यास्त्वन्मुखात्, परादभुतम्[1] ।
कृतार्थास्मि कृतार्थास्मि नास्ति मेऽत्र[2] विचारणा ।।

आप के मुख से परम अदभुत लक्ष्मी के प्रादुर्भाव के विषय में सुनकर मैं कृतार्थ हो गया हूं, कृतार्थ हो चुका हूं, मुझे इसमें विचारणा नहीं है।

इदानीं श्रोतुमिच्छामि श्रीपूजाफलमुत्तमम् ।
कस्यां तिथौ पूजनीया विधिना केन वै प्रभौ ।

अब मैं उत्तम श्री पूजा के फल को सुनना चाहता हूं। हे प्रभो ! किस तिथि में किस विधि से पूजा करनी चाहिए।

ऋतौ मासे[3]ऽपि देवेश ज्येष्ठाया भैरवस्य च ।
येन विज्ञातमात्रेण नरो मुह्येत्कुत्रचित्[4] ।।
पूजनेन च किं पुण्यं प्रापणेन च किं फलम् ।
वद विस्तरतो देव लोकानुग्रहकाम्यया ।।

हे देवेश ! ऋतु मास में भी ज्येष्ठा का और भैरव का किस विधि से पूजन करना चाहिए, जिसके जानने मात्र से मनुष्य कहीं मोह को प्राप्त हो जाए। पूजन से क्या पुण्य है और प्रापण से क्या फल है ? हे देव ! लोकानुग्रह कामना से विस्तारपूर्वक बताइए।

श्री भैरवः—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि श्रीदिनं परमाद्भुतम् ।
यस्य श्रवणमात्रेण लक्ष्मीस्तत्र स्थिरा भवेत् ।।

हे देवि ! सुनिए, परम-अद्भुत श्रीदिन के विषय में कहता हूं, जिसके सुनने मात्र से वहां लक्ष्मी स्थिर हो जाए।

वैशाखकृष्णपक्षस्य पञ्चम्यां जगदीश्वरः ।
विष्णवे दत्तवांल्लक्ष्मीमर्चयेत्तद्दिने नरः ।।

वैशाखकृष्णपक्ष की पञ्चमी के दिन जगदीश्वर ने विष्णु को लक्ष्मी दा, मनुष्य उस दिन पूजा करे।

---

१ मुखात्पपरा २ नेत्र ३ मासेपि ४ मुह्येन कुत्र

प्रातरुत्थाय देवेशि स्नानं कृत्वा विधानतः ।
नित्यार्चां नित्यहोमं च नित्यजाप्यं च यत्नतः ।
विधाय विधिना देवि ततो लक्ष्मीं समर्चयेत् ॥

हे देवेशि ! सुबह उठकर, विधिपूर्वक स्नान कर हे देवि ! नित्यपूजा, नित्यहोम और नित्यजप यत्न से विधि के साथ कर इसके बाद लक्ष्मी को पूजे ।

मूर्ति कृत्वा श्रियो देव्या ज्येष्ठाया अपि मृण्मयीम् ।
प्राणं दत्वा पूजनीया पुष्पधूपार्घचन्दनैः ॥

लक्ष्मी देवी की मूर्ति बनाकर और ज्येष्ठा की भी मिट्टी की मूर्ति बना उसे प्राणदान कर पुष्प-धूप-अर्घ्य एवं चन्दन से पूजना चाहिए ।

दीपैश्च वन्दनैश्चैव दिव्याभरणभूषणैः ।
फलैर्मूलैर्दक्षिणाभिर्विप्रान्संपूज्य यत्नतः ॥
ज्येष्ठाया प्रापणं दद्यान्मत्स्यापूपान्महेश्वरि ।
श्रियो देव्याः पीतमन्नं स्नेहाक्तं यत्नतः प्रिये ॥
क्षेत्रेशान्पूजयेत्तत्र योगिनीभ्यो वलिं क्षिपेत् ।
पुत्रभृत्यजनैः सार्धं पश्चाद्भुञ्जीत…[1] ॥

दीप, वन्दना, दिव्य आभरण-भूषण, फल-मूल, दक्षिणा से यत्नपूर्वक ब्राह्मणों को पूज हे महेश्वरि ! ज्येष्ठा को मत्स्य, अपुप, प्रापण एवं हे प्रिये ! लक्ष्मी देवी को स्नेहाक्त पीत अन्न दे और क्षेत्रेशों को पूजे तथा योगिनिओं को वलि दे । बाद में पुत्र-भृत्यजनों के साथ…… भोजन करे ।

एवं यः कुरुते देवि लक्ष्म्युत्सवमनुत्तमम् ।
विघ्नास्तस्य न पश्यन्ति सर्वसिद्धिर्भविष्यति ॥

हे देवि ! इस प्रकार जो अत्युत्तम लक्ष्मी-उत्सव करता है, उसे विघ्न नहीं देखते हैं । सर्वसिद्धि प्राप्त होगी ।

योऽत्रे[2] कुर्यान्महादेवि महालक्ष्म्युत्सवं नरः ।
ज्येष्ठा देवी तस्य गेहे स्थिरा भवति सर्वदा ॥

हे महादेवि ! जो मनुष्य यहां महालक्ष्मी का उत्सव करे, उसके घर में सदा ज्येष्ठा देवी स्थिर होती है ।

तस्माद्वैशाखपञ्चम्यां कुर्यादुत्सवमा[3]दरात् ।

---

१ वाग्यतः २ यो न ३ मंदरात्

कुर्वन्सिद्धिमवाप्नोति धनधान्यादिसम्पदः ॥

इसलिए वैशाख पञ्चमी के दिन आदरपूर्वक उत्सव करे। उत्सव करता हुआ धन-धान्य आदि सम्पत्ति तथा सिद्धि को प्राप्त करता है।

विपन्नो[1]ऽपि महादेवि श्रिय उत्सवमाचरेत्।
धनं पुत्रं पशूंश्चापि ह्युदारान्प्राप्नुयान्नरः ॥

हे महादेवि! विपन्न भी पुरुष लक्ष्मी-उत्सव करे। मनुष्य धन-पुत्र-पशु और सुन्दर स्त्री को पाए।

आपन्नो[2]ऽपि जयेल्लक्ष्मीं पञ्चम्यां प्रापणैः[3] शुभैः।
न दुर्गतिमवाप्नोति न दारिद्र्यं[4] न चापदम् ॥

आपन्न भी पुरुष पञ्चमी के दिन शुभ प्रापणों से लक्ष्मी का पूजन करे, इससे वह दुर्गति को प्राप्त नहीं होता और न दरिद्रता तथा आपत्ति को।

पुत्रार्थी प्राप्नुयात्पुत्रं धनार्थी तु धनं लभेत्।
आपन्न आपदो मुच्येद्विपन्नो दुःखितः प्रिये ॥

पुत्रार्थी पुत्र पाए, धनार्थी धन पाए और हे प्रिये! आपन्न-विपन्न-दुःखी आपत्ति से मुक्त हो जाए।

अन्धो दृष्टिमवाप्नोति मूको वाग्मी भविष्यति।
वधिरः श्रुतिमाप्नोति कन्या विन्दति सत्पतिम् ॥

अन्ध पुरुष दृष्टि पाता है, मूक वाचाल हो जाएगा, बहरा सुनने की शक्ति पाता है और कन्या श्रेष्ठ पति पाती है।

महापातकयुक्तो वा युक्तो वा ह्युपपातकैः।
पापाद्विमुच्यते देवि पञ्चम्यामर्चयञ्छिवान्[5]।
अर्चयेच्छ्रियमीशानि प्रीतान्नापूपमत्स्यकैः।
ज्येष्ठादेवीमपि तथा लक्ष्मीस्तस्य स्थिरा गृहे ॥

महापाप से युक्त वा उपपापों से युक्त पुरुष हे देवि! पञ्चमी के दिन शिव की पूजा करते हुए पाप से मुक्त हो जाता है। हे ईशानि! अपूप-मत्स्यों-अन्न से प्रसन्न हुई लक्ष्मी उसके घर में स्थिर होती है, इसलिए लक्ष्मी और ज्येष्ठा देवी की भी पूजा करे।

न विघ्ना नापदस्तत्र व्याधयो नाधयो[6]ऽपि न।

---

१ विपन्नोपि २ आपन्नोपि ३ प्रापन्नैः ४ दारिद्रं ५ ञ्शिवान् ६ नाधयोपि

भूताः प्रेताः पिशाचाश्च डाकिन्यश्च महाबलाः ।
बाधन्ते न ग्रहास्तं[1] वै लक्ष्मीपूजां करोति यः ।।

वहां न विघ्न होते हैं, न आपत्तिएं होती हैं, न व्याधिएं और न आधिएं भी होती हैं । भूत-प्रेत-पिशाच और महाबला डाकिनिएं एवं ग्रह उसे बाधा नहीं पहुंचाती हैं, जो लक्ष्मी की पूजा करता है ।

वर्षे वर्षे महादेवि श्रिय उत्सवमादरात् ।
ब्रह्मराक्षसवेताला दूरस्था ज्येष्ठया सह ।
विघ्नास्तस्य प्रणश्यन्ति सत्यमेव न संशयः ।।

हे महादेवि ! वर्ष-वर्ष में जो आदरपूर्वक लक्ष्मी उत्सव करता है, ज्येष्ठा के साथ उससे ब्रह्मराक्षस और वेताल दूर रहते हैं । उसके विघ्न नष्ट हो जाते हैं, यह सच है, इसमें संशय नहीं है ।

न करोति च यो मोहाच्छ्रिय[2] उत्सवमीश्वरि ।
तस्य तिष्ठति गेहे वै ज्येष्ठा भूतगणैः सह ।।

हे ईश्वरि ! जो मोह से श्री-उत्सव नहीं करता है, उसके घर में भूतगणों के साथ ज्येष्ठा रहती है ।

विघ्नैः प्रेतैः पिशाचैश्च सत्यमेव न संशयः ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पञ्चम्युत्सवमत्यजन् ।।

विघ्नों, प्रेतों और पिशाचों के साथ ज्येष्ठा उसके घर में रहती है । इस लिए सभी यत्न से पञ्चमी-उत्सव को न छोड़ते हुए—

अर्चयेच्च श्रियं देवीं पुष्पधूपार्घचन्दनैः ।
वन्दनैर्नन्दनैश्चापि गीतैर्वाद्यैश्च नर्त्तनैः ।।
हास्यैर्लास्यैः सद्विलासैः[3] प्राप्नोति विविधां श्रियम् ।।

पुष्प-धूप-अर्घ्य-चन्दना-वन्दन-नन्दन-गीत-वाद्य-नर्त्तन-हास्य-लास्य-सद्विलासों से लक्ष्मी देवी की पूजा करे, इससे अनेक प्रकार की लक्ष्मी को पाता है ।

इति ते कथितो देवि श्रियः पूज्योत्सवो मया ।
श्रुत्वा पठित्वा मुच्येत ज्येष्ठाभूतादिभीतितः ।।

हे देवि ! यह तुझे मैंने लक्ष्मी का पूज्य-उत्सव कहा है, जिसे सुन कर, पढ कर मनुष्य ज्येष्ठा-भूत-आदि भय से मुक्त हो जाए ।

---

१ ग्रहास्तं २ मोहात्श्रिय ३ सद्विलासै

पञ्चम्यां शम्भुना दत्ता दैत्यान्संमुह्य श्रीः स्वयम् ।
विष्णवे विधिना देवि तस्माच्छ्रीपञ्चमी स्मृता ॥

हे देवि ! पञ्चमी के दिन शम्भु ने दैत्यों को मोहित कर स्वयं विधिपूर्वक श्री विष्णु को दी, इससे यह श्री-पञ्चमी नाम से स्मरण की जाने लगी।

एतत्ते कथितं देवि श्रियो वन्दनमर्चनम् ।
ज्येष्ठाभूतापशमनं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥

हे देवि ! तुझे यह ज्येष्ठा एवं भूतों को शान्त करने वाले लक्ष्मी के वन्दन-अर्चन के विषय में कहा है, फिर और क्या सुनना चाहते हो ?

श्री भैरवी —

वद सत्यं महादेव वीरोपासनमुत्तमम् ।
यच्छ्रुत्वा सिद्धिमाप्नोति स्थानं प्राप्नोति शाश्वतम् ॥

हे महादेव ! उत्तम वीर की उपासना के विषय में सत्य कहिए जिसे सुन कर मनुष्य सिद्धि पाता है और शाश्वत स्थान पाता है ।

श्री भैरवः —

शृणु वक्ष्ये महादेवि वेतालवलिमुत्तमम् ।
अर्चनञ्चापि देवेशि यज्ज्ञात्वा मुच्यते भयात् ॥

हे महादेवि ! सुनिए, मैं उत्तम वेताल वलि और अर्चन के विषय में कहता हूँ, जिसे जान कर मनुष्य भय से मुक्त हो जाता है ।

वैशाखकृष्णपक्षस्य षष्ठ्यां वेतालमर्चयेत् ।
वलिं दत्वात्र देवेशि सर्वसिद्धिमवाप्नुयात् ॥

वैशाख कृष्ण पक्ष की षष्ठी के दिन वेताल की पूजा करे। हे देवेशि ! यहाँ वलि देकर सर्वसिद्धि को पाए।

नक्ताशी स्याच्चतुर्थ्यां च पञ्चम्यां व्रतमेव च ।
षष्ठ्यां होममर्चनं च वलिं दत्वा च पारणम् ।
एवं कृत्वा व्रतं देवि वेतालस्य महात्मनः ।
सिद्धिं प्राप्नोति विपुलां कामान्नि[1]ष्टांल्लभेच्च सः ॥

चतुर्थी के दिन रात को भोजन करे और पञ्चमी के दिन व्रत करे तथा षष्ठी के दिन होम-अर्चन वलि दे। इस तरह महात्मा वेताल का व्रत कर वह विपुल सिद्धि और कामनाओं एवं इष्टों को पाए।

---

१ कामा।निष्टा०

पुत्रार्थी लभते पुत्रं कामार्थी काममाप्नुयात् ।
वित्तकामो लभेद्वित्तं स्त्रीकामः स्त्रियमुत्तमम् ।।

पुत्र चाहने वाला पुत्र पाता है, कामार्थी काम को पाए, धन की कामना रखने वाला धन पाए और स्त्री की कामना करने वाला उत्तम स्त्री को पाए ।

राज्यकामो लभेद्राज्यं कन्या विन्दति सत्पतिम् ।
[1]गर्भिणी सूयते पुत्रं वरं च गुणवत्तरम् ।।

राज्य चाहने वाला राज्य पाए, कन्या श्रेष्ठ पति को पाती है और गर्भिणी गुणी श्रेष्ठ पुत्र को जन्म देती है ।

वन्ध्यापि जनयेत्पुत्रं वीरेशस्य प्रसादतः ।
स्रवन्ती पात[2]संयुक्ता सुखमेव प्रसूयते ।।

वीरेश की कृपा से वन्ध्या भी पुत्र को जन्म दे और······सुखपूर्वक प्रसव करती है ।

काकवन्ध्या च या नारी मृतवत्सापि या भवेत् ।
वीरेशपूजनाद्देवि जीववत्सा न संशयः ।।

जो नारी काकवन्ध्या हो या मृतवत्सा भी हो, वीरेश का पूजन करने से हे देवि ! वह जीववत्सा हो जाती है, इसमें संशय नहीं है ।

मन्त्रानुनयकृद्देवि जपन्सिद्धिमवाप्नुयात् ।

हे देवि ! ·····जप करता हुआ सिद्धि को पाए ।

विषमस्थो महादेवि वीरं शरणमन्वियात् ।
विषमान्मुच्यते सद्यश्चेति सत्येन ते शपे ।।

हे महादेवि ! आपद्ग्रस्त वीर की शरण में जाए और आपत्ति से झट मुक्ति पा लेता है, यह मैं तुझे सत्य की शपथ खा कहता हूं ।

संकटस्थो[3]ऽपि वा देवि निगडैर्बद्ध एव वा ।
स्मरणान्मुच्यते सद्यो वीरेशस्य न संशयः ।।

हे देवि ! संकट में स्थित भी वा बेड़ियों से बंधा वीरेश के स्मरण करने से झट मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं है ।

राज्ञा क्रुद्धेन वाज्ञप्तो वधार्थं जगदम्बिके ।
वेतालमर्चयन्-रात्रौ वेदतन्त्रानुसारतः ।

---

१ गुर्विणी २ पाच······३ संकटस्थोपि

वलिं दत्वा तु विधिवन्मुच्यते न विचारणा ।।

हे जगदम्बिके ! क्रुद्ध हुए राजा द्वारा वध के लिए आज्ञा किया हुआ पुरुष वेदतन्त्र के अनुसार रात्रि के समय वेताल की पूजा करता हुआ विधि-पूर्वक वलि दे मुक्त हो जाता है, इसमें विचारणा नहीं है ।

कलावस्मिन्महाघोरे सर्वे प्रत्यूहिनो नराः ।
प्रत्यूहने कुतः सिद्धिः सिद्धिहीने कुतः सुखम् ।।

इस महाघोर कलियुग में सभी मनुष्य विघ्नों से युक्त हैं । विघ्नयुक्त पुरुष को सिद्धि कहां से प्राप्त हो सकती है और सिद्धिहीन पुरुष को सुख कहां ?

कलौ विघ्नविनाशार्थं भैरवेण महात्मना ।
प्रकाशिता वीरमूर्तिर्लोकानुग्रहकाम्यया ।।

कलियुग में महात्मा भैरव ने विघ्नों का नाश करने के लिए लोकों पर अनुग्रह की कामना से वीरमूर्ति प्रकाशित की ।

अन्यदेवस्य यो भक्तः कालेन फलमाप्नुयात् ।
वेतालभक्तो देवेशि सद्यः फलमवाप्नुयात् ।।

दूसरे देव का जो भक्त है, वह समय से फल पाए, पर हे देवेशि ! वेताल का भक्त झट फल पाए ।

अन्यभक्तो[1]ऽपि देवेशि वेतालमर्चनं त्यजेत् ।
त्यजेत्प्राप्नोति विपुलान्विघ्नसंघान्पदे पदे ।।

हे देवेशि ! दूसरे किसी का भक्त भी यदि वेताल की पूजा को छोड़ दे तो कदम-कदम पर बहुत से विघ्नसमूहों को पाता है ।

वीरमर्चेद्यथा शक्त्या साधको विधिवत्प्रिये ।
पुष्पैरर्घैस्तथा धूपैर्दीपैः कर्पूरवर्तिकैः ।।
अक्षतैः सर्वगन्धाढ्यैः कुङ्कुमागुरुचन्दनैः ।
स्तुतिभिर्नुतिभिर्वापि ह्युपवासैरपीश्वरि ।।
घृताक्षोटयवैश्चापि तिलबिल्वैः सशर्करैः ।
समिद्भिः फलमूलैर्वा मन्त्रैर्वैदिकतान्त्रिकैः ।
जुहुयाद्वीरं[2]षष्ठ्यां यः स सिद्धिं प्राप्नुयात्क्षणात् ।

हे प्रिये ! यथाशक्ति जो साधक विधिपूर्वक वीर की पूजा करे और

---

१ अन्यभक्तोपि २ जुहुयाद्वीरषष्ठ्यां

पुष्प, अर्घ्य, धूप, दीप, कर्पूरवर्तिका, अक्षत, सभी गन्धों से युक्त कुङ्कुम-अगुरु-चन्दन आदि से हे ईश्वरि ! स्तुतिओं से नुतिओं से भी, उपवासों से भी, घृत, अक्षोट, यव, तिल, बिल्व, शर्करा, समिधा, फल-मूल आदि से एवं वैदिकतान्त्रिकों-मन्त्रों से षष्ठी के दिन जो वीर के निमित्त हवन करे, वह सिद्धि तत्क्षण पाए ।

देशस्योपद्रवे घोरे दुर्भिक्षे शत्रुविग्रहे ।
धर्मस्योपद्रवे चापि राज्ञश्चोपद्रवे तथा ॥
पूजयित्वा महेशानि वीरवेतालमादरात् ।
तत्क्षणाच्च नरो मुच्येत्संकटैर्विघ्नराशिभिः ॥

देश में घोर उपद्रव उपस्थित होने पर दुर्भिक्ष में, शत्रुविग्रह में, धर्म के विषय में उपद्रव उपस्थित होने पर तथा राजा के उपद्रव उपस्थित होने पर हे महेशानि ! आदरपूर्वक वीर वेताल की पूजा कर मनुष्य तत्क्षण संकट और विघ्नसमूह से मुक्त हो जाता है ।

दुःस्वप्ने च दुरिष्टे च दुर्निमित्ते महेश्वरि ।
दिव्यान्तरिक्षपातालसम्भवोपद्रवे तथा ।
अर्चन्महावीरपतिं सद्यो मुच्येत भीतितः ॥

हे महेश्वरि ! दुःस्वप्न में दुरिष्ट में, दुर्निमित्त में और दिव्य-अन्तरिक्ष एवं पाताल से पैदा हुए उपद्रव में महावीरपति की पूजा करते हुए झट भय से मुक्त हो जाता है ।

महारोगपरिग्रस्तो दीर्घरोगगतोऽपि[1] वा ।
महापातकवांश्चापि वीरमर्चन्विमुच्यते ।

महारोग से ग्रसा हुआ वा लम्बी बीमारी से युक्त और महापातक से युक्त भी वीर की पूजा करते हुए मुक्त हो जाता है ।

शक्तो वापि महादेवि जपेद्वेतालसन्निधौ ।
पूजये[2]च्चेष्टदेवं च सद्यः सिद्धिमवाप्नुयात् ।

हे देवि ! समर्थ होते हुए भी वेताल के पास जप करे और इष्टदेव की पूजा करे, झट सिद्धि को पाए ।

न तथा स्वार्चनात्प्रीतिं प्राप्नोति परभैरवः ।
वीरार्चनाद्यथा प्रीतो भवेत्सुरवरार्चिते ॥

---

१ रोगगतोपि २ पूजयेत् चेष्ट

परभैरव वैसी प्रीति स्वार्चन से नहीं पाता है, जैसी हे सुरवरार्चिते ! वीर की अर्चना करने से प्रीति प्राप्त होती है।

अजाविकैर्वलिगणैरर्चयेद्वीरमुत्तमम् ।
वलिं दत्वा तु विधिवत्प्राप्यते सिद्धिमुत्तमाम् ।।[1]

अजाविक-वलिगणों से उत्तम वीर की पूजा करे। विधिपूर्वक वलि देकर उत्तम सिद्धि पाई जाती है।

वलिं दत्वा तु······[2]
अर्घैः कुसुमसिन्दूरैरर्चयेद्वलिमुत्तमम् ।
प्रापणं दापयेद्देवि ! वलिमजमविं तथा ।।

अर्घ्य-पुष्प-सिन्दूर से उत्तम वलि की पूजा करे। हे देवि ! प्रापण तथा बकरा भेड़ की वलि दे।

न [3]श्रीषण्डो वलिर्देयो[4] दत्वा विघ्नमवाप्नुयात् ।
सिद्धिमाप्नोति मनुजः सद्यो धूननतो वलेः ।।

श्रीखण्ड की वलि नहीं देनी चाहिए, देकर विघ्न पाए। मनुष्य वलि के कम्पन से झट सिद्धि पा लेता है।

मन्त्रयेत्पशुं मन्त्रेण वेदतन्त्रोद्भवेन च ।
साधको[5]ऽर्चनमादद्यात्सुप्रसन्नेन चेतसा ।।

वेदतन्त्रोद्भव मन्त्र से पशु की मन्त्रणा करे। साधक सुप्रसन्न चित्त से अर्चन प्रदान करे।

वलिं संकल्पमनसा यो वर्षान्तं न दास्यति ।
तस्य विघ्नकरा देवाः पशुपुत्रान्हरन्ति ते ।।

संकल्प मन से जो वर्ष के अन्त तक वलि नहीं देगा, उसके लिए देवता विघ्न कर हो उसके पशु और पुत्रों को हरते हैं।

तस्मात्संकल्पितं दद्याद्देवेभ्यो वलिमुत्तमम् ।
शीघ्रमेव[6]·····विघ्नैरन्तरितो यदि ।

इसलिए देवताओं को संकल्पित वलि दे।·········

वलिदानादवाप्नोति सिद्धिमिष्टां च सत्वरम् ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन न विलम्बेन कारयेत् ।।

---

१ सिद्धिमुत्तमम् २ बलिदत्वा तु···यह अधिकपाठ है अर्थात् पूर्वपाठ की आवृति है ३ स्रीषंढो ४ बलिर्देयो ५ साधकोर्चन ६ नद्याद्दै

बलिदान से शीघ्र अभीष्ट सिद्धि पाता है। इसलिए सभी यत्न से बिना विलम्ब के कराए।

संकलिपतविलम्बाद्धि[1] प्राप्यते विघ्नसंचयः।

सकल्पित में विलम्ब करने से विघ्नसमूह पाया जाता है।

जयं सिद्धिं च वृद्धिं च शीघ्रं पूर्वमुखो बलिः।
धुनेद्यदि स्वदेहन्तु तदा सर्वं विनिर्दिशेत्॥

पूर्व की ओर मुख किए बलि बलिप्रदान करता हुआ यदि अपने शरीर को कम्पित करे, तब जय, सिद्धि और वृद्धि सब कुछ बताए।

ऐशान्यां मन्त्रसिद्धिः स्यादाग्नेय्यां विजयस्तथा।
धूननाच्च बलेर्याम्यां मृत्युमन्तकमादिशेत्॥

ईशान कोण की तरफ बलिकम्पन से मन्त्रसिद्धि होती है तथा आग्नेय कोण में विजय प्राप्त होती है एवं नैऋत कोण में बलिकम्पन से मृत्यु यमराज का निर्देश करे।

नैऋत्यां[2] तु समं ज्ञेयं वायव्यां विघ्ननाशनम्।
वारुण्यां धनवृद्धिः स्यादुत्तरस्यां ध्रुवो जयः॥

नैऋत कोण में बलिकम्पन सम ही जानना और वायव्य कोण में विघ्नों को नाश करने वाला एवं वारुणी में धनवृद्धि तथा उत्तर में निश्चित विजय-सूचक है।

एवं लक्षणमालक्ष्य पशुच्छेदं समारभेत्।

इस प्रकार लक्षण देखकर पशुच्छेद शुरू करे।

रक्तञ्च क्षेत्रपालेभ्यः सव्यहस्तयुतं शिरः।
विप्राय कल्पयेद्देवि यकृत्खण्डन्तु चक्रके।

क्षेत्रपालों को रक्त और ब्राह्मण को सव्यहस्तयुत शिर तथा हे देवि ! चक्रक को यकृत्-खण्ड प्रदान करे।

हृत्पद्मं योगिनीभ्यश्च दत्वा प्रीतिमवाप्नुयात्।

हृत्पद्म योगिनियों को देकर प्रीति को पाए।

बलिं दत्वा तु देवेशि यो विधिं न समा[3]चरेत्।
पशुहत्यामवाप्नोति चेति सत्येन ते शपे॥

हे देवेशि ! बलि देकर जो विधि न करे, वह पशुहत्या को पाता है, यह मैं तुझे सत्य की शपथ खा कहता हूं।

---

१ विलंबाद्धि २ नैनृत्यं ३ समंचरेत्

शिरः संकल्प्य विधिवदाचार्या समर्पयेत् ।
अदत्वा विघ्नसंघांश्च प्राप्नुयाच्च पदे पदे ॥

विधिपूर्वक शिर का संकल्प कर आचार्य को दे दे । न देता हुआ कदम-कदम पर विघ्नसमूहों को पाए ।

पशुहत्यामपीशानि सिद्धिहानिं च सुन्दरि ।

हे सुन्दरि ! ईशानि ! पशुहत्यादोष और सिद्धि में हानि पाए ।

स्वार्थे पशुवधो हिंसा यज्ञे पशुवधोऽवधः ।
एवं पशुवधः[1] प्रोक्तो वेदतन्त्रानुशासने ॥

स्वार्थ के लिए किया गया पशुवध हिंसा है, यज्ञ में किया गया पशुवध वध नहीं माना जाता । इस प्रकार वेदतन्त्रानुशासन में पशुवध कहा गया है ।

[2]हस्तादेव समुछिद्य यस्य तद्योगिनी हरेत् ।
तस्य सर्वत्र सिद्धिः स्याञ्जयश्चैव न संशयः ।

जिस के हाथ से काटकर वह खण्ड योगिनी ले जाए, उसे सर्वत्र सिद्धि प्राप्ति होती है और विजय होती है, इसमें संशय नहीं है ।

वायसा अपि देवेशि शीघ्रं यद्बलिमाहरन् ।
तस्यापि साधकस्याशु जय एव न संशयः ॥

हे देवेशि ! कौए भी शीघ्र जिस बलि का हरण करते हैं, उस साधक को भी शीघ्र विजय प्राप्त होती है, इसमें संशय नहीं है ।

असन्तर्प्य तु क्षेत्रेशान्योगिनीभ्यो य आददेत् ।
बलिं स हानिमाप्नोति साधकः शुभलक्षणे ॥

क्षेत्रेशों का बिना तर्पण किए जो योगिनियों को बलि दे, वह साधक शुभलक्षण में भी हानि पाता है ।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन षष्ठ्यां वेतालमर्चयेत् ।
प्राप्नोति वृद्धिं सिद्धिं च गतिमन्ते[3]ऽप्यनुत्तमाम् ॥

इसलिए सब यत्न से षष्ठी के दिन वेताल की पूजा करे । वृद्धि, सिद्धि और अन्त में अत्युत्तम गति को पाता है ।

न वेताल समं स्थानं दिवि भूम्यन्तरिक्षगम् ।
सर्वसिद्धिकरं देवि न भूतं न भविष्यति ॥

वेताल के समान सभी सिद्धि प्रदान करने वाला स्थान द्युलोक में, भूमि

---

१ पशुवदः २ हस्मादेव ३ गतिमन्तेप्य

पर और अन्तरिक्ष में नहीं है, न हुआ है और न होगा ।

तदा प्रभृति देवेशि भैरवेण महात्मना ।
स्वात्मनः पुरतो दत्तं स्थानं पुण्ये सरोवरे ॥

हे देवेशि ! तब से लेकर महात्मा भैरव ने पुण्य सरोवर में अपने सामने स्थान दिया ।

वेतालो देवदेवेशि क्रोशार्धं व्याप्य संस्थितः ।
योग्यलंकरणाद्देवि त्वा ज्येष्ठारं समन्ततः ।
वेतालस्य महापुण्यं स्थानं प्रोक्तं पुरातनैः ॥

हे देवदेवेशि ! वेताल आधा कोस घेर कर स्थित हुआ । हे देवि !... वेताल का महापुण्य स्थान पुरातन पुरुषों ने कहा है ।

यत्किञ्चित्क्रियते कर्म शुभं वाप्यशुभं तथा ।
अस्मिन्घोरे महास्थाने ह्यक्षयं लभते फलम् ॥

इस घोर महास्थान में शुभ-अशुभ जो कुछ कर्म किया जाता है, उसका अक्षय फल मिलता है ।

पुरश्चरणमंत्रैव[1] यः कुर्यात्साधकोत्तमः ।
शीघ्रं स सिद्धिमाप्नोति देवस्ते वश्यमेष्यति ॥

जो उत्तम साधक यहीं पुरश्चरण करे, वह शीघ्र सिद्धि पाता है और देवता उसके वश हो जाते हैं ।

एतत्पुण्यतमं स्थानमेतद्घोरतरं तथा ।
एतत्सिद्धिकरं स्थानमेतद्वृद्धिकरं प्रिये

यह पुण्यतम स्थान है तथा यह घोरतर स्थान है । हे प्रिये ! यह सिद्धि-कर स्थान है और यह वृद्धिकर स्थान है ।

एतद्धानिकरं चापि प्रमादादपि तिष्ठति ।
कलौ सद्यस्तु फलदं भुक्तिमुक्तिकरं परम् ॥

प्रमाद से यह स्थान हानिकर भी होता है । कलियुग में झटपट परम भुक्ति-मुक्ति प्रदान करने वाला तथा फल देने वाला यह स्थान है ।

भूतप्रेतपिशाचादिडाकिनीयक्षनाशनम् ।
शुचीनां [2]प्रीतिजननमशुचीनां तु दुःखदम् ।

भूत-प्रेत-पिशाच आदि-डाकिनी-यक्ष का नाश करने वाला, शुद्ध बुद्धों में प्रीति पैदा करने वाला और अशुद्धों को दुःख देने वाला है ।

---

१ पुरश्चरणमात्रैव २ प्रेतिजनन

इदं वर्चस्करं स्थानमिदं श्रेयोविवर्धनम् ।
इदमायुष्करं चापि सर्वारिष्टनिवारणम् ।।

यह तेज प्रदान करने वाला स्थान है, यह श्रेय बढ़ाने वाला है, यह आयु प्रदान करने वाला भी है और सभी अरिष्टों को दूर करने वाला है।

सर्वदुष्टप्रशमनं सर्वापद्विनिवर्तनम् ।
सर्वारिष्टेषु वेतालस्थानं देवि समन्ततः ।।
पूजयेयुर्महावीरं मुच्यन्ते विघ्नराशिभिः ।
बहुनात्र किमुक्तेन नरः पातकवान्कलौ ।
पापैर्विघ्ना[1]न्नवाप्नोति तस्माद्वेतालमाश्रयेत् ।।

हे देवि ! यह स्थान सभी दुष्टों को शान्त करने वाला है, सभी आपत्तियों को हटाने वाला है। सभी अरिष्टों में वेताल स्थान के चारों तरफ महावीर की पूजा करें, तब विघ्नसमूहों से मुक्त हो जाते हैं। यहां बहुत कहने से क्या ? कलियुग में पापी मनुष्य पापों से विघ्नों को प्राप्त होता है, इसलिए वेताल का आश्रय ले।

पञ्चम्यां मधुकृष्णस्य श्रियो[2]ऽर्चनमिहोच्यते ।
षष्ठ्यां वीरेशपूजा च कथिता ते वरानने ।।

पञ्चमी के दिन मधुकृष्ण और लक्ष्मी की पूजा यहां कही जाती है और षष्टी के दिन हे वरानने ! वीरेश की पूजा तुझे कही है।

[3]ज्येष्ठकृष्णस्य पञ्चम्यां ज्येष्ठेशार्चा मयोदिता ।
तत्रापि प्रापणं देयं मत्स्यापूपैर्महेश्वरि ।।

ज्येष्ठ मास के कृष्णपक्ष की पञ्चमी के दिन ज्येष्ठेश की पूजा मैंने कही है। हे महेश्वरि ! वहां भी मत्स्य अपूपों से प्रापण देना चाहिए।

इति वेतालक्षेत्रस्य महिमा गहना परा ।
श्रुतो महापापहरस्तव स्नेहात्प्रकाशितः ।।

यह महापाप का हरण करने वाली, तेरे स्नेह से प्रकाशित, परम गहन वेतालक्षेत्र की महिमा मैंने सुनी।

इत्येष पटलो गुह्यो महापापापहारकः ।
श्रुतः संपठितो वापि सर्वविघ्नापनोदनः ।।

इस प्रकार यह महापापों को हरने वाला गुह्य पटल सुने जाने अथवा पढ़े जाने से भी सभी विघ्नों को नष्ट करने वाला है।

इति श्री श्रीसंहितायां फालकविषयोपजात तीर्थसंग्रहे श्री
वेतालस्थानमहिमा नाम पटलः ।।

---

१ विघ्नानया २ श्रियोर्चन ३ ज्यैष्ट

श्री भैरवी—

पुनर्वद महादेव फालकं तीर्थसंग्रहम् ।
श्रावं श्रावमपीशान न तृप्यामि महेश्वर ॥
ग्राम ईशविहाराख्ये सन्ति तीर्थान्यनेकशः ।
विस्तरमुद्भवं चैव मे हितकाम्यया ॥

हे महादेव ! फिर आप फालक तीर्थसंग्रह के विषय में कहिये । हे ईशान ! महेश्वर ! सुन-सुनकर मैं तृप्त नहीं हो रही हूं । ईशविहार नामक ग्राम में अनेक तीर्थ हैं । हितकामना से विस्तारपूर्वक मुझे उसकी उत्पत्ति के विषय में और उसके फल को कहिये ।

श्री भैरवः—

शृणु वक्ष्ये महादेवि ग्राम ईशविहारणि ।
उत्पत्तिं च फलं चैव तीर्थानाममरेश्वरि ॥

ईशग्राम में विहार करने वाली हे महादेवि ! सुनिये, हे अमरेश्वरि ! तीर्थों की उत्पत्ति के विषय में और उनके फल के विषय में कहता हूं ।

पुरा विहरमाणस्य भैरवस्य कदाचन ।
उन्मत्तरसमत्तस्य रक्षः प्रादुरभूत्किल ॥

पूर्वयुग में कभी उन्मत्त कर देने वाले रसपान से मत्त हुए और विहरण करते हुए भैरव के एक राक्षस का प्रादुर्भाव हुआ ।

स चकार वशे सर्वं त्रै[1]लोक्यं सचराचरम् ।
विप्रचित्तीकुलोद्भूतः प्रमत्तो नाम दानवः ।

विप्रचित्ती कुल में पैदा हुए प्रमत्त नामक दानव ने चर-अचर सभी त्रैलोक्य को वश में कर लिया ।

[2]दिक्पालान्वाहयामास विमानमिति विश्रुतम् ।
एकत्रोपरिभागेन भैरवस्य महात्मनः ।
दिक्पालान्वाहयामो[3]ऽथाप्यायातो दानवाधमः ।
श्रमार्दिता देववरा भयार्दिताः, पिपासिता श्वसनपरा वुभुक्षिताः ।
विलोक्य तं परमभवं विचेतनाः, सगद्गदं······

---

१ त्रलोक्यं २ दिक्पाला ३ न्वाहयामोघा

दिक्पालों को तथा उनके विमान को बहा दिया, ऐसा सुना जाता है। महात्मा भैरव के एक तरफ ऊपर की ओर उठाकर दिक्पालों को बहा देते हैं, यह संकल्प कर दानवाधम आया।

श्रम से व्याकुल, भय से पीड़ित, प्यासे, लम्बे साँस लेते हुये, भूखे देव श्रेष्ठ उस परमभव दानव को देखकर विचेतन हुए देवता गद् गद्······

देवा ऊचुः—देवता बोले—

ॐ नमाम रौद्रां तनुमीश्वरस्य घोरां यदन्यां च तथाप्यघोराम।
घोराघोरां······ शान्तरूपां शिवेश्वराख्यां च सदाशिवां च ॥
भुजाकाशां रौद्रमन्युमिष्वस्त्रां शिवाख्यां तां परमां विश्वरूपाम्।
हिंसाशून्यां परमां परेश यया जीवज्जगदायाति चित्तम् ॥
तां सर्वरूपां परमामघोरां घोराघोरां तनुमाख्याहि देव।
यां ते [1]तनुं शरणमुपेत्य सर्वे विमोक्षाम दारुणान्मृत्युपाशात् ॥
निर्विण्णा ये दीक्षितां भैरवाख्यां तनुंश्रिताः शरणं ते महेश।
उग्रां भीमांशं तमां दारूणां तां ते मोचिता भवता मृत्युपाशात् ॥
ये दीक्षितां समयां संश्रिताश्च गृहाश्रया धर्मपरा महात्मन्।
ते मोचिता भवता पाशसंघाद्ये धावमाना अनुयान्ति धर्मम् ॥

ॐ नमस्तस्मै भगवते गिरिशाय[2] कपर्दिने।
यस्येयं स्थूलरूपाख्या तनुर्वैसचराचरा ॥

जिसका यह चराचर स्थूलरूपाख्य तनु है, उस भगवान् गिरीश कपर्दी को नमस्कार है।

ॐ नमस्तस्मै भगवते भीमाय घोररूपिणे।
यं विदित्वा न जानन्ति प्राज्ञाः सर्वार्थदर्शिनः ॥

सर्वार्थदर्शी बुद्धिमान् पुरुष जिसे जान कर और कुछ नहीं जानते हैं, उस भगवान् घोररूप भीम को नमस्कार हो।

ॐ नमस्तस्मै भगवते शितिकण्ठाय शूलिने।
यस्य सर्वतनुः शान्ताः शमिनो यां प्रयान्ति वै ॥

उस भगवान् त्रिशूलधारी शितिकण्ठ को नमस्कार है।

ॐ नमस्तस्मै भगवते घोररूपाय शम्भवे।
यद्दर्शनाद्धोरदैत्याः प्रचलन्ति दिशो दश ॥

---

१ ननुं २ गिरिशाय

जिसके देखने से घोर दैत्य दसों दिशाओं की ओर चले जाते हैं,उस भगवान् घोररूप शम्भु को नमस्कार है।

ॐ नमस्तस्मै भगवते[1]ऽघोराय महात्मने।
यत्तनुं यान्ति निर्विण्णा सामया अपि यान्ति यत् ॥

उस भगवान् अघोर महात्मा को नमस्कार है।

ॐ [2]नमस्तस्मै भगवते घोराघोराय शूलिने।
यत्तनुमनुधावन्ति सर्वतोऽ[3]भयदीक्षिताः ॥

सब तरह से अभय में दीक्षित पुरुष जिसके तनु का अनुसरण करते हैं, उस त्रिशूलधारी घोराघोर भगवान् को नमस्कार है।

ॐ नमस्तस्मै भगवते पराय पररूपिणे।
यत्पराख्यां तनुं यान्ति धावन्तः परमार्थिनः ॥

दौड़ते हुये परमार्थी जिस पराख्या तनु को पाते हैं, उस पररूप भगवान् पर को नमस्कार है।

ॐ नमस्तस्मै भगवते त्वष्टभैरवरूपिणे।
बिभ्यन्तो यं प्रयान्त्येव ज्वलनार्कसमप्रभाः ॥

जलते हुये सूर्य के समान प्रभा वाले डरते हुये जिसके पास जाते हैं, उस भैरवरूप भगवान् त्वष्टा को नमस्कार है।

ॐ नमो भगवते तुभ्यं प्रणवादिस्वरूपिणे।
गायत्र्युपासका यान्ति यं परार्थस्वरूपिणम् ॥

गायत्री के उपासक परार्थस्वरूपी जिसके पास जाते हैं, प्रणवादिस्वरूप भगवान् तुझे नमस्कार है।

ॐ नमो भगवते तुभ्यं प्राणवायुस्वरूपिणे।
योगिनो यं प्रयान्त्येव यतयः संश्रितव्रताः ॥

संश्रितव्रत-यती-योगी लोग जिसके पास जाते हैं, प्राणवायुस्वरूप भगवन्! तुझे नमस्कार है।

ॐ नमो भगवतो तुभ्यं भूताकाशस्वरूपिणे।
भूतेज्या यान्ति यं देवं तं नमाम स्वयं प्रभम् ॥

भूतेज्य जिस देव के पास जाते हैं, उस स्वयम्प्रभ को हम नमस्कार करते। हैंभूताकाशस्वरूपी भगवान्! तुझे नमस्कार है।

---

१ भगवते अघोराह २ नमस्तस्मै ३ सर्वतोभय

ॐ नमो भगवते तुभ्यं स्थाणवे स्थितिरूपिणे ।
स्थितप्राज्ञाः प्रयान्त्येव यं देवं निरवग्रहाः ॥

निरवग्रह-स्थितप्राज्ञ जिस देव के पास जाते हैं, स्थितिरूप भगवन् स्थाणु ! तुझे नमस्कार है ।

नमो दीर्घाय ह्रस्वाय ह्रस्वदीर्घाय ते नमः ।
स्वरव्यञ्जनरूपाय मातृकाक्षर रूपिणे ॥

दीर्घ-ह्रस्व को नमस्कार हो, हे ह्रस्वदीर्घ ! स्वर-व्यञ्जनरूप-मातृकाक्षरस्वरूप ! तुझे नमस्कार है ।

आदिक्षान्ताय देवाय सूक्ष्माय सूक्ष्मरूपिणे ।
शब्दब्रह्मप्रकाशाय प्रकाशाय च ते नमः ॥

आदिक्षान्त-देव-सूक्ष्म-सूक्ष्मरूप-शब्दब्रह्मप्रकाश और प्रकाश ! तुझ नमस्कार है ।

वेदागमस्वरूपाय वेदागमविभेदिने ।
वेदागमबहिःस्थाय वेदा[1]गमविधायिने ॥

वेदागमस्वरूप, वेदागमविभेदी, वेदागम बहिःस्थ, वेदागमविधायी ! तुझे नमस्कार है ।

यदेतत्सुमहास्थूलं यदेतत्सूक्ष्ममुत्तमम् ।
तत्सर्वं ते महद्रूपं प्रणमाम महेश्वर ॥

जो यह सुमहास्थूल है, जो यह उत्तम सूक्ष्म है, वह सब तेरा महद्रूप है । महेश्वर ! हम तुझे नमस्कार करते हैं ।

भीमं य[2]द्भैरवं रूपं स्थाणुं[3] च चलमेव च ।
उग्रं कपर्दं यद्रूपं तन्नमाम महेश्वरम् ॥

भीम जो भैरव रूप है, स्थाणु और चल है, उग्र-कपर्द जो रूप है, उस महेश्वर को हम नमस्कार करते हैं ।

यद्बहिरन्तरञ्चैव वृहत्सूक्ष्ममनुत्तमम् ।
स्तुमः किं किं च निन्दामो वैभवं~…… ॥

जो बाहर है, अन्दर है, अत्युत्तम वृहत्सूक्ष्म है……

क्षुत्पिपासार्दिता देवाः प्रमत्तदानवार्दिताः ।
भैरवं समनुप्राप्ता भूयो भूयो नतास्महे ॥

---

१ वेधागम २ यद्भैरवं ३ स्थाणु

भूख-प्यास से पीड़ित और मदमत्त दानवों से सताये हुये देवता भैरव के पास आये। बार बार हम तुम्हें नमस्कार करते हैं।

श्री भैरवः

इत्थं स्तुत्वा भैरवाख्यां तनुमत्र महेश्वरि।
भैरवो व्याकुलीभूतो दृष्ट्वा दैत्यार्दितान्सुरान्॥

हे महेश्वरि! इस प्रकार यहाँ भैरवाख्य तनु की स्तुति की गई। दैत्यों से पीड़ित सुरों को देखकर भैरव व्याकुल हुए।

कपर्दः शिथिलीभूतो भैरवस्य महात्मनः।
शतधा प्रास्रवद्वारि गङ्गायाः सुरपूजिते॥

महात्मा भैरव का कपर्द ढीला हुआ और हे सुरपूजिते! उससे गंगा का जल सौ प्रकार से निकला।

तत्स्रोतो······ पर्वते भैरवे शिवे।
तदेव शतधाराख्यं तीर्थं ख्यातं महेश्वरि॥

हे शिवे! वह स्रोत भैरव पर्वत पर······वही तीर्थ······शतधारा नाम से प्रसिद्ध हुआ।

देवान्प्रोवाच भगवान्मा भैष्ट [1]सुरवन्दित।
निहन्मि दानवं मत्तं त्रिशूलेनेति निश्चितम्॥

भगवान् भैरव ने देवताओं से कहा कि हे सुरवन्दित! मत डरो। मैं उस मदमत्त दानव को त्रिशूल से मारता हूँ, यह निश्चित है।

इति प्रोक्त्वा सुरान्देवः प्रगृह्य शूलमुत्तमम्।
शतधारोद्भवा गङ्गा नीता सुरवरेण वै॥

भैरवदेव ने देवताओं को यह कह उत्तम त्रिशूल हाथ में ले लिया एवं सुरवर ने शतधारा से पैदा हुई गङ्गा लाई।

पातालाच्च ततः क्रुद्धः शूलं भूमौ निखातवान्।
असुरस्यास्य निर्घाताच्छतधारोद्भवा नदी॥

तदनन्तर क्रुद्ध हुए इसने भूमि पर त्रिशूल गाड़ा। इस असुर के प्रहार से पाताल लोक से शतधारोद्भवा नदी पैदा हुई।

शूलप्रहारादुद्भूता पातालादमरेश्वरि॥

हे अमरेश्वरि! त्रिशूल के प्रहार से पाताल लोक से यह पैदा हुई।

---

१ सुरवंदितः

पातालान्निःसृतं तोयं शतधोराद्भवं यतः।
गा[1]गतं च ततः ख्याता गङ्गापातालसम्भवा ॥

पाताल लोक से निकला हुआ जल सौ धाराओं में पैदा हुआ इस लिये यह गङ्गापातालसम्भवा प्रसिद्ध हुआ।

देवान्प्रोवाच च पुनर्भगवान्भूतभावनः।
तिष्टध्वमत्र देवेशा मम देशे विहारके ॥

फिर भूतभावन भगवान् ने देवताओं से कहा कि हे देवेशो! मेरे इस विहारक देश में अब तुम रहो।

प्रमत्तश्चात्र नष्टो वै वम शूलप्रहारतः।
मा भैष्टे चिरं हृष्टास्तिष्टध्वमकुतोभयाः ॥

मदमत्त वह दानव यहाँ मेरे त्रिशूल के प्रहार से नष्ट हो गया है, डर मत, यहाँ चिरकाल पर्यन्त निर्भय और प्रसन्न हो रहो।

संसाराख्यं[2] भयं चात्र नाशयामि न संशयः।
ऐश्वर्यं मम पश्यध्वं मृतिरप्यमृतीयते ॥

सांसारिक भय को मैं यहाँ नष्ट करता हूँ, इसमें संशय नहीं है। मेरे ऐश्वर्य को देखो, मौत भी अमृत की तरह हो जाती है।

मद्भया[3]च्च मृतिर्नास्मि जरा नास्त्यत्र विश्रुतम्।
जरामृत्युविहीनाश्च[4] भीताः संसारतश्च ये[5] ॥

मेरे भय से मृत्यु नहीं है और यहाँ बुढ़ापा भी नहीं है, ऐसा प्रसिद्ध है। बुढ़ापे और मृत्यु से रहित हो जो संसार से भयभीत है।

ते ईशालयमासाद्य यान्ति सादाशिवं पदम्।
स्तुति भवत्कृतां...... [6]

वे ईशालय को पाकर सदाशिव पद को पाते हैं।......

इति श्री भृङ्गीशसंहितायां गुप्तगङ्गामाहात्म्यं समाप्तम् ॥

---

१ मागतं २ संसाराख्यां ३ मद्भयं ४ विहीनाच्च ५... ६ मूल पाण्डुलिपि में पाठाभाव

ॐ चिद्विमर्शस्विरूपो[1]ऽयं सुन्दरीत्रिपुराभिधा ।
प्रणालो नेत्रगोलादिस्त··· रा बोधनिस्सृतिः ॥
श्री सुन्दरीप्रणालो[2]ऽयं देहो देवीगणाश्रयः ।
विकल्पध्वान्तसन्दोहच्छेदभानुमरीचिकाः[3] ॥
नमस्याः पञ्चवर्गस्था देव्यो ह्यभयसिद्धिदाः ।
सदा रविसहस्राभा रश्मिचक्रोपवृंहिताः[4] ॥
[5]द्रष्टव्यो ह्यनवच्छिन्नो देशकाला······[6] ।
शङ्करः सहजानन्दपरमामृतपूरितः ॥
तर्पणीयो महादेवस्तै[7]···स्यादिस्वशक्तिभिः ।
नानारूपरसाद्यैश्च विषयैर्देहगोचरः ॥
वामे चान्द्रमसौ नेत्रे दक्षिणे भास्करी शिवा[8] ।
रूपोपहार गच्छन्ती शाङ्करी शक्तिरुत्तमा ॥
[9]···मांसासवैर्दिव्यैस्तर्पयन्ती महेश्वरम् ।
वारुणी मुखरन्ध्रस्था चिदात्मानं परेश्वरी ॥
पदवाक्यविभेदेन शब्दशासनकारिणी ।
जिह्वाग्रे हव्यवाहाख्या नमस्या विश्वतोमुखा ॥
शब्दब्रह्मस्वरूपस्य विवक्षोद्भवकारिणी ।
सदोदिताक्रमज्ञानोचितसंकल्पनानुगा ॥
सच्छास्त्रजननी देवी मातृकाक्षररूपिणी ।
स्वरवर्णविशेषेण व्याप्य सर्वं व्यवस्थिता ॥

श्रेष्ठ शास्त्र की जन्मदात्री, मातृकाक्षररूपिणी देवी स्वरवर्णविशेष से सबको व्याप्त कर व्यवस्थित है ।

खेचरी नादमार्गस्था नामस्यान्तकशान्तये ।
चलनस्पन्दनादीनि देहयन्त्रे करोति या ॥

---

१ स्वरूपोयं २ प्रणालोयं ३ मरोचिकाः ४ वृंहितः ५ दृष्टव्यो ६ कपाधिभिः ७······ ८ शिवं ९ ननामांसा

क्रीडा श्रीदेवदेवस्य सा देवी वा[1]यवी परा ।
कृशा दक्षिणनासाग्रे वामे स्थूला जगद्गुरुम् ।।

अमृतग्रासमादाय तर्पयन्ती महेश्वरम् ।
जगदानन्दजननी नानासर्गविधायिनी ।
प्रजनस्था महादेवी वैरि[2]... शक्तिरुत्तमा ।
असारमलसंघातत्यागवुद्धिविधायिनी ।।

[3]वैवस्वती सदा वन्द्या[4]... युमार्गार्गलस्थिता ।
पद्भ्यां नारायणी देवी नमस्या मोक्षसिद्धये ।।

दैवे पैत्र्ये गता भक्तौ सर्वकर्मप्रवर्तिनी ।
स्वामिनपाणिपद्मस्या सेव्यैन्द्री शक्तिरुत्तमा ।।

अहङ्कारे नारसिंही वाराही वीर्यसंस्थिता ।
स वाह्याभ्यन्तरस्पर्शचेतनानन्दरूपिणी ।।
देहली देवदेवस्य नमस्या देहगा सती ।
द्वाभ्यां पिवति यः सर्वमग्नीषोमात्मकं जगत् ।।
नासारन्ध्रप्रवाहाभ्यां द्विपः स्तुत्यो गणेश्वरः ।
प्राणदेवो गणेशो[5]ऽयं जठराग्निस्वरूपभृत् ।।

रजस्तमोविनिर्मुक्तसत्वमार्गप्रवाहिनी ।
समाधिरुच्यते गङ्गा[6] शुद्धचिद्धामदायिनी ।।

विमुक्ताशेषसंकल्पस्ववोधानन्दविग्रहा ।
प्रतिभा यमुना स्तुत्या वैस्वरी तु सरस्वती ।।

पिण्डीकृत्य यया सर्वं मुद्रितं पारमेश्वरीम् ।
जत्यादिमोहबन्धेन सा माया मोहिनी परा ।।

एवंविधे परामेशे मण्डले देहनामनि ।
गणधिपतयस्तत्र मातरः पञ्चभौतिकाः ।।

ब्रह्मादयो देवगणा महेश्वरमुपासते ।
स्नात्वा स्वभावविमले पुष्करे हृदयाश्रिते ।।
सत्यशुक्लाम्बरो भूत्वा दृष्टं तं प्रविशेज्जनः ।
प्रणमेद्देवद्देवेशं मातृचक्रमशेषतः ।।

---

१ वाधवी २ वैरिञ्ची ३ वैवसुती ४ पायुमार्गार्गलस्थिता ५ गणेशोयं ६ गचं

मातृचक्रात्मकं सव जगच्चिच्छक्तिसंशयः ।
सर्वासां कारणेशा नामधारा शक्तिरुत्तमा ॥
चिदभिन्ना स्वभावाख्या स्वातन्त्र्याख्या विमर्शिनी ।
एकैव परमाशक्तिर्यया शक्तः परेश्वरः ॥
ब्रह्मकेशवरुद्रेशसदाशिव[1]......
या करोति स्वमाहात्म्यात्परमानन्दरूपिणी ॥
शक्तिमद्रूप एवायं शक्त्या [2]भिन्नोऽपि सर्वदा ।
स्वस्वातन्त्र्यात्स्वात्मनीमं मोहं सृजति जात्वपि ॥

यह शक्तिमत्-रूप ही है, सर्वदा शक्ति से भिन्न भी है। अपनी स्वतन्त्रता से अपने में इस मोह को कभी भी छोड़ देता है।

द्वैतप्रमामहामोहे रात्रिरित्यभिधीयते ।
प्रकाशः शिव एवासौ मोहोऽयं[3] रात्रिरुत्तमा ॥

द्वैतप्रमा महामोह में 'रात्रि' यह कही जाती है। प्रकाश के रूप में वह शिव ही है। यह मोह उत्तम रात्रि है।

या मलं शिवरात्रिश्च [4]सर्वत्र सिद्धिरुत्तमम् ।
शिवो[5]ऽनुग्रहरूपेण तिरोधानं निषीविनी ॥
शिवेनोत्पादिता रात्रिः शिवेनैव च संहृता ।
इतीयं शिवरात्रिस्तु यैर्ज्ञाता[6]स्ते महेश्वराः ॥

शिव ने रात्रि पैदा की और शिव ने ही उसे आकृष्ट किया, इसीलिए यह शिवरात्रि कही जाती है। जिन्होंने इसे जाना, वे महेश्वर है।

स्वमोहेन स्वकीयैव परेच्छा शक्तिरद्भुता[7] ।
चिन्नाथं मोहय[8]त्यस्ति पञ्चकारणसर्जनात् ॥

अपने मोह से अपनी ही अद्भुत परेच्छा शक्ति पांच कारणों की सर्जना से चिन्नाथ को मोहित करती है।

ब्रह्मादीन्कन्दुकान्कृत्वा...[9] विहितं मुहुः ।

ब्रह्मा-आदियों को गेन्द बनाकर......

इत्थं मूढो[10]ऽपि भगवान्स्वस्वातन्त्र्यात्पुनश्च सः ।
तस्यां द्वैतप्रियारात्रौ निजं प्रकटयंस्तथा ॥

---

१ मुखान्मता २ भिन्नोपि ३ मोहोयं ४ पर्वत्र ५ शिवोनुग्रह ६ यैर्ज्ञाता ते ७ शक्तिरद्भुतं ८ मोहयंत्पस्ति ९ शिशभ्य १० मूढोपि

यथा ते कन्दुकाः सर्वे ब्रह्माद्या भुवनेश्वराः ।
साधिष्ठाना अपि लयं व्रजेयुर्हेतुना सह ॥

इस प्रकार मूढ भी उस भगवान् ने फिर अपनी स्वतन्त्रता से उस द्वैत-प्रिया रात्रि के दिन आने को प्रकट किया और वे गेन्द बने हुए सभी ब्रह्मा आदि भुवनेश्वर अधिष्ठान युक्त होते हुए भी कारण के साथ लय को प्राप्त हुए।

राजा शिवस्य रात्रौ तां ज्वालां[1] लिङ्गस्य दर्शनात् ।
देवीपुत्रौ[2] ··· रामौ सुन्दरीनालकेशवौ ।
युद्धं कृत्वा विचिन्वंतावस्यां तं जग्मत र्नच ॥

मनो हि राजसं ब्रह्मा सात्विकी मतिरुत्तमा ।
[3]सूक्ष्मो ज्ञयः परो विष्णुरिति सच्छास्त्रनिर्णयः ॥

मन राजस ब्रह्मा है, सात्विकी बुद्धि उत्तम है, पर विष्णु सूक्ष्म जानना चाहिए। यह शास्त्र का निर्णय है।

महाप्रकाशश्चिद्रूपो ज्वालालिङ्गमिति स्मृतम् ।
चित्प्रकाशगणाः सर्वे देवतिर्यङादयः[4] ॥

महाप्रकाश-चिद्रूप 'ज्वालालिङ्ग' यह कहा जाता है और देव-तिर्यङ आदि सभी चित्प्रकाशगण हैं।

वह्नेः स्फुलिङ्गा इव ते क्षेत्रपा वहुनिस्सृताः ।
विमर्शशक्त्यद्भुतं [5]तन्मनो बुद्ध्यादिकं तथा ॥

अग्नि से पैदा हुई चिन्गारियों की तरह वहुत से निकले हुए वे क्षेत्रप और अद्भुत विमर्शशक्ति-तन्मनः बुद्धि आदि हैं।

यथान्तःकरणं ग्रामश्चिन्नाथं कुरुते जडम् ।
क्षेत्रं शरीरमित्युक्तं तत्पाला जीवरूपिणः ।
तिक्तास्याद्या रसास्तेषां भोग्य ······स्मृतं बुधैः ॥

ज्वालालिङ्गं निर्विकल्पं रूपं संकल्परूपि तत् ।
चित्तं कथञ्चिज्जडयोर्घटते च समागमः ॥

निर्विकल्प रूप ज्वालालिङ्ग और संकल्परूप वह चित्त किसी तरह······

---

१ ज्वाला २······ ३ सूक्ष्मा ४ तिर्यङ्गरातयः ५ शक्त्युदभुतं

संकल्पो निर्विकल्पे तु विदद्यादुत्तमं यदि ।
गन्तुं स्वयं शिरच्छेदात्स एव न भवेत्स्फुटम् ।
यतो वाचो निवर्तन्ते ह्यप्राप्य मनसा सह ।।

निर्विकल्प में संकल्प यदि उत्तम करे । स्वयं जाने के लिए शिरच्छेद से वही स्फुट न हो, क्योंकि वाणिएं विना पाए मन के साथ लौटती हैं ।

इति श्रुत्वापि यः कश्चिन्मूढधीः कथयेद्भ्रमात् ।
जानेऽह[1]मिति सोऽहं[2] ज्ञो ह्यविज्ञातमिति श्रुतेः ।।

यह सुनकर भी जो कोई मूढधी भ्रम से कहे कि 'मैं जानता हूँ, मैंने उसे जान लिया है तो उसने कुछ नहीं जाना, यह श्रुति का वाक्य है ।

चेद्धर्मज्ञानवैराग्यैश्च [3]यात्माध्यावसायिनी ।
कस्यचित्सात्विकी वुद्धिः परदैत्यपि जात्वपि ।
किन्तु जाने नाहमिति वदत्येव तदद्भुतम् ।।

यदि धर्म-ज्ञान और वैराग्य से किसी की जो आत्माध्यावसायिना सात्विकी बुद्धि······ किन्तु मैं उसे नहीं जानता हूँ, ऐसा कहता है, वह अद्भुत है ।

रमणस्त्रिपुरापुत्रः शिवपृष्टो[4]ऽपि [5]सोऽव्रवीत् ।
यथा नान्तो मया दृष्टस्तद्वदत्र विनिश्चयः ।।

शिव से पूछे हुए भी त्रिपुरा के पुत्र उस रमण ने कहा कि जैसे उसका तरह यहां मैंने अन्त नही देखा ।

अतो दृष्टो मयेत्येवं कथितो ···हिणेन च ।
न दृष्टस्तेन वेदो यदप्राप्य मनसा सह ।।

इसीलिए··· ह्रिण ने ऐसा यह कहा कि मैंने देखा है······

नान्तो दृष्टो मयेत्येवं कथिते[6]ऽपि मुरारिणा ।
दृष्टस्तेनापि वेदो यद्दृश्यते त्व ··यादिकः ।।
अत्रार्थे श्रुतिरप्य[7]स्ति बोधाबोधविराविनी ।
यस्य[8] मतं तस्य मतं मतं यस्य न वेदसः ।।
अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम् ।
अणवोपायभूमिस्तु दक्षिणाचाररूपिणी ।

---

१ नानेहमिति २ सोह ३ यत्मा ४ पृष्टोपि ५ सोब्र ६ कथितेपि ७ रप्यास्ति ८ यस्या

वामाचारः [1]श्रुतिर्भूमिर्महाचारस्तु [2]शाम्भवी ॥
अप्रबुद्धो[3]ऽधिकारी तु ह्यणवोपायसंमतः ।
शक्त्युपायी प्रबुद्धः स्यात्सुप्रबुद्धस्तु शाम्भवः ॥
दक्षाचारः प्रबुद्धस्तु दीक्षाधिकृत उच्यते ।

प्रबुद्ध दक्षाचार 'दीक्षाधिकृत' कहा जाता है ।

गुरुसूर्योपदेशादि विना यन्नास्ति निर्मलः ।
सूर्योदयं विना नैव पदार्था भासनं यथा ॥
तस्मात्प्रवृत्तिमार्गे तु निष्टां कुर्यादबोधवान् ।
इत्यर्थबोधिनीं सूर्योदयव्यापितिथिं यजेत् ॥
दक्षिणाचारनिष्टस्य पञ्चायतनसेविनः ।
अहिंस्रान्नस्य भोक्तुश्च ह्युदयव्यापिनी तिथिः ॥

दक्षिणाचारनिष्ठ, पञ्चायतनसेवी और अहिंस्रअन्न खाने वाले के लिए उदयव्यापिनी तिथि हुआ करती है ।

प्रबोधव्यापिनी पूज्या वामाचारैस्तु पूजकैः ।
निशी[4]थव्यापिनी मान्या महाचारैस्तु पूजकैः ॥

वामाचार पूजकों को प्रबोधव्यापिनी की पूजा करनी चाहिये । महाचार-पूजकों को निशीथव्यापिनी मान्य है ।

आगामिन्यामविद्धायां निशीथिन्यां श्रुतं नरैः ।
सावधानतया स्थेयं प्रकाशात्मनि केवले ॥

आगामिनी-अविद्धा निशीथिनी में, सुना गया है, कि मनुष्यों को प्रकाशात्मा केवल में सावधानी से रहना चाहिए ।

वुद्ध्[5]यभिप्रायमित्थं तु प्रबोधव्यापिनी तिथिः ।
यस्य दशायां सूर्योऽपि[6] प्रमाणात्मेन्द्रियात्मिकः ॥

बुद्धि का अभिप्राय प्रबोधव्यापिनी तिथि इस तरह है, जिस की दशा में सूर्य भी प्रमाणात्मेन्द्रियात्मिक है ।

अस्तं याति तथा सोमः प्रमेयात्माजडैर्गणः ।
वह्निरूपः प्रमात्रात्मावेदकः परमः शिवः ।

---

१ श्रुतिभूमि २ शांभावी ३ अप्रबुद्धोधिकारी ४ निषीथ ५ वुद्धयाभिप्राय ६ सूर्योपि

प्रमेयात्मा सोम गण जडों से वैसे ग्रस्त होता है। प्रमात्रात्मावेदक परम शिव वह्निरूप है।

ज्वालालिङ्गप्रकाशात्मा स्वप्रभाप्रसरात्मकः।
केवलं प्रस्फुरत्स्वेन चिद्रूपेण वलीयसा ॥

स्वप्रभाप्रसरात्मक-ज्वालालिङ्गप्रकाशात्मा केवल बलवान् अपने चिद्रूप सेप्र स्फुटित होता है।

एवं निशीथे भावानां वर्गसंहारसाधके।
केवलं[1] स्वात्मविश्रान्तिरनुभाव्या[2] विचक्षशैः ॥

इस तरह भावों के वर्गसंहारसाधक निशीथ में विचक्षण पुरुषों को न केवल स्वात्मविश्रान्ति का अनुभव करना चाहिए।

इत्यभिप्रायवोधार्थं[3] निशीथे व्यापिनी तिथिः।
महाचारैः पूजनीया स्वात्मभैरवपूजकैः ॥

इस अभिप्राय को जानने के लिये स्वात्म-भैरवपूजक महाचारों का निशीथव्यापिनी तिथि की पूजा करनी चाहिये।

महामोहो मदो मानो मायामत्सर एव च।
भगवच्छक्तिभावेन तेषां ज्ञानं प्रपूजनम्।

महामोह, मद, मान, माया और मत्सर इनका ज्ञान और पूजन शक्ति-भाव को करना चाहिये।

मकारपञ्चकं मुख्यमेतत्पूज्यं प्रयत्नतः।
नत्वप्रवुद्धवद्ग्राह्यमपञ्चकमिदं बहिः ॥

यह पाँच मकार मुख्य हैं, इन की यत्न से पूजा करनी चाहिये······

मीनं मांसं तथा मुद्रा मदिरा च तथा मधु।
वामाचारैर्महाचरैर्न च पूज्यं तथा पुरम् ॥

वामचार और महाचारों ने मछली, मांस, मुद्रा, मदिरा तथा मधु की पहले पूजा नहीं करनी चाहिये।

मुद्गा माषास्तथा मिथ्या[4] तथा च मुद्रणे मधु।
पञ्चभूतात्मके देहे पञ्चेन्द्रियगणे सदा।
मा मा मा मेति[5]··· निषेधनमिदं दृढम्।
महाचारार्चकैः स्तुल्य[6]मपञ्चकमिदं शुचि ॥
नेति नेतीति नेतीति ह्यात्मज्ञानमिदं यतः।
प्रबुद्धः सर्वदा तिष्टेन्नाप्रवुद्धः कदाचन ॥

---

१ केवल २ रनुभाव्यं ३ बोधार्थ ४ मिथ्यं ५ नेमत्येव ६ स्तुत्यंमपञ्चक

नहीं है, नहीं है, नहीं है, क्योंकि यह आत्मज्ञान है। प्रबुद्ध सदा ठहरे, अप्रबुद्ध कभी नहीं।

घने[1]ऽपि मोहतामिस्रे[2]ऽप्यागामिनि च बोधवान्।
शीघ्रं स्वात्मप्रवेशेन विश्रान्ति प्राप्नुयान्नरः॥

ज्ञानी पुरुष आने वाले घने भी मोह रूपी अन्धकार में स्वात्मप्रवेश से शीघ्र विश्राम को प्राप्त करे।

अतो निशीथे रजनीमुखे वा पूजनं स्मृतम्।
कारणानां चञ्चलता वाहुल्यादागतापि च।
प्रमादलेशे त्वरितं प्रबुद्धो विमृशेत्स्वयम्॥

इसलिये निशीथ वा रजनीमुख में पूजन कहा गया है। वहुलता से कारणों की चञ्चलता आई भी। लेशमात्र भी प्रमाद आने पर प्रवुद्ध स्वयं विचार करे।

न तथा वोधहीनास्तु पञ्चभूताभिमानिनः।
विमृशेयुरन्तरेण गुरुसूर्योपदेशनम्॥

पञ्चभूताभिमानी-अज्ञानी लोग अन्तर से गुरुसूर्य के उपदेश को वैसा न सोचें।

श्रावन्तो[3]ऽपि परे तन्त्रे गुरुणा सूर्यरूपिणा।
वोधनिष्टा भवेयुर्न[4] संसाराचारकारिणः॥

संसार के आचार में व्यस्त लोग परतन्त्र के विषय में सूर्यरूपी गुरु से सुनते हुए भी ज्ञानी न होवें।

शुद्धो चित्तो विमर्शं च मत्स्या इन्द्रियरूपिणः।
छादयन्त्यनिशं लौल्याददृयज्ञानदार्ढ्यदम्॥

इन्द्रियरूपी मत्स्य शुद्ध चित्त और विमर्श को एवं अद्वयज्ञान की दृढ़ता देने वाले को चञ्चलता से बार बार ढ़क लेते हैं।

इन्द्रियद्वारवोधस्तु मत्स्यग्रहणमुच्यते।

इन्द्रियद्वार के वोध को मत्स्यग्रहण कहा जाता है।

श्ववह्निखगभक्ष्ये त देहे हंसमताभिधाम्।
विहाय चित्ति[5] विश्रम्य मांसनैवेद्यमुच्यते॥

कुत्तों, अग्नि और पक्षियों से खाए जाने योग्य शरीर में हंस मत नाम वाली चित्ति को छोड़ विश्राम कर मांस-नैवेद्य कहा जाता है।

शिवद्वैतप्रथानन्दमदघूर्णितलोचनः।

---

१ घनेपि २ तामिस्रेप्या ३ श्रावो तोः ४ भवेन्नैव ५गित्ति

सर्वं शिवमयं जानन्परमानन्दमानकात् ।
विस्मृतद्वैतभासाख्ये मदिराक्षीव उच्यते ॥
इन्द्रियाणि पशुं कृत्वा योजयेत स दीक्षितः[1] ।
क्रोधादौ दृश्यमानीयो दीक्षितो[2]ऽपि न मुक्तिभाक् ॥

वह दीक्षित इन्द्रियों को पशु समझ कर जोड़े । क्रोध आदि के देखे जाने पर दीक्षित भी मुक्ति का पात्र नहीं होता है ।

स्वानुग्रहवशादेव स्वतन्त्रः परमेश्वरः ।
पिधायेन्द्रियसंघातं योगिनीमीनरूपिणम् ।
विमर्शशक्ति स्वाधीनां मोहरात्रौ शिवां क्वचित् ।
करोति योगिनीभक्ष्यं दाक्षायणी[3] तीरितम् ॥

स्वतन्त्र परमेश्वर स्व-अनुग्रहवश से ही इन्द्रिय-समूह, मीनरूपी योगिनी, विमर्शशक्ति और कहीं मोहरात्रि के दिन स्वाधीना शिवा और दाक्षायणी इस नाम से पुकारे जाने वाले योगिनीभक्ष्य को करता है ।

दूतिडामरतन्त्रादाधितिहासादिविस्तरः ।
पूजनाच्छिवयामिन्यां देवी शिवकुलालयोः ।
ज्ञातव्यं साधकैरित्थं शिवशक्तिमयं जगत् ॥

दूति डामरतन्त्रादि में इतिहास आदि का विस्तार है । शिवरात्रि के दिन देवी-शिवकुलाल में पूजा करने से इस तरह साधकों को सारा संसार शिवशक्तिमय जानना चाहिए ।

शक्तयो[4]ऽस्य जगत्सर्वं शक्तिमांस्तु महेश्वरः ।

सारा जगत् इसकी शक्तियें हैं और महेश्वर शक्तिमान् है ।

पशूनां पिष्टरचनाकार एव स्फुटं जनम् ।
बोधयन्नित्यमनिशं प्राणिहिंसा न शोभना ॥
स्वात्मवत्सर्वभूतानि ज्ञातव्यानि वुधैः सदा ।
मृण्मयो देव एवासौ पञ्चेन्द्रियः[5]···स्मृतः ॥

अपनी आत्मा की तरह बुद्धिमान् पुरुषों को सदा सभी प्राणियों को समझना चाहिए । मृण्मय वह देव ही······

पुत्तलत्वं विमृश्यास्य न कार्या[6]ममता वुधैः ।
पञ्चपुत्तललिङ्गस्य पूजनार्थो[7]ऽयमीरितः ॥

---

१ दीक्षतः २ दीक्षितोपि ३ दाक्षायण्या इतीरितं ४ शक्तयोस्य ५ सुखः
६ कुर्यान्ममता ७ पूजनार्थोय

इसके पुत्तलत्व को विचार कर बुद्धिमान् पुरुषों को ममता नहीं करनी चाहिए। पञ्चतत्वस्वरूप देह का यह पूजनार्थं कहा गया है।

चित्यकाशशिवं मोहरात्रिं चेत्थं विवुध्य च।
शैवाः शाक्ताः क्रमाद्वोध्या अन्यथा नामधारिणः।

चित्यकाशशिव और मोहरात्रि को इस प्रकार जानकर क्रम से शैव और शाक्त जानने चाहिए, अन्यथा नामधारी हैं।

सेयं निशीथिन्या[1]... लिङ्गादिनिर्णयः।
यस्य चित्ते सदा भाति स महेश्वरपूजकः॥
देवीवटुकरामादिपूजकः स निरन्तरम्।
नाना रसासवास्वादविषयामृतपूरणम्॥
वार्धारीवार्घटीकुम्भशरावमणिकेष्वपि॥
चिज्ज्वालालिङ्गपीठेषु विदध्यात्साधकोत्तमः॥

जिसके चित्त में सदा प्रकाशित होता है, वह महेश्वरपूजक है। वह देवी-वटुक-राम आदि का पूजक एवं उत्तम साधक अनेक प्रकार के रस-आसव-आस्वाद-विषय-अमृत से परिपूर्ण व कर्घटी को वार्धारी-कुम्भ-प्याले-मणिओं में भी, चिज्वालालिङ्गपीठों में रखे।

किं पुनश्चेतनेष्वग्र्यजन्मादिषु पशुष्वपि।
विमृश्य[2] पञ्चधारूपं चैतन्यकुलपञ्चके।
मृण्मये पुत्तले देहे पञ्चधात्वं स्मृतं वुधैः॥

फिर क्या कहना—चेतनों, अग्रयजन्मदिओं, पशुओं में भी एवं चैतन्य-कुलपञ्चक में पञ्चधारूप को विचार कर बुद्धिमान् पुरुषों ने मृण्मय पुत्तल देह में पञ्चधात्व कहा है।

प्रथमं प्रणवः पीठं व्योमव्यामेश्वरी तथा।
सदा शिवो[3]...मो चैव पीठं देहः प्रकीर्तितः॥
ततः श्री खेचरी देवी वायुस्पर्शो[4]ऽवभासनम्।
ईश्वरः कालदाहात्मा श्ममानं चिन्तयेदिदम्॥
प्रकाशानन्दरूपस्य क्षेत्रस्य परिरक्षणात्।
मेलापयागयुग्मेन क्षेत्रपालोऽ[5]भिधीयते॥

प्रकाशानन्दरूप-क्षेत्र के रक्षण से मेलापयागयुग्म द्वारा क्षेत्रपाल कहा जाता है।

---

१ मूलपाण्डुलिपि में पाठाभाव २ विमृश्यं ३ शिवोद्यमौ ४ स्पर्शोवभाश
५ क्षेत्रपालोभिधी

रूपं श्रीदिक्चरी तेजोमहारुद्रो[1]ऽपि चर्वणम् ।
व्याप्तंसंहारभक्षिण्या सामरस्यात्मकं जलम् ॥
उक्तौ मीलापशब्देन पञ्चवाहोपदेशकैः ।
रसो जलं गोचरी च कालग्रासश्च केशवः ॥

अलं ग्रासात्मको यागो रौद्ररौद्रेश्वरी श्रितः ।
पृथ्वीगन्धो भूचरी च विश्रान्तिरात्मभूस्तथा ।
उद्भिन्नचिदाभासं कुलपञ्चकमीरितम् ॥

पृथ्वीगन्ध, भूचरी, विश्रान्ति, आत्मभू तथा उद्भिन्नचिदाभास कुलपञ्चक नाम से कहा गया है ।

अनुद्भिन्नचिदाभासं कुलपञ्चकगोचरम् ।
यञ्चधापिण्डरूपञ्च ज्ञातव्यं विबुधैः सदा ।

अनुद्भिन्नचिदाभास, कुलपञ्चकगोचर और पञ्चधापिण्डरूप विद्वान् पुरुषों को सदा जानना चाहिए ।

हृदयं चोदकं श्वासो वाङ्मनो नभ ईरितम् ।
प्राणो[2]ऽपानः समानोदानव्याना वायुरुच्यते ॥

हृदय, उदक, श्वास, वाणी, मन आकाश कहे गए हैं । प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान वायु कहे गए हैं ।

कामः क्रोधस्तथोष्मा च कायाग्निश्चक्षुरेव च ।
वह्निरूपं बुधैश्चिन्त्यमहर्निशमतन्द्रितैः ॥

काम, क्रोध, उष्मा, कायाग्नि और नेत्र अतन्द्रित विद्वान् पुरुषों को रात-दिन वह्निरूप समझना चाहिए ।

पित्तश्लेष्मा तथा मज्जा[3]…रुधिरमेव च ।
जलमित्युच्यते तज्ज्ञैः पञ्चात्मकतया स्थितम् ॥

पित्त, श्लेष्मा, मज्जा,… और रुधिर को उसे जानने वाले मनुष्यों ने 'जल' कहा है, जो पञ्चात्मक रूप में स्थित है ।

नखाः केशास्तथा मांसमस्थित्वग्भूरिति स्मृता ।
एवं चिन्नाथदेवस्य पञ्चवक्त्राणि पूजयेत् ॥

नख, केश, मांस, अस्थि और त्वग् 'भू' नाम से कही जाती हैं । इस तरह चिन्नाथदेव के पांच मुखों की पूजा करे ।

पिण्डश्चापि तयोश्चैक्यज्ञानं लिङ्गस्य पूजनम् ।
न मृण्मयस्य लिङ्गस्य पूजनं मोक्षसिद्धिदम् ॥

---

१ महाद्रोपि २ प्राणोपान ३……

पिण्ड और उन दोनों का ऐक्य-ज्ञान लिङ्ग का पूजन है। मृण्मय लिङ्ग का पूजन मोक्षसिद्धि देने वाला नहीं है।

मायात्रियामा संचारवीरस्य[1]....[2]डितस्य च।
महामोहान्धतामिस्रेन त्वमस्म्यहमेव च।
अहमेव न चायं त्वं नापीत्थं वादिनः पशोः।
नारायण...[3]हिणवदिति व्याकुलचेतसः॥
उदेत्य कस्मात्स्वातन्त्र्यात्परमेश्वरगोचरात्।
अनवच्छिन्नचिद्रूप प्रकाशानन्दसंचयः॥
उदीयः प्रसरः[4]...विकल्प...[5]सकः परः।
अनेकद्युमणिव्रात इव सर्वतमिस्रहा॥
तदानन्तचिदम्भोधौ बुद्धीन्द्रियप्रवर्तकाः।
असंख्या विष्णवस्ते ते तत्तद्बुद्धिस्वरूपिणः॥
प्रवृत्तिकारिणः कर्मेन्द्रियसंघस्य नैकदा।
मनोरूपाश्च संकल्पा वहवो विधयश्च ते।
तद्बुधा इव विध्यन्ते ज्वालालिङ्गकणा इव।
क्षेत्रपालविनिर्याता सैव विश्वमयी स्थितिः॥
परा चैतन्यदेवस्य या चेत्थं वर्ण्यते वुधैः।
नीलं पीतं[6]...मिति प्रकाशः केवलः शिवः॥
अमुष्मिन्परमाद्वैते प्रकाशात्मनि को[7]ऽपरः।
किं करोमि क्व गच्छामि किं गृह्णामि त्यजामि किम्॥

इस परमाद्वैत प्रकाशात्मा में दूसरा कौन है? मैं क्या करूं, कहां जाऊँ, क्या लूं? और क्या छोड़ूं?

आत्मना पूरितं विश्वं महाकल्पाम्बुना यथा।
एवंविधेन वोधेन जीवन्मुक्तस्य योगिनः॥

जिस प्रकार महाप्रलय के जल से विश्व भर जाता है, इसी तरह के ज्ञान से जीवन्मुक्त योगी की आत्मा से विश्व भरा है।

प्रकाशरूपाः सर्वे ते क्षेत्रपालाः सुरादयः।
स्वेन स्वेनैव भोग्येन तर्प्याः क्रिम्यन्तमात्मवान्॥
तर्पणं क्षेत्रपालानां सात्विकै राजसैस्तथा।
तामसै[8]र्भोग्यसंघैश्च नानास्वादरसैर्मुवि॥

१......२ त्रुडितस्य ३ द्रुहिण ४...... ५...... ६...... ७ कोपरः
८ तामसैभोग्य०

सप्तान्नमत्स्यसंघैश्च क्षीरणीपानकैर्द्रवैः ॥
मत्स्यकण्ठकपाकैश्च मदिरापानकैस्तथा ॥
अपूपलोपिकांदीर्घशतच्छिद्रैश्च पर्पटैः ।
वटुकैर्भभरैश्चैव कङ्कणाकारमण्डकैः ।
यस्मै यत्र रुचिस्तस्मै दद्यात्तद्भोगमात्मवान्[1] ॥
दीना तु क्षुधिता नाथ वन्धूपकृतिकारिषु ।
सफलश्चिद्विमर्शःस्यात्प्रीणनेन यथा रुचिः ॥
नित्यः शिवो निशानित्या वोधवोधवतां क्रमात् ।
विमर्शः पूजनं ज्ञेयः सेयं शिवनिशीथिनी ॥

ज्ञानी और अज्ञानियों के लिए क्रम से शिव नित्य है, निशा नित्य है। विमर्श-पूजन जानना चाहिए, वह यह शिव निशीथिनी है

दिने दिने पूजनीया वोधो न हि गलेद्यथा ।
अप्रमादेन तिष्टेत शिव एव भवेद्यथा ॥
यतितव्यं तथा सर्वैर्महाचारादिपूजकैः ।

प्रतिदिन शिवनिशीथिनी की पूजा करनी चाहिए । जिससे ज्ञान नष्ट न हो । प्रमाद रहित होकर रहे, जैसे शिव ही हो ।

सभी महाचारादिपूजकों को वैसा यत्न करना चाहिए ।

शिवरात्रिविचारे[2]ऽस्मिन्प्रमाणं शिव एव हि ।
यत्नस्तस्यैव सर्वत्र सर्वकर्ता स एव यत् ॥

इस शिवरात्रि विचार में शिव ही प्रमाण हैं। उसके लिए ही सर्वत्र यत्न है । क्योंकि सर्वकर्ता वही है ।

नित्यस्वतन्त्रकककविना निर्णीता शिवयामिनी ॥
आलोड्य सर्वशास्त्राणि पुरुषोत्तमतुष्ट्ये ॥

नित्य स्वतन्त्र कवि ने पुरुषोत्तम की सन्तुष्टि के लिए सभी शास्त्रों का आलोड़न कर शिवयामिनी का निर्णय किया है ।

इति श्रीकश्मीरदेशवास्तव्य श्रीशिवोपाध्यायविरचितं[3] श्री
शिवरात्रिनिर्णयं सम्पूर्णम्[4] ॐ भद्रं पश्येम ॥
समाप्तमिदं श्रीशिवरात्रिनिर्णयम्[5]-ॐ शिव[6] ॐ ॥
ॐ शुभं नो वोभवीतु ॥ ॐ ॥ ॐ ॥

---

१ मात्मवात् २ विचारेस्मि० ३ विरतं ४ संपूर्णमों ५ निर्णयमों ६ शिवमों

श्री भैरवी—

सम्भवं कालरात्रेश्च श्रुत्वा माहात्म्यमप्युत ।
कृतार्थास्मि न सन्देहो मुक्तास्मि भवसागरात् ।।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि शिवरात्रेश्च निर्णयम् ।
कथं सा शिवरात्र्याख्या ह्यभवज्जगदीश्वर ।
सम्भवं शिवरात्रेश्च वद शीघ्रं महेश्वर ।।

कालरात्रि की उत्पत्ति के विषय में और उस के माहात्म्य को सुनकर मैं कृतार्थ हूं, इस में सन्देह नहीं है, भवसागर से मुक्त हो गया हूं। अब मैं शिवरात्रि के निर्णय को सुनना चाहता हूँ। हे जगदीश्वर ! वह शिवरात्रि नाम से प्रसिद्ध कैसे हुई ? हे महेश्वर ! शिवरात्रि की उत्पत्ति के विषय में शीघ्र कहिए।

श्रीभैरव उवाच— श्री भैरव बोले—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि शिवरात्रेश्च सम्भवम् ।
यच्छ्रुत्वा मुच्यते जन्तुः जन्मान्तरभवैरघैः ।।

हे देवि ! सुनिए, मैं शिवरात्रि की उत्पत्ति के विषय में कहूंगा, जिसे सुनकर प्राणी जन्मान्तर में पैदा हुए पापों से मुक्त हो जाता है।

पुरा ब्रह्महरी देवि दृप्तावास्तां मदात्तदा ।
सर्गादिकः पालनाच्च परो वै दर्पमाप्तवान् ।।

पूर्वयुग में हे देवि ! ब्रह्मा और हरि तब मद से अभिमत्त हुए। एक सृष्टि रचना से और दूसरा प्रजापालन करने से अभिमान को प्राप्त हुआ।

दृष्ट्वा तु दृप्तौ देवेशौ महेशः कृपयान्वितः ।
स्वांशयोरनुकम्पार्थं प्रादुर्भूतः शुचिस्मिते ।।

हे शुचिस्मिते ! उन दोनों देवेशों को मदमत्त देखकर कृपायुक्त महेश अनुकम्पार्थ अपने अंशों में पैदा हुए।

फाल्गुन[1]कृष्णस्य कामायाः प्रदोषे[2] वरवर्णिनि ।
महती भैरवी ज्वाला तत्र प्रादुर्बभूव ह ॥

हे वरवर्णिनि ! फाल्गुन मास कृष्णपक्ष की एकादशी के प्रदोषकाल में वहां महती भैरवी ज्वाला पैदा हुई ।

ज्वालाप्रादुर्भवे देवि न दिशो विदिश[3]स्तथा ।
प्रकाशिताः समभवन्क्षोभिताः देवमायया ।

हे देवि ! ज्वाला के पैदा होने पर दिशाएं ही नहीं, विदिशाएं भी देवमाया से क्षुब्ध हुईं प्रकाशित हुईं ।

तत्र देवाश्च सिद्धाश्च गन्धर्वाः किन्नरोरगाः ॥
विद्याधराश्चारणाश्च यक्षभूतपिशाचकाः ।
ब्रह्मराक्षसवेतालाः कूष्माण्डा भैरवाः खगाः ।
तरवो दृषदश्चापि मुनिदेवर्षिपार्षदाः ।
निस्तेजसः समभवज्ज्वालया[4] जगदम्बिके ॥

वहाँ देवता, सिद्ध, गन्धर्व, किन्नर, उरग, विद्याधर, चारण, यक्ष, भूत, पिशाच, ब्रह्मराक्षस, वेताल, कूष्माण्ड, भैरव, खग, तरु, पत्थर भी और मुनि, देवर्षि एवं पार्षद ज्वाला से हे जगदम्बिके ! निस्तेज हो गए ।

अकाण्डप्रलयं किं नु करोति भगवान्भवः ।
इति सर्वे च संत्रस्ता निमीलितदृशो[5]ऽभवन् ॥

क्या भगवान् शिव असमय में प्रलय कर रहे हैं ? इस प्रकार सभी ने भयभीत हो अपने नेत्र बन्द कर लिए ।

ज्वालारूपं[6]भैरवन्तु दृष्ट्वा ब्रह्महरी तदा ।
हरं परमया वाचा परं तुष्टवतुस्तदा ॥

तब ब्रह्मा और हरि-ज्वालारूप भैरव को देखकर महादेव की परम वाणी से स्तुति करने लगे ।

स्वस्ति स्वस्तीति शब्देन जगदाशासने रतौ ।
मायया हृतविज्ञानौ वर्तितुं ह्यन्त[7]मिच्छतः ॥
ब्रह्मोर्ध्वमारुहेद्देवि हरिश्च तदधः पुनः ।
हरिणा न पदे दृष्टे ब्रह्मणा नैव तच्छिरः ॥

---

१ फाल्गुकृष्णस्य २ प्रदोषे ३ विदिशं तथा ४ ज्वालाया ५ दृशोभवन् ६ ज्वालारूपं ७ ह्यन्तिमि०

हे देवि ! ब्रह्मा ऊपर चढ़े और फिर हरि उसके नीचे । हरि ने पैर देखे और ब्रह्मा ने उसका सिर देखा ।

अनन्तस्यान्तमिच्छन्तौ नान्तं प्राप्नु[1]तः प्रिये ॥
प्रत्याख्यातौ ततस्तौ तु ब्रह्मविष्णू महेश्वरि ॥
श्रान्तौ तच्चचरेण लीनौ [2]श्लक्षणया च······ ।

हे प्रिये ! अनन्त के अन्त का पता लगाना चाहते हुए उन्होंने अन्त का नहीं पाया । हे महेश्वरि ! इसके बाद वे दोनों ब्रह्मा और विष्णु नाम से प्रसिद्ध हुए । थके हुए और उसके चरणोंमें लीन हुए उन्होंने कोमल वाणी से कहा ।

श्री ब्रह्म विष्णू ऊचतुः—श्री ब्रह्मा और विष्णु बोले—

ॐ घोरां तनुमघोराख्यां घोरां घोरतरां तथा
ज्वालां परमभीरूपांशरण[3] ता श्रयावहे ॥

घोर शरीर वाली, अघोर नाम से प्रसिद्ध, घोर एवं घोरतर, परम भयावनी उस ज्वाला की हम शरण जाते हैं ।

भैरवस्य महाशक्ति ज्वालाख्यां परमां शिवाम् ।
बन्दावहे अघोरस्य विमर्शोन्मीलिनीं तनुम् ॥

भैरव की महाशक्ति, ज्वाला नाम से प्रसिद्ध, परम शिव, अघोर के विमर्शोन्मीलिनीं तनु की हम वन्दना करते हैं ।

भयं दधानां भैरवाख्यां तनुं तां तमोंधानां संसृतौ मज्जयन्तीम् ।
संसृत्याख्यां भीतिमितीरयन्तीमघोराख्यां तां तनुं प्राप्नुयावः ॥३॥

भय को धारण करने वाली भैरव नाम से प्रसिद्ध······संसृति नाम से प्रसिद्ध, भीति को प्रेरित करती हुई, अघोर नाम से प्रसिद्ध उस तनु को हम प्राप्त करते हैं ।

ज्वालारूपं परमं भैरवं तद्विमर्शोन्मीलनमेकं पराख्यम् ।
महदाद्यभैरवं तद्व्रजावो यद्ज्ञानात्तु भातमेतज्जगत्स्यात् ॥

ज्वालारूप, परम भैरव, उसके विमर्शोन्मीलन, एक, पर नाम से प्रसिद्ध, महत्, आद्य भैरव, उसकी शरण में हम जाते हैं, जिसके ज्ञान से यह सारा जगत् प्रकाशित होता है ।

तं भैरवं घोरमनन्तरूपमघोरमेकं परमर्शतोत्थम् ।
घोरं च शर्वं शरणं प्राप्नुयावो येनांध्यमोहौ हृदयं त्यजतः ॥५॥

---

१ प्राप्नुवतः, २ श्लक्ष्णयां गिरं ३. पां शरणं

घोर, अनन्तरूप, अघोर, एक······घोर और शर्व उस भैरव की शरण जाते हैं, जिससे ·····

भीष्मं घोरं भैरवं तमघोरं महाभयमीरयन्तं परं नौ।
चिद्रूपं तं चिद्विमर्शेन[1] भातं ज्योतिरेतद्घोररूपं श्रयावः ।।

भीष्म, घोर, भैरव, अघोर, परम महाभय को प्रेरित करने वाले, चिद्रूप, चिद्विमर्श से प्रकाशित, घोर रूप इस ज्योति का हम दोनों आश्रय लेते हैं।

परं भैरवं चित्स्वरूपं च चित्यं चितासंविदाज्ञानदं कामदं च।
व्रजावो-रणन्तं शरण्यं श्रितानामनादिमनन्तं विभुं भाव्यमीशम् ।।७।।

पर, भैरव, चित्स्वरूप, चित्य, चितासंविदाज्ञान देने वाले, कामनाओं को पूर्ण करने वाले,······अनादि, अनन्त, विभु, भाव्य और ईश, उसकी हम शरण जाते हैं।

अपारावारमीशानं भैरवं भीषणाकृतिम्।
विमर्शोन्मीलना भातं भूनो भूयो नुमो नुमः ।।

अपारावार, ईशान, भैरव, भीषणाकृति, विमर्शोन्मील से प्रकाशित उसे हम बार-बार नमस्कार करते हैं।

श्री भैरवः—

इति स्तुत्वा महादेवं ब्रह्मविष्णू महेश्वरि।
प्रणतौदण्डवद्भूमौ पतितौ भैरवाग्रतः ।।

हे महेश्वरि ! इस प्रकार ब्रह्मा और विष्णु महादेव की स्तुति कर दण्डवत् प्रणाम करते हुए भैरव के आगे भूमि पर पड़ गए।

तयोरप्यनुकम्पार्थं दर्शनीयतमोऽ[2]भवत्।
स्वच्छन्दभैरवो देवि सहस्रभुजपाणिकः ।।

हे देवि ! सहस्रभुजपाणिक-स्वच्छन्दभैरव ने उन दोनों पर कृपा करने के लिए उन्हें दर्शन दिया।

सहस्रायुधधारी च सहस्रनयनो[3]ऽपि च।
दिव्याम्बरधरो देवि दिव्यस्रगनुलेपनः ।।
दिव्यसूर्यसहस्राभः प्रादुर्भूतस्तयोः पुरा।
हसन्नुवाच तौ तत्र ब्रह्मविष्णू महेश्वरि ।।

---

१ चिद्विमर्शेन २ तमोभवत् ३ नयनोपि

सहस्र आयुधों को धारण किए हुए, सहस्र नेत्रों से भी युक्त, दिव्य वस्त्र धारण किए, दिव्य माला और लेप धारण किए दिव्य-सहस्र सूर्यों के समान आभा वाले स्वच्छन्द भैरव का उनके आगे प्रादुर्भाव हुआ। हे महेश्वरि ! हंसते हुए उसने वहां उन दोनों ब्रह्मा और विष्णु से कहा।

श्री भैरवः—

अविमर्शेन वां चित्तं दूषितं चाभवत्पुरा।
मद्ज्ञानात्तदिदं भातं विमर्शोन्मीलनादपि।

पहले अविमर्श से तुम दोनों ने हमारा चित्त दूषित किया। सो यह समस्त जगत् मेरे ज्ञान से-विमर्शोन्मीलन से भी प्रकाशित हुआ है।

दर्पो यतो वामभवदविमर्शेन चेतसा।
ततो मया प्रसन्नेन दर्शितं[1] भैरवं वपुः।
यद्ज्ञानाद्हृदये[2]ऽप्यतन्र्भानमेव भवेद्ध्रुवम् ॥

क्योंकि तुम दोनों को अविमर्श चित्त से अभिमान हो गया था। इसके बाद प्रसन्न होकर मैंने भैरव शरीर दिखाया, जिससे ज्ञान से हृदय में भी निश्चित अन्तर्ज्ञान होवे।

तदैव भैरवं रूपं दृष्ट्वा मे गतविस्मयौ।
युवाभ्यां सर्वथा नैव कार्या दर्पान्धधी पुनः।

वही मेरा भैरव रूप देखकर तुम दोनों विस्मित हो गए। तुम्हें फिर अभिमान से अन्धबुद्धि सर्वथा कभी नहीं करनी चाहिए।

विमर्शोन्मीलने चैव बद्धकक्ष्यौ भविष्यतः।
भवत्कृतेन स्तोत्रेण प्रसन्नो[3]ऽभवमुत्तमौ ॥

हे उत्तम देवो ! आप द्वारा किए गए स्तोत्र से मैं प्रसन्न हो गया हूं। विमर्शोन्मीलन में तुम दोनों बद्धकक्ष्य हो जाओगे।

वरं वृणीतं भद्रं वां दास्यामि च सदुर्लभम्।

वर मांगिए, तुम दोनों का कल्याण हो, मैं तुम्हें दुर्लभ वर प्रदान करूंगा

इति श्रुत्वा वचस्तस्य भैरवस्य महात्मनः।
ब्रह्मविष्णू जगदतुर्भैरवं परमार्तिहम् ॥

इस प्रकार महात्मा भैरव के वचन सुनकर ब्रह्मा और विष्णु परम दुःख को नष्ट करने वाले भैरव से कहने लगे।

---

१ दर्शित २ हृदयेप्यंत ३ प्रसन्नोभव०

भवत्प्रसादात्परमः को वरः परमेश्वर ।
तथापि याञ्चा परमा देवेश परभैरव ॥

हे परमेश्वर ! आप की कृपा से परे अन्य क्या वर हो सकता है, तो भी देवेश ! पर भैरव ! यह हमारी परम प्रार्थना है ।

ब्रह्मा प्रोवाच पुत्र त्वं हरिस्त्वेतदयाचत ।
भवेत्सेवापरो नित्यं यथास्याहं तथा कुरु ॥

ब्रह्मा जी बोले—हरि ने तो इस पुत्र भाव की प्रार्थना की है। मैं भी जिस तरह इसकी (आप की) सेवा करने में लगा रहूँ, वैसा कीजिए।

मदीयार्धाङ्गभूतो[1]ऽसौ ततो व्रिष्णुस्त्वदात्मना ।
यो हि नारायणः सा त्वं शक्तिः शक्तिमतो मम ॥

इसके बाद वह विष्णु आपकी आत्मा के साथ मेरे अर्धाङ्ग हो गए। जो नारायण नाम से प्रसिद्ध हुए। वह तू शक्तिमान् मेरी शक्ति है।

ततः प्रभृति विख्यातं रूपद्वयमिदं मम ।
अर्धनारीश्वरमर्धं हारिहरं वपुः ॥

तब से लेकर मेरे ये दो रूप प्रसिद्ध हुए-एक अर्धनारीश्वर और दूसरा अर्धहारिहर वपु।

अतो दत्तासि नित्यत्वं स्वभक्तेषु हरेर्गतिम् ।

इसलिए अपने भक्तों में हरि की गति को नित्यता प्रदान की गई है।

इति श्रुत्वा ततो वाक्यं तावुवाच परः शिवः ।
ब्रह्मन्द्वितीयं ह्येतत्ते वचनं नैव चक्षसे ॥

इसके बाद यह वचन सुनकर शिव ने उन्हें कहा—हे ब्रह्मन् ! यह तुम्हारा दूसरा वचन तुझे नहीं कहना चाहिए—

अन्तो दृष्टो मयेत्येतत्पुत्रत्ववचनं पुनः ।
तस्मात्तु मुद्रया तेऽ[2]द्य स्वधितेः शिर उत्तमम् ।
छेत्स्यामि नात्र सन्देहश्चेति सत्यं वदामि ते ॥

अन्त मैंने देखा है यह और फिर पुत्रत्व वचन। इसलिए स्वधिति की मुद्रा से मैं आज तेरे उत्तम शिर को काटूंगा, इस में कोई सन्देह नहीं है, यह सत्य मैं तुम्हें कह रहा हूं।

इत्युक्त्वा भैरवः कोपादुज्जहार शिरस्ततः ।
स्वधितेर्मुद्रया देवि तत्कपालव्रतं करे ।

---

१ भूतोसो २ तेद्य

किञ्चेतन्मे कपालात्मजगद्देवि करे स्थिते ।
तदा प्रभृति देवेशि ब्रह्माभूच्चतुराननः ॥

यह कहकर बाद में भैरव ने क्रोध से शिर काट दिया । हे देवि ! स्वधिति की मुद्रा से......

ज्वालाया ये कणाः सु[1]भ्रूर्दिगन्ते च प्रसारिताः ।
त एव भैरवगणा जगद्ग्रासपराभवन् ॥

हे सुभ्रू ! ज्वाला के जो कण दिशाओं के अन्त में फैले, वे ही भैरवगण जगत् को निगलने में लग गए ।

जगद्ग्रासपरान्दृष्ट्वा गणान्देवि महेश्वरः ।
स्वयमेव हितान्देवान्सान्त्वयामास भैरवः ॥

हे देवि ! जगत् को निगलने में लगे हुए गणों को देखकर महेश्वर भैरव ने स्वयं ही......देवताओं को सान्त्वना दी ।

शृणुध्वं भो देवगणा मा भक्षध्वं जगद्वलात् ।
जगत्यस्मिन्भवन्तो वै क्षेत्रपाला भविष्यथ ॥

हे देवगणों ! सुनिए, जगत् को वल पूर्वक मत खाइए । इस जगत् में आप लोग क्षेत्रपाल होंगे ।

वर्षे वर्षे वलिं चापि दास्यन्ति तत्र वासिनः ।
मत्पूजामपि वर्षान्ते करिष्यन्ति न संशयः ॥

वहां रहने वाले लोग प्रतिवर्ष वलि देंगे और वर्षान्त में मेरी पूजा को भी करेंगे, इसमें संशय नहीं है ।

वर्षे वर्षेतु ये[2]देवि भैरवोत्सव उत्तमे ।
ये[3]ऽर्चनं नैव कुर्वन्ति भवतां मम चैव हि ।
जीवन्तः पशवस्ते वै मृता निरयमाप्नुयुः ॥

हे देवि ! प्रतिवर्ष जो उत्तम भैरवोत्सव में आप की और मेरी पूजा नहीं करते हैं, वे जीवित पशु हैं और मर कर नरक को पाएं ।

कामायाश्च प्रदोषे ये भैरवार्चा न कुर्वन्ते[4] ।
क्षेत्रेशपूजनं चापि ते भवेयुर्हि राक्षसाः ॥

कामा (एकादशी) के प्रदोष काल में जो भैरव की पूजा एवं क्षेत्रेश का पूजा नहीं करते हैं, वे राक्षस होवें ।

---

१ स्वभ्रू २ यो ३ येर्चनं ४ कुर्वंते

पुत्रदारविहीनाश्च विघ्नसंकटिनस्तु ते ।
ये भवन्ति महाप्राज्ञे विमुखा भैरवार्चने ।

जो मनुष्य महाप्राज्ञ भैरव की पूजा से विमुख रहते हैं, वे पुत्र-दारा से रहित हो विघ्न-संकट युक्त होते हैं ।

भैरवोत्सवपूजायां ये नरा जगदम्बिके ।
पुत्रिणो धनिनश्चैव परिवारयुता अपि ।
धनधान्यसमृद्धाश्च भविष्यन्ति न संशयः ।।
सर्वपापविनिर्मुक्ताः पशुपुत्रसमन्विताः ।
शोकरोगविनिर्मुक्ताः क्षेत्रेशाचाररताः प्रिये ।।

हे जगदम्बिके जो मनुष्य भैरवोत्सव पूजा में रहते हैं । पुत्रवान्, धना, परिवार युक्त और धन-धान्य से समृद्ध होंगे । इसमें संशय नहीं है ।

सभी पापों से मुक्त, पशु-पुत्र से युक्त और शोक तथा रोग से मुक्त हुए हे प्रिये !……

येन कुर्वन्ति वै मोहाद्वर्षान्ते भैरवोत्सवम् ।
इहैव दुःखिता[1] भूत्वा मृता निरयमाप्नुयुः ।।

जो मोह से वर्षान्त में भैरवोत्सव नहीं करते हैं । वे यहां भी दुःखा रह कर और मर कर नरक को पाएं ।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ममार्चा भवतामपि ।
कुर्वन्ति फाल्गुने[2] मासे[3] चेति सत्यं वदामि वः ।।

इसलिए सभी यत्न से मेरी और आपकी भी पूजा फाल्गुन मास में करते हैं । यह सत्य मैं तुम्हें कहता हूँ ।

निवर्तध्वं क्षेत्रपाला जगतां भक्षणोद्यमात् ।
नानाविधैरन्नपात्रै रसैश्च विविधैरपि ।।
पक्वान्नैरपि चेशानि [4]पञ्चधापादितैः प्रिये ।
घृतपक्वैर्मत्स्यैर्मांसैश्च मौदकैः ।।
अजाविकैः यक्षगणैः विहितैर्ब्रह्मवादिभिः ।
मरिचैरार्द्रकैश्चापि हिङ्गु जीरकपायकैः ।।
हरिद्रानागरैश्चापि लवङ्गैरलाभिरेव च ।
दारुचूर्णै[5]र्गुडक्षोद्रै[6]विकारैरपि सुन्दरि ।।

---

१ दुःखित्वा २ फाल्गुणे ३ मासि ४ पंचाध्वा० ५ चूर्णे ६ क्षोद्रैविका०

अर्घैः पुष्पैस्तथा धूपैर्दीपैर्नैवेद्यकैरपि ।
अर्चनैर्वन्दनैश्चापि नन्दनैरपि चन्दनैः ॥
यक्षकर्दमकैर्वापि[1] भूषणैरायुधैरपि ।
वस्त्रैश्च विविधैश्चापि तथा यज्ञोपवीतकैः ।
पूजनीयो महेशानि क्षेत्रेशसहितः प्रभुः ॥

हे क्षेत्रपालो ! जगतों के खाने के उद्यम से हट जाओ । हे महेशानि ! नाना प्रकार के अन्नपात्रों, अनेक प्रकार के रसों, हे ईशानि ! प्रिये ।··· पक्वान्नों से भी, घी में पके मत्स्यों-मांसों से और लड्डुओं से, ब्रह्मवादियों से विहित अजाविक, यक्षगणों से, मिर्च और अदरकों से, भी लौंग-इलायचियों से भी; हे सुन्दरि ! दारुचूर्ण-गुडक्षोद्र-विकारों से भी, अर्घ-पुष्प-धूप-दीप-नैवेद्यों से भी, अर्चना-वन्दना-नन्दन-चन्दनों से, यक्ष कर्दमकों से भी भूषण-आयुधों से भी, अनेक प्रकार के वस्त्रों-यज्ञोपवीतों से, क्षेत्रेश सहित प्रभु की पूजा करनी चाहिए ।

एवं प्रभुं समभ्यर्च्य समृद्धिं परमां लभेत् ।
इह भोगान्भवे भुक्त्वा ह्यन्ते भैरवतां व्रजेत् ॥

इस प्रकार प्रभु की पूजा कर परम समृद्धि को पाए । संसार में लौकिक भोगों को भोग कर अन्त में भैरवता को जाए ।

प्रदोषे ह्यर्धरात्रौ[2] वा पूजनीयः प्रयत्नतः ।
अघोराख्या तनुर्देवि तथाघोरतरा अपि ॥
रक्षोभूतपिशाचाश्च[3] घोराख्या तनुरीश्वरी ।
पूजनीया प्रयत्नेन चेत्याज्ञा पारमेश्वरी ॥

प्रदोष में वा अर्धरात्रि के समय यत्नपूर्वक प्रभु की पूजा करनी चाहिए । हे देवि ! अघोरा नामक तनु तथा घोरतरा भी, राक्षस-भूत तथा पिशाच, घोरा नामक ईश्वरी तनु की यत्नपूर्वक पूजा करनी चाहिए, यदि पारमेश्वरी की आज्ञा हो ।

इति दत्वा वरं तेषां क्षेत्रेशानां च भैरवः ।
विरराम ततः साक्षाद्भैरवः सुरपूजिते ॥

उन क्षेत्रेशों को यह वर देकर तदनन्तर हे सुरपूजिते ! साक्षात् भैरव चुप होगए ।

---

१ कर्दमकैर्नापि २ रात्रे ३ पिशाचा च

ततः प्रभृति चेशानि कामायां भैरवोत्सवः ।
प्रादुर्बभूव जगति दुर्लभः पापकर्मिणाम् ॥

हे ईशानि ! तब से लेकर कामा (एकादशी) के दिन संसार में पापियों के लिए अति दुर्लभ भैरवोत्सव का प्रादुर्भाव हुआ ।

सैवं शान्ता शिवाख्या च रात्रिः प्रोक्ता पुरातनैः ।
प्रसन्नो[1]ऽहं शिवां रात्रिं भद्रे पारमशीमहि ॥

इस प्रकार वह शान्ता शिवरात्रि के विषय में पुरातन पुरुषों ने कहा है । मैं प्रसन्न हूं, भद्रे ! शिवरात्रि……

इति वेदे[2]ऽपि प्रोक्ता शिवाख्या रात्रिरुत्तमा ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शिवरात्रिहरार्चनम् ।
कुर्याच्च विधिना देवि सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

यह उत्तम शिवरात्रि वेद में भी कही गई है । इसलिए सभी यत्न से शिवरात्रि के दिन विधिपूर्वक महादेव का पूजन करे । हे देवि ! इस प्रकार सभी पापों से मुक्त हो जाता है ।

इति ते कथितं देवि यत्पृष्टो[3]ऽहमिह त्वया ।
कामाव्रतविधानं च तत्सर्वं कथितं मया ॥

हे देवि ! जो तू यहां मुझसे पूछा, वह तुम्हें कहा गया है । कामाव्रतविधान वह सब मैंने तुम्हें कहा है ।

इति श्री श्रीसंहितायां भविष्योत्तरे श्रीशिवत्रयोदशी माहात्म्यं नाम पटलः ॥

---

१ प्रसन्नोहं २ वेदेपि ३ यत्पृष्टोह०

श्री भैरव्युवाच—श्री भैरवी बोलीं –

ॐ भैरवार्चा तु कामायाः प्रदोषे जगदीश्वर ।
नक्तव्रते प्रशस्ता तु त्वयोक्ता परमेश्वर ।
पुनश्च शिवरात्र्याख्या का भवेच्च महेश्वर ।।

हे जगदीश्वर ! कामा के प्रदोष के समय नक्तव्रत में आपने भैरव के पूजन के विषय में, हे परमेश्वर कहा है और फिर हे महेश्वर ! शिवरात्रि क्या है ?

घोराऽघोराघोरतरा शिवाख्या च भवेत्किल ।
शान्ता मूढा शिवा चापि सैव रात्रिर्भवेत्किमु ।।

घोरा, अघोरा घोरतरा, शिवा नामक क्या है ? और शान्ता, मूढा, शिवा, वही शिवरात्रि है ?

इत्यस्मिन्मोहिता देवाः संन्दिग्धाश्[2]श्चाभव[3]न्मुहुः ।
कामार्चायां प्रसादन्तु गृह्णीयुरुत वा नराः ।।

इस विषय में मोहित हुए देवता बार-बार सन्देह को प्राप्त हुए । कामार्चा में प्रसाद को बानरों ने ग्रहण कर लिया ।

शिवरात्रिव्रते देव धारणा पारणापि वा ।
दोलायितं मनो मे[4]ऽद्य संशयाकुलितं प्रभो ।
कृपया जगदीशान छिन्दि संशयमन्ततः ।।

हे देव ! शिवरात्रि व्रत के विषय में धारणा वा पारणा भी । हे प्रभो ! संशयाकुलित मेरा मन आज दोलायित हो चुका है । हे जगदीशान ! कृपा कर मेरे संशय को आखिरकार दूर कीजिए ।

श्री भैरवः—

शृणु गुह्यं परं देवि लोकानुग्रहकाम्यया ।
वक्ष्यामि जगदीशानि यतः प्राणसमा ह्यसि ।।

हे देवि ! लोगों पर अनुग्रह की कामना से परम गुह्य भी सुनिए । हे जगदीशानि ! मैं कहता हूं, क्योंकि तुम मेरे प्राण समान हो ।

---

१ देव २ संदिग्धा चा० ३ भवं मुहुः ४ मेद्य

कामाप्रदोषाया ज्वाला भैरवस्य महात्मनः ।
प्रादुर्भूात ततः सा च त्रिविधा[1] संप्रकीर्तिता ।।

महात्मा भैरव की जो कामाप्रदोषा ज्वाला है, तदनन्तर वह पैदा हुई और वह तीन प्रकार की कही जाती है ।

तावदघोरा प्रथमं सूक्ष्माभूद्भैरवी तनुः ।
विवृद्धा तु भवेद्धोरा क्रमाद्धोरतराभवत् ।।

पहले अघोरा भैरवी तनु सूक्ष्म हुई, बढ़ने पर घोरा हुई, क्रम से घोरतरा हुई ।

वामाश्च दक्षिणाश्चैव महाचाराश्च सुन्दरि ।
अर्चयेयुर्हरं भक्त्या रात्रौ तस्यां विभूतये ।।

हे सुन्दरि ! वाम, दक्षिण और महाचार उस रात्रि में विभूति के लिए भक्तिपूर्वक महादेव का पूजन करें ।

महाप्रसादं येनैव सोहाद्गृह्णन्ति मानवाः ।
वर्षान्ते दुःखिता भूत्वा मृता निरपमाप्नुयुः ।।

मनुष्य जो मोहपूर्वक महाप्रसाद ग्रहण करते हैं वर्ष के अन्त में दुःखी होकर मरने के बाद नरक को पाएं ।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन भक्षेत्प्रापणमुत्तमम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तौ याति भैरवमव्ययम् ।।

इसलिए सब यत्न से उत्तम प्रापण को खाए । सभी पापों से मुक्त हुआ अव्यय भैरव को प्राप्त होता है ।

अघोराख्यां तनुं देवि पूजयेयुश्च दक्षिणाः ।
वामा घोरां घोरतरां महाचारा निशीथके ।।

हे देवि ! दक्षिण अघोरा नामक तनु और वाम घोरा एवं महाचार आधी रात के समय घोरतरा

पूजयेयुर्महादेवि सर्वयज्ञफलप्रदाम् ।

हे महादेवि ! जो सभी यज्ञों का फल देने वाली है, उसकी पूजा करें ।

सैव या त्रिविधा ज्वाला शान्ता मूढा शिवापि च ।
अभूद्भूतनिशीथान्तं व्रते सैव प्रकीर्तिता ।।

वही जो तीन प्रकार की ज्वाला-शान्ता मूढा और शिवा भी भूत आधी रात के अन्त को हुई, वही व्रत में कही गई है ।

---

1 त्रिविध

कामप्रदोषादारभ्य यावद्भूतनिशीथकम् ।।
तावत्सा शिवरात्राख्या प्रोक्ता वै शिवशासने ।।

कामप्रदोष से लेकर जब तक भूतनिशीथक है, तब तक वह शिवशासन में शिवरात्रि नाम से कही जाती है ।

नक्तव्रते कामतिथिर्भूत[1]स्तूपवसेन्नरः ।
यतो वै भैरवी ज्वाला शान्ताभूत्सुरसुन्दरि ।।

नक्त व्रत में कामतिथि हुआ मनुष्य उपवास करे, क्योंकि हे सुरसुन्दरि । भैरवी ज्वालाशान्त हुई थी ।

अतः शान्तश्चोपवसेच्छान्तमूढाशिवासु च ।
दक्षिणाश्चैव शान्ताश्च शान्तायां चैव निर्जलः ।।

इसलिए शान्त शान्तमूढाशिवाओं में उपवास करे और दक्षिण एवं शान्त तथा निर्जल शान्ता में उपवास करे ।

सर्वपापविनिर्मुक्तो याति वै परभैरवम् ।

सभी पापों से मुक्त हो परभैरव को प्राप्त होता है ।

वामाश्चैव महाचाराः शिवायामुपवासकाः ।
ते भवेयुर्महादेवि महाभैरवरूपिणः ।।

वाम और महाचार जो शिवा में उपवासक हैं, वे हे महादेवि ! महाभैरव रूपी होवें ।

अतः प्रदोषे कामाया नक्तव्रतधरा अपि ।
दक्षिणाचारसंयुक्ता भवेयुर्वरवर्णिनि ।।

इसलिए हे वरवर्णिनि ! कामा के प्रदोष में नक्तव्रतधारी भी दक्षिणाचार संयुक्त होवें ।

अघोराख्यां तनुं ये वै पूजयन्ति नरोत्तमाः ।
ते सिद्धाः सिद्धिदाश्चैव परभैरवरूपिणः ।।

जो नर श्रेष्ठ अघोरा नामक तनु की पूजा करते हैं, वे परभैरवरूपी सिद्ध और सिद्धि देने वाले होते हैं ।

तथा घोरत्तरां ये वै तनुमर्चन्ति सुन्दरि ।
ते भवन्ति महेशानि भैरवाख्या जगत्त्रये ।।

हे सुन्दरि ! जो घोरतरा तनु की पूजा करते हैं, हे महेशानि ! वे तीनों लोकों में भैरवाख्य होते हैं ।

---

१ भूतोतूपवसे०

अघोरा तु प्रदोषे स्याद्घोरा तदुपरि स्मृता ।
निशीथे तु घोरतरा प्रोक्ता व्रतफलप्रदा ॥

प्रदोष के समय अघोरा होती है और उसके ऊपर घोरा कही गई है एवं आधी रात के समय व्रत का फल देने वाली घोरतरा कही गई है ।

इति कामव्रतस्योक्तो निर्णयस्ते मयाम्बिके ।
इदानीं शृणु देवेशि भूतव्रतविनिर्णयम् ॥

हे अम्बिके ! यह कामव्रत का निर्णय तुझे कहा गया है, हे देवेशि ! अब भूतव्रत का निर्णय सुनिए ।

भूतप्रदोषे शान्ता स्यान्मूढा तदुपरि स्मृता ।
शिवा निशीथे सा प्रोक्ता भुक्तिमुक्तिफलप्रदा ॥

भूतप्रदोष के समय शान्ता होती है, उससे ऊपर मूढा कही गई है और आधी रात के समय वह भुक्ति-मुक्ति के फल को देने वाली शिवा कही गई है ।

दक्षिणाचारयुक्ताश्च[1] शान्ता व्रतपरा[2]अभवन् ।
सर्वपापविनिर्मुक्ताः प्रयाता भैरवं नराः ॥

दक्षिणाचारयुक्त शान्त और व्रत पर हुए । सभी पापों से मुक्त हुए मनुष्य भैरव को प्राप्त हुए ।

वामा महाचारयुताः शिवायामुपवासकाः ।
त एव भैरवा[3] प्रोक्ता जगत्यां जगदम्बिके ॥

वाम महाचारयुक्त शिवा में उपवासक हैं, वे ही हे जगदम्बिके ! संसार में भैरव कहे गए हैं ।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन प्रदोषे[4]ऽथ निशीथके ।
नक्तं व्रतं चोपवासं कुर्वन्सिद्धिमवाप्नुयात् ॥

इसलिए सभी यत्न से आधी रात के समय प्रदोष में नक्त व्रत और उपवास करते हुए सिद्धि को पाए ।

यो यत्र पूजको देवि स तत्रैव प्रपूजयेत् ।
व्रतं कुर्व[5]श्च यो यत्र स तत्रैव समाचरेत् ॥

हे देवि ! जो जहां पूजक है, वह वहीं पूजा करे, जो जहां व्रत कर रहा है, वह वहीं करे ।

---

१ युक्ता च २ व्रतपराभवन् ३ भैरवं ४ प्रदोषेथ ५ कुर्वंश्च

अन्यथा पूजयंश्चापि व्रतं कुर्वंश्च सुन्दरि ।
दारिद्र्य शोकसंयुक्तो ज्ञातिसम्बन्ध वर्जितः ।
पशुपुत्रविहीनश्च सो[१]ऽन्ते नरकमाप्नुयात् ॥

हे सुन्दरि ! अन्यथा पूजा करते हुए और व्रत करते हुए भी दरिद्रता-शोक से युक्त और ज्ञाति सम्बन्ध से विहीन तथा पशु-पुत्र से रहित वह अन्त में नरक पाए ।

कलावस्मिन्महाघोरे व्रतं भूते समाचरेत् ।
इहैव सुखितो भूत्वा धनधान्यसमृद्धिमान् ।
मृतश्च याति देवेशि भैरवं परमव्ययम् ॥

भूत इस महाघोर कलियुग में जो व्रत करे, वह यहीं सुखी होकर धन-धान्य और समृद्धि से युक्त हो मरने पर भी हे देवेशि ! पर-अव्यय भैरव को प्राप्त होता है ।

विपरीतं नैव कुर्याद्व्रतं नक्तमथापि वा ।
आपन्नो विघ्नितो भूत्वा सोऽ[१]न्ते निरयमृच्छति ॥

व्रत तथा नक्त विपरीत नहीं करे, अन्यथा वह आपद्ग्रस्त हो एवं विघ्नित हो अन्त में नरक को पाता है ।

येन कुर्वन्ति वै मोहात्फाल्गुने[२] भैरवोत्सवम् ।
ते भवन्ति महाप्राज्ञे जन्म[३]जन्मनि दुःखिताः ॥

जो मोह से फाल्गुन महीने में भैरवोत्सव नहीं करते हैं, वे महाप्राज्ञ जन्म-जन्म में दुःखी होते हैं ।

मोहाद्वा यदि वा लोभाद्वैदुष्याच्छठतो[४] यदि ।
नक्ते[५]ऽपिधरणे चापि विपरीतं समाचरेत् ॥

मोह से वा लोभ से······

पशुपुत्रविहीन[६]श्च धनधान्य विवर्जितः[७] ।
शोकदुःखयुतश्चैव भूत्वा सो[८]ऽन्ते पतेदधः ॥

पशु-पुत्र से रहित और धन-धान्य से विहीन हुआ तथा शोक एवं दुःख से युक्त होकर वह अन्त में नीचे गिरे ।

---

१ सोंते २ त्फाल्गुणे ३ जन्मे जन्मे च ४ वैदुष्याद्धठतो ५ नक्तेपिधरणे ६ विहीनाश्च ७ विवर्जिताः ८ सोंते ।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन न पूर्वां पदवीं त्यजेत् ।
जानंस्त्यजेद्यः पदवीमापन्नं स पतेदधः ।।

इसलिए सभी यत्न से पूर्व पदवी को न छोड़े । जानता हुआ जो पदवी को छोड़े, उसका अध.पतन होवे ।

इति श्री श्रीसंहितायां भविष्योत्तरे श्रीशिवरात्रिमाहात्म्यं सम्पूर्णम् ।।

श्री भैरवी: —

श्रुत्वा तु होलिकां देव विधिना त्वन्मुखाम्भुजात् ।
कृतार्थास्मि न सन्देहस्तारितास्मि भवार्णवात् ।।

हे देव ! आपके कमल रूपी मुख से विधिपूर्वक होलिका के विषय में सुनकर मैं कृतार्थ हूं, इसमें सन्देह नहीं है । मैं संसार रूपी समुद्र से तारा जा चुका हूँ ।

इदानीं श्रोतुमिच्छामि नववर्षोत्सवं महत् ।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशय: ।।

अब महानववर्षोत्सव के विषय में सुनना चाहता हूँ, जिसे सुनकर मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं है ।

विधिं वै नववर्षस्य चोत्सवं च विशेषत: ।
वद मे विस्तराच्छम्भो लोकानुग्रहकाम्यया ।।

हे शम्भो ! नवव र्ष की विधि और विशेष कर उत्सव के विषय में लोगों पर अनुग्रह की कामना से विस्तार पूर्वक कहिए ।

श्री भैरव:—

शृणु देवि परं गुह्यं वक्ष्यामि त्वदनुग्रहात् ।
नववर्षोत्सवविधिं मंगलं सरहस्यकम् ।।

हे देवि ! सुनिए, मैं तुझ पर कृपा कर मांगलिक एवं रहस्यपरिपूर्ण परम गुह्य नववर्षोत्सव विधि के विषय में कहता हूं ।

पुरा व्यक्तात्समभवत्सहस्रचलमुत्तमम् ।
चैत्रकृष्णस्य प्रतिपद्दिने ब्रह्माजनत्किल ।
तामसांत्तालिकान्तस्तु तिरोभूत्सुरपूजिते ।।

पूर्वयुग में व्यक्त स उत्तम सहस्रचल हुआ । चैत्र मास कृष्णपक्ष की प्रतिपदा के दिन ब्रह्मा ने पैदा किया । हे सुरपूजिते ! तामस से नालिका के भीतर वह अन्तर्हित हो गया ।

प्रकाशरूपं चैत्रस्य प्रतिपदरुणोदये ।
प्रारभत्सृष्टिविस्तारं यथापूर्वं महेश्वरि ॥

हे महेश्वरि ! चैत्र मास की प्रतिपदा के दिन सूर्योदय के समय प्रकाश रूप सृष्टि का विस्तार आरम्भ हुआ ।

सृष्टिमारभ्य गिरिजे तदा हर्षमवाप सः ।
ततस्तद्दिवसे कार्यं जनैः सर्वैर्महोत्सवम् ॥

हे गिरिजे ! सृष्टि का प्रारम्भ कर तब वह प्रसन्न हुआ । इसके बाद उस दिन सभी मनुष्यों को महोत्सव करना चाहिए ।

श्री भैरवी—

महोत्सवविधिं देव श्रोतुमिच्छामि[1] वार्षिकम् ।
यच्छ्रुत्वा मानवो देवि सुखं प्राप्नोति वार्षिकम् ।
अतो वद महेशान लोकानुग्रहकाम्यया ॥

हे देव ! वार्षिक महोत्सव विधि सुनना चाहता हूं, जिसे सुनकर मनुष्य वार्षिक सुख पाता है ।

श्री भैरवः—

वक्ष्यामि गुह्यं परमं नववर्षोत्सवं प्रिये ।
येन विज्ञातमात्रेण सर्वज्ञत्वं लभेन्नरः ॥

हे प्रिये ! परम गुह्य नववर्षोत्सव के विषय में मैं कहता हूँ, जिसके जानने मात्र से मनुष्य सर्वज्ञता को पाए ।

अमायां प्रातरुत्थाय प्रातः कृत्यं विधाय च ।
तीर्थं गत्वा च स्नात्वा च वचाकल्पं समारभेत् ॥

अमावस्या के दिन सुबह उठकर और प्रातः कृत्य कर तथा तीर्थ पर जा एवं स्नान कर वचाकल्प का प्रारम्भ करे ।

एकोऽस्मीति[2] बहु स्यां वै श्रुतौ प्रोक्तं ततो[3]ऽपि च ।
स्व चेतस्योमिति तदोच्चारणात्प्रापितो[4]पतत् ॥

मैं एक हूं, बहुत हो जाऊं, यह श्रुति में कहा गया है । तदनन्तर...

वाचा रूपः स एवासीत्सैव भूता[5]जटा भुवि ।
ततो भूतानि परतस्तस्यास्तु प्रकटीभवन् ॥

---

१ मिच्छंमि २ एकोस्मीति ३ ततोपि ४ त्प्रापितोपतत् ५ भूतजटा

वाणीरूप वही था, वही पृथ्वी पर जटा हुआ। इसके बाद उससे परे भूत प्रकट हुए।

अनूद्यते भास्करे चैव चाकल्पो विशिष्यते।
वाचाकल्पं विधायैवं ह्यौषधं कल्पमावहेत् ॥

सूर्य्य के उदित न होने पर आकल्प कहा जाता है। वाचा कल्प को कर इस तरह औषध कल्प को धारण करे।

तद्दिने मणिमन्त्राद्या ज्वलन्त्यग्नि[1] वदम्बिके।
विधाय नित्यं तद्दैनं शक्तनानि परीक्षयेत् ॥

हे अम्बिके! उस दिन मणि-मन्त्र आदि अग्नि की तरह जलते हैं।...

पुष्पदन्तोदयेनात्थं कथाप्रश्नांस्तथारभेत्।
विमृश्य तत्कथाप्रश्नं तत्प्रतीकारमाचरेत् ॥

पुष्पदन्त के उदय के समय... कथाप्रश्नों को वैसे शुरू करे। उस कथाप्रश्न को विचार कर उसका प्रतीकार करे।

प्रतिकृत्य तु तत्प्रश्नं सुखवर्षो भवेत्प्रिये।
तथा मंगलसंभारान्नानीय[2] कांस्यपात्रके।
मिश्रीकृत्य परीक्षेत प्रातरुत्थाय तन्मुखम् ॥

हे प्रिये! उस प्रश्न का प्रतिकार कर सुखी वर्ष होवे। तथा मांगलिक सामग्री को कांस्यपात्र में लाकर तथा मिलाकर एवं सुबह उठकर उसके मुख की परीक्षा करे।

ब्रह्मणो जगदारम्भे कारणं वस्तुसंचयम्।
पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाश एव च
पञ्चभूतानि चैतानि जगन्निर्माणकारणम् ॥

ब्रह्मा के जगत् का प्रारम्भ करने पर वस्तुसंचय कारण है। पृथिवी, जल, तेज, वायु एवं आकाश ये पांच भूत जगत् के निर्माण में कारण है।

धान्यगन्धपुष्पफलैर्देवमूर्तिसुवर्णकैः।
रसैर्दधिफलैर्युक्तं भूतरूपमनेकधा ॥

धान्य, गन्ध, पुष्प, फल, देवमूर्ति, सुवर्ण, रस और दधि एवं फलों से युक्त अनेक प्रकार के भूतरूप हैं।

एतैरिन्द्रियसंभूतिस्तस्मात्पात्रं परीक्षयेत्।
दक्षिणः सुप्तचित्तस्य वायसस्यापि सुन्दरि ॥

---

१ ज्वलन्त्याग्नि २ संभारानानीय

इनसे इन्द्रिय सम्भूति है, इसलिए दक्षिण पात्र की परीक्षा करे। हे सुन्दरि ! सुप्तचित्त--

सीताशापविदग्धस्य शब्दं दुःखदमीरितम्।
अभुक्त्वा नैव तच्छब्दं शृणुयाच्च क्वचिन्नरः।
श्रुत्वा प्रमादतो देवि वर्षो विघ्नकरो भवेत्॥

और सीता के शाप से विदग्ध कौए का भी शब्द दुःखद कहा गया है। बिना खाए मनुष्य कहीं वह शब्द न सुने। हे देवि ! प्रमाद से सुनकर वर्ष विघ्नकर होवे।

तस्माद्वै सग्निकश्चादौ दधियुक्तं फलं ततः।
प्राश्य प्रातः कृत्यमपि[1] ततः कुर्यादसंशयम्॥

इसलिए अग्निहोत्री दही युक्त फल खा कर तदनन्तर प्रातः कृत्य भी निस्सन्देह करे।

तस्मिन्कालेऽथ[2] वा प्राश्येत्पुत्रमित्रजनैर्युतः।
भुक्त्वा पीत्वा प्रभाते तु[3]···संगमवस्त्रकम्।
फलं गृहीत्वा गन्तव्यं बन्धुवर्गगृहं प्रति॥

इसके बाद उस समय पुत्र और मित्रजनों से युक्त हो प्राशन करे (खाए)। खा-पीकर सुबह फल लेकर बन्धुवर्ग के घर की ओर जाना चाहिए।

तत्रापि प्राश्य किञ्चित्तु[4] नागच्छेत निराशनः।
बन्धुगेहान्निरशनः प्रत्यागच्छेद्यदा प्रिये।
तदा वर्षं भवेत्सोऽपि[5] क्षुत्पिपासार्दितो जनः॥

वहां भी कुछ खाकर अर्थात् बिना खाए न आए। हे प्रिये ! जब बन्धु के घर से बिना खाए लौटे तो वह भी मनुष्य भूख-प्यास से पीड़ित हो और उसका वर्ष ऐसा हो।

तस्मात्प्रयत्नेन प्रिये बन्धुगेहं व्रजेन्नरः।
प्रत्याव्रजेन्न तस्मात्तु गेहान्निरशनः प्रिये॥

हे प्रिये ! इसलिए यत्नपूर्वक बन्धु के घर जाए। हे प्रिये ! उस घर से बिना खाए न लौटे।

रोगी भीतः कालयुतो भवेद्वर्षं महेश्वरि।

---

१ कृत्यिमपि २ न्कालेथ ३ बस्त्वा ४ किंञ्चित्तु ५ त्सोपि

यदि बिना खाए लौटता है तो हे महेश्वरि ! उसका वह वर्ष रोगी, भययुक्त एवं कालयुक्त होवे ।

श्री भैरवी—

कस्य पूजां तद्दिने वै कृत्वा सुखमवाप्नुयात् ।
किं किं कार्यं महेशान कृत्वा किं फलमाप्नुयात् ॥

उस दिन किस की पूजा कर सुख पाए । हे महेशान ! क्या-क्या करना चाहिए और क्या कर क्या फल पाए ?

श्री भैरवः—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि नववर्षे महोत्सवम् ।
चतुर्मुखः प्रादुरासीत्तथा[1] पञ्चमुखः प्रिये ॥

हे देवि ! सुनिए, नववर्ष में महोत्सव के विषय में कहता हूँ । हे प्रिये ! चतुर्मुख तथा पञ्चमुख उसका प्रादुर्भाव हुआ ।

हृत आकाश ईशेन चतुर्भूतमुखोऽभवत्[2] ।
अत एव भैरवोऽपि[3] पञ्चधा मुख ईरितः ॥

ईश ने आकाश का हरण किया, जिससे वह चतुर्मुख हुआ । इसीलिए भैरव को भी पञ्चमुख कहा गया ।

स्वं संछाद्य च स्वच्छन्दस्तस्य पूजां प्रकारयेत् ।

अपने को ढक कर स्वच्छन्द हुआ उसकी पूजा करे ।

तं संमर्ज्य विधानेन स्नानैर्गन्धानुलेपनैः[4] ।
पत्रैः पुष्पैश्च फलैर्वापि[5] वस्त्रैर्नानाविधैस्तथा ।
उपचारैरनेकैश्च तथा ब्राह्मणवाचनैः[6] ।
लक्ष्मीपुत्रार्चनैश्चापि प्रापणै[7]र्दधिशर्करैः ।
ब्राह्मणान्पूजयेच्छक्त्या दक्षिणाभूषणैरपि ॥

विधिपूर्वक स्नान-गन्ध-लेप-पत्र-पुष्प-फल-अनेक प्रकार के वस्त्र-अनेक उपचार तथा ब्राह्मणों से उच्चरित स्वस्तिवाचन, लक्ष्मी-पुत्रार्चन-प्रापण-दधि-शर्करा एवं दक्षिणा-आभूषणों से उसकी पूजा कर ब्राह्मणों की पूजा करे ।

तिथिपत्राण्यथादायपञ्चपात्रे[8] पुरः प्रिये ।
सम्पूज्य सूर्यं गणपं गणान्ब्रह्माणमीश्वरीम्[9] ॥

---

१ प्रदुरा २ मुखोभवत् ३ भैरवोपि ४ स्नानै गंधलेपनैः ५ फलैवापि
६ ब्रह्मणः ७ प्रापनैर्दधि ८ न्पञ्चपात्रे ९ मीश्वरिम्

वाग्देवतां समर्चेत तथा गन्धानुलेपनैः।
उपचारै[1]श्चार्चयित्वा ज्योतिष्टोममवाप्नुयात् ॥

हे प्रिये ! तिथि-पत्रों को ले आगे पञ्चपात्र में रख सूर्य, गणपति, गण, ब्रह्मा-ईश्वरी और वाग्देवता की गन्ध-लेप एवं उपचारों से पूजा कर ज्योतिष्टोम को पाए।

पूजयित्वा तथा जामीर्भक्ष्यभोज्यानुलेपनैः।
नर्तनैर्गायनैर्वापि हास्यलास्यादि क्रीडनैः ॥
मित्रैर्बन्धुगणैः सार्धं मिथो मिष्टान्नभोजनैः।
गुर्वर्चनैर्बन्दनैश्च नन्दनैश्चन्दनैस्तथा ॥
ग्रामपालार्चनैः[2] पुण्यैर्देशपालार्चनैरपि।
कुलदेवार्चनैश्चापि कुलवृद्धानुतर्पणैः ॥
मिलित्वा तिथिपत्रस्य श्रृणुयात्फलमुत्तमम् ॥
एवं महोत्सवं कृत्वा कारयित्वापि सुन्दरि।
नववर्षस्य मनुजोऽतिरात्रफलमाप्नुयात् ॥

खाने योग्य पदार्थों, लेपों, नर्तनों, गायनों, हास्य-नृत्य एवं क्रीडनों, मित्रों-बन्धुगणों के साथ परस्पर मिष्टान्नभोजनों, गुरु की पूजाओं, बन्दनों, नन्दनों, चन्दनों, ग्रामपालार्चनों, पुण्यों, देशपालार्चनों, कुल देवार्चनों, कुल वृद्धानुतर्पणों से······ पूजा कर तिथिपत्र के उत्तम फल को सुने। इस तरह हे सुन्दरि ! नववर्ष के महोत्सव को कर या करा कर भी मनुष्य अतिरात्र यज्ञ के फल को पाए।

श्री भैरवी—

भूतसृष्टिं विसृज्यादौ ततः किमसृजद्विभुः।
वद सत्यं महादेव लोकानुग्रहकाम्यया ॥

आदि में भूतसृष्टि की रचना कर ब्रह्मा ने तदनन्तर किसकी रचना की। हे महादेव ! लोगों पर कृपा करने की इच्छा से सत्य कहिए।

श्री भैरवः—

भूतसृष्टिं विधायापि स्वेच्छया चासृजन्मुनीन्।
अत्रिं मरीचिमङ्गिरसं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्।
वसिष्टं चेति सप्तर्षीन्मानसान्मुनिसत्तमान् ॥

---

१ उपचारैर्चार्च २ पालाचनैः

भूतसृष्टि की रचना कर ब्रह्मा ने स्वेच्छापूर्वक अत्रि-मरीचि-अंगिरस-पुलस्त्य-पुलह-क्रतु और वसिष्ट इन मानस मुनि श्रेष्ठ सप्तर्षियों को रचना की।

ते दृष्ट्वा तत्र ब्रह्माणं चतुर्मुखमदूरतः ।
प्रणम्य मनसा भक्त्या गिरया[1] परयास्तुवन् ।।

उन्होंने समीप ही वहां चतुर्मुख ब्रह्मा को देखकर मन से भक्तिपूर्वक प्रणाम कर वाणी से स्तुति करना शुरू की।

ॐ रक्तं पिशंगं नतबभ्रुश्मश्रुचतुर्मुखं चारु चतुर्भुजञ्च ।
कमण्डलुं जपवटीं दधानं सत्पुस्तकं चाभपदं प्रपन्नाः ।।

रक्त, पिशङ्ग, नतबभ्रुश्मश्रु, चतुर्मुख, चारु चतुर्भुज, कमण्डलु- जपवटी और पुस्तक को धारण किए हुए, अभयप्रदान करने वाले आपकी हम शरण में आए हैं।

रक्तं रूपं रजसा यद्दधासि सक्तं जन्तूनां सर्जने नित्ययुक्तम् ।
तपोयुक्तं सूचयन्नेवमेकं कार्ये सक्तं निश्चितं त्वां प्रपन्नाः ।।

रजोगुण से जो रक्त रूप को तुम धारण करते हो, प्राणियों की रचना करने में नित्य लगे हुए, तप से युक्त अपने को सूचित करते हुए, इस तरह एक मात्र और कार्य में लगे हुए निश्चित तुम्हारी हम शरण में आए हैं।

अधोऽपि[2] रक्तं जनसर्जने त्वं केशे पिशङ्गं नतबभ्रुश्मश्रुम् ।
ऊर्ध्वाधो[3]ऽपि सर्जने सक्तचित्तमिति सूचयञ्छरणं[4] त्वां
प्रपन्नाः ।। ३ ।।

नीचे भी मनुष्यों की सर्जना में लगे हुए पीले रङ्ग के केशों वाले, नतबभ्रुश्मश्रु, ऊपर-नीचे भी सर्जना करने में लगाए हुए चित्त वाले, यह सूचित करते हुए तुम्हारी हम शरण में आए हैं।

यस्माद्भूतैः सर्जने सर्वतो मे प्रत्यक्षभूतं कारणं सर्वतोऽपि[5] ।
चतुष्टं यत्तेजसो मे मुखं तत्सूचयंस्त्वां शरणं वै प्रपन्नाः ।। ४ ।।

जिस से सर्जना करने में प्राणियों से सब तरफ प्रत्यक्ष हुए, सब तरफ से भी कारणस्वरूप,...... उसकी सूचना देते हुए तुम्हारी हम शरण में आए हैं।

---

१ गिरया परयंडन्यन् २ अधोपि ३ ऊर्ध्वाधोपि ४ सूचयञ्शरणं ५ सर्वतोपि
६ चतुष्टं

तेजोरूपैस्तुर्यमुखैर्यदेतत्तदेकं तत्पंचहीनं च तेजः।
सर्वैः पूज्यं सूचयन्वै यतस्त्वं त्वामेवातः शरणं वै प्रपन्नाः॥

तेजस्वरूप-चतुर्मुखों ····· सभी से पूज्य सूचित करते हुए क्योंकि तुम हो, इसलिए हम तुम्हारी शरण में आए हैं।

महेशो वै पञ्चमं यच्चकर्त शिरः शून्यं गुह्यरूपं विधाय।
तत एवमुत्पतिष्यन्ति सर्वे सूचयंस्त्वामि[1]मित्थमेव प्रपन्नाः॥

महेश ने जो शून्य-गुह्यरूप बनाकर पञ्चम शिर काट दिया, इसके बाद इस तरह सभी उडेंगे, यह सेचना देते हुए इसी तरह हम तुम्हारी शरण में आए हैं।

एका विद्या प्रोद्यता शब्दरूपा भिन्नप्रयोगा सा चतुर्धा विभक्ता।
कर्मज्ञानोपासनामन्त्रकाण्डैश्चतुर्मुखैः सूचयंस्त्वां प्रपन्नाः॥

एक विद्या शब्दरूप कही गई है, भिन्नप्रयोग होने पर वह चार प्रकार में विभक्त हुई। कर्म-ज्ञान-उपासना-मन्त्रकाण्ड चतुर्मुखों से सूचित करते हुए तुम्हारी हम शरण में हैं।

भुजैश्चतुर्भिर्धर्मकामार्थमोक्षां[2]श्चतुवर्णांश्चतुरा श्रमांश्च।
उत्पत्स्यामि कर्मसंघाश्च[3] तेषां सूचयंस्त्वां शरणं वै प्रपन्नाः॥

चार भुजाओं से धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष को और चार वर्णों एवं चार आश्रमों तथा कर्मसंघों को पैदा करूंगा। उन्हें····· सूचित करते हुए तुम्हारी हम शरण में हैं।

रसादिकं मन्त्ररहस्यमेव वाचां सिद्धिं द्विविधं तत्फलञ्च।
मत्त एवेति सूचयंस्त्वां शरण्यं भूयो भूयो दण्डवत्सुप्रसन्नाः॥

रस आदि, मन्त्ररहस्य, दो प्रकार की वाणियों की सिद्धि और उसका फल मुझ से ही, यह सूचित करते हुए तुम्हारी शरण में सुप्रसन्न हम बार-बार दण्डवत् प्रणाम करते हैं।

श्री भैरवः—

इत्थं स्तुत्वा महादेवि मुनयस्तं प्रजापतिम्।
प्रणम्योत्थाय प्रोत्थाय तूष्णीमेवावतस्थिरे॥

हे महादेवि। इस प्रकार मुनि उस प्रजापति की इस तरह स्तुति कर, प्रणाम कर उठ-उठकर चुप ही वहां ठहरे।

---

१ स्त्वांमित्थ २ मोक्षाश्च ३ संघाश्च

तान्नुवाच[1] ततो ब्रह्मो स्तोत्रेणानेन[2] तोषितः ।
प्रसन्नो वरदश्चास्मि वृणीध्वं वरमुत्तमम् ॥

इस स्तोत्र से सन्तुष्ट हुए ब्रह्मा ने इसके बाद उन्हें कहा— मैं प्रसन्न हूं और वर देना चाहता हूं, उत्तम वर मांगिए ।

ततस्ते मुनयः सर्वे भक्तिनम्रात्ममूर्तयः ।
किं वरेण महेशान भवद्दर्शनतः[3] प्रभो[4] ॥

इसके बाद भक्ति भाव से नम्र आत्ममूर्ति वाले सभी मुनि लोग कहने लगे—हे महेशान ! प्रभो ! आप के दर्शन से बढ़ वर से क्या ?

त्वमेवाज्ञां कुरुष्वाद्य तवानुग्रहकारिणः ।

हम तुम्हारे कृपापात्र हैं, इसलिए आज आप ही आज्ञा कीजिए ।

श्रुत्वा वचस्तु तेषां वै मुनीनां भावितात्मनाम् ।
आज्ञां चक्रे सृष्टिकर्ता प्रजाः सृजथ मा चिरम् ॥

भावितात्मा उन मुनियों के वचन सुन सृष्टिकर्ता ब्रह्मा ने आज्ञा की कि प्रजा की सृष्टि करो, देर मत लगाओ ।

इत्याज्ञप्तास्तदा देवि मुनयस्ते महौजसः ।
ससृजुर्विविधास्तत्र प्रजाः परमदर्शनाः ॥

हे देवि ! इस प्रकार आज्ञा किए हुए तब उन महातेजस्वी मुनियों ने वहां परम दर्शनीय अनेक प्रकार की प्रजाओं की रचना की ।

श्री भैरवी—

कृष्णाद्याश्चैव शुक्लाद्या द्विधा भिन्नाः कथञ्च ताः ।
वर्षोत्सवं तत्र कुर्युः कृष्णे शुक्ले[5]ऽथवा पुनः ॥

वह प्रजा कृष्णाद्य और शुक्लाद्य दो प्रकार से विभक्त हो गई, जिससे वहां उन्होंने कृष्णपक्ष अथवा शुक्ल पक्ष में फिर वर्षोत्सव किया ।

संभारपात्रं सृष्टेश्च कस्मिन्नहनि सुन्दर ।
दृष्ट्वा प्रमुदिताः कुत्र भावयुक्ता भवन्त्युत ॥

हे सुन्दर ! किस दिन सृष्टि के संभारपात्र को देखकर वे प्रसन्न हुए कहां भावयुक्त हो जाते हैं ।

वर्षोत्सबस्य करणात्फलं मे वद विस्तरात् ।

वर्षोत्सव के करने से विस्तारपूर्वक मुझे फल कहिए ।

---

१ तानुवाच २ नेनस्तोषितः ३ भवद्दर्शत ४ प्रभोः ५ शुक्लेथवा

श्री भैरवः—

श्रृणु वक्ष्यामि देवेशि प्रश्नमेनं सुदुर्लभम् ।
यच्छ्रुत्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि सुन्दरि ।।

हे देवेशि ! सुनिए, मैं इस दुर्लभ प्रश्न के विषय में कहूंगा, जिसे सुनकर हे सुन्दिर ! फिर इस तरह तू मोह को प्राप्त नही होगी ।

द्वैधी भूताः[१] प्रजास्तत्र कृष्णशुक्लादिभेदतः ।
कृष्णाद्या मध्यदेशीयाः समुद्रान्तं समाश्रिताः ।।
ब्रह्माप्रादुर्भवदिने सक्तास्ताः सुरपूजिते ।।

कृष्ण और शुक्लादि भेद से वहां प्रजा दो भागों में बंट गई। हे सुरपूजिते ! वह प्रजा ब्रह्मा के प्रादुर्भाव के दिन......

यस्मिन्नहनि स ब्रह्मा प्रादुर्भूतो जगत्यपि ।
तद्दिने एव कुर्युस्ता[२] मोहोत्सवमतन्द्रिताः ।।

जिस दिन संसार में ब्रह्मा का प्रादुर्भाव हुआ, उस दिन ही निरालस हो उन्होंने मोहोत्सव किया ।

सुखसंभारहीनास्ता अत एव महेश्वरि ।
शुक्ले[३]ऽरुणे प्रतिपदि स्रष्टुमारभतप्रभुः[४] ।
मुनीन्न[५]सूचयत्तत्र पात्रसम्भारदर्शनात् ।।

हे महेश्वरि ! वे सुखसम्भार से रहित थे, इसी लिए सूर्य के शुक्ल पक्ष में होने पर प्रतिपदा के दिन प्रभु ने सृष्टि की रचना करना प्रारम्भ किया और वहां पात्रसम्भार दर्शन से मुनियों को सूचित किया ।

इत्थं कारणसम्भारैः सृजध्वं मुनिसत्तमाः ।
भूतैरेव भवेत्सृष्टिः सर्वेन्द्रियसमन्विताः[६] ।।

सर्वेन्द्रिय समन्वित हे मुनिश्रेष्ठो ! इस प्रकार कारणसम्भारों से सृष्टि की रचना करो, भूतों से ही सृष्टि होवे ।

याम्या नै[७]र्ऋतोद्भवानां वायसानां रुतान्नराः ।
तमोरूपा भविष्यन्ति रुतं तेषां विवर्जयेत् ।।

याम्यानैर्ऋत में पैदा हुए कौओं की आवाज से मनुष्य तमोरूप हो जाएंगे, इसलिए उनकी आवाज को छोड़ दे ।

प्रशस्तफलबीजस्य दधिमिश्रस्य भक्षणात् ।
जेता सर्वत्र शुद्धस्तु प्रजातंतावपीश्वरि ।।

---

१ भूत्वाः २ त्रुपुस्ता ३ शुक्लेरुणे ४ मारभतः ५ मुनीनसूच ६ समन्विता ७ नैर्ऋतो

दधि मिश्रप्रशस्तफलबीज के खाने से जेता सब जगह शुद्ध हो हे ईश्वरि !

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन दधि भोक्तुं यतेत्सदा ।
फलञ्च गुटिकायुक्तं परमारोग्यमाप्नुयात् ।।

इसलिए सभी यत्नों से सदा गुटिकायुक्त फल और दही खाने का यत्न करे, जिससे परम आरोग्य को पाए ।

शुद्धत्वं सन्ततेश्चापि सुभावस्यापि सुन्दरि ।

और हे सुन्दरि ! अच्छे स्वभाव वाली सन्तति की शुद्धता को भी पाए ।

वह्नेर्बृहत्वं च विशुद्धभावं बलस्य वृद्धिं सह[1] जोजसोश्च ।
धृतेश्च बुद्धेश्च शरीरपुष्टिरारोग्यमायुः परमप्रभावम् ।।
मनो वचः स्वास्थ्यमपीशभक्ति कृषेश्च वृद्धिं धनधान्यबृद्धिम् ।
नववर्षोत्सवमेवं[2] च जन्तुः समाप्नु[3]याद्दधिबीजस्य भक्षणात् ।।

वह्नि का बृहत्व और विशुद्धभाव, बल की वृद्धि ... धृति और बुद्धि तथा शरीर पुष्टि, आरोग्य, आयु, परम प्रभाव, मन-वचन-स्वास्थ्य और ईशभक्ति एव कृषि तथा धनधान्य की वृद्धि, इस तरह प्राणी दधिबीज के खाने से नववर्षोत्सव की समाप्ति करे ।

सम्भारपात्रे दधिबीजभक्षण[4]मुद्दिष्टमेतद्ब्रह्मणात्र पुरा यत् ।
प्रजासर्गे नियतो यश्च जन्तुः स-वै फलमक्षयमश्नुते च ।।

सम्भारपात्र में दधिबीज का खाना, पूर्वकाल में ब्रह्मा ने जहां जो यह कहा और प्राणी प्रजा की सृष्टि में नियत है, वह अक्षय फल पाता है ।

अन्यैः सम्भारैः सूचयन्भूतसंघान्निद्रियार्था[5]न्सर्वमेवेश्वरीत्थम् ।
उपदिशन्सृष्टिकर्ता च सर्वा[6]:सम्भारपात्रेण प्रजाः सृजध्वम्[7] ।

हे ईश्वरि ! इस तरह अन्य सम्भारों से भूतसंघ, इन्द्रियार्थों — सबको ही सूचित करते हुए सृष्टिकर्ता ने उपदेश देते हुए कहा कि सम्भार पात्र द्वारा सभी प्रजाओं की सर्जना करो ।

अत एव शुक्लदिने महोत्सवं कुर्युः शुक्लाद्या एवमेवेशपूज्ये ।
यस्मात्स्रष्टुं प्रारभद्विश्वकर्ता तस्माद्दिनं सर्वलोके प्रशस्तम् ।।

इसलिए शुक्लाद्य इस तरह ही ईशपूज्य शुक्लदिन में महोत्सव करे । जिससे विश्वकर्ता ने इस दिन सर्जना का प्रारम्भ किया, इसलिए यह दिन सर्वलोक में प्रशस्त है ।

वर्षोत्सवंविधि[8]-वद्यश्च कुर्यात्स प्राप्नोति भोगसंघान्ननेकान् ।[9]
निराकृत्यो[10]····वयान्नजस्रं समाप्नुयाद्योग[11]···महेशि ।।

---

१ सह ओजसो २ वर्षोत्सव एवं ३ समाप्नया- ४ भक्षणमुद्दिष्ट ५ संघान्निन्द्रिया ६ सर्वान्सभार ७ सृजेध्वम् ८ वर्षोत्सवोवधिवद्यश्च ९ संघाननेकान् १० रागचयानजस्रं ११······

जो इसको को करे, वह अनेक भोगसंघों को पाता है। हे महेशि !…

घोरैर्युक्तः पातकैः नित्यदुःखी पापैर्विमुक्तास्त्रिदिवादिगामी।
तत्र भुक्त्वा भोगचयमनेकं पुनः स च प्राप्नुया[1]… निसंगम्॥

घोर पापों से युक्त नित्य दुःखी रहता है और पापों से विमुक्त स्वर्ग का जाता है तथा वहां अनेक प्रकार के भोगसमूह को भोगकर फिर वह……

ज्ञात्वा सूक्ष्मं निर्गुणं ब्रह्म तत्र न चाप्नुयात्पुनरावृत्तिमेव।

वहां सूक्ष्म निर्गुण ब्रह्म को जानकर पुनरावृत्ति को नहीं पाए।

इत्थं वर्षोत्सवं कुर्याद्यः कश्चिन्मानवो भुवि।
स चिरायुः सुखी पुत्री भवत्येव न संशयः॥

इस प्रकार जो कोई मनुष्य पृथ्वी पर वर्षोत्सव करे, वह चिरायु, सुखी और पुत्रवान् होता है, इसमें संशय नहीं है।

तद्दिनात्तु समारभ्य गृह्णीयात्तिथिपत्रकम्[2]।
तिथिं वारं च नक्षत्रं योगं करणपञ्चकम्॥

उस दिन से लेकर तिथि-वार-नक्षत्र-योग और करण इस पञ्चाङ्ग तिथिपत्र को ग्रहण करे।

दिने दिने पठेन्मर्त्यो गङ्गास्नानमवाप्नुयात्।

जो मनुष्य प्रतिदिन पढ़े, वह गङ्गास्नान को पाए।

नववर्षदिने यस्तु शृणुयात्पठेत्तु[3] यः।
इदं विमर्शं परमं सृष्टेर्वचादिकारणम्।
गोकोटिशतयुक्तस्य हयकोटेश्च सुन्दरि।
कुरुक्षेत्रे चोपरागे सम्यग्दत्तस्य[4] यत्फलम्।
तत्फलं समवाप्नोति श्रुत्वा वर्षदिनेत्विदम्॥

सृष्टि की रचना के कारण इस परम विमर्श को जो नववर्ष दिन में सुने, पढ़े। हे सुन्दरि ! सैकड़ों करोड़ गायों से युक्त और करोड़ अश्वों की सम्पत्ति कुरुक्षेत्र में ग्रहण के समय अच्छी तरह दिए जाने का जो फल है, वह फल वर्ष दिन में यह सुन कर पाता है।

अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च।
यत्फलं लभते मर्त्यस्तदस्य पठनात्फलम्॥

हजारों अश्वमेध और सैकड़ों वाजपेय यज्ञ का जो फल मिलता है, वह फल मनुष्य इसके पढ़ने से पाता है।

पुत्रा[5]न्नवाप्नुयात्पुत्री कामी कामा[6]न्नवाप्नुयात्।
आपन्न आपदरुद्बुद्धो[7] मुच्येत बन्धनात्॥

१… २ पत्रिकम् ३ त्पठते तु ४सम्पद्दत्तस्य ५ पुत्रानवा ६ कामानवा ७ मुद्बद्धो

संकटात्संकटी मुच्येद्विषादादपि दुःखितः ॥
रुग्णो रोगात्प्रमुच्येत वन्ध्यापुत्रमवाप्नुयात् ॥

पुत्रार्थी पुत्रों को पाए, कामी कामनाओं को पाए। आपद्ग्रस्त आपत्ति से और बन्धन से मुक्त हो जाए। संकटग्रस्त संकट से तथा दुःखी दुःख से भी मुक्त हो जाए, इसी तरह रोगी रोग से मुक्त हो जाए तथा वन्ध्या पुत्र को पाए।

ब्रह्मस्तुतिमिमां श्रुत्वा पुण्यांपापापनोदिनीम्।
श्रुत्वा पठित्वा मुच्येत जन्मान्तरभवैरघैः ॥

पुण्यप्रद पापों को नष्ट करने वाली इस ब्रह्म स्तुति को सुनकर वा पढ़कर मनुष्य जन्मान्तर में पैदा हुए पापों से मुक्त हो जाए।

कलिकाले महाघोरे दुष्कृतं वज्रलेपनम्।
श्रुत्वा वर्षोत्सवं पुण्यं तत्क्षणात्तद्विनश्यति ॥

महाघोर कलियुग में पुण्यप्रद वर्षोत्सव को सुनकर वज्रलेप की तरह भी पाप तत्क्षण नष्ट हो जाता है।

श्रुत्वा वर्षदिने पुण्ये वर्षोत्सवमतन्द्रितः।
वर्षान्तं प्राप्नुयाल्लाभं कृषिवृद्धिं समन्ततः ॥

पुण्यप्रद वर्षदिन में वर्षोत्सव को सुनकर निरालस पुरुष वर्षान्त लाभ और चारों ओर से कृषिवृद्धि को पाए।

अलक्ष्मीः कालकर्णी च दूरे तिष्ठति तत्पुरः।
सुखं भोगचयं चापि प्राप्नुयाद्भुवि दुर्लभम् ॥

अलक्ष्मी और कालकर्णी उसके आगे से दूर ही रहती है। पृथ्वी पर दुर्लभ सुख और भोगसमूह को पाए।

इति ते कथितो देवि नववर्षमहोत्सवः।
श्रुतश्च पठितो ध्यातः सर्वपापापनोदनः।

हे देवि! यह तुम्हें मैंने नववर्षमहोत्सव कहा है। सुनने-पढ़ने और ध्यान करने से सभी पापों को नष्ट करने वाला है।

नववर्षदिने यस्तु श्रृणुयादिदमुत्तमम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तो याति विष्णोः परं पदम् ॥

नववर्ष दिन में जो इस उत्तम विमर्श को सुने, वह सभी पापों से मुक्त हो विष्णु के परम पद को पाता है।

इति श्री श्रीसंहितायां नववर्षोत्सववर्णनमाहात्म्यं नाम पटलः ॥

PURANAS IN POTHI FORM, Fullcloth Bound : TEXT WITH INTRODUCTION & VERSE INDEX Reprinted from Khemraj Shrikrishnadas, Venkateshwar Steam Press Bombay Published with the financial assistance from the Ministry of Education Govt. of India.

विष्णु महापुराण : विष्णु चित्यात्मक प्रकाशाख्य श्रीधरी व्याख्या सहित	३००.००
स्कन्द महापुराण (मूल मात्र) छोटा	६००.००
,, ,, ,, बड़ा	२०००.००
शिव महापुराण (मूल मात्र)	१५०.००
शिव महापुराण (बड़ा अनुक्रमणी सहित)	४००.००
वायु महापुराण	१२०.००
मार्कण्डेय महापुराण (भाषा टीका तथा श्लोकानुक्रमणी सहित)	२१०.००
वामन महापुराण	१००.००
कूर्म महापुराण	१२०.००
नारद महापुराण	२५०.००
पद्म महापुराण (चार भागों में)	१०००.००
अग्निमहापुराण	३००.००
ब्रह्म महापुराण	३००.००
भविष्य महापुराण (तीन भागों में)	८००.००
गरुड़ महापुराण	३००.००
विष्णुधर्मोत्तरपुराण (दो भागों में)	७००.००
देवी भागवत पुराण	४५०.००
हरिवंश पुराण (भाषा टीका सहित) दो भागों में	६००.००
वासुकी पुराण	३५.००
एकाम्र पुराण	...
याज्ञवल्क्य स्मृति-मिताक्षरा व्याख्या सहित	८०.००
भृंगीश संहिता (भाषा टीका सहित)	...
ब्रह्मसूत्र भाष्यम् श्री कण्ठाचार्य (दो भागों में)	२४०.००